काष्ठ-परिरक्षण

हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला——४७

काष्ठ-परिरक्षण

लेखक

श्री जगन्नाथ पांडे

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

निर्माण-सामग्री के रूप में काष्ठ का प्रयोग प्रायः मानव सभ्यता के आरम्भ से ही होता आ रहा है। गृह-निर्माण में प्रयुक्त होनेवाली बल्लियों, धरनों आदि के लिए तथा खेती के औजार, नावें, जहाज, पुल, बैलगाड़ियाँ आदि बनाने के लिए लोग मुख्य रूप से लकड़ी, बाँस, बेत आदि से काम लेते रहे हैं। लोहा, सीमेण्ट, आदि की तुलना में ये चीजें अधिक सुगम और सस्ती हैं। मोटे और बड़े आकार के इमारती काष्ठ मकानों में आग लगने पर उन्हें गिरने से बचाने में लोहे की अपेक्षा अधिक सहायक होते हैं। रेल के स्लीपरों के लिए तो काष्ठ ही अधिक उपयुक्त होता है। काष्ठ में एक बड़ा दोष यही है कि दीमक, कवक, समुद्रकीट आदि काष्ठ-विनाशकों से तथा हवा, पानी, मिट्टी आदि के प्रभाव से वह शीघ्र क्षतिग्रस्त हो जाता है किन्तु अब ऐसे उपाय ढूँढ़ निकाले गये हैं और ऐसे यंत्र बना लिये गये हैं जिनकी सहायता से काष्ठ अधिक सुरक्षित और स्थायी बनाया जा सकता है। इस पुस्तक में इन्हीं सबका वर्णन किया गया है।

अमेरिका, ब्रिटेन आदि में काष्ठ-परिरक्षण का इतना विकास हो गया है कि वहाँ समुचित उपचार-क्रिया से काष्ठ की सेवा-आयु ५ से १० गुनी तक बढ़ गयी है। हमारा देश इस मामले में बहुत पिछड़ा हुआ है और उसे इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए अभी बहुत कुछ करना है।

श्री जगन्नाथ पांडे ने इस विषय की अधिक-से-अधिक जानकारी करा देने और उपचारित काष्ठों की उपयोगिता की ओर समुचित ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से ही यह पुस्तक लिखी है, जो हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला के ४७ वें पुष्प के रूप में प्रकाशित की जा रही है। श्री पांडे देहरादून की वन-अनुसंधानशाला में सहायक काष्ठ-परिरक्षण अधिकारी और इस विषय के विशेषज्ञ हैं। आशा है, आपकी यह कृति हिन्दी में इस विषय के साहित्य की पूर्ति में यथेष्ट योगदान करने में समर्थ होगी।

अपराजिता प्रसाद सिंह

सचिव, हिन्दीसमिति

विषय-सूची

भाग १

भाग २

भाग ३

चित्र-सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

* तारकांकित चित्र अलग छपे हैं।

भाग १

अध्याय १

काष्ठ के गुण

१. निर्माण-सामग्री के रूप में काष्ठ का महत्त्व

काष्ठ या लकड़ी ऐसा प्रधान वन्य पदार्थ है जो आदि काल से ही मनुष्य के गृह-निर्माण, कृषि संबंधी औज़ारों, रेलवे स्लीपरों, बिजली या तार के खम्भों, खानों के आधार-स्तम्भों, नावों, जहाजों, पुलों इत्यादि के बनाने में काम आता रहा है। बाँस, बेंत, घास-फूस आदि गौण वन-पदार्थ छप्पर छाने तथा अन्य कार्यकर सामग्री के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। ये पदार्थ सर्वत्र सरलता से पर्याप्त मात्रा में मिल सकते हैं और तत्काल काम में भी लाये जा सकते हैं। वनों में, नदियों और नहरों के किनारे तथा बेजोती जमीनों में भी वे सुगमता से उगाये जा सकते हैं। काट लेने के पश्चात् फिर भी उन्हें खेती की तरह निरन्तर उपजाया जा सकता है। इसके विपरीत लोहा, सीमेन्ट इत्यादि वस्तुएँ, जिनका निर्माण-सामग्री के रूप में उपयोग वर्तमान युग में प्राय: किया जाता है, केवल परिमित मात्रा में ही मिलती हैं और उन्हें विधिपूर्वक परिष्कृत करने के बाद ही प्रयोग में लाया जा सकता है। विधिपूर्वक निर्मित इन पदार्थों के इतनी अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने पर भी, कुछ विशेष निर्माण-कार्यों और उद्योगों के लिए सामान्यतः आज भी काष्ठ पर ही निर्भर रहा जाता है। मूल्य के विचार से भी काष्ठ सस्ता है।

२. अन्य निर्माण-वस्तुओं से काष्ठ की तुलना

काष्ठ में कई गुण हैं। यह हलका होता है और सरलता से प्राप्य है। मनुष्य दक्ष न होने पर भी इसका उपयोग अनेक प्रकार के कार्यों में कर सकता है। इसे काटने-फाड़ने के लिए विशेष प्रकार के यंत्रों की आवश्यकता नहीं होती, अपितु साधारण यंत्रों से ही कार्य किया जाता है। इसके विपरीत, लोहे और लोह-छड़ों द्वारा संवलित सीमेन्ट कांक्रीट के निर्माण कार्य के लिए कुशल और निपुण मनुष्यों की आवश्यकता होती है। भारीय तुलना की दृष्टि से काष्ठ उतना ही बलिष्ठ होता है जितना कि लोहा।

सीमेन्ट-कांक्रीट से यह पाँच या छः गुना बलिष्ठ है। काष्ठ में ध्वनिशोषण गुण है, अर्थात् इसमें आवाज को रोकने की शक्ति है। यह लचीला होता है और बोझ पड़ने पर यदि झुक भी गया तो बोझ उठा लेने के बाद अपने पहले आकार में आ जाता है। झुका या मुड़ा नहीं रहता। काष्ठ में विद्युत संवाहन गुण नहीं है, लोहा विद्युत संवाहक है। काष्ठ में अल्प-ताप संचालनता गुण है, जब कि लोहा और सीमेंट ऐसे नहीं हैं जो गर्मी को शीघ्र ही फैलाने में सहायता देते और स्वयं भी गरम हो जाते हैं। काष्ठ का आपेक्षिक ताप भी कम है, अर्थात् गरम होने पर इसका तापक्रम कम बढ़ता है और ठंडा होने पर कम घटता है। काष्ठ का ताप-लम्ब-प्रसारी होता है अर्थात् गरम होने से इसका फैलाव, धातुओं की अपेक्षा, अत्यन्त कम होता है। निम्नलिखित सारणी १ में उपर्युक्त गुणों की सांख्यिक गणना दी गयी है।

सारणी–१ (निर्देश ७ क, पृष्ठ ५५ पर देखिए)

निम्नलिखित सन्निकट अर्हाएँ हैं और कई संख्याओं के माध्य आँकड़े भी

भौतिक और यांत्रिक गुण	काष्ठ	इस्पात	सीमेंट
१. ताप-संवाहिता (कैलोरी/सेन्टीमीटर/सेकिन्ड/०°से०)	०.००० ३२ (तन्तु के समानांतर)	०.१०८	०.०००७१. (कांक्रीट पत्थर ०.००२२)
२. आपेक्षिक ताप (कैलोरी/ग्राम)	०.४२	०.१०७	०.२०
३. घनत्व (ग्राम/सेन्टीमीटर³)	०.८	७.७	२.३-३.० (जमा) २.३ (कांक्रीट का)
४. ताप प्रसार (लम्ब गुणक)	६×१०⁶ (२°-३४° से०)	१३.२×१०⁶ (४०° से०)	१२×१०⁶
५. ध्वनि शोषण (५१२ वारंवारता पर गुणक)	०.०३ (फर्श में) ०.०६ (दीवारों में)	–	०.०२५ (०.०१५-कांक्रीट पत्थर का)
६. लचक मापांक घनत्व	२८००	३९००	–
७. आतनन बल, पौंड/वर्गइंच घनत्व	२७०००	८४००	१६२
८. संपीडन बल, पौंड/वर्गइंच घनत्व	११०००	५३००	१०८२ (सात दिन में जमने पश्चात्) ६०६ (कांक्रीट का)
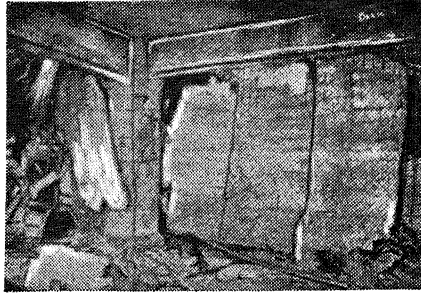
चित्र ३--रीइन्फोर्स्ड कांक्रीट गृह, पृ० ३।
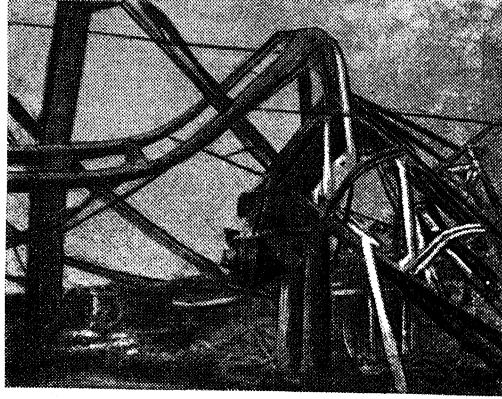
चित्र ४--स्टील गृह।
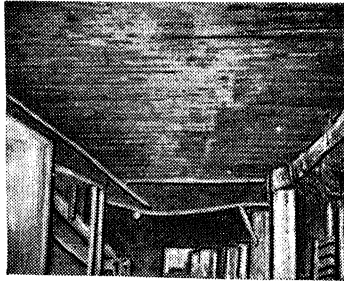
चित्र ५--काष्ठ गृह।

मोटे और बड़े आकार के इमारती काष्ठ, अंग्रेजी में मिल टाइप कन्सट्रक्सन कहाने-वाले मकानों में आग लगने पर उन्हें गिरने से बचाने में अधिक सहायक होते हैं। बड़े आकार के काष्ठ सरलता से अग्नि नहीं पकड़ते। बाह्य गर्मी से लकड़ी की आर्द्रता कम होने के कारण उसकी शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि लकड़ी में जितनी आर्द्रता कम हो उतना ही अधिक और जितनी आर्द्रता अधिक हो उतना ही कम बल रहता है। यदि लकड़ी का बाहरी भाग कुछ जलने के कारण नष्ट भी हो जाय, तो भी उसकी बोझ सँभालने की शक्ति आर्द्रता घटने के कारण बढ़ जाती है और इस प्रकार भस्म हुए लकड़ी के भाग की हानि-पूर्ति कर देती है। आग लगने पर लकड़ी कम फैलती है, जिससे मकान की दीवारों पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत लोहा अपने फैलाव के कारण समान परि-स्थितियों में दीवारों को गिरा देता है। सीमेन्ट-कांक्रीट तो फटकर स्वयं ही नष्ट हो
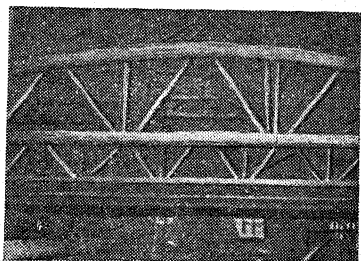
चित्र १—काष्ठ-ट्रस।
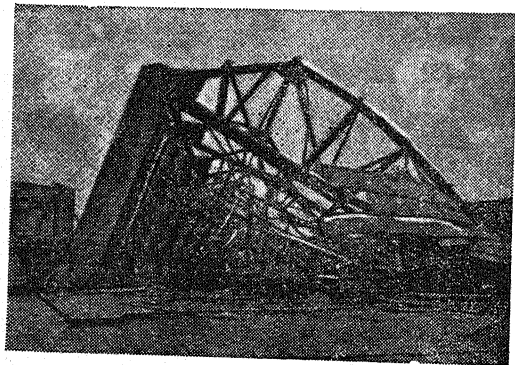
काष्ठ, इस्पात और संवलित कांक्रीट की संरचनाओं की आग लगने के बाद की दशा (चित्र १—५)

चित्र २—स्टील ट्रस।

जाता है। यदि अग्नि भयानक रूप धारण कर ले तो गृह-निवासियों को लकड़ी के मकान से भागकर बच निकलने का अवकाश मिल जायगा, परन्तु अन्य मकानों में, जहाँ लोहा और सीमेन्ट का प्रयोग हुआ हो, इन दशाओं में बाहर निकलकर अपनी रक्षा करने का

अवकाश कम मिलता है। अग्नि से लोहे और सीमेन्ट के बने मकान तुरन्त गिर जाते हैं और गृह-निवासी सामान को तो क्या, स्वयं अपने-आप को भी बचा सकने में असमर्थ रहते हैं। चित्र १, २, ३, ४, ५, में आग लगने के पश्चात् तीनों प्रकार के मकानों की दशा का प्रदर्शन किया गया है।

वर्तमान युग में बराबरी के अन्य निर्माण-पदार्थों का अधिक मात्रा में उत्पादन होने पर भी कुछ प्रकार के उपयोगों के लिए काष्ठ को अब भी महत्त्व दिया जाता है। रेलवे स्लीपरों के लिए काष्ठ से अधिक सन्तोषजनक अन्य कोई वस्तु नहीं है। इसके कम-फैलाव गुण के कारण पटरियों के बीच की दूरी स्थिर रहती है। इसके ऊपर गाड़ी चलने से खड़खड़ाहट कम होती है और यात्रियों को सुख मिलता है। कम झटकों के कारण रेल-डिब्बों की आयु भी बढ़ जाती है। पटरी को रोकने के लिए काष्ठ-स्लीपरों में जड़े स्पाइक्स (कीले) यदि ढीले पड़ जायँ तो उस भाग को शीघ्रता से थोड़ा हटाकर स्पाइक्स पुनः दृढ़तापूर्वक ठोके जा सकते हैं। यदि ऐसा न भी किया जाय तो स्पाइक्स के ढीले छिद्रों में दृढ़ करने का मसाला भर दिया जाता है, जिससे उन्हें फिर जैसे का तैसा बना देना सम्भव होता है। रेल-डिब्बों के लिए भी काष्ठ एक उपयोगी वस्तु है। छोटे पुलों और बाड़ के खम्भों के लिए भी काष्ठ उपयोगी है, क्योंकि शीघ्र बढ़नेवाले वृक्षों के कटान से प्राप्त होने के बाद ये खम्भे थोड़े समय के भीतर उन वृक्षों से ही अथवा वन के अन्य वृक्षों से प्राप्त हो सकते हैं। पानी के नलों और बिजली-तार के आवरणों के लिए काष्ठ-पट्टियाँ उपयुक्त होती हैं। उनको दृढ़ता से मिलाकर जोड़ने से बड़े व्यास वाले नल बन सकते हैं। काष्ठ में मोर्चा नहीं लगता, अतः सागरीय निर्माण कार्य के लिए भी काष्ठ एक अत्यंत उपयोगी वस्तु सिद्ध हुआ है। चित्र ६ में दर्शाया गया है कि समुद्र में प्रयुक्त होनेवाले धातवीय (धातु सम्बन्धी) पदार्थों में शीघ्र मोर्चा लग जाता है, किन्तु काष्ठीय पदार्थ उससे सुरक्षित रहते हैं।

चित्र ६—**बंबई के समुद्र में धातु की पट्टियों का संक्षरण।**

यही कारण है कि काष्ठ के कुण्ड, अम्लीय अथवा क्षारीय रासायनिक पदार्थों के संग्रह के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं, क्योंकि काष्ठ पर धातुओं की अपेक्षा रासायनिक पदार्थों का प्रभाव कम पड़ता है। काष्ठ के बने भंडार में अन्न सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जम्मू में बनाया गया ऐसा एक भंडार चित्र ७ में दिखाया गया है।
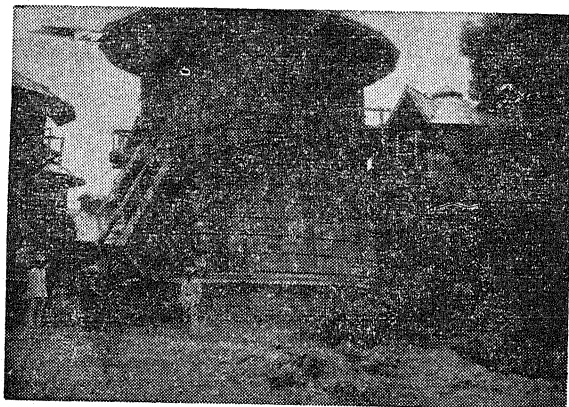
चित्र ७—**जम्मू में काष्ठ-संग्रह भाण्डार ।**

सेवा के उपयुक्त आयु की समाप्ति के बाद काष्ठ अन्य कार्यों में भी लगाया जाता है। अतः लोहे और सीमेन्ट की अपेक्षा नाश-रक्षण-अर्हा[1] इसे अधिक मिलती है। काष्ठ स्लीपर अथवा खम्भ के सड़ गये या खराब हो चुके भाग को काटकर शेष बचे भाग को अन्य किसी साधारण उपयोग में लाया जा सकता है। यदि उसका कुछ भी न बन सके तो ईंधन के काम में तो वह आ ही सकता है। किन्तु लोहा और सीमेन्ट का, खराब हो जाने के बाद, कूड़ा करकट के अतिरिक्त और कुछ उपयोग हो ही नहीं सकता।

जब काष्ठ की किसी संरचना का चलन नहीं रहता तो थोड़े से व्यय से ही उसमें ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है कि वह फिर से समयानुकूल बन जाय। उदाहरण के लिए यदि बहुत समय पहले लकड़ी का पुल बनाया गया हो तो आधुनिक यातायात की आवश्यकतानुसार उसे बढ़ाकर बड़ा करने में थोड़ी ही लागत लगेगी, जब कि लोहे या सीमेन्ट के पुल को बड़ा बनाने के लिए उसे तोड़कर उसका एकदम पुनर्निर्माण करना होगा और इस कार्य के लिए निपुण कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। लकड़ी

1 Salvage Value.

के कार्य के लिए एक सामान्य बढ़ई ही पर्याप्त होता है। काष्ठ खम्भों का भी उसी प्रकार सरलता से आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। अतः अन्य निर्माण-सामग्री की अपेक्षा काष्ठ अधिक लाभप्रद पदार्थ है।

यदि आर्थिक दृष्टि से भी देखा जाय तो अन्य संरचनीय पदार्थों की अपेक्षा काष्ठीय निर्माण के आरम्भ और अन्तिम काल में काष्ठ पर कम व्यय लगता है। इसका पूर्ण विवरण अगले अध्यायों (भाग १, अध्याय ३) में दिया गया है। वर्तमान काल में हुए काष्ठ-परिरक्षण अनुसन्धानों के कारण बाहर खुले क्षेत्रों में प्रयुक्त हुए काष्ठ की आयु ५ से १० गुना तक बढ़ा दी जा सकती है, जिससे यह लोहे इत्यादि जैसे अन्य निर्माण पदार्थों से स्पर्धा कर सकता है। आर्थिक दृष्टि से किसी भी संरचना की कसौटी उसके उस आर्थिक वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है, जो उस संरचना के आरम्भकालिक मूल्य और उसकी आयु का अंशानुपाती हो। यह आगे (भाग १, अध्याय ३ में) दिये उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा। आधुनिक काल में **स्तरकाष्ठ**[1] और **आपट्टित काष्ठ**[2] के रूप में काष्ठ का अधिकाधिक प्रयोग होता जा रहा है, जिससे यह सिद्ध होता है कि काष्ठ आदर्श संरचनात्मक सामग्री के रूप में एक अत्यंत आवश्यक पदार्थ सिद्ध हो चुका है।

1 Plywood. 2 Laminated wood.

अध्याय २

काष्ठ-सम्पत्ति

१. संसार में काष्ठ की प्राप्यता

संसार में कुल मिलाकर ९ अरब १२ करोड़ ५० लाख एकड़ भूमि पर वन हैं। यह क्षेत्र समग्र भूतल का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग है। सारणी २ (१ क*) को देखिए। उसमें ३५ प्रतिशत **शंकुधारी** (सुई के आकार की पत्तियोंवाले), १५ प्रतिशत शीतोष्ण **उरुपाती** (चौड़ी पत्तीवाले) और शेष ५० प्रतिशत उष्ण उरुपाती वन हैं। इन वनों से प्रतिवर्ष १ अरब ६ करोड़ टन काष्ठ का उत्पादन होता है। यदि विश्व की जनसंख्या लगभग २ अरब १६ करोड़ ६० लाख मान लें तो प्रति मनुष्य २४.५ घनफुट काष्ठ प्राप्त हो सकता है। यथार्थ में काष्ठ का निर्माण रासायनिक और उद्योगधन्धों के उपयोग के लिए उत्तरी अमेरिका में ६३.५ घनफुट प्रति मनुष्य से लेकर मध्यपूर्व में १.१ घनफुट प्रति मनुष्य है। काष्ठ के इस उपभोग की भिन्नता के दो मुख्य कारण हैं—(१) संसार में वनों का विषम फैलाव, जैसे कैनाडा में ७५ एकड़ प्रति मनुष्य और सीरिया में ०.०७५ एकड़ प्रति मनुष्य। (२) उद्योगधन्धों के लिए शंकुधारी काष्ठों की **उरुपाती**[1] काष्ठों की अपेक्षा ८५ प्रतिशत अधिमान्यता। पिछड़े देशों में आधुनिक नयी मशीनों का अभाव भी इस न्यून उपभोग का एक कारण है। अतः प्रति मनुष्य का अधिक मात्रा में काष्ठ का उपयोग करना सभ्यता का मापदण्ड है। इसी प्रकार काष्ठ का अधिकाधिक प्रयोग उच्च रहन-सहन का द्योतक है।

२. भारत में काष्ठ का कुछ सांख्यिक विवरण

भारत में वनों का कुल क्षेत्रफल (**२ क***) सन् १९५५ में २७८०८३ वर्गमील था, जब कि भारत का विस्तार १२६६९८० वर्गमील है, अर्थात् सकल भूमि के क्षेत्रफल के २२ प्रतिशत भाग में वन हैं। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार भूमि के एक तिहाई

* भाग १ के अन्त में निर्देश-सूची देखिए।

1 Broad-leaved.

सारणी—२

संसार के काष्ठों का वितरण, क्षेत्रफल, उत्पत्ति और उपभोग

	सोवियट रूस के संयुक्त राज्य को छोड़, अन्य यूरोप	सोवियट रूस के संयुक्त राज्य	मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका	उत्तरी अमेरिका	मध्य और दक्षिणी अमेरिका	उत्तरी अफ्रीका को छोड़ अन्य अफ्रीका	दक्षिण और पूर्व एशिया	पैसिफिक क्षेत्र	समस्त संसार
१. जन संख्या (१०) लाख में)	३९२	१७८	९८	१४३	१३०	११५	१०९९	११	२१६६
२. बन क्षेत्र (१० लाख एकड़ में)	३३०	२४००	१०२ '५	१५८७ '५	२०३७ '५	१२८०	१२५०	१३५	९१२५
३. प्रति मनुष्य क्षेत्र (एकड़ में)	० '७५	१३ '५	१	११	१५ '७५	११	१	१२ '२५	४ '२५
४. कटा : संपूर्ण काष्ठ (१० लाख घन फुट में)	१०८७२ '४	९२४८ '६	१७६ '५	१३८३७ '६	६२८३ '४	१५८८ '५	१०५९०	३५३	५२९५०
५. प्रति एकड़ (घन फुट)	३२ '९	३ '८५	१ '७८	८ '७२	३ '०८	१ '२४	८ '४७	२ '६१	५ '८
६. प्रति मनुष्य (घन फुट)	२७ '७	५१ '९५	१ '८	९६ '७६	४८ '३३	१३ '८	९ '६४	३२ '०९	२४ '४४
७. उपभोग : औद्योगिक कुल काष्ठ (१०लाख घन फुट में)	६३८९ '३	३८१२ '४	८ '२५	९२१३ '३	११८२५ '५	४२३ '६	३३३८ '८	२११ '८	२४७१०
प्रति मनुष्य (घन फुट)	१७ '६५	२१ '१८	१ '०६	६३ '५४	१ '०६	३ '५३	३ '५३	१७ '६५	१० '५९

(अर्थात् कुल क्षेत्रफल के ३३.३ प्रतिशत) भाग में वन होना भारत का लक्ष्य है। पर्वतों में, जैसे—हिमालय, दक्षिणी पठार और अन्य पर्वतीय प्रदेशों में वनोन्मूलन को रोकने के लिए भूमि के ६० प्रतिशत, और मैदानों में, भूमि को कटाव से बचाने के लिए, २० प्रतिशत भाग में वन होने चाहिए। अतः ऊपर की माँगों की पूर्ति के लिए जंगलों के विस्तार के हेतु योजनाबद्ध उपायों का होना आवश्यक है। सारणी ३ (२ ख) में अभी तथा भविष्य में समुपयोज्य वनों का विवरण दिया गया है। (निर्देश २ ख, पृ० ५५ दे०)

सारणी ४ (२ ग, पृ० ५५) में काष्ठ (मुख्य वन पदार्थ) का उत्पादन और सारणी ५ (२ घ) में काष्ठ और काष्ठ-वस्तुओं का आयात-निर्यात दिया गया है। बाँस और बेंतों (२ ङ, पृ० ५६) (केन, गौण वन पदार्थों) का कुल उत्पादन लगभग १ करोड़ और १७ लाख रुपया (८७८ हजार स्टर्लिंग पौंड) के लगभग १९५५–५६ में हुआ है।

भारत के वनों को बढ़ाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। इसमें कहाँ तक सफलता होगी, यह कहना कठिन है। इस समय यदि कहा जाय तो जनसंख्या १.५ प्रतिशत चक्रवृद्धि के अनुपात से बढ़ रही है और जंगलों के लिए भूमि प्राप्त करना एक असाधारण कार्य हो गया है, जब कि जन-जीवन के विकास और खेती के लिए भूमि की आवश्यकता बढ़ती जायगी। अतः जो कुछ भी वन इस समय विद्यमान हैं उनकी उपज बढ़ाने का प्रयत्न करना और जो लकड़ी प्राप्य है उसको सुरक्षित रखने के उपाय अपनाना जरूरी है।

यद्यपि जंगलों से प्राप्य काष्ठ की उपज तथा आय की निश्चित संख्या देना सम्भव नहीं है, किन्तु स्थूल गणना के अनुसार वर्तमान उपज १० करोड़ घन फुट के लगभग कूती जा सकती है। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि समस्त वनों से वार्षिक उपज ०.६ घनफुट प्रति एकड़ हुई। यदि इसका दुगुना चोटी, डाल-कटाई, छटाई और ईंधन के रूप में व्यर्थ हुआ माना जाय, तो वार्षिक उपज लगभग २ घनफुट प्रति एकड़ मानी जा सकती है। हमारे वनों की यह माध्य-वार्षिक वृद्धि अत्यन्त कम है, जब कि आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड-जैसे दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में यह माध्य-वार्षिक वृद्धि ७० घनफुट से लेकर २०० घनफुट तक है, जो स्थानविशेष पर निर्भर रहती है। हमारे देश-जैसे जलवायु में २० से लेकर २५ घनफुट प्रति एकड़ तक माध्य-वार्षिक वृद्धि की आशा करना दुराशा न होगी।

यदि काष्ठ-उपभोग की दृष्टि से देखा जाय तो भारत विश्व में काष्ठ का सबसे कम प्रयोग करनेवाले देशों में से एक है (पृ० १४ देखिए)। मलाया और बर्मा में, जो

सारणी—३

भारत के वनों का वर्गीकरण, १९५५ (वर्गमील में)

वनों की कक्षाएँ (१)	राजकीय वन (२)		सामुदायिक वन (३)		निजी (प्राइवेट) वन (४)		योग (५)		कुल वनों के क्षेत्रफल का प्रतिशत (%) (६)	
	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य	(क) स्थायी	(ख) अन्य
(क) संचयन योग्य										
१. कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	६११५	७५०	१५	..	१२	४७४	६१४२	१२२४	२ ·६८	२ ·४७
२. मिश्रित काष्ठ	१८८४	१९९	..	११	१७	३३२	१९०१	५४२	० ·८३	१ ·०९
३. कठोर काष्ठ (उरुपाती)	१७०२०९	२९०७५	१३८	..	४५११	३००	१७४८५८	२९३७५	६६ ·२२	५९ ·२४
योग	१७८२०८	३००२४	१५३	११	४५४०	११०६	१८२९०१	३११४१	७९ ·७३	६२ ·८०

(ख) संभाव्य संचयन योग्य										
१. कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	६४७	४२४	..	..	४	..	६५१	४२४	०·२८	०·८६
२. मिश्रित काष्ठ	३८०	३७	..	..	..	..	३८०	३७	०·१७	०·०७
३. कठोर काष्ठ (उरुपाती)	१६४८०	१३११८	..	..	१८	३००	१६४९८	१३४१८	७·१२	२७·०६
योग	१७५०७	१३५७९	..	..	२२	३००	१७५२९	१३८७९	७·६४	२७·९९
(ग) अन्य भूमि (वनों की कक्षा में)	२८९०५	३१९९	४	१८८	५७	११७९	२८९६६	४५६६	१२·६३	९·२१
कुल योग	२२४६२०	४६१०२	१५७	१९९	४६१९	२५८५	२२९३९७	४९५८६	१००	१००
कुल वनों के क्षेत्रफल का प्रतिशत (%)	९७·३		०·१		२·६		१००		—	

सारणी—४

१९५५-५६ में स्वदेशी काष्ठ का उत्पादन (छाल के नीचे का गोल काष्ठ हजार घन फुट में)

वनों और काष्ठ की कक्षाएँ (१)	काष्ठ (२)	गोल काष्ठ (३)	गोर्द काष्ठ (पल्प वुड) (४)	औद्योगिक काष्ठ का योग (५)	ईंधन तथा कोयले की लकड़ी (६)	कुल योग (७)
राजकीय						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	३४३१२	१३२२	..	३५६३४	८४१२	४४०४६
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	५५०५०	३५७४६	३६८८	९४४८४	३१८९५३	४१३४३७
योग	८९३६२	३७०६८	३६८८	१३०११८	३२७३६५	४५७४८३
सामुदायिक						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	४	६६	..	७०	४८७	५५७
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	३०७	२४०५	८	२७२०	१६०४७	१८७६७
योग	३११	२४७१	८	२७९०	१६५३४	१९३२४
निजी (प्राइवेट)						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	३६९	१६०	..	५२९	५९१	११२०
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	५२१४	७८६७	४२	१३१२३	४८६५०	६१७७३
योग	५५८३	८०२७	४२	१३६५२	४९२४१	६२८९३
योग						
(क) कोमल काष्ठ (शंकुधारी)	३४६८५	१५४८	..	३६२३३	९४९०	४५७२३
(ख) कठोर काष्ठ (उरुपाती)	६०५७१	४६०१८	३७३८	११०३२७	३८३६५०	४९३९७७
कुल योग	९५२५६	४७५६६	३७३८	१४६५६०	३९३१४०	५३९७००

सारणी—५

काष्ठ और काष्ठ से बनी वस्तुओं का आयात और निर्यात (११५५–५६)

कक्षा	सकल आयात		सकल निर्यात		शुद्ध आयात (+), या निर्यात (—)	
	हजार घन फुट में	भाड़ा मिला कर (सी० आई० एफ०) मूल्य पौंड में	हजार घन फुट में	नौतल पर्यन्त निःशुल्क (एफ० ओ० बी०) मल्य, पौंड में	हजार घन फुट में	मूल्य पौंड में
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
कठोर काष्ठ (उरुपाती) लट्ठे						
स्लीपर (चिरान और छिली ल०	..	..	(अ)	..	(अ)]	..
अन्य चिरान और छिली लकड़ी	..	७५२	..	७६७	..	(—)१५
कुल कोमल और कठोर काष्ठ	..	७५२	..	७६७	..	(—)१५
ईंधन	..	६४	..	..	..	(+)६४
अन्य लकड़ी	..	१७७१	..	५६३	..	(+)१२०८
कुल कठोर काष्ठ	..	२५८७	..	१३३०	..	(+)१२५७

भारत के पड़ोसी और मिलते-जुलते देश हैं, काष्ठ का माध्य उपयोग भारत से लग-भग दस गुना है। इसके कुछ कारण यह भी हैं कि हमारे गाँवों में गृह-निर्माण के लिए मिट्टी, ईंट और बाँसों का अधिक प्रयोग होता है। प्रगतिशील देशों में अधिकाधिक प्रयोग का एक कारण कागज़ भी है, जो काष्ठ-जैसे कोषाधु (सैलूलोज़) पदार्थों पर निर्भर है। ज्यों-ज्यों भारत प्रगति करता जायगा, काष्ठ की खपत भी बढ़ती जायगी। काष्ठ का वार्षिक व्यय ५ या ६ घनफुट प्रति मनुष्य के हिसाब से गिनने पर, अगले दस वर्षों में बढ़ी जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए, अनुमान लगाया गया है कि हमें लगभग २ अरब २० करोड़ घनफुट काष्ठ की आवश्यकता पड़ेगी। इसकी पूर्ति के लिए प्रतिवर्ष १२ या १३ घनफुट काष्ठ प्रति एकड़ प्राप्त होना चाहिए।

हमारे वनों में काष्ठ की कम उत्पत्ति के निम्नलिखित कारण हैं —

(१) घने वनों का अभाव और कम उपज,

(२) कुछ थोड़ी-सी प्रसिद्ध काष्ठजातियों का ही उपयोग में लाया जाना।

पहली कमी उचित वन-संवर्धन प्रणाली द्वारा दूर हो सकती है। योग्य पोषण-क्रिया और गहन वनरोपण नीति के द्वारा भारत सरकार अगले ३० वर्षों में इस कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न कर रही है। यह वनकला (सिल्वीकल्चर) शाखा का कार्य है।

दूसरी कमी की पूर्ति अन्य गौण या द्वितीय श्रेणी की लकड़ियों के प्रयोग से की जा सकती है। अब तक इनका प्रयोग अत्यंत कम ही होता है, क्योंकि इनकी आयु और अन्य गुण भी प्रसिद्ध या श्रेष्ठ काष्ठों के मुकाबले में कम हैं। तथापि उचित काष्ठ-परिरक्षण साधनों द्वारा द्वितीय वर्ग के इन काष्ठों की आयु बढ़ा दी जा सकती है, जिससे स्थायीपन में वे साल, सागौन, शीशम, देवदार आदि नामी काष्ठों की बराबरी कर सकें। काष्ठ-परिरक्षण साधनों से उन अभिजात काष्ठों की भी, जिनकी माँग अधिक है और जो पर्याप्त मात्रा में प्राप्य भी नहीं हैं, आयु बढ़ाने में सहायता मिलती है। इससे वे अधिक समय तक चल सकते हैं। इन परिरक्षण साधनों से हमारे वनों पर काष्ठ की निकासी का भार कम पड़ेगा और परोक्ष रूप से वनों के संरक्षण में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त काष्ठ के नष्ट होने की निरन्तर चिन्ता भी न बनी रहेगी तथा वनों के नष्ट होने के उपरान्त भी उनके पुनः-स्थापन-व्यय में बचत हो जायगी।

काष्ठ-परिरक्षण-साधनों का वैज्ञानिक रूप से अन्वेषण-कार्य वन-अनुसन्धानशाला देहरादून की काष्ठ-परिरक्षण शाखा में विस्तारपूर्वक हो रहा है।

अध्याय ३

काष्ठ-परिरक्षण का क्षेत्र

१. काष्ठ सुरक्षित रखने के लाभ

काष्ठ-परिरक्षण का उद्देश्य काष्ठ की आयु अथवा उसका स्थायित्व बढ़ा देना है, जिससे किसी भी कार्य में उसका उपयोग करने के उपरान्त उसकी उपयोज्य दशा व अवस्था बढ़ जाय। दीमक, घुन, कवक, समुद्रकीट और अग्नि आदि काष्ठ-विनाशकों से काष्ठ को बचाये रखने का कार्य ही **काष्ठ-परिरक्षण** है। लकड़ी की भौतिक दशा यानी उसके फटन या ऋतुक्षरण आदि में सुधार करने के लिए उसे ठीक प्रकार से सुखाने और यांत्रिक उपघात से बचाने की रीतियाँ अपनाना सहायक होगा। परन्तु काष्ठ की जैविक[1] (बायोलोजिकल) दशा यानी कवक और कीड़ों द्वारा उसे सड़ने-गलने और नष्ट होने से बचाने के लिए रासायनिक पदार्थों द्वारा उपचार या साधन करना ही काष्ठ-परिरक्षण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता है। इस पुस्तक में काष्ठ-परिरक्षण शब्द मुख्यतः काष्ठ की जैविक दशा सुधारने के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। अगले प्रकरणों में संक्षेप से काष्ठ-संरचना, काष्ठ-विनाशक कारकों तथा काष्ठ-परिरक्षण की रीतियों आदि का विवरण दिया गया है। उनका यथार्थ स्वरूप तथा उपयोज्य रीतियाँ बतलाना भी इस पुस्तक का उद्देश्य है। लघु श्रेणी के काष्ठों को उपचारित करके उन्हें उच्च श्रेणी के (कीमती) काष्ठों के तुल्य या उनसे अधिक टिकाऊ बना सकने की विधियाँ बताना हमारा लक्ष्य है। साल, शीशम, सागौन आदि उच्च श्रेणी के काष्ठ अधिक दुर्लभ होते जा रहे हैं और उनके मूल्य भी बढ़ते जा रहे हैं, अतः काष्ठ-परिरक्षण-रीतियों का प्रयोग राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के सुधार में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

२. काष्ठ-परिरक्षण से आर्थिक लाभ

किसी भी निर्माण-वस्तु का पुल, बिजली और तार के खम्भे, आधार स्तम्भ, सामुद्रिक तटपट तथा गृह आदि के रचनाकार्य में प्रयोग करने के पूर्व यह जानना आवश्यक

1 Biological.

हो जाता है कि उससे अन्य सुविधाओं के अतिरिक्त कितनी बचत हो सकती है। ऊपर लिखित निर्माण कार्य के लिए लोहा, सीमेन्ट कांक्रीट, मिश्रित धातु, स्तर काष्ठ, आपट्टित काष्ठ, ठोस काष्ठ इत्यादि अनेक वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती हैं। उनका चुनाव निम्नलिखित बातों पर निर्भर होता है —

१. **स्थानीय प्रथम मूल्य**—अर्थात् किसी वस्तु के प्रतिस्थापन में लगा कुल मूल्य, जिसमें श्रम, वेतन इत्यादि व्यय सम्मिलित रहते हैं। परिरक्षित काष्ठ की संरचना का प्रथम मूल्य अन्य निर्माण-वस्तुओं की अपेक्षा सदा कम रहता है, क्योंकि काष्ठ एक सस्ता पदार्थ है। उदाहरण के लिए रेलवे स्लीपर को ही लीजिए। काष्ठ के स्लीपर का मूल्य लोहे और सीमेन्ट कांक्रीट के स्लीपर से कम होता है। इसी प्रकार काष्ठ की इमारतें भी अन्य निर्माण योग्य पदार्थों से कम मूल्य की होती हैं। यदि परिरक्षित रसकाष्ठ[1] का प्रयोग किया जाय तो मूल्य में और भी कमी की जा सकती है। रसकाष्ठ को साधन क्रियाओं द्वारा परिरक्षित करना सारकाष्ठ[2] (हार्ट वुड) की अपेक्षा अधिक सरल और प्रभावी होता है। अर्थात् काष्ठ-परिरक्षण क्रियाओं द्वारा रसकाष्ठ को सारकाष्ठ की अपेक्षा अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है। अतः मितव्ययिता के विचार से रासायनिक उपचार द्वारा तैयार की गयी लकड़ी की वस्तु उतने ही मूल्य में तैयार की जा सकती है, जितने में बहुव्ययी निर्माण पदार्थ से बनी वस्तु।

२. **उपयोज्य दशा अथवा कार्य-अवधि**—जितने समय तक कोई संरचना काम के योग्य रहे वह अवधि उसकी कार्य-अवधि होती है। किसी भले या बुरे निर्माण पदार्थ को चुनने के लिए यह भी एक प्रमाप है। इसके साथ-साथ यह भी देखना आवश्यक होता है कि वह संरचना कितने काल तक उपयोज्य दशा में रह सकेगी। यद्यपि यह स्पष्ट है कि लोहे और सीमेंट कांक्रीट के पुल, खम्भे इत्यादि काष्ठ की अपेक्षा अधिक समय तक चल सकते हैं, परन्तु इस बात पर भी ध्यान देना होगा कि समयानुसार यातायात के बढ़ने पर पुल या खम्भे के आकार में परिवर्तन न करना पड़े। यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाय तो सेवाकाल या अवधि के पूर्व ही लोहे या सीमेंट कांक्रीट की संरचना को तोड़-फोड़कर नूतन सामयिक आवश्यकतानुसार दूसरी संरचना का निर्माण करना होगा। इसमें कई गुना अधिक व्यय लगेगा। उपचारित काष्ठ में इतनी असुविधा न होगी। थोड़े ही व्यय में कार्य पूर्ण किया जा सकेगा, क्योंकि बहुत-से काष्ठ भाग सुरक्षित दशा में होंगे और उन्हें पुनः प्रयोग करना

1 Sap wood. 2 Heart wood.

सम्भव हो सकेगा। यदि उन्हें उखाड़ा न भी जाय तो उसी संरचना में पूरी तरह परिवर्तन किया जा सकता है।

३. **संधारण-व्यय**—किसी भी संरचना को बनाये रखने में जो व्यय लगता है वही उसका संधारण-व्यय है। लोहे की इमारतों को मोरचा लगने से बचाने के लिए निरन्तर रंगलेप करना आवश्यक होता है। सीमेन्ट की रचना के फटने पर उसकी मरम्मत करनी पड़ती है, पर भली प्रकार उपचारित काष्ठ पर पुनः किसी प्रकार का लेप करने या उसकी मरम्मत करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। संधारण-व्यय की दृष्टि से उपचारित काष्ठों की संरचनाएँ कम व्ययसाध्य होती हैं।

४. **नाशरक्षण-शुल्क**—किसी भी वस्तु की सेवा-अवधि पूर्ण होने पर जो मूल्य अन्त में मिलता है वही उसका नाशरक्षण-शुल्क है। अन्य पदार्थों की अपेक्षा काष्ठ से, विशेषतः उपचारित काष्ठ से, नाशरक्षण-शुल्क अधिक मात्रा में मिलता है। उदाहरणार्थ, अनुभव में आया है कि शोधित काष्ठ के स्लीपरों को सेवा-अवधि की परिसमाप्ति के उपरान्त मुख्य (मेन) लाइन से हटाकर ब्रान्च लाइन में और इसके बाद रेलवे साइडिंग्स या पथिकाओं और अन्त में बाड़ के खम्भों के रूप में भी उपयोजित किया जा सकता है। इसी प्रकार बिजली के खम्भों के धरातल से ऊपर के भाग के टूट जाने पर उसे छोटे खम्भे के रूप में काम में लाया जा सकता है। लोहे और सीमेन्ट की संरचना से ऐसा शुल्क नहीं मिलता। किन्तु इसके विपरीत उसे उखाड़ने के लिए भी अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता पड़ जाती है और उससे क्षेप्य अर्हा (टूटी-फूटी चीज की कीमत) कुछ भी नहीं मिल सकती। नाशरक्षण-शुल्क के विचार से भी उपचारित लकड़ी अन्य निर्माण पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक लाभप्रद होती है।

५. **वार्षिक मूल्य**—किसी भी पदार्थ की निर्माणकार्य के लिए उपयोगिता उसके वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है। वार्षिक मूल्य उस व्यय को कहते हैं जो किसी निर्माण-पदार्थ के प्रयोग-काल में उपयोज्य समय तक प्रतिवर्ष लगाया जाता है। इस व्यय को ऐसी वार्षिक पूंजी समझ लेना चाहिए जो चक्रवृद्धि व्याज सहित उस अवधि तक लगातार ऋण अदा करने के लिए देय होती है जब तक उस वस्तु की संरचना उपयोज्य रूप में बनी रहे अथवा वह वस्तु काम में आती रहे। यह ऋण वह मूल्य है जो उस वस्तु की मूल बनावट तैयार करने आदि पर प्रारम्भिक रूप से लगे। इसकी गणना निम्नलिखित गुरु के आधार पर की जाती है —

अ=वार्षिक मूल्य या सालाना व्यय।

प=वहआदिम व्यय अथवावह व्यय जो उस पदार्थ को स्थापित करने में पहले-पहल लगे।

र=व्याज की दर दशमलव में।

न=आदि से अन्त तक की वर्ष संख्या अर्थात् वह काल (वर्षों में) जब तक कि संरचना उपयोज्य दशा में रहे।

इस सूत्र के अनुसार बार-बार गणना न करनी पड़े, इसलिए सारणी (४ क) तैयार की गयी है। इसके निर्देशन से तुरन्त ही वार्षिक मूल्य निकाला जा सकता है। इस सारणी में उपर्युक्त सूत्र के आधार पर गणित अंक रहते हैं। अतः इसका निर्देशन एक सुगम कार्य है। ये अंक सारणी ६ में दिये गये हैं।

सारणी—६

स्थित निर्माण-पदार्थ के प्रति इकाई व्यय पर वार्षिक मूल्य

पुनः स्थापन के पूर्व आयु वर्षों में	व्याज की दर		
	र=३ प्रतिशत	र=४ प्रतिशत	र=५ प्रतिशत
१	१.०३०००००	१.०४०००००	१.०५०००००
२	०.५२२६१०८	०.५३०१९६१	०.५३७८०४९
३	०.३५३५३०४	०.३६०३४८५	०.३६७२०८६
४	०.२६९०२७०	०.२७५४९००	०.२८२०११८
५	०.२१८३५४६	०.२२४६२७१	०.२३०९७४८
६	०.१८४५९७५	०.१९०७६१९	०.१९७०१७५
७	०.१६०५०६४	०.१६६६०९६	०.१७२८१९८
८	०.१४२४५६४	०.१४८५२७८	०.१५४७२१८
९	०.१२८४३३९	०.१३४४९३०	०.१४०६९०१
१०	०.११७२३०५	०.१२३२९०९	०.१२९५०४६
११	०.१०८०७७४	०.११४१४९०	०.१२०३८८९
१२	०.१००४६२१	०.१०६५५२२	०.११२८२५४
१३	०.०९४०२९५	०.१००१४३७	०.१०६४५५८
१४	०.०८८५२६३	०.०९४६६९०	०.१०१०२४०
१५	०.०८३७६६६	०.०८९९४११	०.०९६३४२३
१६	०.०७९६१०८	०.०८५८२००	०.०९२२६९९
१७	०.०७५९५२५	०.०८२१९८५	०.०८८६९९१
१८	०.०७२७०८७	०.०७८९९३३	०.०८५५४६२
१९	०.०६९८१३९	०.०७६१३८६	०.०८२७४५०

पुनः स्थापन के पूर्व आयु वर्षों में	व्याज की दर		
	र=३ प्रतिशत	र=४ प्रतिशत	र=५ प्रतिशत
२०	०.०६७२१५७	०.०७३५८१७	०.०८०२४२६
२१	०.०६४८७१८	०.०७१२८०१	०.०७७९९६१
२२	०.०६२७४७४	०.०६९१९८८	०.०७५९७०५
२३	०.०६०८१३९	०.०६७३०९१	०.०७४१३६८
२४	०.०५९०४७४	०.०६५५८६८	०.०७२४७०९
२५	०.०५७४२७९	०.०६४०१२०	०.०७०९५२५
२६	०.०५५९३८३	०.०६२५६७४	०.०६९५६४३
२७	०.०५४५६४२	०.०६१२३८५	०.०६८२९१९
२८	०.०५३२९३२	०.०६००१३०	०.०६७१२२५
२९	०.०५२११४७	०.०५८८७९९	०.०६६०४५५
३०	०.०५१०१९३	०.०५७८३०१	०.०६५०५१४
३५	०.०४६५३९३	०.०५३५७७३	०.०६१०७१७
४०	०.०४३२६२४	०.०५०५२३५	०.०५८२७८२
४५	०.०४०७८५२	०.०४८२६२५	०.०५६२६१७
५०	०.०३८८६५५	०.०४६५५०२	०.०५४७७६७
६०	०.०३६१३३०	०.०४४२०१८	०.०५२८२८२
७०	०.०३४३३६६	०.०४२७४५१	०.०५१६९९२
८०	०.०३३१११७	०.०४१८१४१	०.०५१०२९६
९०	०.०३२२५५६	०.०४१२०७८	०.०५०६२७१
१००	०.०३१६४६७	०.०४०८०८०	०.०५०३८३१

इस सारणी की सहायता से निम्नलिखित उदाहरण ४ (ख) में दी गयी विधि से वार्षिक मूल्य का निर्धारण किया जा सकता है।

(क) मान लिया कि एक सामान्य (अनुपचारित) काष्ठ का पुल बनाने में १०,००० रुपये लगे और उसकी आयु ८ वर्ष की है, तो ४ प्रतिशत व्याज की दर से, उसका वार्षिक मूल्य=०.१४८५२७८×१०,०००रु०
=१४८५.२८ रुपया होगा।

(ख) रासायनिक-उपचार करने पर उसी काष्ठ के पुल का मूल्य १४,००० रुपया होगा, अर्थात् अनुपचारित काष्ठ के पुल से ४० प्रतिशत अधिक और उसकी आयु कम से कम ३० वर्ष मानने पर, ४ प्रतिशत व्याज की दर से उसका वार्षिक मूल्य=०.०५७८३०१×१४,००० रु०
=८०९.६२ रुपया होगा।

(ग) यदि वही पुल सीमेन्ट-कांक्रीट से बनाया जाय, तो बनाने में लगभग ३०,००० रु०, अर्थात् सामान्य काष्ठ के पुल से तिगुना रु० लगेगा, और उसकी आयु अधिक से अधिक १०० वर्ष मानने पर, ४ प्रतिशत व्याज की दर से—

उसका वार्षिक मूल्य = ०.०४०८०८० × ३०,००० रु०

= १२२४.२४ रुपया होगा ।

ऊपर के तीनों उदाहरणों से यही स्पष्ट हुआ कि सबसे कम वार्षिक-व्यय उपचारित काष्ठ में लगा जो ८०९.६२ रुपया है, यद्यपि उसकी आयु ३० वर्ष की ही मानी गयी है । सीमेन्ट का पुल इससे ५१ प्रतिशत प्रतिवर्ष अधिक कीमती रहा । यदि लोहे और सीमेन्ट के खम्भे, स्लीपर, इत्यादि से बने पुलों की काष्ठ के बने पुलों से तुलना की जाय, तो पता चलेगा कि उपचारित-काष्ठ संरचना में न्यूनतम वार्षिक-व्यय लगता है । इससे राष्ट्रीय कोष में यथेष्ट बचत हो सकती है । लोहा अपेक्षित मात्रा में प्राप्य भी नहीं है ।

३. वन-संरक्षण तथा अन्य आर्थिक दिशाओं में काष्ठ-परिरक्षण का महत्त्व

निर्माण-कार्य के लिए लोहा और कंक्रीट काष्ठ का स्थान ले रहा है, परन्तु पाश्चात्य देशों में लोहे का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन होने पर भी काष्ठ को अब भी मान्यता दी जाती है । उपचार करने के उपरान्त काष्ठ अन्य निर्माण पदार्थों से मूल्य में स्पर्धा कर सकता है। रासायनिक उद्योग-धन्धों में, कागज, रेशा-पट्ट तथा अन्य निर्माण-कार्यों आदि में, काष्ठ का उपयोग होने के कारण उसकी माँग बढ़ती जा रही है और अब आवश्यक हो गया है कि परिरक्षण की विधियाँ अधिकाधिक उपयोग में लायी जायँ, ताकि इसका स्रोत संरक्षित रह सके । जिन देशों में काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वे उसे सुरक्षित करके विदेशी मुद्रा प्राप्त करने में संलग्न हैं। अतः इस कार्य से राष्ट्रीय कोष भरने में सहायता मिल सकती है।

एक स्थूल गणना (५क[१]) के अनुसार समस्त यूरोप में साधारण अशोधित काष्ठ स्लीपर की आयु ७ वर्ष होती है। उसी स्लीपर का क्रियोजोट द्वारा उपचार करने के पश्चात् वह आयु २१ वर्ष हो जाती है । वहाँ ३२ करोड़ ८० लाख रेलवे स्लीपर हैं जिनके बनाने में ५ करोड़ ५० लाख घन मीटर काष्ठ लगा है। इन स्लीपरों के उपचार

१. देखिए निर्देश-सूची, पृ० ५६।

से प्रतिवर्ष ५० लाख घन मीटर लकड़ी की बचत हुई है। कनाडा में काष्ठीय रेल स्लीपरों के उपचार से प्रतिवर्ष २८ लाख ८० हजार डालरों की बचत होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में काष्ठ-परिरक्षण क्रिया के कारण स्लीपरों के दैनिक व्यय में प्रतिदिन १ लाख ४५ हजार डालर की बचत होती है ।

यूरोप में बिजली के काष्ठ खम्भों की संख्या १० करोड़ है और अनुमान है कि इनमें लगभग ८० लाख घन-मीटर काष्ठ लगा होगा । इन खम्भों की परिरक्षण क्रिया से ४ लाख घन मीटर काष्ठ की वार्षिक बचत हुई है। काष्ठ का अशोधित खम्भा लगभग ९ वर्ष चलता है जब कि क्रियोजोट द्वारा उपचारित अथवा शोधित (क्रियोजोटेड[1]) खम्भे की औसत आयु २९ वर्ष होती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९४८ में ३४० करोड़ बोर्डफुट लकड़ी कोयले की खानों के खम्भों में लगी थी जिसमें से ५३ करोड़ ८० लाख बोर्डफुट स्थायी रूप से प्रयोज्य होना थी । अनुपचारित काष्ठ की आयु ३ वर्ष और उपचारित काष्ठ की आयु कम से कम १२ वर्ष मानने पर, उपचारित काष्ठ के प्रयोग से कुल १२ × ५ लाख ३८ हजार × ३६ दशमलव ६७ डालर अर्थात् २३,६७,४१, ५२० डालर प्रतिवर्ष बचत होने की गणना की गयी थी ।

सान्फ्रान्सिस्को मैरीन पाइलिंग कमेटी (अमेरिका) की रिपोर्ट है कि अनुपचारित काष्ठ खम्भ को समुद्रकीट दो या तीन वर्ष के अन्दर ही नष्ट कर डालते हैं जब कि पूर्ण कोशा (फलसेल[2]) विधि से पकाया हुआ (उपचारित) काष्ठ खम्भ ३५ वर्ष या उससे भी अधिक अवधि तक चलता है, यहाँ तक कि समुद्री काम में प्रयोग किये जाने पर भी उपचारित काष्ठ खम्भों की औसत आयु ४८.५ वर्ष तक पायी गयी है ।

उपर्युक्त उदाहरण के अतिरिक्त अन्य कई उदाहरणों से भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि काष्ठ-परिरक्षण के कारण राष्ट्रीय व्यय में कितनी बचत हो सकती है। सन् १९३९ में हुई इंग्लैण्ड की एक साधारण गणना (५ग*) से पता चलता है कि सड़न से काष्ठ को पहुँची हानि की मरम्मत करने में १० लाख पौण्ड से कम व्यय नहीं हुआ । यदि वहाँ उपचारित काष्ठ का प्रयोग किया जाता तो इसमें से अधिकांश व्यय बच सकता था ।

संसार के सभी प्रगतिशील देशों में काष्ठ का स्थान ले सकने योग्य अन्य निर्माण-पदार्थों का अधिक उत्पादन होने पर भी काष्ठ-परिरक्षण-कार्य निरन्तर बढ़ता ही जा

1 Creosoted. 2 Full-Cell. * निर्देश-सूची, पृ० ५५ पर देखिए ।

रहा है। अमेरिका में हुई एक गणना से पता चला कि उपचारित काष्ठ की मात्रा में पिछले ४२ वर्षों में (१९०८ से १९५० तक), प्रतिवर्ष औसतन् २२ लाख ६० हजार वर्गफुट की वृद्धि हुई है । यदि काष्ठ-परिरक्षण-कार्य न किया जाता तो ३ से ६ गुना अधिक काष्ठ की आवश्यकता होती जिसका परिणाम यह होता कि काष्ठ-संरचना के व्यय में आदि मूल्य और वार्षिक मूल्य बढ़ते जाते और इसी कारण वह अन्य निर्माण-पदार्थों से स्पर्धा न कर पाता ।

बिजली, तार, बाड़ और आधार स्तम्भों के लिए जंगलों के छटान किये छोटे पेड़ भी उपयुक्त होते हैं। अतः उन कार्यों के लिए लम्बे बड़े वृक्षों की आवश्यकता नहीं होती और अल्प काल में ही अपेक्षित परिमाण के पेड़ प्राप्त हो सकते हैं । इस कारण काष्ठ-खम्भों का मूल्य कम होता है और वे पर्याप्त संख्या में मिल सकते हैं। वृक्ष को परिपक्व होने में सौ से डेढ़ सौ वर्ष तक लग जाते हैं, परन्तु खम्भ की प्राप्ति के लिए २० या ३० वर्ष के उपरान्त ही यथार्थ परिमाण में पेड़ मिल सकते हैं और थोड़े ही परिश्रम से उन्हें गिराया जा सकता है ।

काष्ठ-परिरक्षण के उद्योग-क्षेत्र में हजारों व्यक्ति कार्य कर रहे हैं । छोटे पैमाने के ऐसे उद्योग में अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होती । अगले पृष्ठों के (भाग ४, अध्याय ३) पढ़ने से स्पष्ट हो जायगा कि भारत-जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए यह उद्योग अति उपयुक्त है। ग्रामोद्योग के लिए भी काष्ठ-परिरक्षण का विशेष महत्त्व है क्योंकि गाँवों के लोगों के गृह-निर्माण के लिए वह कम खर्चीला साधन है। थोड़े समय में शीघ्र उगने बढ़नेवाले पेड़ लगाकर काष्ठ-परिरक्षण की सरल रीतियों से उन्हें अधिक टिकाऊ और कीमती काष्ठों के तुल्य बनाया जा सकता है । सारणी ३० (परिशिष्ट) में एक सूची दी गयी है जिसमें बताया गया है कि इस प्रकार के शीघ्र बढ़नेवाले पेड़ों से प्राप्त हुए द्वितीय श्रेणी के काष्ठ उपचार के पश्चात् टीक और साल-जैसे नामी और बहुमूल्य काष्ठों का स्थान ले सकते हैं ।

साल, सागौन, शीशम, पैडाक इत्यादि प्रख्यात पेड़ों से काष्ठ प्राप्त करने के लिए डेढ़ सौ वर्ष से अधिक समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है । ये काष्ठ यद्यपि स्थायी हैं, परन्तु अब ये अधिक दुर्लभ होते जा रहे हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है उपचारित अस्थायी काष्ठ इनका स्थान ले सकते हैं । अस्थायी काष्ठ बहुधा शीघ्र बढ़नेवाले वृक्षों से प्राप्त होते हैं । इन अस्थायी काष्ठों की प्राप्ति के लिए एक लम्बे अवसर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती तथा प्रख्यात काष्ठों के प्राप्तिकाल के अन्तर्गत इन अस्थायी काष्ठों के वृक्ष कई बार उपजाये और काटे जा सकते हैं । अतः काष्ठ-परिरक्षण-

क्रिया राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को सुधारने में सहायक सिद्ध हो सकती है । प्रगतिशील पाश्चात्य देशों में ऐसा ही हुआ है । काष्ठ-उपचार का वन-संरक्षण पर अतुल प्रभाव पड़ा है । यह कहावत सत्य है कि एक पेड़ का परिरक्षण पाँच या छः पेड़ उगाने के तुल्य है, क्योंकि परिरक्षण क्रिया द्वारा काष्ठ को कम से कम पाँच या छः गुना टिकाऊ बनाया जा सकता है ।

अध्याय ४

काष्ठ-परिरक्षण की आवश्यकता

१. काष्ठ का स्थायित्व

सभी प्रकार के काष्ठों के दो भाग होते हैं। इनमें से एक तो वृक्ष के तने का बाह्य भाग है जो कुछ दूरी तक बाहरी घेर के अन्दर की ओर रहता है। इसकी कोशाएँ (सेल्स[1]) खाद्य पदार्थ और जल का संवाहन करती हैं। इस बाह्य भाग को कच्ची लकड़ी अथवा बाह्य काष्ठ या रसकाष्ठ कहते हैं। अंग्रेजी में वह सैपवुड[2] नाम से प्रसिद्ध है। वृक्ष के तने का शेष भाग जो मध्य तक रहता है, पिथ[3] कहलाता है। वह हिन्दी में सारकाष्ठ, अन्तर काष्ठ अथवा पक्की लकड़ी कहलाता है। इसी सारकाष्ठ के कारण पेड़ को दृढ़ता मिलती है और उसको अंग्रेजी में हार्ट वुड[4] कहते हैं। सारकाष्ठ की कोशाएँ जीवित नहीं रहतीं, किन्तु मरी रहती हैं। सभी काष्ठ-जातियों का बाह्य अथवा रसकाष्ठ दीमक, घुन, कवक इत्यादि काष्ठ-विनाश-कारकों के कारण शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, परन्तु कुछ वृक्षों की पक्की लकड़ी, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट होता है, टिकाऊ होती है। इसी कारण सारकाष्ठ को मान्यता दी जाती है। रसकाष्ठ बहुधा रद्द कर दिया जाता है। साल, सागौन, शीशम, देवदार इत्यादि कुछ ऐसे काष्ठ हैं जिनका सारकाष्ठ टिकाऊ होता है। इस स्थायी वर्ग में थोड़े ही काष्ठ हैं (सारिणी ८ देखिए)। भारत के अधिकतर काष्ठ कम टिकाऊ अर्थात् अस्थायी हैं, और विनाशकारक तत्त्वों का आक्रमण सहन नहीं कर सकते। अतः काष्ठ का स्थायित्व अथवा उसकी आयु बढ़ाने के लिए उसका रासायनिक उपचार करना आवश्यक होता है। यह उपचार सभी काष्ठ-जातियों के रसकाष्ठ और अस्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ पर किया जा सकता है। शक्ति या बल सहन करने की दृष्टि से रसकाष्ठ और सारकाष्ठ में कोई अन्तर नहीं है। यांत्रिक संभार ग्रहण करने की दोनों काष्ठों में समान शक्ति है, अतः उपचार किये जाने पर रसकाष्ठ में

1 Cells. 2 Sap wood. 3 Pith. 4 Heart wood.

वोझ-धारण क्षमता सदा उसी प्रकार बनी रहेगी जैसी कि सारकाष्ठ में । एक स्थूल अनुमान के अनुसार भारत की वर्तमान काष्ठ-उत्पत्ति १० करोड़ घनफुट है । इसमें दस प्रतिशत काष्ठ, यानी एक करोड़ घनफुट, शंकुधारी (कोनीफरस)[1] काष्ठ है और शेष ऊरुपाती यानी चौड़ी पत्तीवाला (ब्राडलीफ्ड)[2] काष्ठ हैं। स्थूल विचार से इन सबका ⅓ भाग स्वाभाविक टिकाऊ काष्ठ है, परन्तु शेष ⅔ भाग कृत्रिम विधियों से टिकाऊ बनाया जा सकता है। जो काष्ठ स्वभावतः टिकाऊ हैं, उन्हें लम्बी आयु प्रदान करने के लिए रासायनिक उपचार का प्रयोग करना चाहिए । कुछ विशेष दशाओं में, जैसे कि समुद्री कार्यों में, अति आक्रमणकारी सामुद्रिक कीटों से यदि काष्ठ की रक्षा करनी हो तो स्थायी काष्ठों को रासायनिक उपचार द्वारा कीटप्रतिकारी बनाना होगा।

२. दूसरी श्रेणी के अप्रसिद्ध जातीय काष्ठों का प्रयोग

कुछ वर्षों से भारत प्रतिवर्ष लगभग २० लाख घनफुट टीक काष्ठ यानी सागौन की लकड़ी, जिसका मूल्य प्रायः २.७ करोड़ रुपया होता है, बर्मा, स्याम, इन्डोनेशिया आदि देशों से आयात कर रहा है। इससे हमारी विदेशी मुद्रा पर भारी प्रभाव पड़ रहा है । सदा के लिए यह दशा बनाये रखना उचित नहीं है । इसका प्रत्युपाय क्या है ? इसका उपाय यही है कि निम्न जाति के तिरस्कृत तथा अनुपयोगी काष्ठों को रासायनिक उपचार द्वारा उच्च जाति के काष्ठों के अनुरूप बना दिया जाय ताकि वे टीक-जैसी उच्च जाति की लकड़ियों का स्थान ले सकें। बिजली, तार तथा समुद्री खम्भों आदि-जैसे बाहरी कार्यों के लिए काष्ठ का प्रयोग करते समय काष्ठ-विनाशकारक कीटों के पनपने की आदर्श अवस्थाएँ मौजूद होती हैं । कवक, जिसके आक्रमण से काष्ठ सड़कर गल जाता है, बाहर के नम-उष्ण स्थानों में अधिक पनपता है। दीमक भी धरती के नीचे के नमीवाले स्थानों में भीटे बना लेती है । ऐसी कीटानुकूल तथा काष्ठ-प्रतिकूल परिस्थितियों में टीक-जैसा काष्ठ भी अधिक समय तक नहीं चल पाता । काष्ठ के सामुद्रिक उपयोग की परिस्थितियाँ तो और भी भयानक रहती हैं । दक्षिणी अमेरिका में पाये जानेवाले ग्रीनहार्ट काष्ठ को छोड़कर अन्य कोई भी काष्ठ समुद्री कीटों के आक्रमण से बच नहीं पाता । वे प्रायः सभी काष्ठों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं । इन प्रतिकूल स्थितियों में तो भली प्रकार उपचारित काष्ठ ही टिक सकते हैं। टीक के खम्भे समुद्र में पाँच से लेकर ९ वर्ष तक ही चल सकते हैं, जब कि क्रियोजोट

1 Coniforous. 2 Broad-leafed. 3 Secondary species.

द्वारा उपचारित काष्ठ १५ वर्ष से भी अधिक समय तक उपयोगी दशा में पाये जाते हैं। उपचार करने में जितना अधिक रसायन पदार्थ काष्ठ-कोषों में व्यापित किया
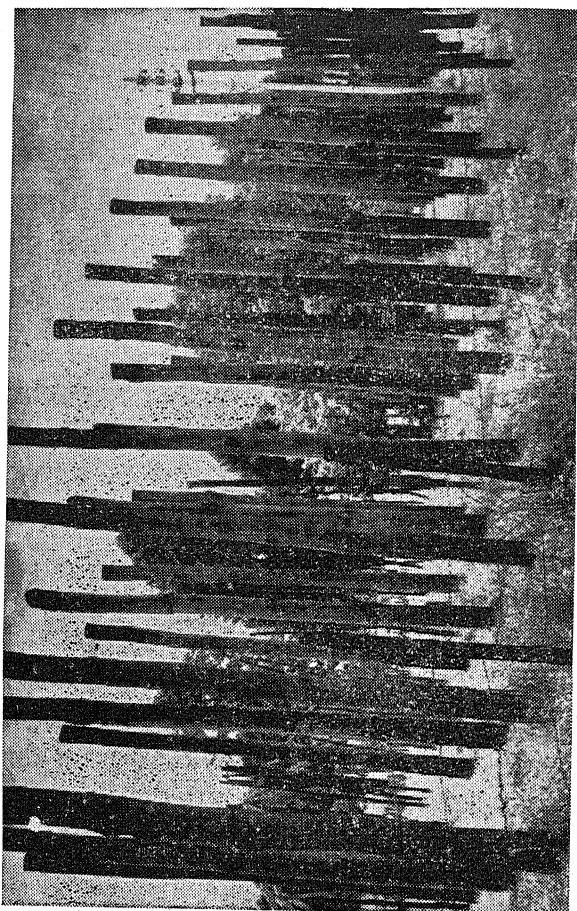
चित्र ८—देहरादून का वन-अनुसंधानशाला में उपचारित काष्ठस्तंभों का परीक्षण।

(खंभे २३ वर्ष उपरान्त सुरक्षित दशा में हैं)

जायगा उतने ही अधिक समय तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है। यह परिरक्षी-प्रचूषण गुण उच्च श्रेणी के टीक-जैसे काष्ठों में नहीं होता, परन्तु निम्न जाति के काष्ठों

में यह गुण बहुधा अधिक मात्रा में पाया जाता है। भारत में बहुत-से ऐसे काष्ठ हैं जिनमें सरलता से परिरक्षी-प्रचूषण कराना सम्भव है। ऐसे काष्ठ चीड़, सेमर, आम, पपीता, काजू, हल्दू होलाँग, होलाक, बहेड़ा, सैन इत्यादि हैं। (भाग ३, अध्याय ४, ६ देखिए।) रसकाष्ठ को उपचार करने के पश्चात्, एक आदर्श काष्ठ बनाया जा सकता है क्योंकि उसकी कोशाएँ खुली रहती हैं और प्रत्येक कोशा में यथोचित मात्रा में परिरक्षी-प्रचूषण कराया जा सकता है जो कई वर्षों तक निश्शेष नहीं होता। इसलिए उस से रसकाष्ठ अथवा बाह्य काष्ठ को, जिसे साल आदि के काष्ठ स्लीपर बनाते समय बहुधा फेंक दिया जाता है और जो वनों में भी नष्ट हो जाता है, परिरक्षण करने के उपरान्त एक उपयोगी वस्तु बनाया जा सकता है। चित्र ८ में उपचारित चीड़, सैन, साल आदि के खम्भे (रस काष्ठ सहित) दिखलाये गये हैं। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून के परीक्षण प्रांगण (टेस्टयार्ड) में ये खम्भें २३ वर्ष की सेवा के
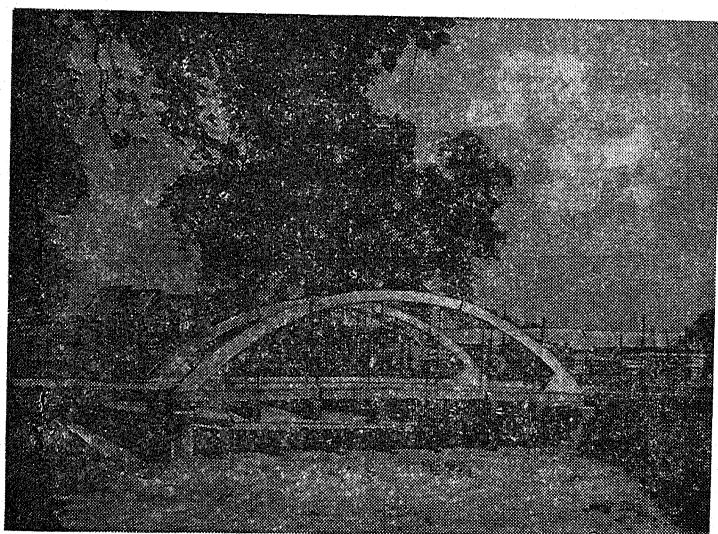
चित्र ९—लखनऊ उद्योग प्रदर्शनी में लगाया गया आपट्टित काष्ठ (plywood) का पुल।

उपरान्त भी सुरक्षित खड़े हैं। गोल खम्भों में प्रायः ५० प्रतिशत से ऊपर रसकाष्ठ रहता है जो अनुपचारित दशा में शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। चित्र ९ में काष्ठ

के लट्ठों से (जिनमें रसकाष्ठ भी सम्मिलित है) प्राप्त पट्टियों को श्लिष्ट करके (यानी उन्हें सरेस या श्लेष से जोड़कर) एक पुल में जो १९३५ की लखनऊ उद्योग-प्रदर्शिनी में काम में लाया गया था, उपयोजित दिखाया गया है । इन काष्ठ-पट्टियों
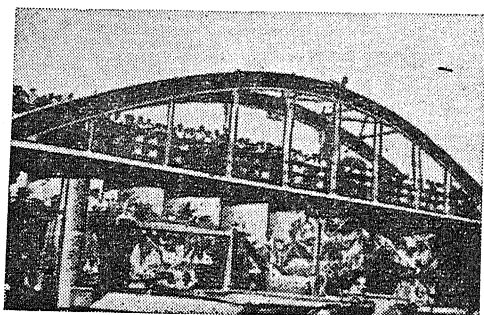
चित्र १०—ट्रावनकोर राज्य में उपचारित काष्ठ का पुल।

को उपचारित करने के पश्चात् ही प्रयुक्त किया गया था । काष्ठ का निर्माण-कार्य में प्रयोग चित्र १० में भी दिखाया गया है।
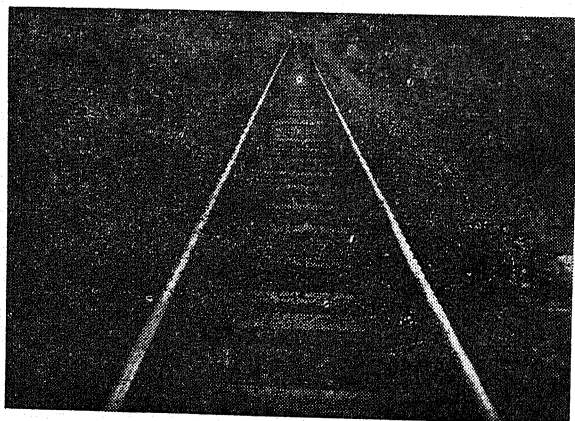
चित्र ११—दक्षिण रेलवे में परीक्षणार्थ लगाये गये उपचारित काष्ठ-स्लीपर ।

देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला ने कई हजार विभिन्न जातियों के काष्ठों से बने रेलवे स्लीपरों को पृथक्-पृथक् रासायनिक पदार्थों द्वारा शोधन करके परीक्षण हेतु रेलवे लाइनों में लगाया था। इन परीक्षणों से यह अनुभव प्राप्त हुआ कि चीड़, सैन, होलाँग, होलाक इत्यादि जाति के शोधित काष्ठ स्लीपरों की सेवा-आयु २० से २५ वर्ष तक रही, जब कि अशोधित अथवा अनुपचारित दशा में यही आयु दो से लेकर ४, ५ वर्ष तक पायी गयी। चित्र ११ में ऐसे उपचारित (क्रियोजोटेड) स्लीपरों का भारत की दक्षिण रेलवे द्वारा किया गया संपरीक्षण दिखाया गया है। वहाँ विनाश-कर्ताओं द्वारा, विशेषकर कवकों द्वारा, सड़कर इन स्लीपरों के क्षय होने का अत्यंत भय रहता है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार भारतीय रेलवेज को ३ करोड़ २० लाख काष्ठ स्लीपरों की आवश्यकता है। इनमें से ४२.५ लाख स्लीपर विदेशों से आयात करने का विचार है। (लोकसभा में ५ मई, १९५८ को किये गये प्रश्नों के उत्तर में प्रकाशित सूचना के अनुसार)।

३. काष्ठ-परिरक्षण उद्योग का विकास

यहाँ संक्षेप में इतना ही लिखना आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटिश संयुक्त राज्य, जर्मनी, कनाडा इत्यादि प्रगतिशील देशों में काष्ठ-परिरक्षण का कार्य रेलवे, विद्युत्, टेलिफोन, तार, जहाजों और बन्दरगाहों आदि के विकास के साथ-साथ विकसित हुआ है। वहाँ पर सैकड़ों काष्ठ-उपचार संयंत्र हैं, जिनसे हर प्रकार का करोड़ों टन काष्ठ उपचारित होकर विभिन्न प्रकार के निर्माण-कार्यों में लगाया जाता है। वहाँ की अनुसन्धान-प्रयोगशालाओं में ऐसे नये परिरक्षी रसायनों का, जो सस्ते और देशी कच्चे माल से तैयार किये जा सकें, आविष्कार होता जा रहा है, जिससे काष्ठ-परिरक्षण आर्थिक दृष्टि से मितव्ययी हो सके। एतद् विषयक आँकड़ों से पता चलता है कि काष्ठ-उपचार क्रिया से काष्ठ की सेवा-आयु खुले स्थानों में ४ या ५ गुनी और भीतरी स्थानों में ७ से १० गुनी तक अधिक बढ़ जाती है।

किन्तु अभी भारत में इस दिशा में इतनी प्रगति नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि यहाँ बड़े पैमाने पर काष्ठ-उपचार संयन्त्र और तत्सम्बन्धी अन्य मशीनें बनाने की सुविधा प्राप्त नहीं है। इन संयन्त्रों में बड़े व्यास के इस्पात के खम्भों (सिलिन्डरों) की आवश्यकता होती है जिनमें काष्ठ प्रविष्ट कराने के उपरान्त निपीड-क्रिया से दबाव के साथ परिरक्षी को काष्ठ-कोशाओं में व्याप्त कराया जाता है।

इनके साथ ही वातिक और द्रव निपीड-पम्पों की भी आवश्यकता पड़ती है जिनके द्वारा निपीड-उपचार किया जा सके। अब उच्च श्रेणी के इस्पात-पट्ट (प्लेट) प्राप्त होने पर इन संयन्त्रों के निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा है। रासायनिक-परिरक्षियों के उत्पादन में भी प्रगति होती जा रही है। देहरादून वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ परिरक्षण शाखा में नये आविष्कारों के अनुसार छोटे-छोटे उपचार-संयन्त्रों की रचना की गयी है जो ग्रामोद्योग के लिए सुविधाजनक होंगे। इसके अतिरिक्त सस्ते परिरक्षी-रसायनों की उपयोगिता पर परीक्षण किये जा रहे हैं जिनका उद्देश्य मूल्य में कमी और इन पदार्थों की आत्मनिर्भरता स्थापित करना है। आशा है कि शीघ्र ही काष्ठ-परिरक्षण उद्योग को नया अनुस्थापन देकर एक सरल कार्य बना दिया जायगा जिससे पंच-वर्षीय योजना के अधीन ग्रामों के सामूहिक विकास निर्माण-कार्य में विशेष सहायता मिल सकेगी। अपने-अपने कार्यों के लिए काष्ठ, बाँस और छादन-घास का स्वतः ही उपचार करने पर इन विकास खंडों के निवासी अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने में समर्थ हो सकेंगे।

अध्याय ५

काष्ठ-परिरक्षण का ऐतिहासिक वृत्तान्त

१. प्राचीन समय में काष्ठ-परिरक्षण

सदियों पूर्व मानव-जाति की यही आकांक्षा थी कि काष्ठ को, जो स्वतः सरल व प्राप्य वस्तु थी, सेवा-कार्य में कैसे टिकाऊ व स्थायी बनाया जाय ।

यद्यपि वनों में उस समय काष्ठ बहुतायत से मिलता था, किन्तु उसे बदलते रहने अथवा उसके पुनःस्थापन में पर्याप्त धन और श्रम की आवश्यकता पड़ती थी । अतः कालान्तर में अनुसन्धान कार्यकर्त्ताओं का ध्यान उसकी सेवा-आयु बढ़ाने की ओर आकर्षित होता रहा ।

प्लीनियस[1] ने इस यग के आरम्भ काल में इफीसस[2] की डिआना[3] की प्रसिद्ध काष्ठ-मूर्ति में बहुसंख्यक छिद्र बनाने और उनमें उच्च स्थान पर रखे गये एक बर्तन से लगातार तेल बहते रहने का उल्लेख किया है । उसने यह भी लिखा है कि एक हजार वर्ष ईसवी पूर्व चीनी लोग निर्माण-कार्य में लगाने के पहले अपने काष्ठों को नमकीन पानी की झीलों में डुबोये रखते थे । मेसीडोनिया के सिकन्दर बादशाह ने यह आदेश निकाला था कि पुल-निर्माण के काष्ठ और उसके आधार-खम्भों पर जैतून के तेल (ओलिव आयल) का लेप किया जाय जिससे वे सड़ने अथवा गलने से सुरक्षित किये जा सकें । रोम के बादशाहों ने भी निर्माण-काष्ठ को आर्द्रता से बचाने के लिए यही उपाय अपनाया था ।

प्राचीन मिस्र निवासियों ने आज से दो हजार से लेकर चार हजार वर्ष तक शव रखने के बक्सों और काष्ठ प्रकीलों को सुरक्षित रखने के लिए "विट्यमन"[4] का प्रयोग किया था । काष्ठ को कीटों के आक्रमण से रोकने के लिए सिरके में उबाले हुए लहसुन के अर्क का प्रयोग किया जाता था । १०२५–१०३३ में "इरिक दि रेड" ने अमेरिका जाने से पहले अपनी नाव पर काष्ठ टार का लेप किया था । ईसा से

1 Plinius. 2 Ephissus. 3 Diana. 4 Vitumen.

७५० वर्ष पूर्व "फिरीड्ज औफ दि बोल्ड" के सागा ने अपने जहाज का नाम "टारलेपित हवाई घोड़ा" रखा था ।

इन सब उपायों के करते रहने पर भी पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई, क्योंकि लकड़ी के सड़ने के वैज्ञानिक कारण ज्ञात न थे। बाद में पता लगा कि काष्ठ-विनाश एक विशेष प्रकार के अणु जीवों और कीटों के कारण होता है । काष्ठ पर इनके आक्रमणों को रोकना ही उसको सुरक्षित रखने का आम उपाय है । यह तभी सम्भव हो सकता था जब इन जीवाणुओं को मारने के हेतु विषैले पदार्थों का प्रयोग किया जाता । सन् १९०५ में काष्ठ को सड़ने से रोकने के लिए मर्क्युरिक क्लोराइड[1] का व्यवहार किया गया और इसके पश्चात् 'कौपर सल्फेट'[2] (नीला थोथा) का प्रयोग किया गया। १८०५ में फर-जैसे सस्ते और अल्प स्थायी प्रकाष्ठों में, विख्यात और टिकाऊ प्रकाष्ठ टीक के छोटे टुकड़ों में से खीचे गये अर्क का, अन्तः-क्षेपण किया गया ।

२. वैज्ञानिक रीति से काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ

ब्रिटिश-जलसेना ने अपने जहाजों को शुष्क-सड़न (ड्राइरौट[3]) से बचाने के लिए काष्ठ-परिरक्षण का विकास किया। सन् १८३२ के लगभग क्यान ने जो एक रसायनज्ञ ('कैमिस्ट') थे मरक्यूरिक क्लोराइड के विलयन और सर विलियम बैनेट (ब्रिटिश एडमिरैल्टी मैडिकल चीफ) ने जिंक क्लोराइड[4] के विलयन का उपयोग लकड़ी को उसमें डुबाने के लिए किया। सन् १८३७ में डाक्टर बूशरी ने हरे पेड़ और खंभों को कौपर सल्फेट और जिंक क्लोराइड के विलयन (घोल) से शोधित करने की नूतन विधि निकाली । यह हरी लकड़ी में परिरक्षी द्वारा रस-विस्थापन (सैप डिस्प्लेसमेन्ट)[5] की प्रक्रिया थी । प्राचीन समय में काष्ठ के बाह्य-स्तर को साव-धानी से जलाकर काष्ठांगार बनाना (चारिंग) भी सुरक्षित रखने का एक ढंग था। इस विधि से काष्ठ के चहुँ ओर कुछ काष्ठ-राल ('वुडटार'[6]) बन जाता था जो काष्ठ-नाशक जीवाणुरोधी होने से काष्ठ को सुरक्षित रखता था । 'इफीसस्' में 'डियाना' का मंदिर नष्ट हो जाने पर यह पता लगा कि वह काष्ठांगारित खंभों के ऊपर बनाया गया था । 'हरक्यूलेनियम्'[7] में २००० वर्ष पुराना आंगारित काष्ठ अच्छी दशा में परिरक्षित था । १८३१ (५घ*) में बर्नेट ने एक प्रक्रिया का एकस्व (पेटैन्ट)

1 Mercuric Chloride. 2 Copper Sulphate. 3 Dry Rot.
4 Zinc Chloride. 5 Sap Displacement. 6 Wood Tar.
7 Herculanneum.

* निर्देश पृ० ५६ पर देखिए।

लिया जिसके द्वारा लोहे के एक पात्र में परिरक्षी को दबाव से काष्ठ में भरा जाता था। १८३८ में इसी प्रक्रिया से 'बेथल' ने काष्ठ की कोशाओं में क्रियोजोट को अन्तः व्यापित किया था। इस 'फुलसेल'[1] (पूर्णकोशा) प्रक्रिया द्वारा आवश्यकता से अधिक परिरक्षी काष्ठ के अन्दर भर जाता था। १९०२ में वासरमैन ने एक एकस्व, रिक्त-कोशा ('एम्टीसल') विधा पर लिया था, जिसको रचूपिंग ने व्यवहृत किया, और यह 'रचपिंग प्रोसेस' के नाम से विख्यात है। इस प्रक्रिया का यही उद्देश्य था कि परिरक्षी केवल कोशाभित्तियों में ही लिप्त रहे और कोशा का आन्तरिक स्थान रिक्त हो। १९०६ में अमेरिका के 'लौरी' ने एक एकस्व इसी रिक्त-कोशा विधा का 'लौरी प्रोसेस' नाम से लिया। १८७९ में बोल्टन ने इंग्लैंड में काष्ठ की 'शून्यक में उबालने' ('बौइलिंग अन्डर वैकुअम्') नामक विधा का एक एकस्व लिया। इन विधाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन भाग ३, अध्याय ३ में दिया गया है।

३. आधुनिक काल में काष्ठ-परिरक्षण

काष्ठ-परिरक्षण को सबसे अधिक प्रोत्साहन (१ ख*) भाप ('स्टीम') इंजन का आविष्कार होने पर मिला। स्टीफन और ब्रूनल जैसे अभियन्ताओं ने ('इञ्जिनियर्स्'), जिन्होंने प्रथम रेलवे-लाइन बिछायी, 'क्यान' प्रक्रिया से उपचारित स्लीपरों का प्रयोग किया था। इस समय संसार की रेल-पटरियों के नीचे काष्ठ स्लीपर संपूर्ण रेल-लाइन के दो तिहाई भाग से भी अधिक लम्बाई में बिछे हुए हैं। लगभग १८ करोड़ स्लीपर, जिनको बनाने में २ करोड़ १० लाख टन काष्ठ लट्ठों के रूप में लगा है, रेलवे के नवीकरण तथा प्रतिस्थापन में प्रति वर्ष लगता है। उपचारित काष्ठ का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग गढ़ों और खानों के आधार-स्तम्भों के लिए है। संसार के समस्त कोयला-खानों के आश्रय के लिए और भी २ करोड़ १० लाख टन काष्ठ की आधार-स्तम्भों के रूप में आवश्यकता है। तार, टैलीफोन, बिजली, जहाज, रेलडिब्बों, इत्यादि के निर्माण-उद्योग, शोधित काष्ठ के सबसे अधिक उपभोक्ता हैं। उपचारित काष्ठ की माँग अन्य निर्माणकार्यों, जैसे आपट्टित ('लेमीनेटेड्') काष्ठ, के लम्बे-व्यास के पुलों, विमान-गृहों और बड़े कारखानों की छतों के 'ट्रसों' के लिए भी, बढ़ती जा रही है। सभी प्रगतिशील देशों में काष्ठ-परिरक्षण एक सुप्रतिष्ठापित उद्योग है और नये-नये परिरक्षियों का पृथक्-पृथक् प्रकार के निर्माण-कार्यों के लिए आविष्कार होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त, परिरक्षियों

1 Full-Cell. * अध्याय के अन्त में निर्देश-सूची देखिए।

का ऐसा रासायनिक संगठन किया जा रहा है जिससे कि काष्ठ में परिरक्षण के साथ ही साथ अग्नि-रोधी गुण भी प्रतिष्ठित हो सकें। व्यावहारिक दृष्टि से काष्ठ-परिरक्षण सभी विख्यात देशों में, जैसे अमेरिका, कैनेडा, ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी, स्वीडन, सोवियत संघ, आफ्रिका, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया, मलाया, जापान, चीन और भारत में प्रगति करता आया है । इन सभी देशों का सविस्तर लेखा प्राप्त नहीं है, परन्तु कुछ मुख्य देशों का, जिनके बारे में सूचना प्राप्त है, इस सम्बन्ध का विवरण निम्नलिखित प्रकरणों में दिया गया है ।

४. संयुक्त-राज्य अमेरिका में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति

अमेरिका में ६३ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि पर वन हैं, और उनसे प्रतिवर्ष ११ अरब, २९ करोड़ ६० लाख घन फुट काष्ठ उपज की आय है । जहाज के तख्तों को गलने और समुद्री कीटों से बचाने के लिए वहाँ विलियम कुक ने सन् १७१६ में काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ किया था। जिस परिरक्षी का प्रयोग उसने किया था उसका एक भाग 'ऑइल और स्पिरिट औफ टार'[1] था। १७३७ में पहली बार काष्ठ-उपचार करने की औपनिवेशिक छूट दी गयी और उसके पश्चात् काष्ठ-परिरक्षण को प्रस्तुत कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य में ही काष्ठ-उपचार के कार्य को व्यावहारिक दृष्टि से मान्यता दी गयी। १९०६ में जे० बी० कार्ड ने जिंक क्लोराइड और क्रियोजोट के मिश्रण का काष्ठ में अन्तः-प्रवेश कराने के लिए एकस्व लिया था। उसके बाद से ही काष्ठ-परिरक्षण उद्योग की प्रगति होती गयी और अब यह वहाँ के बड़े मुख्य उद्योगों में से एक है। यह उद्योग वहाँ भली प्रकार से संघटित है और इस कला के कार्यकर्त्ताओं का वहाँ एक संघ ('ऐसोसिएशन') है जो काष्ठ-परिरक्षण विषयक विविध आविष्कारों, उसकी प्रगति और वार्षिक अधिवेशनों की कार्यवाही का विस्तारपूर्वक वर्णन प्रति वर्ष प्रकाशित करता है। इस संस्था का नाम अमेरिकन वुड प्रिजर्वर्स एसोसिएशन्[2] है। १९०९ से लेकर १९४९ तक के ४१ साल के आँकड़ों के अनुसार ११०.३ बिलियन बोर्ड[3] फुट (बिलियन=१ अरब) काष्ठ शोधित किया गया। परिरक्षण उपायों द्वारा काष्ठ की आयु-वृद्धि औसतन् पाँच-गुनी मान लेने पर, उतना काष्ठ ५५१.५ बिलियन बोर्ड फुट अशोधित काष्ठ के तुल्य हुआ। इसलिए ४१ वर्षों में ४४१.२ बिलियन बोर्ड फ़ुट काष्ठ की बचत हुई, अर्थात्

1 Oil or spirit of tar. 2 American Wood Preservers' Association.

प्रति वर्ष १०.८ बिलियन बोर्ड फुट काष्ठ की बचत रही । १००० बोर्ड फुट काष्ठ का औसत मूल्य ३० डालर मानने पर, काष्ठ के मूल्य में १३.२ बिलियन डालर की बचत हुई, अर्थात् प्रति दिन ८ लाख ८४ हजार डालर की बचत का औसत पड़ा । संयुक्त राज्य अमेरिका में २१५ वाणिज्य-उपचार संबंधी संयन्त्र स्थापित हैं । ऊपर-लिखित मात्रा में काष्ठ का उपचार इन्हीं संयन्त्रों द्वारा किया गया ।

५. जर्मनी में काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति

जर्मनी की कुल भूमि के २६ प्रतिशत भाग में वन हैं। उनसे प्रति वर्ष काष्ठीय उपज की आय २ करोड़ ८० लाख टन है । वहाँ १ अरब, ४१ करोड़, २० लाख घन फुट काष्ठ का चिरान होता है ।

जर्मनी में काष्ठ-परिरक्षण का प्रारम्भ सन् १८३८ में हुआ । काष्ठ उपचार विशेषतः रेलवे-स्लीपरों पर ही किया जाता था। उसके बाद शीघ्र ही तार के खम्भों के उपचार की आवश्यकता पड़ी और बूशरी उपचार-विधा की स्थापना हुई । १८६० से १९१० तक ७० लाख काष्ठ-खम्भों का उपचार किया गया। ९० प्रतिशत प्रयोग १९०७ में किये गये । इन खम्भों में परिरक्षी-द्रव्य व्याप्त किये गये थे।

वहाँ लगभग ३५ बड़े और ६० छोटे निपीड़ उपचार-संयन्त्र हैं जो काष्ठ-परिरक्षण कार्य में संलग्न हैं। प्रति वर्ष जितना काष्ठ उपचारित किया जाता है, वह एक स्थूल गणना के अनुसार निम्नलिखित है—

रेलवे स्लीपर	२,१००००००	घनफुट
विविध काष्ठ	८७५००००	,, ,,
टैलिफोन के खम्भे	३५०००००	,, ,,
बिजली के खम्भे	८७५०००	,, ,,
खानों के लिए काष्ठ	१७५००००	,, ,,
कुल	३५८७५०००	घनफुट

१९३८ तक रासायनिक-परिरक्षी के रूप में मुख्यतः क्रियोजोट का ही प्रयोग किया जाता था । अन्य रसायन थे कौपर सल्फेट, जिंक क्लोराइड, सोडियम फ्लोराइड, बेसीलिट (यानी ८९% सोडियम फ्लोराइड और ११% डाइनाइट्रो फीनौल-एनीलीन) । १९३८ के पश्चात् युद्ध के कारण नियंत्रण लगने पर, 'फ्लैनैक्स्' नामक एक जलघुलनशील रासायनिक परिरक्षी द्रव्य का सरकार ने प्रयोग प्रारंभ किया ।

यहाँ इतना ही लिखना आवश्यक है कि काष्ठ-परिरक्षण की विधियों का विकास और संसार में विविध निर्माण-कार्य के लिए परिरक्षित काष्ठ के प्रयोगों को प्रोत्साहन अधिकतर जर्मनी में किये गये आधारभूत कार्यों के देय पर ही था। तत्पश्चात् अमेरिका ने इस कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया। इस समय अमेरिका को काष्ठ-सम्बन्धी अन्वेषण कार्य के विभिन्न स्वरूपों में सबसे प्रमुख स्थान देना चाहिए।

६. स्वीडन में काष्ठ-परिरक्षण की विधि

तुलना के विचार से स्वीडन एक छोटा-सा देश है। उसकी भूमि का कुल क्षेत्र-फल १० करोड़ ७० लाख एकड़ है। उसके वनों का क्षेत्रफल ५ करोड़ ८० लाख एकड़ है अर्थात् कुल भूमि के ५० प्रतिशत भाग में वन हैं। इन वनों से ४५ लाख ५३ हजार टन काष्ठ की वार्षिक उपज है।

स्वीडन में कच्चा संखिया ('आर्सनिक') खानों में बहुतायत से मिलता है। सन् १९३६ में वहाँ बौलीडौन नामक परिरक्षी का आविष्कार किया गया। यह परि-रक्षी एस्क्यू की ही तरह है जिसका भारत में आविष्कार किया गया था। इसमें संखिया मिला हुआ था। १९३६ से १९४७ तक वहाँ १ करोड़ ७२ लाख ४८ हजार पौंड परिरक्षी प्रयोग में लाया गया और इससे ४८२३५४०० घनफुट काष्ठ का उपचार किया गया।

सन् १९४० से लेकर स्वीडन की सरकारी रेलवे ने ३० लाख से अधिक स्लीपरों का वौलीडौन लवण की निपीड़ क्रिया द्वारा उपचार किया। १९४७ में १२ लाख स्लीपरों का शोधन किया गया। वहाँ के सरकारी तार विभाग ने १९४० से ८ लाख टैलीफोन के काष्ठ-खंम्भों का भी उपचार किया, जिनमें पिछले दो वर्षों में २ लाख प्रतिवर्ष का उपचार हुआ। रेलवे-स्लीपरों और काष्ठ-खम्भों के अतिरिक्त वहाँ आधार-स्तम्भों, पुलों, खनिज-अवलम्बों, बाड़-खंभों और गृह-निर्माण कार्यों में भी उपचारित काष्ठ का प्रयोग किया गया।

७. प्राचीन भारत में काष्ठ-परिरक्षण

भारत में सभ्यता का प्रारंभ २००० वर्ष ईसा पूर्व से हुआ है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में काष्ठ विषयक विभिन्न प्रयोगों का उल्लेख है। हिन्दी में 'कच्ची' और 'पक्की लकड़ी' शब्द और तैलुगू में 'चावा' शब्द काष्ठ के स्थायीपन के वाचक थे। 'कच्ची लकड़ी' बाह्य काष्ठ अथवा रस-काष्ठ की वाचक है जो कम टिकाऊ होता है, और 'पक्की लकड़ी' से अभिप्राय अन्तः अथवा सारकाष्ठ से है जो रस-काष्ठ की अपेक्षा

अधिक टिकाऊ होता है । इससे यही प्रतीत होता है कि मनुष्यों को काष्ठ के अल्प-स्थायी और चिरस्थायी होने के विषय का ज्ञान था ।

पटना के निकट, बुलन्दीबाग की खुदाई करने पर पता चला कि वहाँ बहुत-सी प्राचीन काष्ठ की दीवारें, कठघरे और परनाले अच्छी सुरक्षित अवस्था में हैं । दुर्भाग्यवश इनकी ऐसी पूर्ण जाँच-पड़ताल नहीं हो सकी, जिससे पता चलता है कि ये किस जाति के काष्ठ के बने थे । पियर्सन और ब्राउन द्वारा लिखित भारत के वाणिज्य सम्बन्धी काष्ठों की पुस्तक में 'सीड्रस द्योदारा'[१] (देवदार) जाति के काष्ठ के बारे में निर्देश है कि इसके खम्भे श्रीनगर स्थान (कश्मीर) की एक मसजिद में (गैम्बल के लेख के अनुसार) सुरक्षित अवस्था में थे । यह भी ज्ञात था कि अधिक से अधिक टिकाऊ, साल और टीक-जैसे काष्ठ भी भूमि में गाड़ने पर अधिक काल तक नहीं चल सकते । इन बातों से यही प्रमाण मिलता है कि बीस शताब्दी पूर्व मौर्यों के समय में, जो पूर्वकथित काष्ठ पाटलीपुत्र (पटना) में गाड़े गये थे, उन पर किसी प्रकार की उपचारक्रिया अवश्यमेव की गयी होगी, ताकि वे काष्ठ-विनाश अभिकर्त्ताओं से बच सकें । दुर्भाग्यवश हमको उस समय की क्रिया और परिरक्षी की जानकारी नहीं है ।

८. भारत के निकटभूत काल में काष्ठ-परिरक्षण

पाश्चात्य देशों की तरह भारत में भी नवीन प्रकार से काष्ठ-परिरक्षण का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुआ । ईस्ट इण्डियन रेलवे ने हावड़ा के निकट बाली स्थान पर १८५४ में काष्ठ-उपचार के लिए एक क्रियोजोटीकरण संयन्त्र स्थापित किया । यह इस दिशा में पहला कदम था । १८६५ में एम० एन्ड एस्० एम० रेलवे ने पालघाट के निकट हरे काष्ठों पर बूशरी विधि से कौपर सल्फेट (नीला थोथा) का प्रयोग कर उन्हें उपचारित किया था और तत्पश्चात् उन शोधित काष्ठों को स्लीपरों के आकार में परिवर्तित किया । उसी समय के लगभग सिन्ध नदी के तट पर कोटरी नामक स्थान पर जिंक क्लोराइड के प्रयोग से उपचार करने-वाला 'बर्नेटाइजिंग' संयन्त्र स्थापित किया गया । इस संयन्त्र द्वारा उपचारित देवदार और चीड़ के रेलवे-स्लीपर सिन्ध, पंजाब और देहली के रेल-मार्ग पर बिछाये गये । बी० बी० सी० आई० रेलवे ने 'हैस्कैनाइजिंग' व 'वल्केनाइजिंग' विधि के परीक्षण काष्ठ-उपचार हेतु किये । इस क्रिया का यह सिद्धान्त था कि एक बन्द रम्भ में चीड़-जैसे काष्ठ रखकर नम हवा को दबाव द्वारा गरम (९५° सेन्टीग्रेड तक) करके उन पर श्वेति (एल्ब्यूमैन[१]) पदार्थों को जमाया जाय । यह कहा गया था कि इस क्रिया से

1 Albumen.

कुछ ऐसे विषैले पदार्थ, तारपीन और लीसा ('रेजिन') अम्ल के संयोग से, बन जाते हैं जो कवक और कीटों के आक्रमण को रोकने में सहायक होते हैं। इस विधि से ५००० स्लीपरों का उपचार करके उन्हें बम्बई और भड़ोच डिवीजन में परीक्षणार्थ रेल-मार्गों में लगाया गया। भडोच संभाग में इन स्लीपरों के प्रयोग से संतोषजनक परिणाम नहीं निकले, क्योंकि वहाँ दीमकों के आक्रमण का अधिक भय था, पर बम्बई संभाग में यथोचित फल निकला। सन् १८७८ में भारत सरकार ने डाक्टर राय को हिमालय पहाड़ियों के उपचारित शंकुधारी काष्ठों को रेलवे-स्लीपरों के रूप में तैयार करके उनका प्रयोग करने के विषय पर विस्तारपूर्वक जाँच करने का भार दिया था। पर उनके अमूल्य प्रस्थापनों पर कार्यवाही नहीं की गयी।

भारतीय रेलवे ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में काष्ठ-स्लीपरों का अधिक संख्या में आयात किया। इनमें से कुछ ब्रिटेन और बाल्टिक देशों में प्राप्त चीड़ आदि जैसे उन काष्ठों के बने थे जिनकी सेवा-आयु ७ से लेकर १२ वर्ष तक होती है। दबाव द्वारा क्रियोजोट से उपचारित 'डगलस् फर' के लगभग १ लाख ६० हजार स्लीपर कैनाडा से आयात किये गये, परन्तु इनसे संतोषजनक सेवा-आयु प्राप्त नहीं हुई। इन स्लीपरों की अल्प आयु का कारण फटन, प्रकील ('स्पाइक्स्') का ढीलापन और उन पर हुआ रेल-कर्तन था।

९. भारत का आधुनिक काष्ठ-परिरक्षण

भारत में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में, टीक, साल, देवदार और पिनकाडो-जैसे स्वाभाविक टिकाऊ काष्ठों के स्लीपरों की कमी और उनके मूल्य में वृद्धि होते रहने के कारण, काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण-कार्य को प्रोत्साहन मिला। यद्यपि, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, उन्नीसवीं शताब्दी के प्रायः मध्य में रेलवे-कम्पनियों ने निपीड़-क्रिया से काष्ठ-उपचार करने के लिए कई बड़े संयन्त्रों की रचना की जिनके द्वारा क्रियोजोट, कौपरसल्फेट और जिंक क्लोराइड का उपयोग निम्न-जाति के काष्ठों के उपचार के लिए उनकी आय को बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया और यूरोप से क्रियोजोटीकृत काष्ठ-स्लीपरों का आयात किया गया, तथापि काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति में रुकावट पड़ ही गयी। संभवतः इसका कारण उस समय का अत्यधिक उपचार मूल्य हो, क्योंकि कोलटार क्रियोजोट, जिससे संसार भर में सबसे अच्छे परि-णाम निकले थे, भारत में निर्मित न होने के कारण अधिक मूल्य पर आयात किया जाता था। अन्य रासायनिक पदार्थ कौपर सल्फेट और जिंक क्लोराइड जिनको परिरक्षी

के रूप में प्रयोग करना संभव था, पानी में घुलनशील होने के कारण, काष्ठ को अधिक वर्षों तक सुरक्षित रखने में असमर्थ रहे । अतः जो उपचार-संयन्त्र पिछली शताब्दी में स्थापित किये गये थे, वे वस्तुतः बन्द ही कर दिये गये । काष्ठ-परिरक्षण की प्रगति में बाधा पड़ने का दूसरा कारण, भारत के जलवायु का यूरोपीय देशों से भिन्न होना था। भारत एक उष्ण देश है, और यूरोप-जैसे समशीतोष्ण तथा मृदु जलवायुवाले देशों की काष्ठ-परिरक्षण की प्रक्रियाएँ और परिरक्षी जो उन देशों के जलवायु और मृद्-दशा की आवश्यकतानुसार प्रस्तुत की गयी थीं यहाँ लागू नहीं हो सकती थीं । अतः यहाँ उनसे संतोषजनक परिणाम नहीं निकल सकते थे । इसके अतिरिक्त यूरोपीय देशों में वहाँ के गिने-चुने काष्ठों के लिए उपचार-विधियाँ ढूँढ़ निकालना एक सरल कार्य था जब कि भारत के विभिन्न और अनेक जातियों के काष्ठों के लिए उपयुक्त उपचार-विधियों का साधन कठिन कार्य था । भारत के काष्ठों के उपचार-गुणों का अध्ययन, उन परिरक्षित काष्ठों को प्रयोग में लाने के पूर्व ही कर लेना आवश्यक था जिससे कि उस ज्ञान के फलस्वरूप यथोचित परिणाम निकाले जा सकें । इसलिए भारतवर्ष के जलवायु और मृद्-दशा को ध्यान में रखकर ही काष्ठ-परिरक्षण का कार्य आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार करना उचित समझा गया ।

१०. वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून, में काष्ठ-परिरक्षण संबंधी अन्वेषण-कार्य का आरंभ

काष्ठ-परिरक्षण का सही और उचित वैज्ञानिक ढंग पर अन्वेषणकार्य सन् १९०८ में सर रैल्फ पियर्सन ने प्रारंभ किया । वे इन्डियन फौरेस्ट सर्विस् के सदस्य थे और वन-अनुसन्धान-शाला में उन्होंने ही इस महत्त्वपूर्ण कार्य का उपक्रमण किया । पियर्सन वन-अनुसंधान-शाला के प्रथम वन अर्थव्यवस्था शाखा अधिकारी ('फौरेस्ट इको-नौमिस्ट') थे । यह शाखा बाद में वनोपयोग ('फौरेस्ट यूटीलाइजेशन ब्रांच') के नाम से प्रसिद्ध हुई । पियर्सन ने जो परीक्षण आरम्भ किये वे मुख्यतः दो प्रकार के थे--

(१) सर्व-प्रथम तो उन्होंने विभिन्न प्रकार के काष्ठों के उपचार का अध्ययन प्रारंभ किया । परीक्षण के लिए जो काष्ठ छाँटे गये वे हर प्रकार से स्थायीपन और कठोरता के प्रतीक थे । इन काष्ठों के २ फुट × २ इंच × २ इंच के टुकड़ों को शोधित और अशोधित दशा में साथ-साथ परीक्षण क्षेत्र की भूमि में गाड़ दिया गया । इस परीक्षण-क्षेत्र को शवांगण (ग्रेवयार्ड) भी कहते थे । काष्ठ-विनाशी कवक और दीमक की इस शवांगण में प्रचुरता थी ताकि थोड़े ही काल में इन छोटे-छोटे काष्ठ

प्रादर्शों पर रासायनिक पदार्थों की काष्ठोपचार विषयक प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। इन परीक्षणों का लक्ष्य यह अध्ययन करना भी था कि अशोधित दशा में जाति के अनुसार काष्ठ की पृथक्-पृथक् आयु कितनी होती है और उपचार से उसे किस सीमा तक सुरक्षित रखा जा सकता है, ताकि अच्छे परिणामवाले परिरक्षियों और उपचार-क्रियाओं का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जा सके।

(२) दूसरे प्रकार के परीक्षणों का उद्देश्य लघु-आयु की विभिन्न जातियों के काष्ठ-स्लीपरों को कुछ प्रसिद्ध परिरक्षियों द्वारा उपचारित करके रेल-लाइनों में बिछाने का था जिससे इन निम्न जाति के काष्ठों की रेलवे-स्लीपरों के लिए उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सके। इन संपरीक्षणों में विविध प्रकार के काष्ठों के लगभग ९००० स्लीपर उपचार के पश्चात् हिन्दुस्तान और बर्मा की रेलों में जाँच के निमित्त लगाये गये। उपचार-विधा मुख्यतः तापन और शीत-प्रक्रिया ('हौट एण्ड कोल्ड प्रौसेस्') की थी जो खुले कुंडों (टंकियों) में डुबोकर की गयी थी। यह विधा अति मितव्ययी और सरल होने के कारण उपचार निमित्त प्रयोग में लायी गयी। कालान्तर में इस विधा की परिसीमा स्पष्ट होती गयी। जो काष्ठ प्रयोग में लाये गये उनके नाम इस प्रकार थे—**डिप्ट्रोकार्पस टयूबरक्यूलेटस्**[१] (इंग), **डिप्ट्रोकार्पस एलेटस्**,[२] **पाइनस् लोंगीफोलिया**[३] **(चीड)**, **पाइनस् इक्सेल्सा**[४] **(कैल)**, और **टर्मिनेलिया टोमैन्टोसा**[५] **(सैन)**। जिन परिरक्षियों का उपचार के लिए प्रयोग किया गया था, वे थे—पौवेल सल्यूशन[६], एवीनैरियस् कार्बोलीनियम,[७] जिंक क्लोराइड[८] (तत्पश्चात् ग्रीन आइल,[९] सौलिग्नम्[१०] और लिक्विड फ्यूयल[११] के लेप से रक्षित)। कुछ स्लीपरों को आसाम के दिगबौय नामक स्थान में 'ग्रीन औयल और लिक्विड फ्यूयल से निपीड-क्रिया द्वारा उपचारित किया गया क्योंकि वहाँ निपीड-उपचार-संयन्त्र में इस प्रकार के उपचार की सुविधा थी। यहाँ **डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस**[१२] **(होलौंग)**, **टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा**[१३] **(होलॉक)**, **लैगरस्ट्रोइमिया**[१४] **पार्वीफ्लोरा (लैन्डी)**, **अर्टोकार्पस**

1 Diptrocarpus Tuberculatus.
2 Diptrocarpus Elatus.
3 Pinus Longifolia.
4 Pinus Excelsa.
5 Terminalia Tomentosa.
6 Powel's solution.
7 Avinarius Carbolinium.
8 Zinc Chloride.
9 Green oil.
10 Solignum.
11 Liquid Fuel.
12 Diptrocarpus Macrocarpus.
13 Terminalia Myriocarpa.
14 Laggerstroimia Parviflora.

चपलाशा[1] (**चपलाश**), **अल्टिन्जिया इकसेल्सा**[2] (**जुटिली**), **मैग्नोलिया**[3] प्रजाति और **साइनोमीटा पोलिएन्ड्रा**[4] (**पिंग**) जाति के स्लीपरों का उपचार किया गया। अंत में कुछ स्लीपर इंग्लैंड और अमेरिका को क्रियोजोट से उपचार करने के लिए भेजे गये। ये **डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्**[5] (**गुर्जन**), **पीसिया मोरिन्डा**[6] (स्प्रूस) और **एबिस पिन्ड्रो**[7] (फर) जाति के काष्ठों के बने थे। उपचारित होकर लौटने के पश्चात् इन स्लीपरों को परीक्षणार्थ भारतीय रेलों की पटरियों के नीचे बिछाया गया। इन परीक्षणों का विस्तारपूर्वक वर्णन इन्डियन फौरेस्ट रिकौर्डस् नं० ३ पार्ट २ में दिया गया है।

पूर्वोक्त परीक्षणों के २४ वर्ष के सेवाकाल के उपरान्त प्राप्त परिणाम संक्षेप में भारतीय वन विवरणिका (इन्डियन् फौरेस्ट बुलेटिन्) नम्बर ८४ (१९३४) में दिये हैं। कुछ स्लीपरों की औसतन सेवा-आयु १५ से लेकर २० वर्ष की रही और कुछ की ७ से लेकर १२ वर्ष तक। यदि उस पूर्वकाल की कठिनाइयों और अल्प-साधनों को ध्यान में रखा जाये, तो काष्ठ-उपचार से उनकी सेवा-आयु में जो वृद्धि हुई है, वह संतोषजनक कही जा सकती है।

१९२३ में काष्ठ-परिरक्षण का अन्वेषण-कार्य इतनी प्रगति कर चुका था कि वन-अनुसन्धानशाला की वन अर्थव्यवस्था शाखा में एक पृथक् ही विभाग काष्ठ-परिरक्षण अनुभाग के नाम से खोला गया। जे० एच० वार इस अनुभाग के प्रथम कार्यभारी अफसर नियुक्त किये गये और उस समय वहाँ इस्पात के दो निपीड रम्भ (प्रसर सिलिन्डर[8]) अधिष्ठापित किये गये। इन रम्भों का प्रयोजन काष्ठों को इनके अन्दर बन्द कर परिरक्षी से निपीड-क्रिया द्वारा उपचार करने का था जिससे काष्ठ-कोशाओं में प्रभूत मात्रा में परिरक्षी व्याप्त किया जा सके। ऐसा करने से उपचारित काष्ठ की सेवा-आयु अधिक से अधिक काल तक बढ़ा देना संभव हो सकता था। इनमें एक रम्भ १० फुट और दूसरा ३ फुट लम्बा था। इन संयन्त्रों में जलगति और शून्यक पम्प ('हाइड्रोलिक और वैकुअम् पम्प), वायु निपीडक (एयर कम्प्रेसर), दबाव और तापमापक यन्त्र, संग्रह और वितरण कुंड ('स्टोरेज् एण्ड सर्विस टैंक) भी सम्मिलित थे। इन संयन्त्रों को स्थापित करने का उद्देश्य यही था कि भिन्न-भिन्न

1 Arto carpus Chhaplasha.
2 Ultengia Excelsa.
3 Magnolia.
4 Cinometa Polyandra.
5 Diptrocarpus Turbinatus.
6 Pissia Morinda.
7 Abis Pindro.
8 Pressure cylinder.

काष्ठों के निपीड़-उपचार लक्षणों का अध्ययन किया जाय। इसके साथ ही एक रसायन-शाला भी स्थापित कर दी गयी जिसमें रासायनिक परिरक्षियों के विश्लेषण का कार्य, काष्ठ-आर्द्रता निश्चयन और अन्य काष्ठ-परिरक्षण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान हो सके।

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण विकास के दूसरे प्रक्रम का श्रेय डाक्टर एस० कामेसम् को दिया जा सकता है। आदि के परीक्षणों में उन्होंने कई जाति के काष्ठों के स्वाभाविक स्थायित्व[1] का निश्चयन किया। इस हेतु प्रत्येक काष्ठ के अन्तःकाष्ठ अथवा सारकाष्ठ में से २ फुट × २ इंच × २ इंच के ६ टुकड़े परीक्षण-क्षेत्र अथवा शवांगण ('ग्रेवयार्ड') में, आधे ऊपर और आधे जमीन में गाड़ दिये गये। इस क्षेत्र में कवक और दीमकों के आक्रमण की अनुकूल दशा का संवर्धन किया गया था। २५ वर्ष उपरान्त इन परीक्षणों से भारत और बर्मा के लगभग २०० जाति के काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व अथवा टिकाऊपन की जानकारी हुई। इसके पश्चात् उन्होंने अपना ध्यान एक ऐसे परिरक्षी के आविष्कार की ओर लगाया जो पानी में घुलनशील होने पर भी काष्ठ पर उपचारित होने के पश्चात् वर्षा या पानी के कारण काष्ठ में से घुल न सके। इस प्रकार के परिरक्षी का निर्माण अति आवश्यक था क्योंकि क्रियोजोट-जैसे तीव्र गन्धवाले तैल रूपी परिरक्षी का प्रयोग कुछ विशेष निर्माण-कार्यों के लिए उपयुक्त न था। इसके अतिरिक्त क्रियोजोटीकृत काष्ठ के ऊपर बाहरी धूप की गर्मी से तैल फैलने-सा लगाता था जिससे बाह्य-स्तर पर किसी भी प्रकार का रंग-लेप लगाना संभव न था। अतः कामेसम् ने जर्मनी के प्रोफेसर फाल्क की रसायनशाला में उनके सहयोग से एक जलविलेय बद्ध प्रतिरूप परिरक्षी[2] का आविष्कार किया। उन दोनों अन्वेषण-कर्त्ताओं ने मिलकर इस परिरक्षी का 'फाल्कामेसम्' नाम से एकस्वीकरण ('पेटैन्ट') कराया। इसमें आर्से-निक् पैन्टोक्साइड्[3] (संखिया का भस्म) और पोटेशियम् या सोडियम् डाइक्रोमेट[4] (लालकशीश) का बराबर मात्रा में मिश्रण था। पानी में इसका २ से लेकर ४ प्रति-शत तक घोल काष्ठ-उपचार के लिए प्रयोग किया जाता था। प्रायः दो वर्ष पश्चात् उन्होंने इस फाल्कामेसम् परिरक्षी को सुधारकर, सन् १९३३ में एस्क्यू नामक परिरक्षी का आविष्कार किया, जिसमें पूर्वकथित रसायनों के अतिरिक्त 'आर्सेनिक' की अपेक्षा

1 Natural Durability.
2 Water Soluble Fixed Type Preservative.
3 Arsenic Pantoxide.
4 Potassium or Sodium Dichromate.

कवकों के लिए, विशेष प्रकार से अधिक मारक पदार्थ, कौपरसल्फेट को संयुक्त किया। इस अन्वेषण-कार्य की ख्याति अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में फैल गयी और कुछ विदेशी राष्ट्रों ने इसके एकस्व को अपने देशों में काष्ठ-परिरक्षण के लिए मोल ले लिया। कामेसम् एक अभियन्ता (इंजीनियर') भी थे, और उन्होंने यह पता लगाने के उद्देश्य से शोधित काष्ठ की संरचनाएँ कीं कि उपचार करने के पश्चात् काष्ठों को किन-किन निर्माण-कार्यों में सुगमता और मितव्ययिता से काम में लाया जा सकता है। उन्होंने भारतवर्ष में काष्ठ अभियान्त्रिकी ('टिम्बर इन्जीनियरिंग') के अन्वेषण-कार्य को नूतन विधि से प्रोत्साहन दिया। वे बाद में वन-अनुसन्धानशाला के प्रथम काष्ठ विकासाधिकारी (टिम्बर डेवलपमैंट अफ़सर) नियुक्त किये गये।

बाद में काष्ठ-परिरक्षण का अनुस्थापन नारायणमूर्ति ने किया। उन्होंने रंग-नाथन और अन्य कार्यकर्त्ताओं के साथ भिन्न प्रकार के देशीय उत्पादनवाले कोलटार क्रियोजोटों का काष्ठ-परिरक्षण के लिए विस्तारपूर्वक अध्ययन किया। इसके फल-स्वरूप भारतीय प्रमाप संस्था ('इन्डियन स्टेन्डर्डस् इन्स्टिटयूशन') ने भारत के प्रयोग के लिए कोल्टार क्रियोज़ोट की उपयुक्त विशिष्टियाँ ('स्पेसीफिकेशन्स') बनायीं जिनका उपयोग वर्तमान वाणिज्य-परिरक्षण कार्य में किया जा रहा है। नारायणमूर्ति और पुरुषोत्तम ने नाना प्रकार के काष्ठों के छिद्रों में हवा की अतिभेद्‌यता या प्रवेश्यता ('परमिएबिलिटी') का अच्छा अध्ययन किया जिससे यह पता चल सका कि किन कोष्ठों में सरलता से और किन में कठिनाई से परिरक्षी पदार्थ प्रविष्ट किये जा सकते हैं। नारायणमूर्ति और गोपालाचारी ने ५६ भारतीय काष्ठों के स्वाभाविक अग्नि-रोधक-गुणों का अध्ययन किया। काष्ठों की अग्नि से रक्षा करना भी काष्ठ-परिरक्षण विद्या का एक अंग है। नारायणमूर्ति, पुरुषोत्तम और पांडे ने हरे बाँसों की उपचार-विधियों का अन्वेषण-कार्य किया।

नारायणमूर्ति के बाद वर्तमान समय तक काष्ठ-परिरक्षण शाखा के कार्यभारी अफसर पुरुषोत्तम और सहायक कार्यभारी अफसर पांडे रहे। उनके समय में तीन मुख्य-विकास-योजनाओं का उद्‌घाटन हुआ। ये इस प्रकार हैं —

(१) काष्ठों को समुद्री-कीटों के आक्रमण से सुरक्षित रखने की उपचार-विधियों का अन्वेषण कार्य, जो भारत के पाँच प्रसिद्ध बन्दरगाह-केन्द्रों बम्बई, कोचीन, ट्रिवेन्ड्रम्, मद्रास और विशाखापट्टनम् में, प्राणिकी प्रयोगशाला ('जुओलोज़िकल् लेबोरेटरी') के अन्तर्गत किया जा रहा है।

(२) हरे बाँसों का परिरक्षण, जिसमें भारत के सब जाति के बाँसों के लिए

उपयुक्त उपचार विधियों का अध्ययन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, उपचारित बाँसों की कुटीर-उद्योगों, ग्राम-गृह निर्माण, मिट्टी या सीमेंट की दीवारें बनाने, लोह-छड़ियों के बदले सम्बलन आदि विभिन्न निर्माणकार्यों में प्रयोग हेतु उपयुक्तता के सम्बन्ध में अन्वेषण कार्य किया जा रहा है।

(३) समस्त प्रमुख शोधित और अशोधित व्यावसायिक काष्ठों की भूमि में गाड़े जाने पर आयु अथवा स्थायीपन की जाँच-पड़ताल करना। यह आयु मिट्टी तथा जलवायु पर निर्भर रहती है। अतः इसका परीक्षण ६ मुख्य केन्द्रों में, जो भारत की विभिन्न मृत्तिकाओं तथा जलवायु के द्योतक हैं, किया जा रहा है। इनमें एक परीक्षण-केन्द्र निचले हिमालय पर्वतीय प्रदेश चकराता में है; दूसरा रेगिस्तान के इलाके जोधपुर (राजस्थान) में; तीसरा दक्षिण के पूर्वी समुद्रतट पर नैलौर (आन्ध्र) में; चौथा पश्चिमी घाट के समुद्रीतट पर चालाकुडी (केरल) में; पाँचवा आसाम के उत्तर-पूर्वी भाग नहरकटिया के निकट और छठा देहरादून में।

काष्ठ-परिरक्षण शाखा में इस समय चार लोहे (इस्पात) के दबाव-रम्भ हैं जिनमें ३ फुट से लेकर ४० फुट तक के काष्ठ-भाग निपीड-क्रिया द्वारा परिरक्षी से व्यापित किये जा सकते हैं। एक उच्च-दबाव रम्भ भी है जिसमें उन कठोर-काष्ठों के परीक्षण किये जाते हैं जिनमें साधारण दबाव से परिरक्षी व्यापन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त २ लोहे के आयताकार (४० फुट और २० फुट लम्बे) खुले कुण्ड हैं जिनमें तापन और शीतन क्रिया से काष्ठ-उपचार किया जाता है। बूशरी-प्रक्रिया से हरे काष्ठ-खम्भों और बाँसों के उपचार के लिए भी छोटे और बड़े संयन्त्र हैं। एक आधुनिकतम रसायनशाला भी है जिसमें परिरक्षियों का रासायनिक विश्लेषण तथा काष्ठ-परिरक्षण की अन्य समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। चार बड़ी परिरक्षण-भूमियों ('टैस्टयार्ड') में प्राकृतिक और विधायित काष्ठों, तन्तु-पट्ट ('फाइबर बोर्ड') और अन्य कोषाधु पदार्थों की विनाशकालीय आयु का निश्चय किया जाता है।

वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अतिरिक्त, जहाँ इस विषय के कुछ अंशों पर प्रयोगशाला में कार्य किया जाता है, प्रतिरक्षा विभाग के प्राविधिक विकास संस्थान ('टैक्निकल डैवलप्मैन्ट इस्टेब्लिशमैन्ट') कानपुर तथा वन-उपज प्रयोगशाला ('फौरेस्ट प्रोडक्टस् लैबोरेटरी') बंगलौर में भी यह कार्य किया जाता है। बंगलौर की प्रयोगशाला अब देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला की ही अंग बन गयी है और यहाँ पर दक्षिणी भारत के काष्ठों और अन्य वन-उपज पदार्थों का अध्ययन किया जाता है।

११. काष्ठ-परिरक्षण सम्बन्धी अन्वेषण के परिणाम

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषणकार्य में निकट भूतकाल में हुई सफलताओं में से उसकी औद्योगिक क्षेत्रीय सर्वप्रथम प्रगति का श्रेय, संसार के अन्य देशों की तरह,भारत के रेलवे विभाग को ही दिया जा सकता है। सन् १९२६ में हिन्दुस्तान की उत्तरी रेलवे ने पंजाब के धिलवाँ नामक स्थान पर रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए निपीडक्रिया द्वारा क्रियोजोटीकरण का एक संयन्त्र स्थापित किया। इस वाणिज्य-उपचार-संयन्त्र से प्रति वर्ष १० लाख बी० जी० स्लीपरों का उपचार, प्रति दिन ३ पारी काम करके किया जाता था। स्लीपरों के लिए जिन काष्ठों का प्रयोग किया गया वे हिमालय के अल्प स्थायी शंकुधारी काष्ठ थे, जिनका उपयोग प्राकृतिक दशा में नहीं हो सकता था, क्योंकि बाह्य स्थानीय भूमि पर कवक और दीमकों के आक्रमण रोकने में असमर्थ होने के कारण उनकी आयु अत्यन्त कम थी। ये चीड़, फर, स्प्रूस, कैल, देवदार (रसकाष्ठ सहित) जाति के काष्ठ थे। बाद में क्रियोजोटीकृत चीड़ स्लीपरों के सम्बन्ध में सफलता प्राप्त होने पर, चीड़ के ही स्लीपर अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में शोधित किये जाने लगे। रेलवे बोर्ड ने चीड़ और कैल के स्लीपरों की विशिष्टियों (स्पेसीफिकेसन्स्) में रसकाष्ठ को सीमा से कुछ अधिक मात्रा में सम्मिलित करने पर प्रतिबंध लगाया था क्योंकि रसकाष्ठ, सारकाष्ठ की अपेक्षा शीघ्र ही नष्ट हो जाता था। उपचार करने से रसकाष्ठ, जो पहले सेवायुक्ति के लिए अयोग्य ठहराया जाकर रद्द कर दिया जाता था, अब एक संपत्ति के रूप में गिना जाने लगा और वन-अनुसन्धानशाला के काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण परिणामों की इस विषय तथा अन्य प्रचूषण-गुणों के अध्ययन के आधार पर सूचनाएँ प्राप्त होने के कारण, रेलवे बोर्ड ने चीड़ आदि स्लीपरों विषयक बाह्य या रसकाष्ठ की सीमा का प्रतिबन्ध हटा दिया। इसका यह परिणाम रहा कि वन-विभाग उसी लट्ठे से, जिसे कि वह सूचना देने से पूर्व स्लीपरों में परिवर्तित करता था अब ५० प्रतिशत अधिक स्लीपर तैयार कर सकता है। यह सब लाभ ही रहा और बहुत-सा काष्ठ बरबाद होने से बच गया। वर्तमान समय में जब काष्ठ-स्लीपरों की अत्यन्त कमी है और विदेशों से इनका आयात करने में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पड़ती है, रसकाष्ठ पर से इस प्रकार का प्रतिबन्ध हटाकर उन्हें उपचारित करके स्लीपरों की अधिकांश कमी की पूर्ति करने में अतुल सहयोग मिल सकता है। क्रियोजोट से उपचारित चीड़ के स्लीपर, सेवा-आयु के आधार पर, वार्षिक-मूल्य में धातु के स्लीपरों से स्पर्धा कर सकते हैं।

रेल-विभाग ने धिलवाँ में निपीड क्रियोजोटीकरण संयन्त्र स्थापित करने के पश्चात्

शीघ्र ही एक दूसरा ऐसा ही संयन्त्र उत्तर-पूर्वी आसाम में नहरकटिया स्थान पर स्थापित किया। इसमें प्रति दिन ३ पारी काम करने पर प्रति वर्ष ४ या ५ लाख एम० जी० स्लीपरों का उपचार किया जाता था। यहाँ उपचार के लिए क्रियोजोट और इन्धन तैल ('फ्यूएल औइल') का ५०:५० मिश्रण परिरक्षी के रूप में प्रयोग किया गया। धिलवाँ में ऐसा ही ४० : ६० का मिश्रण अर्थात् क्रियोजोट ४० भाग और इन्धन तैल ६० भाग प्रयोग किया जाता था। आसाम रेलवे और ट्रेडिंग कम्पनी ने मारघारीटा नामक स्थान पर एक सर्वप्रथम निजी वाणिज्य संयन्त्र काष्ठ-उपचार के लिए स्थापित किया। प्रति वर्ष ८ लाख स्लीपर शोधन करने की इस संयन्त्र की क्षमता थी। यहाँ शोधित स्लीपरों का निजी रेलवे-लाइनों में प्रयोग किया गया। इस संयन्त्र से स्लीपरों के अतिरिक्त बाड़ और बिजली के खम्भों, गृह-निर्माण काष्ठों इत्यादि, तथा अन्य प्रकार के काष्ठों का भी उपचार किया जाता था। इन संयंत्रों में अल्पस्थायी होलौंग और होलौक-जैसे काष्ठों का भी उपचार होता था। आसाम-जैसे नम-शीतोष्ण प्रदेश में ये काष्ठ बाहर खुले स्थानों में कवकों के कारण सड़कर शीघ्र ही गल जाते थे, और ४ या ५ वर्ष से अधिक इनकी आयु की आशा नहीं की जा सकती थी, पर उचित प्रकार से उपचारित स्लीपरों ने लगभग १५ से २० वर्ष तक की सेवा-आयु प्राप्त की।

सन् १९२८ में मैसूर वन-विभाग ने मैसूर रेलवे के स्लीपरों के उपचार के निमित्त एक मध्यम-वर्गीय निपीड-साधन-संयंत्र की स्थापना भद्रावती नामक स्थान में की। उपचार के लिए जिस परिरक्षी का प्रयोग किया गया वह काष्ठ विराल ('वुड टार') से निकाला 'वुड टार क्रियोजोट' कहलाता था। काष्ठ-आसवन ('वुड डिस्टिलेशन') उद्योगशाला, मैसूर का यह एक उपजात ('बाई प्रोडक्ट्') था और वहाँ की सरकार इससे लाभ उठाना चाहती थी। पर वुड टार क्रियोजोट में अम्ल का कुछ अंश होने के कारण, संयन्त्र के भागों में मोर्चा लगने लगा। अतः इसका प्रयोग रोक दिया गया, और उसके बदले अन्य स्थानों की तरह कोलटार क्रियोजोट ही, जिसे सामान्यतः केवल क्रियोजोट ही कहते हैं, काम में लाया जाने लगा। क्रियोजोट सदैव इन्धन तैल (जिसे अंग्रेजी में 'फ्यूयल' या 'क्रूड' या 'अर्थ ऑइल' भी कहते हैं) के साथ बराबर मात्रा में मिलाया जाता था। जब एस्क्यू नामक जल-विलयन परिरक्षी का विकास हुआ, तो भद्रावती में काष्ठ के खम्भ और स्लीपरों के उपचार के लिए इसी परिरक्षी का प्रयोग होने लगा, क्योंकि इससे शोधित करने पर काष्ठ की सतह सूखी और साफ रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर लकड़ी के ऊपर रंगलेप दिया जाना भी संभव था। क्रियोजोट से

उपचारित काष्ठ पर किसी प्रकार का लेप नहीं कर सकते थे। उपचार के लिए काष्ठ की जिन जातियों का प्रयोग किया गया, वे खम्भों के लिए तो **बलाघी (पोइ-सीलोन्यूरौन इन्ड्रीकस्**[1]) और स्लीपरों के लिए **धूमा (डिपट्रोकार्पस इन्डीकस्)**[2] थीं। बाद में (अब से कुछ ही वर्ष पूर्व) वहाँ स्लीपरों के उपचार के लिए क्रियोजोट और इन्धन तैल के मिश्रण का फिर से उपयोग होने लगा है। इस काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय से जो लाभ मैसूर वन-विभाग को प्राप्त हुआ वह उनकी एक रिपोर्ट में इस प्रकार दिया गया है—"इस काष्ठ-परिरक्षण संयन्त्र के व्यावसायिक लाभ से जो पूँजी एकत्रित हुई उससे वहाँ एक वन-अनुसन्धान प्रयोगशाला और भद्रावती में कुछ कार्यालय और निवासभवन बनाये गये।" तिरुवांकुर वन-विभाग ने भी मैसूर वन-विभाग की सफलता को देखकर तीन निपीड-उपचार संयंत्र स्थापित किये। वनों के छटान से प्राप्त टीक के पेड़ों का बिजली के खंभों के लिए, और बाँसों के निर्माण-कार्य के लिए, इन संयंत्रों द्वारा उपचार किया जाने लगा।

सन् १९५५ के लगभग, रेलवे विभाग ने शंकुधारी काष्ठ-स्लीपरों के उपचार के लिए क्लटरवकगंज (बरेली के निकट) स्थान पर दो बड़े क्रियोजोटीकरण निपीड-रम्भ स्थापित किये। वहाँ भी ३ पारी प्रति दिन काम करने पर १५ लाख बी० जी० स्लीपरों का शोधन किया जा सकता है। इसी प्रकार ओलवाकोट (दक्षिण रेलवे) में भी एक बड़ा निपीड-रम्भ स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण के लिए लगाया गया है।

बिहार सरकार के विद्युत् और वन-विभाग ने भी बिजली और बाड़ के खम्भों के उपचार के लिए पिछले दो या तीन वर्षों में कुछ निपीड-संयंत्र लगाये हैं।

प्रतिरक्षा विभाग ने भी काष्ठ-परिरक्षण को यथोचित महत्त्व दिया है। गोला-बारूद के संचय और प्रचालन के लिए काष्ठ के बक्सों, नाव-निर्माण के लिए स्तरकाष्ठों ('प्लाईवुड'); तम्बुओं के लिए बाँस-खम्भों; यन्त्रों के लिए काष्ठ-दस्तों; और अन्य प्रयोजनों के लिए उपयुक्त काष्ठ-सामग्री इत्यादि के उपचार का प्रबन्ध किया गया है। इसके लिए डबन-विधि से उपचार करने में 'कौपर नैफ्थीनेट' का 'ह्वाइट स्पिरिट' में घोल या उसी का एमोनिया में पायस ('इमल्शन')परिरक्षी रूप में प्रयुक्त किया गया। अन्य विख्यात परिरक्षी भी निपीड-उपचार के लिए काम में लाये गये।

अन्य मुख्य स्थान जहाँ लघु-परिमाण के निपीड-रम्भ[3] और खुले कुण्ड ('ओपन टैंक') काष्ठ-परिरक्षण के लिए लगाये गये, निम्न लिखित हैं—

1 Poisylonuron indicus. 2 Diptrocarpus Indicus. 3 Pressure cylinders.

(१) कश्मीर सरकार के वन-विभाग द्वारा श्रीनगर में निर्माण-काष्ठों का 'बौलीडोन साल्ट' से उपचार कराने के लिए स्थापित निपीड-रम्भ।

(२) हिमांचल प्रदेश सरकार के विद्युत् विभाग द्वारा, पौंटा नामक स्थान पर, बिजली के काष्ठ-खंभों के उपचार के लिए स्थापित एक निपीड-रम्भ। वहाँ की सरकार काष्ठ-खंभों के उपचार के हेतु और भी दो निपीड-रम्भ स्थापित करने के बारे में विचार कर रही है।

(३) अन्डमान द्वीप समूह के वन-विभाग द्वारा स्थापित एक खुला-कुंड काष्ठ-खंभों के क्रियोजोटीकरण के लिए और एक निपीड-रम्भ एस्क्यू से उपचार के लिए।

(४) कोलार सोने की खानों (मैसूर) द्वारा काष्ठ आधार-स्तम्भों और निर्माण-काष्ठों के जिंक सल्फेट[1], सोडियम् फ्लोराइड,[2] डाइनाट्रोफीनौल[3] और अग्निरोधक संयोगों के उपचार प्रयोजन हेतु स्थापित एक निपीड-रम्भ।

(५) बम्बई वन-विभाग द्वारा बलहारशाह और डंडेली नामक स्थानों पर स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण के लिए स्थापित खुले कुण्ड।

(६) पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा कूच बिहार, शामनगर, दुर्गापुर, सीलिगुरी नामक स्थानों पर खम्भों, निर्माण-काष्ठों और फटे बाँसों के एस्क्यू उपचार के लिए स्थापित एक-एक निपीड-रम्भ।

(७) एस्क्यू वुड प्रोडक्टस्, कलकत्ता, एस्क्यू द्वारा उपचार करने के लिए कई स्थानों पर छोटे निपीड-रम्भ स्थापित कर रहा है।

पूर्वोक्त तथा अन्य उपचार-संयंत्रों का विवरण सारणी ७ में दिया गया है।

हर तरह के काष्ठ के उपचारार्थ ध्यान देने योग्य एक रीति आसारण प्रक्रिया[4] है। इसमें सर्वप्रथम नये कटान के खंभों को छाल रहित कर देना पड़ता है, और तत्काल ही एक जल-विलयन परिरक्षी का मोटा लेप उनके तल और टक्कर पर लगाया जाता है। इन खंभों को तब संघटित चट्टों में एकत्रित किया जाता है जिससे कि वे शीघ्र सूखने न पायें। पानी से बचाव के लिए उनके ऊपर तिरपाल या जलरोधी गाढ़-चादर डाली जाती है। ऐसा करने से वे हरे काष्ठ शीघ्र नहीं सूखने पाते। तीन या चार महीने के भीतर परिरक्षी काष्ठ के अन्दर चहुँ ओर संतोषप्रद गहराई तक प्रवेश कर जाता है जिससे उस काष्ठ की सेवा-आयु में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

1 Zinc Sulphate.
2 Sodium Fluoride.
3 Dinitrophenol.
4 Osmoc Process.

इस विधि से कोदाइकैनाल (दक्षिण) की नगरपालिका की ओर से दो हजार **पाइनस् इन्सिग्निस** काष्ठ के खंभों का उपचार किया गया। उन खंभों की निकटतम आयु १२ वर्ष की रही।

इस देश में स्लीपर, बिजली एवंआधार-खम्भ, निर्माण-काष्ठ, पेटी अथवा चाय के बक्स और शस्त्र-काष्ठ लगभग ४० से ५० लाख घनफुट तक शोधित किये जाते हैं। इनके उपचार के लिए लगभग साढ़े सत्रह लाख (१७,५०,०००) गैलन तैल-रूप परिरक्षी और पन्द्रह लाख (१५,००,०००) पौंड शुष्क विषैले लवणों का प्रयोग किया जाता है।
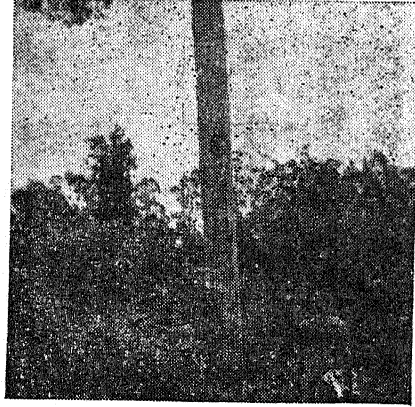
चित्र १२—**कोदाइकैनाल में आसारण प्रक्रिया द्वारा उपचारित काष्ठ खंभ।**

काष्ठ-परिरक्षण में सफलता प्राप्त होने के साथ ही साथ काष्ठ-अग्निरोधन कार्य में भी बड़ी प्रगति हुई है। काष्ठ-अग्निरोधन भी काष्ठ-परिरक्षण से सम्बन्ध रखता है। इसमें केवल इतना ही भेद है कि काष्ठ-परिरक्षण में ऐसे रासायनिक पदार्थों को काष्ठों के अन्दर व्याप्त किया जाता है, जो कवक और कीटों के लिए विष हों और काष्ठ-अग्निरोधन में अग्निरोधी रसायनों का प्रवेश कराया जाता है। इस कार्य के लिए सबसे पहले काष्ठों के प्राकृतिक अग्निरोधी गुणों को ज्ञात करना जरूरी था। अतः ५६ काष्ठ-जातियों के स्वाभाविक अग्निरोधी गुणों का अध्ययन किया गया, और इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन, नम्बर ११८ (१९४३) में इनका विवरण दिया गया, इसके पश्चात् कुछ ऐसे रसायनों का विकास किया गया जिनका काष्ठ के बाह्य स्तर पर या तो लेप लगाकर या उनके घोल को काष्ठ के भीतर प्रवेश कराकर उसमें अग्निरोधी गुण उत्पन्न किया जा सकता था। काष्ठ-परिरक्षण की तरह इस क्रिया का उपचार वाणिज्यिक पैमाने पर यथोचित संयन्त्रों द्वारा किया जा सकता है। रेलवे, खानों और सिनेमा उद्योग ने इस विकास-कार्य को महत्त्व दिया है (पृष्ठ ५४ देखिए)। वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण

सारणी–७

भारत में विद्यमान काष्ठ-उपचार संयन्त्रों की सूची

क्रमांक	संयन्त्र-स्थान और स्वामी	संयन्त्र-प्रकार और परिमाण	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार-प्रयोजन
१	२	३	४	५
	मैसूर			
१	(क) कोलर गोल्ड फील्डस्	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास २८ फुट लम्बा)	जिंक सल्फेट .२ ·२५% सोडियम् फ्लोराइड ० ·६५% डाइनाइट्रोफीनौल ० ·१०% जल ९७ ·००%	काष्ठ-खम्भ और निर्माण-काष्ठ
	(ख) ”	”	‘फैपौस’ से अग्निरोधन, एस्क्यू और सीमेंट शींकन	
२	भद्रावती—मैसूर वनविभाग	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास ४५ फुट लम्बा)	(१) एस्क्यू (२) क्रियोजोट और इंधन तैल (५०:५०)	काष्ठ-स्लीपर, खम्भ और निर्माण-काष्ठ
	पंजाब			
३	(क) धिलवाँ-उत्तरीय रेलवे	खुला कुण्ड	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	काष्ठ-स्लीपर
	(ख) धिलवाँ-उत्तरीय रेलवे	निपीड-रम्भ (६ फुट, ६ इंच व्यास ७५ फुट लम्बा)	क्रियोजोट और इन्धन तैल (४०:६०)	काष्ठ-स्लीपर

१	२	३	४	५
	उत्तर प्रदेश			
४	क्लटरबकगंज (बरेली) उत्तर पूर्वीय रेलवे	दो निपीड-रम्भ (६ फुट व्यास, ५० फुट लम्बा	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० : ५०)	काष्ठ-स्लीपर
५	कानपुर—टैकनिकल डैवलपमेन्ट इस्टेब्लिशमैंट लैबोरेटरी	खुला कुंड	(१) सैल्क्यर—जल में (२) कौपरनैफथीनेट-ह्वाइट स्पिरिट में	काष्ठ—स्फोटास्त्र बक्स
६	देहरादून —केन्द्रीय पी० डब्ल० डी०	खुला कुंड	क्रियोजोट-इन्धन तैल मिश्र	काष्ठ—छत-पट्ट, बल्लियाँ और फलक
	बिहार			
७	(क) नटरहाट (ख) बिहटा (ग) हजारीबाग—विद्युत-विभाग	निपीड-रम्भ	एस्क्य	काष्ठ—खम्भ
	मद्रास			
८	धवलेश्वरम्—पी०डब्लू०डी०	निपीड-रम्भ	एस्क्य	निर्माण-काष्ठ
	आसाम			
९	नहरकटिया—उत्तर पूर्वीय सीमान्त रेलवे	निपीड-रम्भ (६ फुट व्यास, ४० फुट लम्बा)	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० : ५०)	काष्ठ-स्लीपर
१०	मारघरीटा—आसाम रेलवे एन्ड ट्रेडिंग कम्पनी	निपीड-रम्भ	क्रियोजोट और स्लीपर-तैल	निर्माण-काष्ठ

क्रमांक	संयन्त्र-स्थान और स्वामी	संयन्त्र-प्रकार और परिमाण	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार-प्रयोजन
१	२	३	४	५
११	दिगबौय—आसाम औइल कम्पनी	खुला कुण्ड	काष्ठ-तैल और स्लीपर-तैल	काष्ठ-स्लीपर
	पश्चिम बंगाल			
१२	शामनगर—विद्युत विभाग	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास, ३६ फुट लम्बा	एस्क्य	काष्ठ-खम्भ और निर्माण-काष्ठ
१३	दुर्गापुर—उद्योग विभाग	"	"	बाड़ खम्भ और कुटीर औद्योगिक निर्माण-काष्ठ
१४	सिलिगुरी—उद्योग विभाग	"	"	"
१५	एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, कलकत्ता।	निपीड-रम्भ	"	काष्ठ-खम्भ और निर्माण काष्ठ
१६	आर० सेन एन्ड कम्पनी, कलकत्ता	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास, ४० फुट लम्बा)	"	"
१७	कूचबिहार विद्युत विभाग	"	"	"
	केरल			
१८	कोचीन बन्दरगाह	निपीड-रम्भ	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	काष्ठ-स्लीपर और निर्माण काष्ठ
१९	(क) पैलौम	(क) ३फुट व्यास × ४२ फुट	एस्क्यू	काष्ठ-खम्भ
	(ख) भन्डाकमपौली	(ख) २ फुट व्यास × ४८ फुट		

१	२	३	४	५
	(ग) गैनकोटा	(ग) १ ·५ फुट व्यास × ४० फुट		
	(घ) कुन्ड्रा	(घ) ५ फुट व्यास × ६० फुट		
	विद्युत विभाग बम्बई	निपीड-रम्भ		
२०	बल्हारशाह—वन विभाग	खुला कुण्ड	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५० : ५०)	काष्ठ-स्लीपर
२१	डन्डेली—वन विभाग	खुला-कुण्ड	"	"
२२	**अन्डमान द्वीप समूह—** वन विभागा	"	"	काष्ठ-खम्भ, छत-पट्ट और आधार-स्तम्भ
२३	**जम्मू और कश्मीर—** वन विभाग	निपीड-रम्भ (५ फुट व्यास × ४५ फुट)	बौलीडौन लवण	निर्माण-काष्ठ
२४	**हिमांचल प्रदेश—** पौटा विद्युत विभाग	निपीड-रम्भ (२ फुट व्यास × ४० फुट)	एस्क्यू	काष्ठ-खम्भ

शाखा में परिरक्षी और अग्निरोधक संयुक्त रसायनों का आविष्कार हुआ है, जिससे इस संयुक्त पदार्थ के जल-विलयन को लकड़ी, बाँस और छादन-घास में व्याप्त कर उन्हें सड़ने, गलने और नाशकारक कीटों से बचाने के अतिरिक्त, अग्नि-सह भी बनाया जा सकता है। रेलवे-मंत्रालय के केन्द्रीय मानक कार्यालय ('सेन्ट्रल स्टेन्डर्डस् औफिस') ने परीक्षणों के लिए ४०० चीड़ और १६६ सैन के स्लीपरों के इस विधि द्वारा उपचारित करने का व्यय उठाकर उन्हें परीक्षणार्थ रेलवे लाइनों पर, जैसे कि इंजनों के खड़े रहने आदि के ऐसे स्थानों पर, जहाँ आग का भय है, लगाया है। इस प्रकार शोधित किये गये काष्ठों की सेवा-आयु का अनुमान कुछ ही वर्षों में लग जायगा।

चित्र १३—**अग्निरोधी-स-परिरक्षित काष्ठ-स्लीपर।**

उपरि-लिखित परिणामों के अतिरिक्त और भी सिद्धियाँ, जो अनुसन्धान कार्य से हुई हैं, इस प्रकार हैं—

(१) चीड़-वृक्ष से प्राप्त लीसा ('रेजिन') में ताँबा और जस्ता की मिलावट से, इन विषैली धातुओं के उन संयोगों का, जो कौपर और जिंक रेजीनेट के नाम से कहे जाते हैं, विकास हुआ। ये पदार्थ पैट्रोलियम (मृत्तैल)–जैसे किसी विलायक ('सौलवैन्ट') में घोलकर परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। इन परिरक्षियों का वर्णन भाग ३, अध्याय १ में किया गया है।

(२) निम्न-जाति के काष्ठों, बाँसों और छप्पर छाने की घासों एवं ताड़ की पत्तियों की उपचार-विधियों का उद्विकास किया गया, जिससे वे अनेक संरचनाओं के लिए मितव्ययी निर्माण-पदार्थ सिद्ध हो सकें। यहाँ तक कि इन विधायित पदार्थों को कम लागत के गृह-निर्माण-कार्यों के लिए भी अति उपयोगी साधन बनाया जा सकता है। इन्हीं पदार्थों से इमारतें बनाकर उनके प्रदर्शन किये गये और अभी तक उनका निरीक्षण चल रहा है।

२ (ङ) „ तत्रैव „ पृष्ठ ७ ।

४ (क) जी० एम० हन्ट व जी० ए० गैरेट : काष्ठ-परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन) (यू० एस० ए०), १९५३; पृष्ठ २६१ ।

४ (ख) तत्रैव पृष्ठ २६२ ।

५ (क) एच० ब्रोजे वॉन ग्रोनौ, रिचन और वान डैन वर्ग : पिछले ५० वर्षों में काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन ड्यूरिंग दि लास्ट फिफ्टी ईअर्स') (हालेंड), १९५२; पृष्ठ २ ।

५ (ख) „ तत्रैव „ पृष्ठ ३ ।

५ (ग) „ तत्रैव „ पृष्ठ ४ ।

५ (घ) „ तत्रैव „ पृष्ठ ५ ।

७ (क) ए० पुरुषोत्तम के व्याख्यान टिप्पण ('लेक्चर नोटस्'); रुड़की विश्व-विद्यालय के मिकैनिकल इन्जीनियरिंग अफसरों के प्रत्यास्मरण पाठक्रम के लिए. १९५६; पृष्ठ २ ।

भाग २

अध्याय १

काष्ठ की शरीर-रचना

१. सामान्य वर्णन

वाणिज्योपयोगी काष्ठों को प्रायः स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया गया है। उनमें से एक तो शंकुधारी[1] काष्ठ हैं जो प्रायः कोमल काष्ठ[2] कहलाते हैं, और दूसरे चौड़ी पत्तीवाले अथवा उरुपाती[3] हैं, जिनको कठोर काष्ठ भी कहते हैं। काष्ठ-परिरक्षण कार्य में रासायनिक परिरक्षियों के विलयन को काष्ठ की कोशाओं में अन्तः-व्याप्त करने के लिए दोनों वर्गों के काष्ठों के शारीर का संक्षिप्त ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इस पुस्तक के कुछ विशेष प्रकरणों को समझने के लिए भी काष्ठ की निम्नलिखित शारीर रचनाओं के बारे में जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

काष्ठों की अन्तः-रचना विभिन्न प्रकार की होती है। प्रत्येक काष्ठ-जाति में भी रचना-वैभिन्न्य पाया गया है। स्थूल रचना के विचार से यद्यपि बाह्य-काष्ठ अथवा रसकाष्ठ ('सैपवुड') और अन्तःकाष्ठ अथवा सारकाष्ठ ('हार्टवुड') में कोई अन्तर नहीं है, फिर भी अन्तःकाष्ठ में कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो बाह्य-काष्ठ में नहीं पाये जाते। उपरि-लिखित कोमल काष्ठ और कठोर काष्ठ केवल पारिभाषिक शब्द ही माने गये हैं। यद्यपि कोमल काष्ठों में भी कुछ ऐसे काष्ठ हैं जो कठोर काष्ठों की कुछ जातियों से भी अधिक कठोर हैं और कठोर काष्ठों की कुछ जातियाँ कोमल काष्ठों से भी अधिक कोमल हैं। अतः काष्ठों के शारीर-विज्ञान की विशेषताएँ संक्षेप में नीचे दी जाती हैं।

२. शंकुधारी काष्ठ ('कौनीफर्स') अथवा कोमल काष्ठ ('सौफ्टवुड्स्')

शंकुधारी या कोमल काष्ठ वर्ग में जो जातियाँ हैं, वे चीड़, कैल, देवदार, साइप्रस्, स्प्रूस और फर नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके वृक्षों का आकार शंकु-जैसा होता है, अतः ये शंकुधारी काष्ठ कहलाते हैं। इनकी पत्तियाँ सुई के आकार की पतली और नोकीली

1 Zimnopermus. 2 Softwood. 3 Angeospermus. 4 Conifurs.

होती हैं। ये वृक्ष अधः हिमालय के पहाड़ों तथा समुद्रतल से लगभग ३००० फुट ऊँचे अन्य पहाड़ों में अधिकांशतः पाये जाते हैं।

कोमल अथवा शंकुधारी काष्ठ, कठोर अथवा उरुपाती काष्ठों की अपेक्षा समरूप ('होमोजीनिअ्स'[1]) होते हैं। इनको निरन्ध्र ('नौनूपोरस्') काष्ठ भी कहते हैं। इनमें मुख्यतः दो प्रकार के कोशातत्त्व होते हैं। एक तो खड़े वाहिकोशा ('ट्रेकीड') होती है जिनके द्वारा पेड़ों में रस-('सैप') प्रवाह होता है और साथ-साथ पेड़ों को बल भी मिलता है। दूसरे किरण ('रेज़') होती हैं जो क्षैतिज दिशा में रहती हैं और खाद्य पदार्थों के संचय व प्रवाह का कार्य करती हैं। कुछ शंकुधारी काष्ठों में लीसे की नलिकाएँ भी होती हैं जो खड़ी और आड़ी दिशाओं में स्थित रहती हैं। लीसे की नलिकाओं के चारों ओर और कहीं अन्य स्थानों में जीवितक ("पैरेन्काइमा") कोशाएँ भी होती हैं, परन्तु ये घनी नहीं होतीं और दूर-दूर पर रहती हैं। इन सबका क्रमानुसार वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) वाहिकोशा ('ट्रेकीड्स')[2]

यह कोशा खोखली, पतली और लम्बी—नली के आकार की होती है, जो दोनों सिरों पर नोकीली होकर बन्द रहती है। इसके किनारे की दीवारों अथवा भित्तियों पर छोटे गर्त या गड्ढे होते हैं, जिनको किनारीदार गर्त ('बोर्डर्ड् पिट्स') कहते हैं। ये गर्त वाहिकोशा के सिरों पर अधिक संख्या में होते हैं। रस एक ट्रेकीड से दूसरे ट्रेकीड में इन्हीं किनारीदार गर्तों से होकर जाता है। इस वाहिकोशा की लम्बाई, उसकी मोटाई से लगभग १०० गुना होती है। अमेरिका के काष्ठों में इस कोशा के टक्कर के व्यास का नाप (४ ग) ०.००५ से ०.०५ मिलीमीटर तक होता है और उसकी औसतन् लम्बाई ३.५ मिलीमीटर बतलायी गयी है। अधिकतर वाहिकोशाएँ निश्चित अरीय पंक्तियों में क्रमबद्ध रहती हैं और उनका टक्कर वर्गीय या आयताकार होता है। शंकुधारी काष्ठों का अधिकांश भाग इन्हीं से बना रहता है। कुछ काष्ठ-प्रजातियों में इनकी भित्तियाँ पतली होती हैं, जिसके कारण इनके टक्कर का छिद्र बड़ा हो जाता है, अन्य काष्ठों में भित्ति मोटी होने के कारण छिद्र छोटा रहता है। इन्हीं मोटी भित्तिवाले काष्ठों में वसन्त-काष्ठ ('स्प्रिंग-वुड') और ग्रीष्म-काष्ठ ('समर-वुड') का अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। वर्ष के आरम्भ में वसन्त-काष्ठ बनता है जो इतना

1 Homogenios.　　2 दारु वाहिनिकी।

घना नहीं होता, जितना कि उसके पश्चात् का ग्रीष्म ऋतु का ग्रीष्म-काष्ठ। वसन्त और ग्रीष्म-काष्ठ के स्तरों के मिलने से एक वर्ष की वृद्धि होती है और इसी से एक चक्र बनता है जिसको वार्षिक-वृद्धि-चक्र ('ऐनुअल ग्रोथ रिंग') कहते हैं। शंकुधारी काष्ठों के अङ्गों का और किनारीदार गर्तों का परिरक्षी विलयन के प्रवेशन पर प्रभाव, भाग ३ अध्याय ४ में विस्तारपूर्वक दिया गया है।

(ख) किरण ('रेज़')

किरणें, जिन्हें अंग्रेजी में 'रेज़' कहते हैं, छोटी-छोटी कोशाओं के समूह से बनकर पट्टिका के समान काष्ठ में अरीय रूप में[1] फैली रहती हैं। इनका कार्य हरे वृक्ष में खाद्य पदार्थों का संचय और उनका अरीय प्रकार से विभाजन करना है। साथ ही वे गौण रूप से जल का आन्तरिक प्रवाह भी करती हैं। किरणें काष्ठ-शरीर में एक विशेष आकृति बनाती हैं, उनसे काष्ठ का सामान्य रूप और बनावट दिखाई पड़ती है। शंकुधारी और उरुपाती काष्ठों में किरणों का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। शंकुधारी काष्ठों में इनका समूह सूक्ष्म होता है, जिसको आवर्धक काँच ('मैग्निफाइंग लैन्स्') के बिना देखना अत्यन्त कठिन है। स्पर्शीय तल[2] अर्थात् चपटे कटे तल पर, किरण एक कोशा चौड़ी होती है, केवल उन तर्कुरूप ('फ़्यूजीफ़ौर्म'[3]) किरणों में, जिनमें लीसे की नलिकाएँ होती हैं, मध्य-अंश बड़े होते हैं। इनकी ऊँचाई १ से लेकर २० और कुछ दशाओं में ५० कोशा तक भी होती है। ये बहुत-कुछ जीवितक कोशा से भी मिलकर बनी रहती हैं। चीड़ आदि काष्ठों की किरणों में जल-प्रवाही कोशाएँ भी होती हैं, इन कोशाओं में कुछ किनारीदार गर्त भी होते हैं। परिरक्षी विलयन प्रवाह से इनके सम्बन्ध, का विवेचन भाग ३, अध्याय ४ में किया गया है।

(ग) लीसा-प्रणाली ('रेज़िन डक्टस्')

लीसा-प्रणाली संकीर्ण और अन्तराकोशीय[4] नलिकाओं से बनी होती है। इनकी कोई निश्चित लम्बाई नहीं होती। ये कुछ शंकुधारी काष्ठों में उदग्र एवं क्षैतिज अथवा खड़ी और आड़ी दिशाओं में अन्तःसंचार करनेवाली प्रणालियाँ होती हैं। चीड़ एवं कैल-जैसे शंकुधारी काष्ठों में बहुतायत से और स्प्रूस में विरल तथा संकीर्ण पायी जाती है। लीसा-प्रणालियों में कोशा न होने के कारण, स्वतः सीमित दीवारें नहीं होतीं, किन्तु

1 Radially. 2 Tangential Surface.
3 Fusiform. 4 Intercellular.

वे जीवितक ('पैरेन्काइमा') कोशा से चारों ओर एक या उससे अधिक स्तरों द्वारा घिरी रहती हैं, जो खड़ी दिशा में उदग्र प्रणाली ('वर्टिकल डक्टस्') कही जाती है। क्षैतिज दिशा में बड़ी तर्कुरूप किरणों[1] की सीमा में स्थित होने के कारण इन्हें अरीय-प्रणाली ('रेडियल डक्टस्') कहते हैं। शंकुधारी काष्ठों में 'फर' प्रजाति की लकड़ी में लीसा-प्रणालियाँ नहीं पायी जातीं। लीसा-प्रणाली की उपस्थिति से शंकुधारी काष्ठों में परिरक्षी विलयन के अन्तःप्रेषण में किस प्रकार सहायता या रुकावट पहुँचती है, यह अगले प्रकरणों में दिया गया है। (भाग ३, अध्याय ४ देखिए)

(घ) काष्ठ-जीवितक ('वुड पैरैन्काइमा')

जीवितक-कोशाएँ ('पैरैन्काइमा सैल्स्') क्षैतिज दिशा में काष्ठ-किरण से और उदग्र दिशा में दीर्घित कोशाओं से मिलकर पट्टी की तरह हो जाती हैं। जीवित वृक्ष में इनका कार्य खाद्य पदार्थों के वितरण करने का रहता है। कुछ काष्ठों में इनकी बहुतायत और किसी में बहुत कमी पायी जाती है। कुछ काष्ठों में इनका अभाव भी रहता है। शंकुधारी काष्ठों में ये सामूहिक रूप में नहीं होतीं, और लीसा-प्रणाली तथा घावों की परिसीमा के अतिरिक्त प्रसृत ('डिफ्यूज्ड') रूप में ही उपस्थित रहती हैं। कठोर काष्ठों में, जिनमें ये भली प्रकार विकसित रहती हैं, वाहिनी ('वेसल्स्') के चारों ओर एक विशेष प्रकार की आकृति बना देती हैं, जो टक्कर में सुस्पष्टतः अलग दिखाई देती रहती हैं। काष्ठ-जीवितक की तुलना किरण-जीवितक से कई बातों में की जा सकती है। बाहरी दृष्टि से ये परिरक्षी-विलयन के अन्तःप्रवेशन में सहायता नहीं देते, पर उदग्र लीसा-प्रणाली की परिसीमित कोशाओं का प्रभाव अवश्य ही परिरक्षी व्यापन पर पड़ता होगा। इसका वृत्तान्त भी आगे दिया जायगा।

३. उरुपाती या चौड़ी पत्तीवाले अथवा कठोर काष्ठ

उरुपाती (चौड़ी पत्तीवाले) या कठोर काष्ठ के वर्ग में शंकुधारी काष्ठों के अतिरिक्त प्रायः अन्य सब जातियों के काष्ठ आ जाते हैं। इनकी पत्तियाँ शंकुधारी काष्ठों के विपरीत चौड़ी होती हैं। ये काष्ठ भारतवर्ष-जैसे उष्णदेश के वनों में अधिकतर पाये जाते हैं। ओक (बाँझ), वालनट (अखरोट), चैस्टनट्, तून इत्यादि कुछ जातियाँ ऐसी हैं, जो अधः हिमालय पहाड़ों और समुद्रतल से ३००० फुट ऊँचे पहाड़ों में पायी जाती हैं, परन्तु साल, शीशम, सागवान, सैन, बकली, धामन, अंजन,

1 Fusiform Rays.

बीजासाल, इरूल, होपिया, सिरिस गजन, हल्दू, कान्जू, सीमल, पपीता इत्यादि कठोर काष्ठ जातियाँ तथा अन्य अनेक प्रकार की काष्ठ उपजातियाँ भारत की छोटी पहाड़ियों, मैदानों, पठारों और पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों के वनों में पायी जाती हैं। इनमें कुछ तो सदा हरित ('एवरग्रीन') और शेष पर्णपाती ('डेसीडच्यूअस') वृक्षों से प्राप्त होती हैं।

उरुपाती अथवा कठोर काष्ठों की बनावट शंकुधारी काष्ठों की अपेक्षा विषम होती है। इन्हें रन्ध्री-काष्ठ भी कहते हैं। उरुपाती काष्ठों के कोशा-आकार भी अधिक जटिल होते हैं और जीवित वृक्ष में इनके तत्त्वों का श्रम-विभाजन भी सुस्पष्ट रहता है। इनके वृक्षों के तनों में रस का ऊपर की ओर चढ़ाव सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा होता है, जिन्हें वाहिनी ('वेसल्स') कहते हैं। तने को सहारा तन्तुओं अथवा रेशों ('फाइबर्स') से मिलता है। खाद्य पदार्थों के संचय और वाहन का कार्य किरण और काष्ठ जीवितक करते हैं। ये जीवितक कुछ काष्ठ-प्रजातियों में सुविकसित होते हैं। अधोलिखित प्रकरणों में इनका संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

(क) वाहिनी (वेसल्स्)[1]

वाहिनी, जिन्हें अंग्रेजी में 'वेसल्स्' कहते हैं, कठोर अथवा चौड़ी पत्तीवाले काष्ठों की शरीर-रचना का विशिष्ट अंग हैं (देखिए चित्र संख्या १४)। ये सूक्ष्म नलिकाओं के समान होती हैं और इनकी लम्बाई अनिश्चित रहती है। इनका कार्य जीवित वृक्ष में रस संवाहन का होता है। ये उदग्र दिशा में कोशाओं के माला की तरह मिलने से, एकक-वाहिनियों ('वेसल-मैम्बर्स्') के संयोग से बनती हैं। ये एकक-वाहिनियाँ काष्ठ के दूसरे तत्त्वों से इस कारण भिन्न होती हैं कि ये संपूर्ण प्रकार से कोशा-भित्ति से घिरी नहीं रहतीं। इनके दोनों सिरों पर अपेक्षाकृत बड़े छिद्र होते हैं, जिनसे एक ही वाहिनी की उदग्र दिशा में साथ-साथ लगे हुए वाहिनी के अंग एक-दूसरे के ऊपर खुले रहते हैं। अतएव इन वाहिनियों के कारण चौड़ी पत्तीवाले अथवा कठोर काष्ठों में वायु अथवा द्रव पदार्थों के संचार में सुगमता होती है, क्योंकि इन पदार्थों को, जैसा कि शंकुधारी काष्ठों के विषय में हुआ करता है, बारंबार गर्त-कला ('पिट मेम्ब्रेन्स्')[2] में से होकर प्रवेश नहीं करना पड़ता। पार्श्व ('लैटरल्'[3]) भाग की ओर एक वाहिनी से दूसरी बगलवाली वाहिनी या कोशा में, समीपवर्ती भित्तियों के गर्तों के जोड़े ('पिट पेयर्स्') में से होकर द्रवों का प्रवेश होता है। इन गर्तों की रचना और आकृति भी भिन्न होती है।

1 Vessels. 2 Pitmembranes. 3 Lateral.

यदि ये पूर्णतया किनारीदार भी हों, जैसी कि शंकुधारी काष्ठों में हुआ करती हैं, तब भी ये उनसे कई बातों में भिन्न ही रहती हैं।
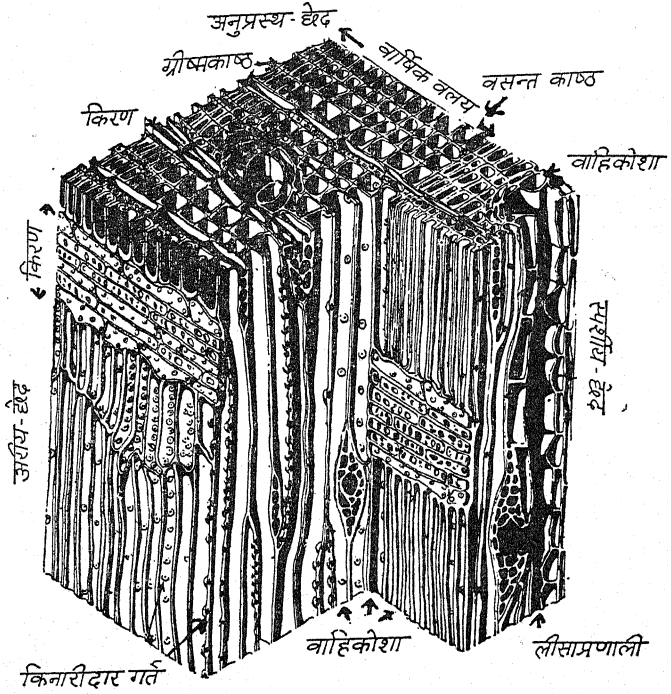
चित्र १४—शंकुधारी अथवा कोमल काष्ठ का भाणु चित्र।

उरुपाती अथवा कठोर काष्ठों की इन्हीं वाहिनियों के रचना-क्रम के अनुसार इन्हें दो भागों में विभाजित किया जाता है। इनमें से एक को तो वलय-रन्ध्र ('रिंग पोरस'[1]) और दूसरे को प्रसृत-रन्ध्र ('डिफ्यूज-पोरस'[2]) काष्ठ कहते हैं। वलय-रन्ध्र काष्ठों में, वसन्त-काष्ठ के रन्ध्र या छिद्र, ग्रीष्म-काष्ठ के रन्ध्रों से, अपेक्षाकृत बड़े और अधिक संख्यक होते हैं। तून, शीशम, टीक, धामन, शहतूत इत्यादि काष्ठ इस वर्ग में आते हैं। प्रसृत-रन्ध्र काष्ठों के रन्ध्र लगभग समान और नियमित रूप से सर्वत्र

1 Ring porous. 2 Diffuse-porous.

वृद्धि-वलय ('ग्रोथ रिंग') में फैले रहते हैं। जो काष्ठ इस वर्ग में हैं, वे हल्दू, कान्जू, आम, सैन, बबूल, सीमल, जामन इत्यादि हैं। इन दोनों प्रकार के काष्ठों से यही अनुमान निकल सकता है कि यदि वाहिनी में कुछ कठोर अथवा रोधी पदार्थ डटकर भरे न हों तो प्रसृत-रन्ध्र काष्ठ में वलय-रन्ध्र काष्ठ की अपेक्षा परिरक्षी समान रूप से व्याप्त होगा और वलय-रन्ध्र काष्ठों में भी वसन्त-काष्ठ और ग्रीष्म-काष्ठ में उसकी
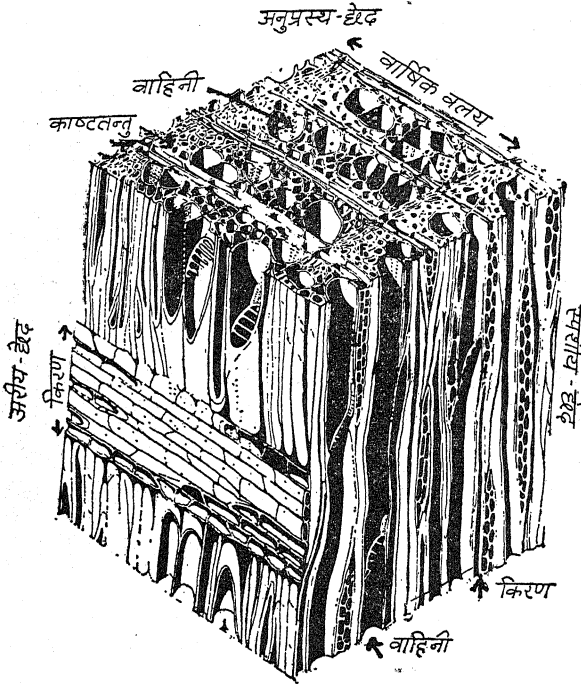
चित्र १५——उरुपाती अथवा कठोर काष्ठ का भाणु चित्र ।

व्याप्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से होगी। वसन्त-काष्ठ में छिद्र बड़े और अधिक होने के कारण परिरक्षी का अवशोषण, तुलनात्मक रूप में छोटे छिद्रवाले ग्रीष्म-काष्ठ से अधिक ही होगा। अगले भाग के अध्याय ४ में फिर से इस विषय का विवेचन किया जायगा।

(ख) तन्तु अथवा रेशा ('फ़ाइबर्स')

उरुपाती अथवा कठोर काष्ठों में तन्तु ('फाइबर्स') काष्ठ-ऊति ('वुडी टिश्यू') के अधिकांश भाग होते हैं, यद्यपि ये तन्तु काष्ठ के अन्य तत्त्वों के अनुपात में अधिक भिन्न रहते हैं। शंकुधारी काष्ठों की वाहिकोशाओं ('ट्रेकीड') के समान ये भी लम्बी फैली कोशाओं की तरह हैं जिनके दोनों सिरे बन्द रहते हैं। तन्तुओं की भित्ति मोटी भी होती है, परन्तु ये ट्रेकीड से छोटे होते हैं और इनकी लम्बाई दो मिलीमीटर से शायद ही कभी अधिक होती है। इन तन्तुओं का मुख्य कार्य काष्ठ को बल देना होता है, अतः ये द्रव-संवाहन कार्य के अनुकूल नहीं होते। इनके भित्ति-गर्त भी अति सूक्ष्म और विस्तार में विषम होते हैं। सामान्यतया तन्तु, परिरक्षी-प्रवेशन के मुख्य प्रतिकारक नहीं होते, पर वाहिनियों द्वारा परिरक्षी-वितरण पर इनका सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। आगे इस विषय की फिर चर्चा की जायगी।

(ग) किरण (रेज़)

उपरिलिखित शंकुधारी काष्ठों के प्रकरण २ (ख) में इनका वर्णन किया गया है। उरुपाती अथवा कठोर काष्ठ की किरणों का परिमाण अस्थिर रहता है। कहीं तो ये कोमल काष्ठों की किरणों से बड़ी नहीं होतीं और कहीं इतनी बड़ी होती हैं कि इनसे काष्ठ को एक विशेष प्रकार की आकृति मिलती है। बाँझ ('ओक') ऐसा ही काष्ठ है जिसमें इनकी लम्बाई और ऊँचाई, कोशा से कई गुना बड़ी होती है। उरुपाती काष्ठ की किरणें तुलना में सामान्य रचना के विचार से सरल होती हैं। ये जीवितक कोशाओं से ही मिलकर बनी होती हैं। संलग्न जीवितक किरण कोशा में परस्पर संचार उनके बीच की भित्ति के साधारण गर्त-जोड़ा ('पिट-पेयर्स') द्वारा होता है। ये साधारण गर्त किनारीदार गर्तों से बहुत ही भिन्न होते हैं। किनारीदार गर्त कपाट ('वाल्व्स्') की तरह काम करते हैं और इनकी कला ('मेम्ब्रेन्') के मध्य में स्थूलक ('टोरस्') होता है, जो काष्ठ के शुष्क होने पर गर्त के सूक्ष्म छिद्र को दृढ़ता से बन्द कर देता है, जिससे कि द्रव पदार्थ का एक कोशा से दूसरी कोशा में संचालन न हो सके। इसके विपरीत, साधारण गर्त की कला में संचार-रोधी स्थूलक नहीं होता और इसका कार्य भी कपाट की तरह नहीं होता।

अभी तक इसका कुछ भी प्रमाण नहीं मिला कि कठोर काष्ठ की किरणें परिरक्षी-प्रवेशन में सहायता देती हैं या नहीं। इनकी साधारण गर्त-रचना से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। इसके विपरीत, सूचना से यही परिणाम निकलता है कि इन किरणों की

अत्यन्त छोटी कोशाओं और उनमें वर्तमान शुष्क प्राणरस ('प्रोटोप्लाज़्म्') तथा अन्य पदार्थों के कारण परिरक्षी-प्रवेशन में रुकावट पड़ती है। आगे चलकर इस पर भी कुछ प्रकाश डाला जायगा।

(घ) काष्ठ-जीवितक ('वुड-पैरेन्काइमा')

इनका भी वर्णन ऊपर शंकुधारी काष्ठों के २ (घ) प्रकरण में किया गया है। उरुपाती काष्ठों में ये अच्छी तरह विकसित रहते हैं। कहीं तो ये वाहिनी के चहुँ ओर आवरण-पट्ट की तरह रहते हैं और कहीं काष्ठ के टक्कर में लहरों की तरह दिखाई देते हैं। इनसे भी काष्ठ को एक विशेष प्रकार की आकृति मिलती है। उरुपाती काष्ठों में इस प्रकार की जीवितक-कोशाओं की उपस्थिति से परिरक्षी-वितरण पर सम्भवतः प्रभाव पड़ता होगा, क्योंकि जीवितक-कोशाओं की नलिकाओं का कार्य भी खाद्य पदार्थों के वितरण का ही होता है।

४. रस अथवा बाह्य-काष्ठ[1] और सार अथवा अन्तः-काष्ठ[2]

वृक्ष की यौवन-पूर्व अवस्था से ही रस-काष्ठ बनना आरम्भ हो जाता है। इस अवस्था में लगभग संपूर्ण भाग रसकाष्ठ का ही होता है। ज्यों-ज्यों यह बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों प्रत्येक वर्ष घेरे में रस-काष्ठ का एक स्तर बनता रहता है, जिसे वार्षिक वलय ('एनुअल रिंग') कहते हैं। जीवित वृक्ष में रस-काष्ठ सदैव सक्रिय रहता है और आयु बढ़ने पर आंतरतम भाग अक्रिय होकर सार-काष्ठ अथवा अन्तः-काष्ठ में परिवर्तित हो जाता है। यह मृत काष्ठ इस दशा में रस-संचालन का कार्य नहीं करता, परन्तु वृक्ष को बल देता है। रस-काष्ठ से सार-काष्ठ में परिवर्तित होने पर कठोर काष्ठ के रन्ध्र अपूर्ण अथवा पूर्ण प्रकार से मज्जक पदार्थ, जैसे गुहारुध ('टाइलौस') वर्धन के कारण गोंद से बन्द हो जाते हैं। कोमल काष्ठ की वाहिकोशा में भी इस अवस्था में बदलाव होकर द्रवों के संचार के रास्ते में रुकावट पड़ जाती है। रसकाष्ठ में एकत्रित अनेक पदार्थों की मात्रा या उनके स्वभाव के बारे में अभी तक पूर्णतया जानकारी नहीं हुई है। इनके लक्षण और गुण भी काष्ठों की जाति के अनुसार भिन्न होते हैं। ये गोंद ('गम'), लीसा ('रेजिन') और विप्रवेशित ('इन्फिल्ट्रेटेड्') पदार्थों के नाम से कहे जाते हैं। इन्हीं पदार्थों के कारण सार-काष्ठ का रंग भी रस-काष्ठ से भिन्न हो जाता है। कुछ काष्ठ-जातियों में इस रंग का परिवर्तन स्पष्ट नहीं रहता, जैसे कि सीमल, फर, स्प्रूस,

1 Sapwood, रसकाष्ठ। 2 Heart wood.

आम इत्यादि में, पर अधिकांश जातियों में रसकाष्ठ की सीमा-रेखा स्वच्छ और स्पष्ट रहती है (चित्र १६ देखिए)।

चित्र १६—लट्ठे का अनुप्रस्थ छेद, जिसमें रसकाष्ठ और सारकाष्ठ दर्शाया गया है।

वृक्ष की आयु बढ़ने पर सारकाष्ठ की सीमा के व्यास की वृद्धि होती रहती है, परन्तु रसकाष्ठ का व्यास लगभग उतना ही रहता है। बहुत पुराने वृक्षों में रसकाष्ठ का स्तर छोटा ही रहता है। इन दोनों काष्ठों का पारस्परिक परिमाण लकड़ी की जाति, भूमि और जलवायु पर निर्भर रहता है।

काष्ठ की अधिकांश जातियों में सारकाष्ठ का स्वाभाविक स्थायित्व या टिकाऊपन रसकाष्ठ से अधिक होता है। सभी जातियों के रसकाष्ठ कवक एवं कीटों से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उनमें शर्करा, मंड-कोशाधु इत्यादि पदार्थों के रहने के कारण काष्ठ-विनाशकारकों के आक्रमण को रोकने की शक्ति नहीं रहती, पर बहुत-सी जातियों के सारकाष्ठ चिरस्थायी होते हैं। उनमें कोई तो इतने अधिक टिकाऊ होते हैं कि उन पर परिरक्षण क्रिया की आवश्यकता नहीं पड़ती। सारकाष्ठ का यह स्थायी-पन उनकी कोशाओं में एकत्रित पदार्थों के गुण और मात्रा पर निर्भर रहता है।

सभी जातियों के रसकाष्ठ को परिरक्षी से अन्तः-व्याप्त कराने में सरलता रहती है, परन्तु बहुत-से काष्ठ जब सारकाष्ठ में बदल जाते हैं तो वे परिरक्षी—**व्यापन-रोधी बन** जाते हैं, अर्थात् परिरक्षी द्रव-पदार्थों को उन काष्ठों की कोशा में अन्तः-प्रेषण करना कठिन हो जाता है।

सारकाष्ठ को रसकाष्ठ से अधिक बलिष्ठ समझना सार्वजनिक भ्रान्ति है। वन-अनुसंधानशाला के कई परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि एक ही आर्द्रता पर इन दोनों प्रकार के काष्ठों की दृढ़ता में कोई भेद नहीं होता। काष्ठ-परिरक्षण की दृष्टि से रसकाष्ठ को अधिक मान्यता दी गयी है, क्योंकि इसमें रन्ध्र खुले होने के कारण नियंत्रित मात्रा में परिरक्षी प्रेषण किया जा सकता है। जितना ही अधिक रसायन इस काष्ठ में पिलाया जायगा, उतनी ही अधिक सेवा-आयु इस काष्ठ को प्राप्त हो सकती है। रसकाष्ठ को वनों में वृक्षों के गिराने के पश्चात् आरम्भ काल से ही निरर्थक बनने से रोकने के लिए परिरक्षण-विधियों का प्रयोग कर बहुमूल्य बनाया जा सकता है।

अध्याय २

काष्ठ-विनाश प्रतिकारक

वन में वृक्षों से गिराया हुआ काष्ठ जब प्राप्त होने लगता है, तभी से उस पर होनेवाली विनाशकारकों की जैविक क्रिया का सूक्ष्म वर्णन यहाँ किया जाता है। काष्ठ को नष्ट करनेवाले प्रतिकारक निम्नलिखित हैं—

१. काष्ठ में निवास करनेवाले कवक। इनसे काष्ठ में धब्बा पड़ जाता है या वह सड़कर गल जाता है।

२. दीमक। इसको सफेद चींटी भी कहते हैं। यह लकड़ी को चाटकर उसमें कभी-कभी मिट्टी भी भर देती है।

३. काष्ठ-छिद्रक कीट। ये लकड़ी में छिद्र करनेवाले घुन हैं जो काष्ठ के तत्त्वों को भक्षण कर लेते हैं। कुछ हालतों में इन छिद्रों से महीन बुरादा भी निकलता है।

४. समुद्री कीट। ये समुद्र के नमकीन पानी में पाये जाते हैं और समुद्र के अन्दर रहनेवाले काष्ठों को मधुकोश की शक्ल का बना देते तथा नष्ट कर देते हैं।

५. अग्नि। इससे लकड़ी जलकर कोयला या राख बन जाती है।

६. यान्त्रिक घिसाई अथवा टूट-फूट और ऋतुक्षय। ये जैविक क्रियाएँ नहीं हैं, पर इनसे भी लकड़ी को क्षति पहुँचती है।

काष्ठ-परिरक्षण कार्य में इन ऊपर लिखे नाशकारकों की उत्पत्ति, प्रक्रिया और विकास के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। इस हेतु इनके बारे में ब्यौरेवार वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

१. कवक

कवक एक निम्न श्रेणी के साधारण उद्भिद् (पौधे) होते हैं। ये अपने खाद्य पदार्थों को प्राकृतिक तत्त्वों से प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि इनमें हरे पौधों की तरह पर्णशाद[1] ('क्लोरोफिल') का, जिससे ये प्राकृतिक खाद्य पदार्थों को कृत्रिम क्रिया

1 Chlorophyll.

से तैयार कर सकें, अभाव रहता है। ये संचित खाद्य पदार्थ पर सदा ही निर्भर रहते हैं और जहाँ इस प्रकार सहज में ही प्राप्त खाद्य पदार्थ हों, वहीं इनकी वृद्धि होती है। इनका काय (शरीर) 'थैलस' (जिसमें जड़, तने और पत्तियाँ नहीं होतीं) का बना होता है।

कवक कई प्रकार के होते हैं और इनका वर्गीकरण इनकी संरचना और विशेष लक्षणों द्वारा किया जाता है। मुख्य कवकों को (१) रोगकारक, (२) काष्ठ-अभिरञ्जक[१] (३) काष्ठ-नाशक[२] और (४) आश्लेष्मक[३] वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। इनके उद्भिद्-काय[४] एक-कोशीय अथवा बहुकोशीय सूत्र होते हैं, जिनको 'हाइफे' कहते हैं। इनका पुनरुत्पादन विखण्डन से अथवा बीजाणु से होता है। काष्ठ से सम्बन्ध रखनेवाले केवल काष्ठ-नाशक, काष्ठ-अभिरञ्जक और फफूँदी ('मोल्डस्') बहुकोशीय कवकों से ही हैं। ये मुख्यत: दो वर्गों के अन्तर्गत हैं—(क) **एस्कोमाइसिटिस्**[५] और (ख) **बैसिडियोमाइसिटिस्**।[६]

(क) धानीकवक वर्ग ('एस्कोमाइसिटिस्'): अनु-वर्ग ('पाइरिनोमाइसिटिस्')[७]

लकड़ी में दाग उत्पन्न करनेवाले और बाहरी सतह पर फफूँदी रूप में जमनेवाले कवक इसी वर्ग में हैं। जो काष्ठ में अन्तः-व्याप्त होकर उसमें नीलवर्ण के दाग उत्पन्न कर देते हैं, वे काष्ठ-अभिरञ्जक अथवा नीलवर्णक कवक कहलाते हैं। कुछ जातियों के कोमल और कठोर काष्ठों के रसकाष्ठ में इस प्रकार का रंग फैलकर उसकी चमक और रूप में परिवर्तन कर देता है, जिससे उसके मूल्य में भी कमी हो जाती है। इस कवक के बीजाणु, हाइफा के सिरे पर एक सूक्ष्म थैली में, जिसे धानि ('एस्की') कहते हैं, स्थित होते हैं। इसी लिए इसका नाम '**एस्कोमाइसिटिस्**' पड़ा है। जो कवक इस वर्ग में हैं वे सैरेटोस्टोमिला[८], डिप्लोडिया[९], ग्रैफियम[१०] इत्यादि प्रजातियाँ हैं। साधारणतया देखने से इनके बीजाणु का समूह काले बिन्दु की तरह दीखता है, पर आवर्द्धक-काँच[११] से काले केश की तरह, जिसकी जड़ कन्द की तरह होती है, दिखाई देता है।

1 Wood Staining. 2 Wood destroying. 3 Slime forming.
4 Plant body. 5 Escomicitis. 6 Bassidiomicitis.
7 Pyrinomicitis. 8 Saretostomilla. 9 Diplodia.
10 Graphium. 11 Magnifying glass.

ऊपर लिखे काष्ठ-अभिरञ्जक कवक, रसकाष्ठ के कोशा-छिद्रों में संचित खाद्य पदार्थों पर ही निर्वाह करते हैं, पर कोशाभित्तियों (cell-walls) को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। कवक-सूत्र, एक कोशा से दूसरी में कोशागर्तों में से होकर जाते हैं, जिससे काष्ठ को क्षति नहीं पहुँचती। केवल काष्ठकिरण में, जहाँ खाद्य-पदार्थ संचित रहता है, कोशाभित्ति को हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है, अन्यत्र नहीं। हल्के रंगवाले काष्ठों में नील या श्यामनील वर्ण का दाग इन्हीं रँगीले कवक-सूत्रों के पुंज से उत्पन्न होता है (चित्र १७ देखिए)।
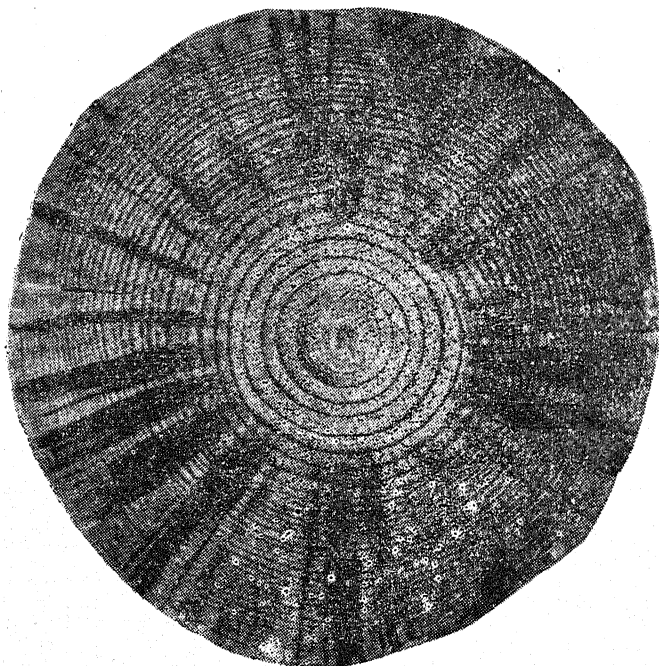
चित्र १७—**एक काष्ठ-लट्ठे में अभिरंजक कवकों द्वारा बनाया गया नील वर्ण का दाग।**

काष्ठ-अभिरञ्जक कवकों की वृद्धि, काष्ठ के विशेष ताप, हवा और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। जब से वृक्ष जंगल में गिराया जाता है तभी से इससे प्राप्त लट्ठे पर इन कवकों के आक्रमण की संभावना हो जाती है। प्रारम्भ में लट्ठे के सिरे या तख्ते

की सतह पर एक रंगीन बिन्दु के आकार का, धब्बे की तरह का, कवक दिखलाई देता है, जो खुरचकर साफ किया जा सकता है। पर यदि ऐसा न किया जाय तो समयानुसार यह इतना गहरा पहुँच जाता है कि संपूर्ण रसकाष्ठ को घेर लेता है। ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में यह हरे लट्ठों के कटान के पश्चात् शीघ्र ही २ या ३ दिन के अंदर लकड़ी में दोष उत्पन्न कर देता है। लकड़ी में २० प्रतिशत से ऊपर की आर्द्रता और २४° से ३५° सेन्टीग्रेड तक का तापक्रम इन कवकों की वृद्धि के लिए अनुकूल होता है। लगभग ७° सेन्टीग्रेड से नीचे और ४०° सेन्टीग्रेड से ऊपर के तापक्रम में इनकी वृद्धि बन्द हो जाती है, और ५५° सेन्टीग्रेड में लकड़ी का कुछ घंटों तक रहना इन कवकों के लिए घातक है। वायु-संचरण की कमी के कारण भी नम काष्ठ में शीघ्र ही ये कवक उत्पन्न हो जाते हैं और हरे काष्ठों के चिरान के शीघ्र पश्चात् ही यदि काष्ठ को इस दोष से बचाना हो तो उसे हवादार छायावाले स्थानों में फैलाना आवश्यक हो जाता है, विशेष कर सीमल, पपीता, चीड़, लम्बापती, गुटैल इत्यादि अस्थायी काष्ठों के लिए। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, नीलाभिरञ्जक कवक से कोशाभित्ति को हानि न पहुँचने के कारण काष्ठ की शक्ति में कुछ ज्यादा कमी नहीं आती, पर उसकी आघात ('शौक') रोक सकने की दृढ़ता में कुछ कमी अवश्य हो जाती है। अतएव विमान-निर्माण कार्य के लिए ऐसे नीलाभिरञ्जित काष्ठ का प्रयोग नहीं किया जा सकता, पर अन्य सामान्य निर्माण-कार्य में इनका प्रयोग करना हानिकारक नहीं है। कुछ पाश्चात्य काष्ठ-परिरक्षण अन्वेषण कार्यकर्त्ताओं का यह विश्वास था कि अभिरंञ्जित काष्ठ में परिरक्षी प्रेषण करना कठिन होता है, पर परीक्षणों से यह बात प्रमाणित नहीं होती। इसके विपरीत यह भी सिद्ध हो चुका है कि आर्द्रता की एकसम दशा में लाये गये कवकाभिभूत काष्ठ में स्वच्छ काष्ठ के तुल्य ही नहीं, उससे भी अधिक परिरक्षी-प्रचूषण हो सकता है। संभव है, पूर्वकथित प्रकार से दूषित काष्ठ की परिरक्षी-प्रचूषण शक्ति की कमी उसकी अधिक आर्द्रता के कारण हो।

एक प्रकार के छिद्रक कीट, जो काष्ठ में प्रवेश करते हैं, छिद्र के घेरे में अभिरञ्जक कवकों को अपने साथ ले जाकर काले रंग का बना देते हैं। ये 'एम्ब्रोशिया बीटल्स्' कहलाते हैं। ये कवक छिद्रों की दीवारों में उगकर उन कीटों के खाद्य-स्रोतों की सहायता करते हैं।

फफूंदी ('मोल्डस्') लकड़ी के केवल बाह्य स्तर पर पैदा होती है। इसकी उत्पत्ति उसी प्रकार होती है जिस प्रकार वर्षा ऋतु में चमड़े अथवा नम रोटी पर रुई तुल्य पदार्थ जम जाता है। यह सफेद, भूरे, हरे, काले इत्यादि कई प्रकार के रंगों में

प्रकट होकर काष्ठतल को आवृत कर लेती है। इसकी वृद्धि भी वायु के संचरण की कमी और उष्ण-नम दशा के कारण होती है। यह अभिरञ्जक कवकों की तरह काष्ठ के गहरे स्तरों में रंग-दोष पैदा नहीं करती, और काष्ठ के बाह्य तल को खुरचकर तथा सफाई करके इसे हटाया जा सकता है। इससे काष्ठ पर गहरा प्रभाव नहीं पड़ता और थोड़ा रन्दा करने पर पुनः स्वच्छ काष्ठ प्रकट हो जाता है। परन्तु इन कवकों से सावधान रहना चाहिए, क्योंकि जिन अवस्थाओं में इनकी वृद्धि होती है उन्हीं में काष्ठ-नाशक कवकों की भी होती है। यदि इसका पूर्वोपाय नहीं किया जाय तो काष्ठ नष्ट होने की संभावना रहती है। यह उपाय या तो कवक-वृद्धि की अनुकूल दशाएँ उत्पन्न न होने देने का है, या उचित परिरक्षियों द्वारा काष्ठ का रोगरोधक ('प्रोफिलैक्टिक') उपचार करना है, जिससे अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर भी विनाश-कारक अभिकर्ताओं का आक्रमण फिर नहीं होता।

(ख) प्रकणीकवक वर्ग ('बैसीडियोमाइसिटिस्')[1] अनुवर्ग ('हाईमैनोमाइसिटिस्')[2]

प्रकणीकवक (**'बैसीडियोमाइसिटिस्'**) उस वर्ग के कवक हैं जिनके मिथुन अथवा परिपूर्ण बीजाणु बाहर की ओर उनके सूत्र के गदा-आकार सिरों पर, जो **'बैसीडिया'** (प्रकणी) कहलाते हैं, स्थित रहते हैं। इसीलिए इनका नाम **'बैसीडियोमाइसिटिस्'** पड़ा। इनके बीजाणु को भी 'बैसीडियोस्पोर्स' कहते हैं। सब काष्ठ-नाशक **कवक** इन्हीं के चार मुख्य कुलों में से हैं, इनके नाम नीचे लिखे हैं।

(१) **'एगेरीकेसीई'**[3]—इसका साधारण नाम अरपट्ट ('गिल') कवक है। इसे छत्रक भी कहते हैं। इसकी बीजाणुधर-कला ('हाइमीनिअम्')[4] अरपट्ट पर फैली रहती है। इनमें मुख्यतः लैन्टाइनस्,[5] पैक्सीलस्,[6] माइजोफिलम्[7] प्रजातियाँ हैं।

(२) **'पौलीपोरसीई'**[8]—इसे रन्ध्र ('पोर') कवक भी कहते हैं। इसकी बीजाणु-धर-कला नलिकाओं के अस्तर की भाँति होती है जिसके खुले सिरे रन्ध्र कहलाते हैं। इसी प्रकार इसका बीजाणुधर ('स्पोरोफोर') बनता है। **डंड-**

1 Bassidiomicitis. 2 Hymenomicitis. 3 Agaricassii.
4 Hymenium. 5 Lantinus. 6 Paxylus.
7 Myzophitum. 8 Polyporassii.

लिया,[१] **फोमस,**[२] **लैञ्जाइटिस्,**[३] **मैरीलियस्,**[४] **पौलीपोरस्,**[५] **पौली-स्टिक्टस्**[६] **पोरिया,**[७] **ट्रेमेटस्,**[८] इत्यादि प्रजातियाँ इनमें हैं।

(३) **'हाइड्नेसीई'**[९]—यह दन्तकवक भी कहलाता है। इसकी बीजाणुधर-कला दाँत या पीठ की रीढ़ पर फैली रहती है। इसकी **हाइड्नम्,**[१०] **इरपैक्स**[११] इत्यादि प्रजातियाँ होती हैं।

(४) **'थैलीफोरेसीई'**[१२]—इसे चर्मकवक भी कहते हैं। इसकी बीजाणुधर-कला सम अथवा असम तल पर फैली रहती है। **कोनियोफोरा,**[१३] **स्टीरियम्,**[१४] **टैलीफोरा,**[१५] इत्यादि प्रजातियाँ इनमें होती हैं।

काष्ठ-नाशक कवकों के आक्रमण से लकड़ी में सड़न[१६] अथवा अपक्षय[१७] पैदा हो जाता है। कवकों की जीव-क्रिया से लकड़ी में जो रासायनिक या भौतिक परिवर्तन हो जाता है वही सड़न है। आक्रमण के आरम्भकाल में जब यह सड़न छिपी ('इन्सीपियन्ट') दशा[१८] में रहती है, काष्ठ के गुणों में किसी भी प्रकार का बदलाव नहीं प्रतीत होता, परन्तु आक्रमण बढ़ते रहने की स्थिति में काष्ठ के गुणों में इतना परिवर्तन हो जाता है कि सड़न रोग का निर्णय करना सरल कार्य हो जाता है।

काष्ठ-नाशक कवकों का विकास भी अभिरञ्जक कवकों की तरह चार कारणों पर निर्भर रहता है, अर्थात् (अ) उपयुक्त खाद्य-पदार्थ, (आ) पर्याप्त मात्रा में आर्द्रता, (इ) अनुकूल ताप और (ई) थोड़ी मात्रा में हवा। परन्तु अभिरञ्जक कवकों के विपरीत ये कोशाओं में संचित शर्करा, माँड इत्यादि खाद्य पदार्थ पर ही नहीं रहते, इनका पोषण कोशाभित्ति पदार्थ से होता है। प्राकृतिक दशा में काष्ठ-पदार्थ, जो कोषाधु[१९] और लगुडि[२०] से बनता है, काष्ठ-नाशक कवकों के पोषण के लिए उपयुक्त नहीं है। कवक-सूत्र से निकला रासायनिक रस, जो एक प्रकार का विकर ('एनजाइम्स') है, कोषाधु और लगुडि को कवक के लिए साधारण पौष्टिक परिपाकवस्तु में परिवर्तित करता है। अतः इन कवकों के सूत्र एक कोशा से दूसरी कोशा में

1 Dadellia. 2 Phomous. 3 Langitis.
4 Marrilious. 5 Pollyporos. 6 Polystictus.
7 Poria. 8 Tremetus. 9 Hydnessii.
10 Hydnum. 11 Irpex. 12 Thyliphorassi.
13 Coniofora. 14 Sterium. 15 Telliphora.
16 Decay. 17 Rot. 18 Incipient.
19 Cellulose. 20 Lignin.

जाने के लिए इनकी मध्यवर्ती भित्तियों को क्षति पहुँचाकर पार करते हैं, जिससे काष्ठ की शक्ति कम हो जाती है, यहाँ तक कि पूर्ण विकास के पश्चात् जब इन कवकों के फलन-काय (बीजाणुधर) दीखने लगते हैं तो काष्ठ को हाथों से भी चूर्ण किया जा सकता है। चित्र १८ में काष्ठ-नाशक और काष्ठ-अभिरञ्जक कवकों के सूत्रजाल ('माइसीलियम्') का पथ मान-चित्र में दर्शाया गया है। उससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पूर्वोक्त दोनों प्रकार के कवकों के आक्रमण में क्या भेद है।
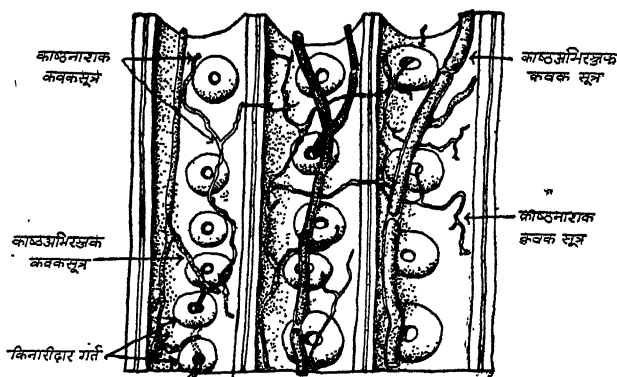
चित्र १८—काष्ठ-नाशक और काष्ठ-अभिरंजक कवकसूत्रों का शंकुधारी काष्ठों में प्रसरण।

काष्ठ-नाशक कवकों के बीजाणु, जो अत्यन्त हलके होते हैं, अनगिनत संख्या में बीजाणुधरों से हवा में उड़कर या कीट व पक्षियों द्वारा काष्ठ की सतह या दरारों में वास करने लगते हैं। जब इनके विकास की अनुकूल अवस्था प्राप्त हो जाती है तो बीजाणु से सूत्र ('हाइफा') निकलकर फैलने लगता है और इन्हीं का पुंज जाल ('माइसीलियम्') बनकर विकसित होने लगता है, जो अन्त में फल-काय ('फ्रूटिंग बाडी') के रूप में बाह्य दिशा में प्रकट होकर बीजाणु का भंडार बन जाता है (देखिए चित्र १९, २०, २१)।

काष्ठ-नाशक कवकों द्वारा काष्ठ के रंगपरिवर्तन के परिणामों के कारण इनको दो वर्गों में विभाजित किया गया है। इनमें एक श्वेत-अपक्षय ('ह्वाइट रौट') कहलाता है। इसमें कोषाधु, जो श्वेत रंग का होता है और लगुडि, जो भूरे रंग का होता है, दोनों का क्षयकर, कवक उन्हें हटा लेता है, और अंत में काष्ठ का नीरञ्जन कर उसे श्वेत रंग का बना देता है। इसलिए इस प्रकार की सड़न को श्वेत-अपक्षय कहते हैं।

कभी-कभी इस प्रकार की सड़न द्वारा उपहृत काष्ठ में सफेद धब्बे व पट्टियाँ-सी प्रतीत होती हैं, जिनके मध्य में दृढ़-काष्ठ के स्तर उपस्थित रहते हैं। दूसरे वर्ग की सड़न
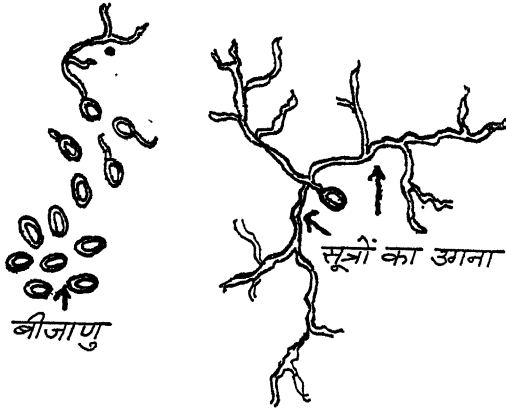
चित्र १९— **बीजाणु से कवकसूत्र का प्रसरण।**
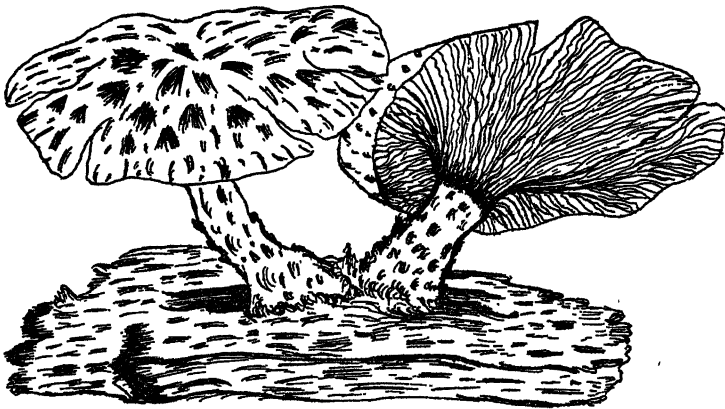
चित्र २०—**काष्ठ-नाशक कवक का फलकाय।**

बभ्रु अपक्षय ('ब्रौन रौट') कही जाती है। इसमें लगुडि की अपेक्षा कोषाधु का अधिक मात्रा में उपभोग होता है, जिसके परिणामस्वरूप काष्ठ भरे रंग का होकर चूर्ण में

चित्र २१—काष्ठ-नाशक कवक द्वारा काष्ठ की क्षति।

परिवर्तित हो जाता है। इसी को बभ्रु अपक्षय कहते हैं। कुछ सड़न इन दोनों की मध्यवर्ती भी होती है।

काष्ठ-नाशक कवकों के अनुकूलतम विकास के लिए काष्ठ की आर्द्रता, उसके तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु[1] से, जो २५ से लेकर ३० प्रतिशत आर्द्रता तक होती है, अधिक होनी चाहिए। इस तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु की आर्द्रता पर कोश-कूप[2] का जल पृथक् अवस्था में किञ्चित् मात्र भी नहीं रहता, पर कोशाभित्ति जल से परिपूर्ण रहती हैं। कोशाकूप के पृथक् जल पर ही कवकों का विकास निर्भर रहता है। इस परिपूर्णक बिन्दु की आर्द्रता पर, अर्थात् लगभग २५ प्रतिशत आर्द्रता के नीचे कवकों की इस वृद्धि की गति में रुकावट पड़ जाती है, और २० प्रतिशत आर्द्रता के नीचे वह पूर्णतया रुक जाती है। इसलिए सब प्रकार के स्वच्छ काष्ठ हवा या भट्ठी में लगभग १५ प्रति शत आर्द्रता से नीचे अच्छी प्रकार सुखा लिये जाने पर सड़न से बच सकते हैं, और यह दशा तब तक निरन्तर रहेगी जब तक ये काष्ठ फिर से भीगकर उस अपक्षय वृद्धि की न्यूनतम आर्द्रता की दशा से अधिक ऊपर तक न पहुँच जायँ। यदि काष्ठ पहले से ही सड़न द्वारा दूषित हो तो २० प्रतिशत आर्द्रता से नीचे सड़न सुषुप्त दशा में रहेगी और कई वर्षों तक इसी दशा में रह सकती है, जब तक कि अनुकूल आर्द्रता फिर से प्राप्त न हो जाय। तत्पश्चात् इस अनुकूलतम दशा पर पहुँचने पर कवकों का कार्य पुनः अत्यन्त वेग से आरम्भ हो जायगा। यही कारण है कि दूषित काष्ठ को परिरक्षोपचार के बिना ही भारी निर्माण-कार्य में लगाना उचित नहीं है, क्योंकि इससे भयानक परिणाम निकल सकते हैं।

पूर्वोक्त श्वेत और बभ्रु अपक्षय के अतिरिक्त एक शुष्क अपक्षय भी होता है, जिसे अंग्रेजी में 'ड्राइरौट'[3] कहते हैं। जैसा कि शुष्क नाम से प्रतीत होता है, सम्भवतः इसमें न्यूनतम आर्द्रता से कम नमी की आवश्यकता होती हो, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। यह नाम इसलिए रखा गया है कि शुष्क अपक्षय सूखे स्थानों में प्रयुक्त किये गये काष्ठों पर होता पाया गया है, जैसे कि कारखानों में, गृहों में और काष्ठ-गोदामों में, और इन स्थानों में नमी न रहने के कारण यही विश्वास रहता है कि इस शुष्क सड़न में पर्याप्त नमी की आवश्यकता शायद न हो। वास्तव में देखा जाय तो शुष्क अपक्षय सूखे काष्ठ में नहीं पैदा हो सकता, अपितु इस अपक्षय में अन्य प्रकार के अपक्षयों के विपरीत एक दूरस्थ स्थान से भी, जहाँ नमी हो, आर्द्रता ले जाने की शक्ति रहती है।

1 Fibre Saturation Point. 2 Cellcavity. 3 Dryrot.

यदि किसी नम-काष्ठ या भूमि पर किसी समय अपक्षय स्थापित हो जाय, जहाँ आर्द्रता की सदैव पूर्ति होते रहने की संभावना रहे, तो इस सड़न के सूत्रजाल शुष्क स्थान को पार कर बहुत दूरी तक चलकर अन्य किसी भी उपयुक्त सूखे काष्ठ पर आक्रमण कर सकते हैं और आर्द्रता का संचालन उस पूर्व नम स्रोत से, जिसके रन्ध्र सूक्ष्म होते हैं, कवकसूत्र द्वारा होता रह सकता है। ये कवकसूत्र २० फुट से भी ऊँची ईंटों की दीवारों को पार कर काष्ठ पर आक्रमण करते पाये गये हैं। **पोरिया** और **मैरीलियस** प्रजाति के कवक इसी वर्ग में हैं।

सड़न के विकास में अति आर्द्रता से भी रुकावट पड़ जाती है, यद्यपि इसका सम्बन्ध काष्ठ की अधिक आर्द्रता के कारण हवा की कमी से भी रहता है। ज्यों-ज्यों काष्ठ की आर्द्रता बढ़ती है त्यों-त्यों उसमें हवा की कमी भी होती जाती है। काष्ठ में आर्द्रता की कवक-वृद्धि अनुकूलतम ऊपरी सीमा तक होती है। यह काष्ठ के घनत्व पर निर्भर है। हलके काष्ठों में २०० प्रतिशत और भारी में ७५ प्रतिशत आर्द्रता तक यह सीमा है। यह बतलाया गया है कि काष्ठ पर सड़न स्थापित होने से पूर्व उस में अपने आयतन की २० प्रतिशत (४घ) हवा होनी चाहिए। संपूर्ण काष्ठ को स्वच्छ पानी में डुबो रखकर बहुत काल तक सुरक्षित रखा जा सकता है, क्योंकि इसकी आर्द्रता ऊपरी कवक वृद्धि सीमा से अधिक रहती है। इसी प्रकार काष्ठ को धरती से ५ या ६ फुट नीचे गाड़ने पर हवा की कमी के कारण सुरक्षित रखा जा सकता है। बड़ी इमारतों और पुलों के काष्ठ-आधार-स्तम्भ सैकड़ों वर्ष तक तनिक भी नहीं सड़ते और बहुत काल तक अच्छी दशा में रहते हैं।

काष्ठ अपक्षय उन स्थानों में अधिक होता है जहाँ काष्ठ का गीली धरती से सीधा संपर्क हो, अथवा जब वह ऐसी जगह स्थित हो जहाँ पानी टपककर शीघ्र सूखने की संभावना न हो, अर्थात् जहाँ स्थान नम हो। काष्ठ-स्लीपरों के नीचे के भाग में, काष्ठ-खम्भों की भूमिरेखा के समीपवर्ती स्थानों में, गृहों के निचले खण्डों की धरती और दीवारों के अन्दर घुसे काष्ठों में, अपक्षय यथाक्रम आरम्भ होता है। उन कारखानों और संग्रहालयों में, जहाँ नमी लगातार रहने की सम्भावना होती है, जैसे कि कागज बनाने की मिलों में, शीत-संग्रहागारों में, दुग्धशाला में, शराब की भट्ठियों इत्यादि में, शुष्क काष्ठ प्रयोग करने पर भी उसमें आर्द्रता इतनी पर्याप्त मात्रा में पहुँच जाती है कि उसमें सड़न स्थापित हो सके। सड़न, गृहों के उन स्थानों में भी पायी गयी है जहाँ ठंडे जल के संपर्क में काष्ठ के चारों ओर की हवा के पसीजने के कारण आर्द्रता स्थापित हो गयी हो। सड़न से काष्ठ का विनाश उन स्थानों में भी पाया गया है,

जहाँ कुछ गीली लकड़ी का प्रयोग हवा का आगमन न होनेवाली बन्द कोठरियों में किया गया हो।

काष्ठ-नाशक कवकों का विकास तापक्रम की पर्याप्त सीमा तक होता है। इनकी वृद्धि उष्ण-नम ऋतु में होती है। इस वृद्धि का अनुकूलतम ताप कवकों की जाति पर निर्भर रहता है, पर अधिकांश अवस्थाओं में यह तापसीमा २३° सेन्टीग्रेड से लेकर ३३° सेन्टीग्रेड तक होती है। कुछ विरले कवक ऐसे भी हैं जिनकी वृद्धि की निम्नतम और उच्चतम सीमा २०° सेन्टीग्रेड और ३६° सेन्टीग्रेड तक भी होती है। ज्यों-ज्यों ताप विकास की न्यूनतम सीमा से घटता जाता है, कवक की वृद्धि भी कम होती जाती है। अति न्यून ताप पर कवक सुषुप्त दशा में रहता है, पर उसका मरण नहीं होता, चाहे कितनी भी ठंड क्यों न हो जाय। उधर, वृद्धि अनुकूलतम ताप के बढ़ने से उसके विकास पर सुस्पष्ट प्रभाव पड़ता है और पर्याप्त मात्रा में उष्णता बढ़ने से अतिरोधी कवक भी मर जाता है। काष्ठ सुखाने की भट्ठी ('किल्न') और वाष्प-तापन क्रिया से यदि काष्ठ में ताप उतनी गहराई तक पहुँच जाय, जहाँ तक कवक-सूत्र विद्यमान हैं, तो कवक पूर्णतया मर जाता है। वैसे तो अधिकांश कवक लगभग ५०° सेन्टीग्रेड से ऊपर के ताप पर नहीं टिक सकते, पर काष्ठ में उनका मरण उष्णता को पर्याप्त समय तक चालू रखने से ही हो सकता है, और जब तक ऐसी अवस्था, जो उनके आक्रमण के लिए अनुकूल हो, फिर से प्राप्त न हो, तो यह सदा के लिए हट सकता है।

कवक के आक्रमण से काष्ठ के निम्नलिखित गुण सामान्यतया क्षीण होने लगते हैं—

(१) काष्ठ के घनत्व में भारी कमी हो जाती है, अर्थात् काष्ठ के भार में कमी का सम्बन्ध उस पर कवक के आक्रमण की मात्रा से है। अधिकांश दशाओं में काष्ठ के भार में कमी कवक के कारण हुए उसके विनाश की द्योतक है। कुछ अन्वेषण कार्य-कर्त्ताओं ने इस विषय पर सम्बन्ध-वक्र स्थापित किये हैं।

(२) काष्ठ की संधारी शक्ति ('मिकेनिकल स्ट्रेङ्ग्थ'), विशेष कर दृढ़ता ('टफ्नेस') में कवक के आक्रमण के परिणामस्वरूप पर्याप्त कमी हो जाती है।

(३) कवक के पर्याक्रमण से काष्ठ में जल-प्रचूषण शक्ति अधिक हो जाती है।

(४) काष्ठ के रासायनिक संगठन में कवक के कारण परिवर्तन हो जाता है।

(५) काष्ठ का रंग और उसका रूप अथवा आकार बदल जाता है, अर्थात् उसमें विरूपता आ जाती है।

(६) काष्ठ की उषंकरी अर्हा (उष्मीयमान, 'कैलोरिफिक वैल्यू') प्रति आयतन पर कम हो जाती है, क्योंकि प्रति आयतन पर काष्ठसार कवक के कारण कम हो जाता है।

(७) काष्ठतन्तु की द्विभुजायिता ('बाइरीफ्रिन्जैन्स') कवक के आक्रमण के कारण लुप्त हो जाती है।

(८) काष्ठ के क्ष-रश्मि ('एक्स-रे') चित्र में भिन्नता आ जाती है। यह सूचना कुछ कार्यकर्त्ताओं ने प्रयोगों के आधार पर दी है।

(९) काष्ठ के परिरक्षी-प्रचूषण गुण में भी कवक के कारण भिन्नता हो जाती है।

(१०) कवक-संक्रान्त काष्ठों में गोर्द ('पल्प्') की प्राप्ति और उसके गुण भी क्षीण हो जाते हैं। सड़ा हुआ काष्ठ यान्त्रिक गोर्द के लिए अनुपयुक्त है।

काष्ठों में कवक-आक्रमण-रोधनशक्ति तथा प्राकृतिक स्थायित्व भिन्न-भिन्न मात्रा में होते हैं। टिकाऊपन सार-काष्ठ का ही माना जाता है न कि रस-काष्ठ का, क्योंकि सभी काष्ठों का रस-काष्ठ अल्पस्थायी होता है और शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। काष्ठ के इस स्थायीपन की अवधि कुछ महीनों से लेकर कई वर्षों तक होती है। अतः कुछ निम्न श्रेणी के काष्ठ कुछ ही महीनों में नष्ट हो जाते हैं, कुछ अत्यन्त टिकाऊ हैं जो कई वर्षों तक चलते हैं, और कुछ मध्यम श्रेणी के हैं जो न तो शीघ्र नष्ट होते हैं और न चिरस्थायी ही हैं। सार-काष्ठ में यह चिरस्थायीपन उन सार पदार्थों के कारण होता है जो उसकी कोशाओं में रस-काष्ठ के सार-काष्ठ में परिवर्तित होने के पश्चात् एकत्रित हो जाते हैं। इन सार पदार्थों के कारण ही सार-काष्ठ का रंग रस-काष्ठ से गहरा हो जाता है। यह पदार्थ निस्सार ('इक्स्ट्रैक्टिव्स्')[1] कहलाते हैं और इनमें कई प्रकार के 'टेनिन्', राल और 'ईथर' तैल इत्यादि सम्मिलित रहते हैं, जो एक प्रकार से परिरक्षण का कार्य करते हैं। इन निस्सारों का निस्सारीकरण, शीत या उष्ण जल से अथवा रासायनिक विलायकों द्वारा हो सकता है। इनमें बहुधा विनाश-कारक कवक और कीटमारक गुण पाये गये हैं। रस-काष्ठ की अपेक्षा सार-काष्ठ के अधिक स्थायी होने का कारण उसकी बनावट भी है जो घनी होती है। कुछ काष्ठ-जातियों में कोशाओं के अन्दर गुहारुध ('टाइलोसेस्')[2] की उपज के कारण हवा का संचार पूर्णतः बन्द हो जाता है जिससे वे कवक-रोधी बन जाती हैं।

1 Extractives. 2 Tyloses.

२. कीट

काष्ठ-नाशक कीटों से लकड़ी को बहुत अधिक हानि पहुँचती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में काष्ठ को प्रति वर्ष केवल एक प्रजाति के 'लिक्टस्'[१] ('छिद्रकीटों') से ही १ करोड़ ८० लाख (५ ङ)* डालर की हानि होना बतलाया गया है। यदि अनुमान लगाया जाय तो भारत में भी सभी प्रकार के काष्ठ-नाशक कीटों से प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों की हानि होती होगी। यह हानि खड़े वृक्षों, हरे लट्ठों व प्रकाष्ठों तथा लकड़ी-गोदामों में एकत्रित लकड़ी को एवं प्रयोग में लाये गये प्रकाष्ठों को पहुँचती है। इसमें से कुछ हानि रोकना मनुष्य-शक्ति के बाहर है, क्योंकि वह वनों में ही हो जाती है, पर हाँ, लट्ठे, बल्ली, तख्तों और अन्य आकार में रूपान्तरित प्रकाष्ठों को, प्रयोग करने के पूर्व ही, और कुछ दशाओं में बाद में भी परिरक्षोपचार द्वारा बचाया जा सकता है।

कुछ परिस्थितियों में कीटों द्वारा यह हानि डिम्भावस्था में होती है। डिम्भ ('लारवा') अथवा जातक ('ग्रब') खाद्य और आश्रय के लिए काष्ठ को खोदते या कुरेद डालते हैं। ये उसके अन्दर विशिष्ट छिद्र और सुरंग बना देते हैं। कुछ दशाओं में प्रौढ़ (युवा) कीट ही नाशकारक होते हैं, जैसे कि दीमक इत्यादि, और कहीं दोनों ही नाशकारक मिलकर हानि पहुँचाते हैं, जिसका यह परिणाम होता है कि काष्ठ अन्दर ही अन्दर नष्ट हो जाता है और किसी भी कार्य के योग्य नहीं रहता। इसी प्रकार समुद्री कीट भी आलवण जल में काष्ठ को पर्याप्त मात्रा में क्षति पहुँचाते हैं। काष्ठ-नाशक कीटों का वर्गीकरण (५ च)* (समुद्री कीटों के अतिरिक्त) निम्न प्रकार से किया गया है।

(१) **'कोलियोप्टरा'** (भृंग)

- (अ) **'प्लेटीपोडाइडी'** (सूची-छिद्रक)
- (आ) **'स्कोलीटाइडी'** (सूची-छिद्रक)
- (इ) **'बौस्ट्रीचाइडी;** अनुवंश **'लिक्टाइडी'** (क्षोद-छिद्रक) और **'एनोबाइडी'** (फर्नीचर-छिद्रक),
- (ई) **'सिरैम्बीसाइडी'** (दीर्घ-श्रृंग-छिद्रक)
- (उ) **'बुप्रेस्टाइडी'** (चपटे-सिर छिद्रक)

(२) **'लेपीडोप्टरा'** (तितली)

1 Lictous. * पृष्ठ १०६ पर निर्देश-सूची देखें।

(३) **'हाइमैनोप्टरा'** (ततैया, मधुमक्खी और चींटी)
(४) **'डिप्टरा'** (मक्खी)
(५) **'आइसोप्टरा'** (दीमक)

(अ) **'मैस्टोटर्मीटाइडी'**
(आ) **'होडोटर्मीटाइडी'**
(इ) **'कैलोटर्मीटाइडी'**
(ई) **'रीनोटर्मीटाइडी'**
(उ) **'टर्मीटाइडी'**

उपरिलिखित नाशकारकों में काष्ठ को हानि पहुँचानेवाले अधिकांश कीट वर्ग संख्या (१) के **'कोलियोप्टरा'** (भृंग-छिद्रक कीट) और (५) **'आइसोप्टरा'** (दीमक) वर्ग के हैं। यद्यपि तितली, ततैया, मक्खी और चींटियों से भी काष्ठ को क्षति पहुँचती है, पर इनका आक्रमण परिरक्षोपचार की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि इनके लिए विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हो। आगे काष्ठ-छिद्रक कीट, दीमक और समुद्री कीटों का ही विस्तार से वर्णन किया गया है।

(क) छिद्रक कीट

छिद्रक कीट काष्ठ, बाँस और बेंत पर विशेषतः दो अवस्थाओं में आक्रमण करते हैं। एक तो हरी अवस्था में, अर्थात् काष्ठ के ४० प्रतिशत आर्द्रता में पहुँचने से पूर्व; ये आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक कहलाते हैं। दूसरे, शुष्क काष्ठ-छिद्रक, जो सूखी लकड़ी पर आक्रमण करते हैं।

आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक, अर्थात् गीली लकड़ी पर आक्रमण करनेवाले, सूची-छिद्रक ('पिनहोल बोरर') हैं; जो कि पूर्वकथित **'प्लेटीपोडाइडी'** और **'स्कोलीटाइडी'** वंश के हैं। सूचीछिद्रक के प्रौढ ('एडल्ट') लकड़ी में सुरंग बना देते हैं। उनके डिम्भ ('लारवा') लकड़ी को नहीं छेदते, किन्तु वे सुरंग की दीवारों में उत्पन्न **'एमब्रोसिया'** फुई से बने पदार्थों का सेवन करते हैं। ऐसी सुरंगों के किनारों का रंग काला या भूरा हो जाता है। साधारणतया लकड़ी पर इनके आक्रमण का समय ६ मास तक रहता है, इसके उपरान्त लकड़ी शुष्क हो जाने के कारण इनसे मुक्त हो जाती है। यदि लकड़ी के सौन्दर्य पर विशेष ध्यान न दिया जाय, तो उपयोगिता की दृष्टि से इस प्रकार की लकड़ी, जिस पर अधिक हानि न पहुँची हो, ग्रहण कर लेनी चाहिए।

'बौस्ट्रीचाइडी' वंश का 'बौस्ट्रीचस्' प्रजाति का छिद्रक, आर्द्रकाष्ठ-छिद्रक होता

है, जब कि इसके अनुवंश **'लिक्टाइडी'** और **'एनोबाइडी'** के छिद्रक शुष्क-काष्ठछिद्रक हैं। ये काष्ठ को बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

'लिक्टस्' जाति का छिद्रक क्षोदकारक होता है, अर्थात् इसकी बनायी सुरंगों से क्षोद अथवा सूक्ष्म बुरादा निकलता है। अतः इस कीट को अंग्रेजी में 'पौडर पोस्ट बीटल' कहते हैं। यह अनन्य प्रकार से उरुपाती काष्ठों पर ही आक्रमण करता है, क्योंकि यह काष्ठ-वाहिनी में, जो उरुपाती काष्ठों में ही होती हैं, अंडे देता है। इस प्रकार की वाहिनी शंकुधारी काष्ठों में नहीं होती। कुछ कार्य-कर्त्ताओं ने वाहिनी के व्यास और **'लिक्टस्'** के आक्रमण की मात्रा का अनुपात निकाला है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि उन जातियों के काष्ठों पर, जिनका वाहिनी व्यास ०.०९ मिलीमीटर से कम होता है, **'लिक्टस्'** आक्रमण नहीं करता। इसके डिम्भ खाद्य पदार्थ की खोज में और तदनन्तर आश्रय के लिए काष्ठ को छेद डालते हैं और जिस भाग को वे पचा नहीं सकते उसको चूर्ण में परिवर्तित कर निकाल देते हैं। अंत में वे जब प्रौढ़ अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तब क्षोद के साथ-साथ ही अन्य स्थानों पर आक्रमण करने के लिए बाहर निकल आते हैं। इनके डिम्भ('लारवा')लकड़ी को अन्दर ही अन्दर मधुजाल-सा बनाकर नष्ट कर देते हैं और गम्भीर अवस्था में लकड़ी का बाह्य स्तर केवल छिलके की तरह ही रह जाता है। **लिक्टस्** के डिम्भ का मुख्य खाद्य पदार्थ मण्ड ('स्टार्च') है और उसी का काष्ठ में अधिक मात्रा में होना इसके आक्रमण का कारण है। इन कीटों द्वारा अरोधी काष्ठों की हानि रस-काष्ठ तक ही सीमित रहती है और साथ ही साथ ऋतु और लकड़ी के सूखने की गति पर भी निर्भर है। यदि लकड़ी के सूखने में विलम्ब हो जाय या हरी लकड़ी को कटान के पश्चात् शीघ्र ही पानी में डुबो दिया जाय तो बाह्य काष्ठ (रसकाष्ठ) की जीवितक कोशाएँ अपना कार्य करते रहने पर भी उसमें उपस्थित मण्ड को दूसरे पदार्थों में परिवर्तित कर देती हैं, जिसके कारण काष्ठ छिद्रकों से प्रतिरक्षित हो जाता है। इसके विपरीत यदि काष्ठ शीघ्रता से सुखा दिया जाय, तो जीवितक कोशा मर जाती हैं और तत्पश्चात् काष्ठ इन छिद्रकों का ग्रास बन जाता है। वसन्त ऋतु में ये कीट सक्रिय रहते हैं और इसी ऋतु के अन्त और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में पर-सहित इनके प्रौढ़ छोटे छिद्र(१।१६ इंच से १।१२ इंच तक व्यास के) बनाकर बाहर निकल आते हैं और लकड़ी के चट्टे के नीचे बुरादा एकत्रित होने लगता है। कुछ दशाओं में इनका जीवनचक्र दो-दो वर्ष तक भी चलता है और उसी लकड़ी पर बारंबार आक्रमण होते रहते हैं। जो लकड़ी और बाँस मण्ड से रहित होते हैं और जिनकी आर्द्रता उक्त प्रतिशत से कम होती है, साधारणतः

लिक्टस् छिद्रकों से विमुक्त रहते हैं। यदि ये पदार्थ कटान के पश्चात् शीघ्र ही काष्ठ-ताल ('लौग पौंड') में संचित किये जायँ तो इन छिद्रकों से विमुक्त हो जाते हैं।

'**एनोबाइडी**' वंश के छिद्रक आवासगृह या उपस्कर की लकड़ी पर आक्रमण करते हैं। अतः इनको उपस्कर या मृतक-घड़ी के छिद्रक ('फरनीचर और डैथ वॉच वीटल') कहते हैं। इनके डिम्भ उपस्कर और रेडियो के बक्सों की लकड़ी को छेदकर एक प्रकार की टकटकाती ध्वनि करते हैं, जिससे इनका नाम 'मृतक-घड़ीछिद्रक' रखा गया है। ये छिद्रक शंकुधारी और उरुपाती दोनों प्रकार के काष्ठों को हानि पहुँचाते हैं। ये रसकाष्ठ और सारकाष्ठ को भी समान प्रकार से नष्ट कर देते हैं।

'**सिरैम्बीसाइडी**' वंश के छिद्रक लम्बी मूँछोंवाले और बड़े होते हैं। इसलिए इनको दीर्घश्रृंग छिद्रक कहते हैं। ये भी तुच्छ कीट हैं जो कई प्रकार के कोमल अथवा कठोर काष्ठों पर शुष्क अवस्था में आक्रमण करते हैं।

और भी अन्य प्रकार के छिद्रक हैं जिनके द्वारा काष्ठ को क्षति पहुँचती है, परन्तु पूर्वोक्त छिद्रकों का आक्रमण बड़े महत्त्व का है। चित्र २२, २३ में कुछ छिद्रक कीट दिखलाये गये हैं।

(ख) दीमक

भारतवर्ष-जैसे उष्ण देश में दीमक से काष्ठ को बेहद क्षति पहुँचती है, इसी लिए इन कीटों को विशेष महत्त्व दिया गया है। ये उष्ण और शीतोष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। हिमालय और अधः हिमालय की पहाड़ियों के सिवा अन्य सभी स्थानों में ये देख पड़ते हैं। बतलाया गया है कि १०° सेंटीग्रेड की औसत वार्षिक समताप रेखावाले उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध तक इन दीमकों की उपस्थिति की सीमा है। दीमक केवल कुछ ही चिरस्थायी काष्ठों को छोड़ शेष सभी काष्ठों को, जो भूमि तथा दीवारों के स्पर्श में हों, शीघ्र ही चाट जाती हैं और इन्हीं स्रोतों से मिट्टी की बनी सूक्ष्म सुरंगों द्वारा प्रयोग किये गये निर्माण काष्ठों पर आक्रमण करती है। एक साधारण गणना के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलीफोर्निया-जैसे छोटे प्रदेश में दो वर्ष में दीमक द्वारा चार लाख डालर की हानि हुई है। भारत में इससे हुई काष्ठ-हानि की कोई विशेष गणना नहीं की गयी, पर अनुमान है कि यहाँ भी इससे करोड़ों रुपयों की हानि प्रति वर्ष होती है।

दीमक को भ्रम से श्वेत चींटी भी कहते हैं। पर वास्तव में न तो ये सच्ची चींटी ही हैं और न यथार्थ में श्वेत ही हैं। ये सामाजिक कीट हैं और मण्डलों में रहते हैं। एक पूर्ण मंडल में एक राजा और एक रानी, योद्धा, कर्मी, डिम्भ और अंडे रहते हैं।
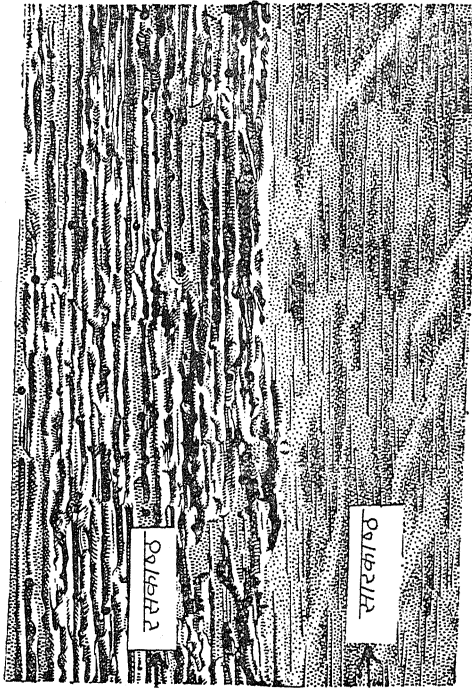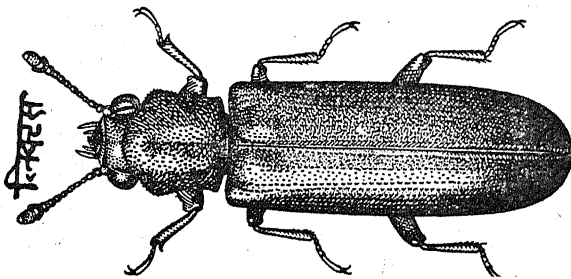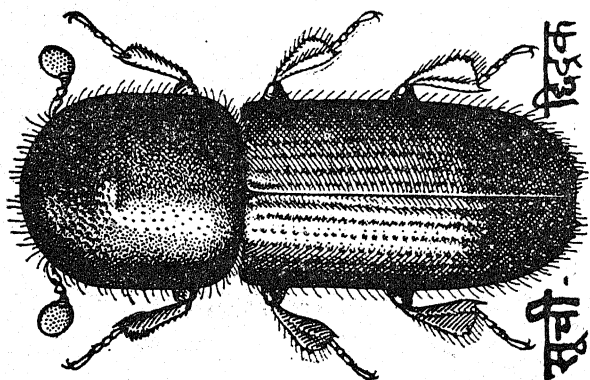
चित्र २२—काष्ठ-छिद्रक कीटों के दृश्य और उनके द्वारा हुई काष्ठ की क्षति।

चित्र २३—काष्ठ-छिद्रक कीटों के दृश्य और उनके द्वारा हुई काष्ठ की क्षति।

इनमें विशेष कर तीन जातियाँ होती हैं, अर्थात् प्रजनक, सैनिक और कार्यकर्त्ता। दीमक-मंडल के आरम्भ काल में मुख्य राजा और रानी प्रजनन का कार्य करते हैं। ये ही सम्पूर्ण मण्डल के पूर्वज हैं। सर्वप्रथम रानी थोड़े ही अंडे देती है, कुछ समय पश्चात् उसका अण्डाशय शनैः-शनैः लम्बाई में बढ़ता जाता है और साथ ही उसकी प्रजनन शक्ति भी बढ़ जाती है, जिससे वह हजारों की संख्या में अंडे देने लगती है। यद्यपि दीमक में द्वितीय अथवा गौण राजा-रानी बनाने की योग्यता होती है, पर यदि पहले स्थापित मंडल को पर्याप्त मात्रा में खाद्य और आर्द्रता मिलती रहे और वह अपने शत्रु (चींटी इत्यादि) से बच जाय तो वह मंडल अनन्त काल तक चालू रहता है।

दीमक मुख्यतः दो प्रकार की होती है। एक तो काष्ठ-निवासी और दूसरी अन्तर्भूमिक। काष्ठ-निवासी दीमक पूर्ण मण्डलों में गृहों, रेल-डब्बों और नौ-काष्ठों में वास करती है। अन्तर्भूमिक दीमक धरती के नीचे रहती है और वहीं से मिट्टी की सुरंगें बनाकर बाह्य-स्थित काष्ठ पर आक्रमण करती है। फर्श की दरारों से इसकी सुरंगें निकलकर दीवारों में बहुत दूर तक चढ़ती दिखाई देती हैं। इस प्रकार की दीमक काष्ठ-खंभों, रेलवे-स्लीपरों और मकानों की दीवारों पर लगे काष्ठों पर आक्रमण करती पायी गयी है। काष्ठनिवासी दीमक भी दो प्रकार की होती हैं, अर्थात् आर्द्र-काष्ठ दीमक, जो गीली लकड़ी या सड़े काष्ठ को नष्ट करती है। दूसरी शुष्क-काष्ठ दीमक, जो सूखी लकड़ी को पसन्द कर वहीं अपना वास-स्थान बना लेती है। यही क्षोदकारक दीमक भी कहलाती है। यह १० प्रतिशत से कम आर्द्रता-वाली लकड़ी पर ही आक्रमण कर सकती है।

दीमकों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त (५ छ) किया गया है।

(अ) **काष्ठ-निवासी दीमक** (अधिकांश 'कैलोटर्मीटिडी' वंश की)।

(१) **आर्द्रकाष्ठ दीमक**—

(क) **जूटमौंपसिस्** और **प्रोरंहिनोटर्मस्** प्रजाति;

(ख) **पैरोनियोटर्मस् सिम्प्लिसोकौर्निस्** (शुष्क काष्ठ दीमक परिवर्त)।

(२) **शुष्ककाष्ठ दीमक**—(**कैलोटर्मस्** प्रजाति)।

(क) क्षोदकारक दीमक (**क्रिप्टोटर्मस्, कैल्कैरीटर्मस्**);

(ख) शुष्ककाष्ठ दीमक (उपप्रजाति **कैलोटर्मस्**);

(आ) **भूमिनिवासी दीमक** (**रिनोटर्मीटिडी** और **टर्मीटिडी** वंश)।

(१) अन्तर्भूमिक (सब्टरेनियन) दीमक (**कौप्टोटर्मस्, रैटीक्यूलीटर्मस्, हैटीरोटर्मस्**)।

(२) मरुस्थलीय दीमक।
(३) मृत्स्तूपनिर्माता दीमक।
(४) पट्टकोष्ठनिर्माता दीमक।

रानी दीमक के अण्डों से कुछ ऐसे शिशु ('निम्फ') भी उत्पन्न होते हैं, जो बाद में बढ़कर प्रौढ़, योद्धा, कर्मी और सपक्ष (परवाली) दीमक बन जाते हैं। सपक्ष दीमक ही बाद में प्रजननकर्ता बनती है। योद्धाओं का कार्य मण्डल की रक्षा करना है। ये बिना परवाले बन्ध्य कीट होते हैं और इनके अकार्यात्मक नेत्र होते हैं। इनकी लम्बाई $\frac{1}{4}$ इंच होती है। अन्तर्भूमिक दीमक $\frac{3}{8}$ से $\frac{1}{2}$ इंच (शुष्ककाष्ठ दीमक) और (आर्द्र-काष्ठ दीमक) $\frac{3}{4}$ इंच होती है। इसका सिर बड़ा व रँगीला और जबड़े भारी होते हैं जिनसे यह केवल युद्ध ही कर सकती है, लकड़ी खोदने और खिलाने का कार्य इससे नहीं होता। यदि अकस्मात् कहीं इसकी मिट्टी की सुरंग या स्तूप टूटकर खुल जाय तो इसके दल खुले स्थान को रोककर बन्द कर देते हैं और अपने जबड़ों से आक्रमणकर्त्ताओं का संहार करने का प्रयत्न करते हैं।

अन्तर्भूमिक दीमक-मण्डल में कर्मी अत्यधिक संख्या में होते हैं। योद्धाओं की तरह ये भी बन्ध्य, बिना परवाले और अन्धे होते हैं। इनका हलके रंग का शरीर $\frac{1}{4}$ इंच से कम लम्बा होता है। यद्यपि इनके जबड़े अदृश्य होते हैं, पर ये लकड़ी के टुकड़ों को बड़ी तेजी से कुतर डालते हैं। अन्तर्भूमिक दीमक की यही जाति है जो सर्वत्र काष्ठ-विनाश करती है। मण्डल के लिए सम्पूर्ण निर्माण-कार्य, गृह, और सुरंगें बनने इत्यादि का भार कर्मियों पर ही रहता है। खाद्य पदार्थ का संग्रह करना, छोटी दीमकों को खिलाना और परस्पर एक-दूसरे को रगड़ते रहना भी इनका कार्य रहता है। रगड़ द्वारा ये एक-दूसरे के शरीर से उत्पन्न रस का विनिमय करते हुए बिलों से उत्पन्न फुई के लेप से, जोइ नके शरीर पर चिपक जाती है, रहित होकर स्वच्छ हो जाते हैं। शुष्क और आर्द्र काष्ठ की दीमक में इस प्रकार की कर्मी जाति नहीं होती, अप्रौढ़ शिशु ही मंडल का विभिन्न कार्य करते हैं और बाद में ये ही मुक्त होकर योद्धा व प्रजनक बन जाते हैं। ये सपक्ष (परवाले) प्रजनक नम-उष्ण ऋतु में मण्डल से निकलकर बाहर उड़ने लगते हैं। इनका शरीर एक इंच तक लम्बा, चपटा और गहरे रंग का होता है और इनके चक्षु संयुक्त होते हैं। ये उड़कर हवा के झोंके से दूर तक निकल जाते हैं और भूमि पर उतरकर अपने पर झाड़ देने के पश्चात् जोड़ा बना लेते हैं। ये भूमि को खोदकर नीचे चले जाते और भावी राजा और रानी बन जाते हैं। यह अवस्था अन्तर्भूमिक दीमक की है। यदि इसी प्रकार का
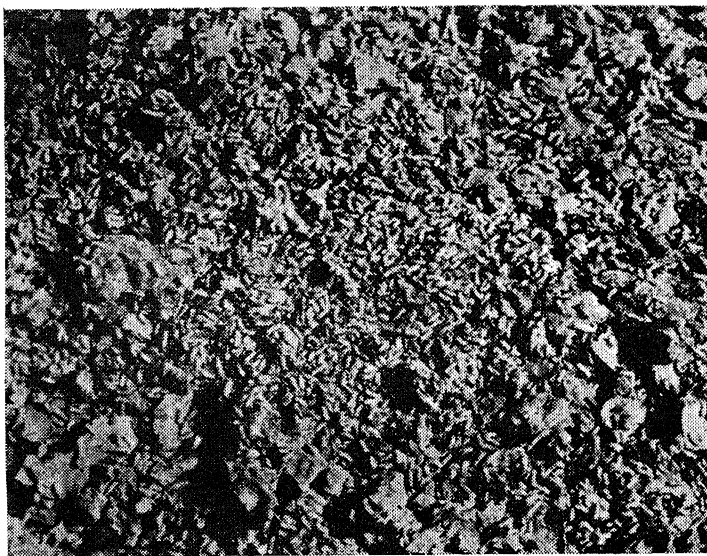
चित्र २५--काष्ठ पर दीमक-समूह, पृ० ९१।

रहती है। कोषाधु और लगुडि से मिलकर ही कोशाभित्ति अथवा काष्ठसार बनता है। वह प्रत्यक्ष रूप से कोषाधु का परिपाचन नहीं कर सकती और उसका खाया हुआ काष्ठचूर्ण, उसकी अँतड़ियों में विद्यमान हजारों प्रजीवाएँ ('प्रोटोजा') पचाती हैं। ये प्रजीवाएँ प्रायः सभी प्रकार की सामान्य दीमकों में पायी जाती हैं और इन्हीं से दीमक को पौष्टिक पदार्थ प्राप्त होता है।

दीमक खुली हवा से दूर ही रहती है और एकान्त स्थान पसन्द करती है। केवल उड़ने के समय या प्रजनन अवस्था में वह बाहर निकलती है और तभी इसकी उपस्थिति का पता लगता है। यह काष्ठ को अन्दर ही अन्दर कुरेद डालती है और बाह्य स्तर को छोड़ देती है जिससे इसकी उपस्थिति का पता न लग सके। यदि यह स्तर कहीं से खुल भी जाय तो यह तुरन्त अपने शरीर से उत्पन्न रस से मिट्टी और धूल का लेप बनाकर, उसे बन्द कर देती है। दीमक यदि एक बार किसी भवन में प्रवेश कर जाय तो उसका उन्मूलन करना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य हो जाता है। दीमक के रहन-सहन के लिए जितनी आर्द्रता और उष्णता की आवश्यकता होती है, उतनी ही काष्ठ-नाशक कवकों के विकास के लिए भी उपयुक्त होती है। दीमक की सुरंगें भी कवकों के सूत्रजाल और बीजाणुधर के उत्पन्न होने की अनुकूल दशाओं की सहायक होती हैं। अतः काष्ठविनाश बहुधा दीमक और कवकों के सम्मिलित आक्रमण द्वारा भी होता है।

भारत में कुछ काष्ठ दीमक-आक्रमण-रोधी हैं। काष्ठों से प्रयोजन सारकाष्ठ से ही है, क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है, सभी काष्ठों का रसकाष्ठ अस्थायी होता है और कवक तथा कीटों के आक्रमण को रोक नहीं सकता। टीक (सागौन) में यह रोधन शक्ति 'टैक्टाक्यूनोन' रसायन की उपस्थिति के कारण बतायी गयी है। साल, शीशम आदि अन्य काष्ठों को कुछ रासायनिक पदार्थों द्वारा यह रोधन-शक्ति प्राप्त होती है। पर अधिकांश काष्ठ, दीमक के आक्रमण को रोक नहीं सकते, अतः दीमक के आक्रमण से इनकी रक्षा करने का साधन परिरक्षोपचार ही है।

(ग) समुद्री छिद्रक कीट

समुद्रकीट, समुद्र के लवणयुक्त अथवा नमकीन जल में पाये जाते हैं। समुद्रतट के घाटों पर अथवा अन्य सामुद्रिक स्थानों पर निर्माण-कार्य में प्रयुक्त किये गये काष्ठ-भागों और खम्भों को समुद्री छिद्रक कीट अत्यन्त हानि पहुँचाते हैं।

इस विषय पर प्रामाणिक वर्णन (५ ज) सन् १९३० में, जब कि डच लोगों के

समुद्री बाँधों पर नौ-कीटों का आक्रमण व्यापक रूप से हुआ था, उपलब्ध है। १९३३ में एक डच कार्यकर्त्ता सैलियस् ने इस विषय पर प्रथम निबन्ध लिखा था। संसार के सभी प्रमुख बन्दरगाहों पर इनके इस प्रकार के आक्रमणों का उल्लेख है। इस बारे में कई लेख प्रकाशित होने पर भी इन कीटों के विषय में पूर्ण जानकारी अब भी प्राप्य नहीं है।

ये कीट लगभग सभी काष्ठों पर आक्रमण करते हैं। पर कुछ बिरले काष्ठ एसे भी हैं जिन पर इनका प्रभाव कम होता है। इनमें एक तो प्रख्यात **ग्रीनहार्ट** (**'नैकटेन्ड्रा रोडिआइ'**)[1] है, जो डच और ब्रिटिश गायना में पाया जाता है, और दूसरा दक्षिण-पूर्व एशिया का **एर्टोकार्पस गोमीजियानो**[2] जाति का काष्ठ है। ग्रीन-हार्ट की सामुद्रिक कीटों के रोधन की शक्ति का कारण उसमें एक प्रकार के क्षाराभ ('एल्केलौइड'[3]) 'बैब्रीन' की उपस्थिति है। दूसरा कारण काष्ठ का उसके आन्तर 'सिलिका' होना है। ये समुद्री छिद्रक कीट संसार के प्रायः सभी सागरों में पाये जाते हैं, पर उष्ण प्रदेशों में शीत स्थानों की अपेक्षा अधिक प्रबल और सक्रिय होते हैं। उष्ण समुद्रों में इनकी संख्या भी अधिक होती है।

इनके द्वारा हुई हानि की कोई विशेष गणना प्राप्त नहीं है, पर अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को की खाड़ी में सन् १९१७ से १९२१ तक, २.५ करोड़ डालर की हानि का अनुमान लगाया गया था। ब्रिटिश कोलम्बिया के कैनरी बन्दरगाह में सन् १९३२ में १ करोड़ डालर की हानि समुद्रतट-घाट के काष्ठ-खम्भों को हुई थी। अनुमान है कि भारतवर्ष में भी इनके द्वारा निर्माण-काष्ठ को लाखों रुपयों की वार्षिक क्षति पहुँचती होगी, क्योंकि यहाँ का पूर्वी और पश्चिमी समुद्रतट लगभग २,००० मील से भी अधिक है।

सामुद्रिक छिद्रक कीटों का निम्नलिखित वर्गों में विभाजन किया गया है—

(१) **'मौलुस्कन' छिद्रक**—

(अ) **'टैरीडिनैडी'** वंश, जिसमें 'टेरेडो' और 'बाँकिया' जाति के छिद्रक सम्मिलित हैं।

(आ) **'फोलाडिडी'** वंश, जिसमें 'मार्टिज़िया' छिद्रक हैं।

1 Nectandra Rodii. 2 Aerttocarpus gomigiano.
3 Alkaloid Babrine.

(२) **'क्रस्टेशियन्' छिद्रक**—

(अ) **'आइसोपोडा'**, जिसमें 'लिम्नोरिया' और 'स्फेरोमा' छिद्रक हैं;

(आ) **'एम्फीपोडा'** जिसमें 'चैलूरा' छिद्रक हैं।

इनका वर्णन सूक्ष्म प्रकार से निम्नलिखित प्रकरणों में दिया गया है—

(१) मौलुस्कन छिद्रक

'मौलुस्कन' छिद्रक कीटों के 'टैरीडिनैडी' वंश की दो मुख्य प्रजातियों, 'टैरेडो' और 'बाँकिया' को नौ-कृमि ('शिपवर्म') कहते हैं। इनका प्रजनन अंडों से होता है जो डिम्भ में परिवर्तित होकर स्वतन्त्रता से पानी में तैरते हैं। यदि कोई काष्ठ पानी में डूबा हो तो उसमें उपयुक्त स्थान ढूँढ़कर ये वहाँ बस जाते हैं। यही इनके आक्रमण का आरम्भ है। उस काष्ठ में अनुकूल दशा प्राप्त होने पर इनका विकास होता रहता है और ये अपने सारे जीवन भर उसी में वास करते रहते हैं। इन डिम्भों के द्वि-पुट प्रकवच ('बाइ-वाल्व सॅल्स्')[1] होते हैं, जिनसे ये अपना बचाव करते हैं। ये डिम्भ काष्ठ में चिपटकर उसे कुरेदना आरम्भ कर देते हैं और काष्ठ के स्तर में अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र बनाकर अन्दर ही अन्दर अपना विकास करते हैं। इनका कृमि-आकार अन्दर को बढ़ता जाता है, अतः इनको नौकृमि कहते हैं। पहले यह ज्ञात हुआ था कि ये कीट अपनी सुरक्षा के ही हेतु काष्ठ में प्रवेश करते हैं, परन्तु बाद में पता लगा कि ये काष्ठ के चूर्ण को पचा भी सकते हैं और साथ ही साथ समुद्र में तैरते हुए मन्दप्लवक ('प्लैंक्टन') का भी भक्षण करते रहते हैं। अपने विकास के साथ ये नौकृमि काष्ठ के अन्तः सुरंग को भी बढ़ाते रहते हैं और सुरंग की दीवारों को कठोर चूर्णीय पदार्थ से अन्तः स्तरित कर देते हैं। काष्ठ का चूर्ण इन कृमियों के द्विपुट-प्रकवचों द्वारा उत्पन्न होता है, जिनके किनारों पर सूक्ष्म दन्तों की पंक्ति रेती की तरह होती है और काष्ठ के अन्दर की ओर आगे को बढ़ती रहती है। इनका पृष्ठभाग समुद्र की ओर रहता है और उसकी दो नलिकाएँ, जो निनाल ('साइफन') का कार्य करती हैं, छोटे प्रवेशछिद्र पर ही स्थित रहती हैं। इनमें से एक नलिका द्वारा खाद्य पदार्थ व श्वास-प्रक्रिया के लिए जल ये अपने शरीर में लेते है, और दूसरी नलिका अपचित काष्ठचूर्ण और निरर्थक पदार्थ बाहर फेंक देती है। शत्रुओं का आक्रमण होने पर ये नलिकाएँ अन्दर की ओर खींच ली जाती हैं और प्रवेशछिद्र शरीर के एक पृष्ठवर्ती

1 Bivalve cells.

कठोर अंग से बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार ये कीट काष्ठ में प्रविष्ट अंग की रक्षा करते रहते हैं। इनका विकास समुद्री जल की लवण-मात्रा पर भी निर्भर रहता है। यह कहा गया है कि जल में लवण की मात्रा ४° प्रति हजार से कम होना इनके लिए घातक होता है। यदि समुद्रजल में लवण पदार्थ की कमी हो जाय तो ये अपने पृष्ठ भाग से स्वच्छ जल को अन्दर घुसने नहीं देते। यदि इनके विकास के लिए अनुकूल दशा प्राप्त हो, तो ये कृमि परिमाण में १ फुट से लेकर ४ फुट तक लम्बे और १ इंच व्यास की गोलाई तक बढ़ जाते हैं। आरम्भ में ये कीट काष्ठ के रेशे की लम्ब दिशा में और तदनन्तर रेशे के समानान्तर छिद्र बनाते हैं, जिससे काष्ठ मधुजाल की तरह अन्दर ही अन्दर नष्ट हो जाता है और अन्त में थोड़ा ही दबाव पड़ने पर चूर-चूर हो जाता है। ये कीट अपना आक्रमण समुद्रतल पर ही अधिक करते हैं।

मौलुस्कन छिद्रक के **'फोलाडिडी'** वंश की प्रजाति, 'मार्टीज़िया' के कीट पुटिका के आकार के होते हैं और प्रौढ़ अवस्था में भी सम्पूर्ण द्वि-पुट कवच से ढँके रहते हैं। ये लम्बाई में २.५ इंच और गोलाई में १ इंच व्यास से अधिक नहीं होते, पर इनके द्वारा भी काष्ठ को अत्यन्त हानि पहुँचती है।

(२) क्रस्टेशियन् छिद्रक

क्रस्टेशियन् छिद्रक, मौलुस्कन् छिद्रक से आकार और शारीरिक बनावट में भिन्न होते हैं। काष्ठ पर आक्रमण की इनकी रीति भी भिन्न होती है। ये कीट नौकृमि की तरह काष्ठ के अन्दर अपने को पूर्णतः बन्द नहीं रखते, पर स्वतन्त्रता से बाहर-भीतर फिरते रहते हैं। इनके शिशु और प्रौढ़ काष्ठ को खोदकर बहुत अन्दर तक नहीं जाते। ये इतनी संख्या में आक्रमण करते हैं कि काष्ठ का बाह्य स्तर मधु-जाल की तरह बन जाता है और पानी की लहरों से टूटकर गिर जाता है। उसी स्थान पर बार-बार आक्रमण होते रहने से काष्ठ वहाँ पतला होकर भार न सँभाल सकने के कारण गिर जाता है। इन कीटों का आक्रमण समुद्रतल की अपेक्षा ज्वार-भाटे के मध्यवर्ती स्थान पर अधिक रहता है और वहाँ पर स्थित काष्ठ-खम्भ घंटा-काँच ('अवर-ग्लास') के आकार का बन जाता है, अर्थात् आक्रमण के स्थान पर संकीर्ण और ऊपर-नीचे चौड़ा रहता है। नौकृमि की अपेक्षा इन कीटों के आक्रमण से काष्ठ शनैः-शनैः नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि एक १४ इंच व्यासवाले खम्भे को क्रस्टेशियन् छिद्रक द्वारा नष्ट होने में एक वर्ष लगेगा, तो उसी को मौलुस्कन छिद्रक द्वारा नष्ट होने में कुछ महीने ही लगेंगे। इन कीटों को पानी में अधिक लवण

की आवश्यकता होती है। पानी की मात्रा में लवण का ६.५०अंश प्रति हज़ार से कम होना कीटों के लिए घातक होता है। भारत के समुद्री तटों के क्रस्टेशियन् छिद्रकों की तीन निम्नलिखित प्रजातियाँ हैं।

लिम्नोरिया प्रजाति के छिद्रक भिन्न प्रकार के जलवायु में पाये जाने के कारण हर ऋतु में क्रियाशील रहते हैं। अतएव ये लकड़ी को बहुत नष्ट करते हैं। इनका शरीर खण्डोंवाला होता है और इनकी टाँगों के सात जोड़े होते हैं। इनके तीव्र अंकुश नखर होते हैं, जिनसे ये काष्ठ में दृढ़ता से चिपट सकते हैं। इनके पतले गलफड़ ('गिल्स्') होते हैं जो श्वासक्रिया और तैरने में सहायता देते हैं। इनके मुँह में दन्त-जम्भ ('मैनडिबल्स्') का एक जोड़ा होता है, जिससे ये काष्ठ को चबाकर खा सकें। इनके शरीर के पृष्ठ भाग में एक चौड़ी पुच्छ-पात्रिका रहती है जो छिद्र को ढँककर बाहरी आक्रामक को रोकती है। इनके अण्डे मादा की अण्डधानी में पैदा होकर शिशु अवस्था में ही काष्ठ खोदने का कार्य करने लगते हैं। लिम्नोरिया छिद्रक प्रौढ़ अवस्था में १/८ से १/४ इंच तक लम्बे होते हैं और इनकी बिरली ही सुरंगें १/२ इंच से गहरी होती हैं। इसका कारण यह है कि इनमें श्वास के लिए पानी दूर तक खींचने की शक्ति नहीं होती।

स्फैरोमा प्रजाति के छिद्रकों की बनावट साधारणतः लिम्नोरिया की तरह होती है, पर ये अधिक बड़े और बलिष्ठ होते हैं। इनकी लम्बाई १/२ इंच और चौड़ाई १/४ इंच तक होती है। इनकी सुरंगें भी १/२ इंच व्यास तक चौड़ी होती हैं और ३ अथवा ४ इंच की गहराई की होती हैं। यह माना गया है कि ये छिद्रक मुख्यतः सुरक्षा के ही हेतु काष्ठ को खोदते हैं। ये कभी-कभी स्वच्छ जल में भी कार्य करते पाये गये हैं।

चैलूरा प्रजाति के छिद्रक उष्ण व गुनगुने जल में पाये जाते हैं। ये लिम्नोरिया से कुछ ही बड़े होते हैं और उन्हीं के साथ-साथ रहते हैं। इनके द्वारा भी काष्ठ को पर्याप्त मात्रा में क्षति पहुँचती है।

चित्र २६ में मौलुस्कन और क्रस्टेशियन् छिद्रक दर्शाये गये हैं और चित्र २७, २८ में कुछ ऐसे काष्ठ दिखाये गये हैं, जिन पर इन छिद्रकों ने आक्रमण किया है।

भारत में लगभग एक दर्जन छोटे-बड़े बन्दरगाह हैं। उसके समुद्री व्यापार की वृद्धि होती जा रही है और आशा है कि यह कई गुना और भी बढ़ जायगा। पंचवर्षीय योजनाओं में इसे विशेष महत्त्व दिया गया है। काष्ठ, बन्दरगाहों के निर्माण के लिए, हर प्रकार की छोटी-बड़ी नौकाओं के लिए एवं मछलीमार कैटेमैरोन बेड़े के लिए अति ही उपयोगी वस्तु है। अतएव इन कीटों के आक्रमण से काष्ठ की रक्षा करना अत्यन्त

ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस विषय पर जितनी जानकारी अब तक प्राप्त हुई है, वह यह है कि कोई भी भारतीय काष्ठ इन सामुद्रिक छिद्रक कीटों से सुरक्षित नहीं रह सकता। सभी बन्दरगाहों में ये कीट विद्यमान हैं और काष्ठ का बेहद नाश करते हैं (चित्र २९), विशेष कर कोचीन बन्दरगाह में।

चित्र २९—मौलुस्कन तथा क्रस्टेशियन छिद्रक (दो तरह के कीड़े)

साधारणतः कोचीन बन्दरगाह के अतिरिक्त अन्य सभी बन्दरगाहों में क्रियोज़ोट तथा एस्क्यू द्वारा उपचारित काष्ठों के प्रयोग से इन कीटों के आक्रमण का प्रतिरोध करने में सफलता मिली है।

पूर्वोक्त समस्या के महत्त्व के कारण वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अन्तर्गत एक विकास योजना तैयार की गयी है, जिसका नाम **"सामुद्रिक कीटों से काष्ठ परिरक्षण शाखा"** है। इसमें समुद्रतटीय विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाओं और केन्द्रीय सरकार के सहयोग से कार्य किया जा रहा है। प्रारम्भिक अनुसन्धान के परिणामों से यह पता चला है कि बम्बई बन्दरगाह में **टोरैडो, मार्टीजिया** और **स्फैरोमा;** मद्रास में **टोरैडो, बाँकिया, मार्टीजिया, स्फैरोमा** और चैलूरा जाति के तथा विशाखापत्तनम् में **मार्टीजिया, स्फैरोमा** और **लिम्नोरिया** जाति के समुद्री छिद्रक कीट विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त **'बारनेकल्स्'** भी एक प्रकार के सामुद्रिक जीवाणु हैं जो काष्ठ के बाह्य स्तर पर चिपक जाते हैं। ये नावों और जहाजों के किनारों व तल में चिपट्कर उनके वेग को प्रति ६०० से १००० मील की यात्रा करने में ३ 'नॉट्स्' के लगभग कम कर देते हैं। (एक नॉट ६०८० फुट के तुल्य होता है)

अतः इन समुद्री कीटों और जीवाणुओं के आक्रमणों से काष्ठ की रक्षा करना राष्ट्र के लिए एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य है। भारतवर्ष के नाविक व्यापार की उन्नति,
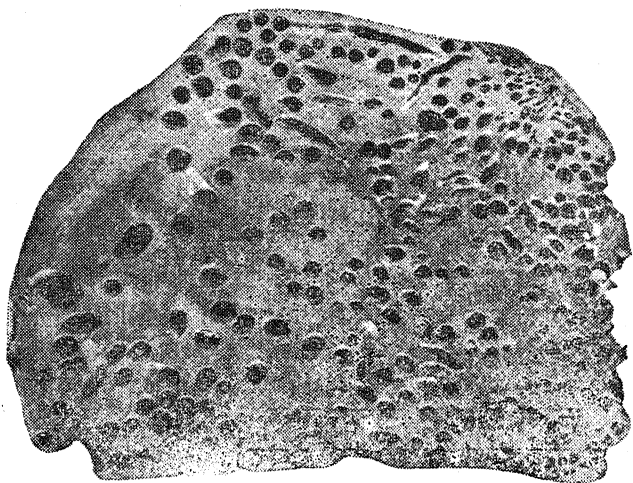
चित्र २७—उक्त कीड़ों द्वारा काष्ठ की क्षति।
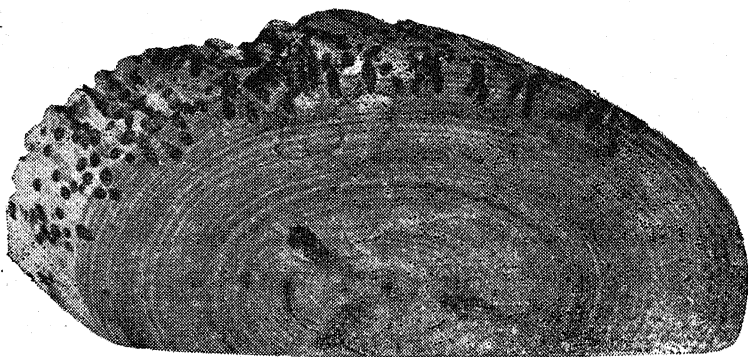
चित्र २८—उक्त कीड़ों द्वारा काष्ठ की क्षति।

इन समुद्री कीटों और जीवाणुओं-विषयक ज्ञान और इनके आक्रमण से काष्ठ का बचाव करने की उपयुक्त विधियों के विकास पर निर्भर है।
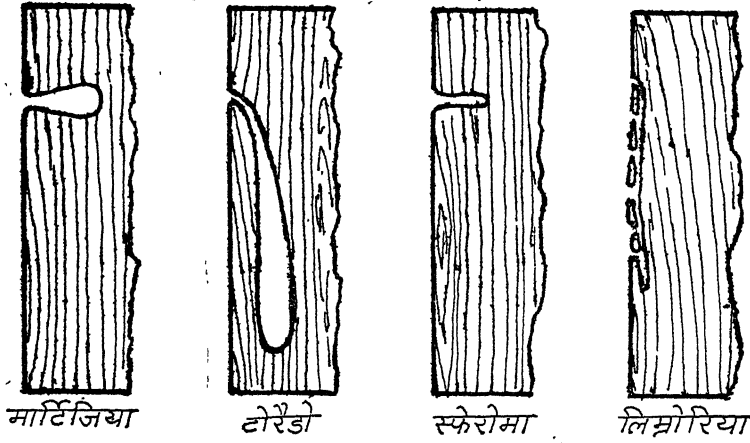
चित्र २९—सामुद्रिक छिद्रकों द्वारा काष्ठ पर हुए आक्रमण के लक्षण।

(३) अग्नि

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, कवक और कीटों द्वारा नष्ट होने के अतिरिक्त लकड़ी को अग्नि द्वारा भी गंभीर हानि पहुँच सकती है। इसका यह कारण है कि इसमें अधिकांश कोषाधु होता है जो कि प्रज्वलनशील वस्तु है। लकड़ी के अग्नि-सम्बन्धी प्राकृतिक अवरोध के परीक्षणों से पता चला है कि यद्यपि प्रारम्भ में सब लकड़ियाँ अग्नि पकड़ती हैं, जब कि वे उच्च ताप में प्रविष्ट हों, पर अग्नि से नष्ट होने की मात्रा लकड़ी की जाति, बनावट, घनत्व, छिद्रमयता, आर्द्रता और अन्तर्-रासायनिक वस्तु पर निर्भर रहती है। भिन्न-भिन्न काष्ठों की प्राकृतिक अग्नि-रोधन शक्ति का विवरण अगले भाग ३, अध्याय ५ में दिया गया है (सारणी १५ देखिए)।

यह निःसन्देह सत्य है कि जलने से पहले लकड़ी शुष्क होनी चाहिए। स्वस्थ लकड़ी की अपेक्षा सड़ी लकड़ी अधिक सरलता से जलती है। लगभग २००° सेंटीग्रेड तापक्रम पर शुष्क लकड़ी को जलने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है।

२७५° सेंटीग्रेड पर लकड़ी शनैः-शनैः बाह्य स्तर पर प्रांगारित हो जाती है और तदनन्तर प्रज्वलित होने लगती है। ४००° सेंटीग्रेड पर वह शीघ्रता से जलने लगती है। यदि जलती रहे तो उसका तापक्रम १०००° सेंटीग्रेड से अधिक बढ़ जाता है। इस तापक्रम पर काष्ठ के प्राकृतिक अग्निरोधक गुण का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और सभी जाति के काष्ठों का ज्वलन समान ही होता है। इस अवस्था में काष्ठ की जाति की अपेक्षा उसकी मोटाई अधिक महत्त्व रखती है। भारी काष्ठ-रचना ('मिल टाइप् कन्स्ट्रक्शन्') भवन-निर्माण के लिए अग्नि-रक्षा के उद्देश्य से अति उपयोगी सिद्ध हुई है। कोई भी काष्ठ, जिसकी मोटाई ६ इंच × ६ इंच से अधिक हो, अग्नि के विरुद्ध लोहे से भी अधिक सुरक्षित माना जाता है। लोहा या इस्पात अधिक तापक्रम पर मुड़ जाता है, पर मोटी लकड़ी या बल्लियाँ बाह्य स्तर पर प्रांगारित होने के कारण अल्प ज्वलनशील हो जाती हैं, क्योंकि प्रांगार गर्मी का कुसंवाहक है। इसी कारण स्थूल काष्ठ अधिक समय तक शक्तिशाली बना रहता है।

निर्माणक्षेत्र में बारंबार यही अनुभव प्राप्त हुआ है कि केवल अदाह्य पदार्थ का प्रयोग करने मात्र से ही अग्नि से सुरक्षा नहीं हो सकती। गृहों में अग्नि लगने का आरम्भ तेल, कपड़ा, कागज, घास, फूस इत्यादि शीघ्रदाह्य ईंधन-पदार्थों से होता है। तत्पश्चात् यदि बचाव के साधन प्राप्य न हों तो अग्नि सम्पूर्ण गृह को लपेट में ले लेती है, चाहे घर काष्ठ अथवा अन्य निर्माण-वस्तु—लोहा, सीमेंट इत्यादि किसी भी पदार्थ का बना हो। इसलिए जल्द आग पकड़नेवाली वस्तुएँ ही अग्नि का कारण बनती हैं और पूर्वोपाय ही अग्नि से बचने का एक मात्र साधन है।

काष्ठ का अग्नि से नष्ट होना उतने महत्त्व का नहीं, जितना कवकों और कीटों से। कवक और कीट सर्वत्र विद्यमान हैं और उनके द्वारा शनैः-शनैः क्षति पहुँचती है। अग्नि प्रायः असावधानी से लगती है, यद्यपि इसके द्वारा भी पर्याप्त हानि पहुँचती है। यह हानि गृहों, खानों, पुलों, जहाजों, विमानों और अन्य निर्माण-कार्य में प्रयोग किये गये काष्ठों की होती है। वर्तमान युग में रासायनिक उपचार द्वारा काष्ठ को अग्निरोधन शक्ति प्रदान करने में पर्याप्त प्रगति हो गयी है। आगे (भाग ३, अध्याय ५ में) इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

(४) यान्त्रिक टूट-फूट और ऋतुक्षरण

जिस काष्ठ पर किसी भी प्रकार के यातायात का भार रहता है उसका, यान्त्रिक क्रिया अथवा घिसाई के कारण, ह्रास होता रहता है, जैसे काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों,

फर्शपट्टों, गुटकों, मञ्च इत्यादि में। काष्ठ-स्लीपरों के ऊपर रेल-पटरी को जड़ने के लिए ठोके गये प्रकीलों के हिलते रहने के कारण, काष्ठ उस स्थान पर फटने लगता है और इसी फटाव के कारण सेवायुक्ति के लिए अयोग्य ठहराकर फेंक दिया जाता है, भले ही उस पर किन्हीं काष्ठनाशक जैविक अभिकर्त्ताओं का प्रभाव न हुआ हो। रेल-पटरी भी काष्ठ को काटकर उसके अन्दर धँसने लगती है। इसलिए पटरी के नीचे काष्ठ के ऊपर लोह-भारसह पट्टों ('बेयरिङ्ग प्लेट्स्) का प्रयोग किया जाता है, ताकि इन प्लेटों द्वारा भार का वितरण होने के कारण पटरी एक ही स्थान पर काष्ठ को न काट सके। इसी प्रकार बहुधा धातु की चादर काष्ठ के ऊपर बिछायी जाती है, ताकि काष्ठ घिसने से बच जाय। सम्भव है, सड़न के कारण भी काष्ठ दुर्बल हो जाय और शीघ्र घिसने लगे। अतः परिरक्षोपचार द्वारा ही काष्ठ उस अवस्था में सुरक्षित रह सकता है।

यदि काष्ठ परिरक्षित न हो और उसके ऊपर कोई बाह्य लेप न लगा हो तो बाहरी ऋतु के प्रभाव से भी उसका अवह्रास[1] होने लगता है। काष्ठतल के कण या अणु ('ग्रेन्स्') बाहर खुले में पड़े रहने के कारण बीच-बीच में उठे-से हो जाते हैं, जिससे तल नालीदार दिखलाई देने लगता है और काष्ठ-तल पर खुरदरापन आ जाता है, उसमें छोटी-बड़ी दरारें भी पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे काष्ठ टेढ़ेपन और फटाव के कारण नष्ट हो जाता है। इसी को काष्ठ का ऋतुक्षरण कहते हैं। काष्ठ में, बाहर आर्द्रता में, खुले में, रहने के कारण परिवर्तन होता रहता है और गर्मी, सर्दी, वर्षा, ओला, हिमपात, सूर्य-प्रकाश, धूल, वायु इत्यादि के प्रभाव से ऋतुक्षरण की अनुकूल दशा प्राप्त हो जाती है। इस ऋतुक्षरण से बचाव उचित परिरक्षोपचार और आर्द्रतारोधी बाह्य लेपों द्वारा ही हो सकता है।

1 Deterioration.

अध्याय ३

काष्ठ का प्राकृतिक स्थायित्व

१. स्थायित्व के कारण

काष्ठ के स्थायित्व अथवा टिकाऊपन से अभिप्राय यह है कि उसमें काष्ठ विनाशकारकों के आक्रमण के रोधन की कितनी शक्ति है। काष्ठों में यह आक्रमण-रोधी गुण जाति के अनुसार विभिन्न होता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, काष्ठ से अभिप्राय सारकाष्ठ अथवा अन्तःकाष्ठ ('हार्टवुड') से ही है, न कि रसकाष्ठ अथवा बाह्यकाष्ठ से, क्योंकि सभी काष्ठों का रसकाष्ठ चिरस्थायी होता है। कुछ काष्ठ अति चिरस्थायी होते हैं, कुछ मध्यम श्रेणी के और कुछ अल्पस्थायी। एक ही जाति के काष्ठ में भी, यहाँ तक कि एक ही पेड़ के पृथक् हिस्सों में से निकाले हुए काष्ठ में भी भिन्न-भिन्न स्थायिता पायी गयी है। इस भेद के अनेक कारण हैं जो काष्ठ की आन्तरिक अवस्था और प्रयोग के स्थानों की परिस्थितियों पर निर्भर होते हैं। काष्ठ पर आक्रमण करनेवाले विनाशकर्त्ताओं पर भी काष्ठ का स्थायित्व निर्भर रहता है।

रसकाष्ठ का जब सारकाष्ठ में रूपान्तर होता है तब उसमें रासायनिक परिवर्तन भी हो जाता है। यद्यपि अभी तक पूर्ण प्रकार से इस परिवर्तन का पता नहीं लगा है, फिर भी यह स्पष्ट है कि सारकाष्ठ की कोशाओं में कुछ पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं जिनके द्वारा उनमें टिकाऊपन के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इन पदार्थों को निस्सार ('इक्सट्रैकटिव्स्') कहा जाता है जो जीवितक कोशाओं के मरण और रसहीन होने से बनते हैं। अतः देवदार-जैसे काष्ठ में एक प्रकार का गंध तेल ('ऐसेंशल आइल्')[1] बन जाता है जिसके कारण उसमें स्थायिता के गुण आ जाते हैं। और भी बहुत-से टिकाऊ काष्ठों में ऐसे एकत्रित रासायनिक पदार्थ होते हैं जो काष्ठ विनाशकारकों के लिए विष हैं। इन्हीं पदार्थों के कारण काष्ठ स्थायी बन जाते हैं। एक ही काष्ठ के स्थायीपन में जो विभिन्नता रहती है वह इन्हीं विषैले पदार्थों के न्यूनाधिक होने के कारण होती है। इसके अतिरिक्त शल्कि ('टैनिन्स्'),[2] लीसा ('रेजिन्स्')[3] इत्यादि

1 Essential oil. 2 Tannins. 3 Resins.

पदार्थों से भी काष्ठ में स्थायीपन के गुण आ जाते हैं। कहा जाता है कि टीक (सागवान) काष्ठ में 'टैक्टाक्यूनोन्' रसायन के कारण टिकाऊ पन आ जाता है। 'सिलिका' के कण सामुद्रिक-कीटों से काष्ठ को सुरक्षित रखते हैं। प्रख्यात **'अर्टोकार्पस् गौमी-जियाना'** काष्ठ में, जिसने अंडमान द्वीपसमूह के निकटवर्ती समुद्र में प्रयोग किये जाने पर सामुद्रिक कीटों के आक्रमण के प्रति अच्छी सेवा-आयु प्राप्त की, 'सिलिका' के कण पाये गये हैं।

यह अनुमान किया जा सकता है कि काष्ठ का घनत्व उसके स्थायित्व का द्योतक है, पर यह सर्वथा सत्य नहीं है। घनत्व से यह ज्ञात होता है कि प्रति इकाई आयतन पर कितना काष्ठकोशाभित्ति-सार है। पर केवल काष्ठसार का अधिक होना ही उसके टिकाऊपन का द्योतक नहीं होता। काष्ठ में आक्रमण-रोधी गुण तद्गत निस्सार रसायन से ही प्राप्त होते हैं। देवदार और साइप्रेस-जैसे चिरस्थायी काष्ठ हलके होते हैं अर्थात् उनका घनत्व (एकाई आयतन भार) कम होता है, पर उनके टिकाऊपन के गुण उनमें वर्तमान उत्पत-तैल (गंध तेल) के कारण ही होते हैं। यह भी पता चला है कि साल की लकड़ी का स्थायित्व सम्भवतः कुछ ऐसे निस्सार पदार्थों के कारण है जो गरम पानी और एल्कौहल में घुल जाते हैं।

यह भी विश्वास किया जाता है कि काष्ठ किसी विशेष ऋतु में ही काटे जाने पर टिकाऊ होता है। यह माना गया है कि जाड़ों में कटे काष्ठ में रोधन-शक्ति प्राप्त हो जाती है, क्योंकि उस ऋतु में कवकों का आक्रमण कम होने के कारण उसको अधिक समय तक बिना सड़न अवस्था प्राप्त हुए ही सूखने का अवकाश मिल जाता है। शुष्क अवस्था प्राप्त होने के पश्चात् फिर आक्रमण का उतना भय नहीं रहता जब तक कि सड़न के अनुकूल अवस्था प्राप्त न हो जाय। लट्ठों की यदि छाल न उतारी जाय, तो भी काष्ठ-विनाश की अनुकूल दशा प्राप्त हो जाती है। वे सड़न और छिद्रक कीटों का शिकार बन जाते हैं, और कटा हुआ काष्ठ भी कवक-कीट ग्रस्त होने के कारण अल्पस्थायी हो जाता है।

२. काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व का निश्चय करने के लिए परीक्षण

काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व का निश्चयन, परीक्षण क्षेत्रों में किया जाता है। इन क्षेत्रों में काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओं का अभिजनन और पालन किया जाता है, जिससे कि उनमें काष्ठ पर यथेष्ठ मात्रा में आक्रमण करने की शक्ति निरन्तर बनी रहे। सभी मुख्य देशों की अन्वेषण शालाओं में ऐसे क्षेत्र स्थापित किये गये हैं।

मध्य और संयुक्त-राज्य अमेरिका में ऐसे कई परीक्षण क्षेत्र बनाये (६ क) गये हैं जहाँ काष्ठ की स्वाभाविक आयु का निर्धारण होता है। मध्य अमेरिका और ईक्वेडोर के ४१ जाति के काष्ठों के विषय में जो परीक्षण इस प्रकार से किये गये थे, उनमें जो प्रादर्श ('स्पेसीमन्स्) प्रयोग में लाये गये वे ६ इंच लम्बे, १ इंच चौड़े और $\frac{3}{8}$ से लेकर $\frac{6}{8}$ इंच तक मोटे थे और उनको इन क्षेत्रों की भूमि में, जिनको काष्ठ शवांगण ('टिम्बर ग्रेवयार्ड') भी कहते हैं, लम्बाई में आधे तक गाड़े गये थे। कुछ क्षेत्रों में दीमकों को हटाकर केवल कवकों का ही आक्रमण होने दिया जाता था और कुछ में इन दोनों आक्रमण-कर्त्ताओं का संयोग रहता था। काष्ठ-प्रादर्श एक निर्धारित समय पर निरीक्षण के लिए बाहर निकाले जाते थे और उनकी दशा अभिलिखित की जाती थी। इस प्रकार परीक्षण चलता रहता था जब तक कि काष्ठ पूर्ण प्रकार से नष्ट न हो जाता था। कुछ अवस्थाओं में काष्ठ की आयु के साथ-साथ उसके कालान्तर आपेक्षिक भार की कमी का भी आलोकन किया जाता था।

ब्रिटिश संयुक्त राज्य ('यूनाइटेड किंगडम्') में काष्ठ का प्राकृतिक अवधि-परीक्षण वन-पदार्थ-अनुसंधान प्रयोगशाला के अन्तर्गत तीन पृथक् स्थानों में किया गया। इनमें एक तो प्रिनसेज़रिसबरो में, दूसरा नौर्फोक में थ्यतफोर्ड के निकट और तीसरा उत्तर वेल्स में डौलगैली के निकट था। इन परीक्षणों में प्रत्येक जाति के काष्ठ के दस-दस, २४ इंच लम्बे और २ इंच × २ इंच परिमाण के, खण्ड प्रयोग किये गये। प्रत्येक काष्ठ की प्राप्ति के बारे में कि वह किस स्थान से और वृक्ष के किस भाग से लिया गया, पूर्ण सूचना अभिलिखित की गयी थी। इन परीक्षणों के परिणामों से यह पता लगा कि काष्ठ की स्वाभाविक आयु प्राप्ति-स्थानों की जलवायु और मिट्टी पर निर्भर थी। थ्यतफोर्ड में प्रिन्सेस्रिसबरो की अपेक्षा अधिक सड़न की परिस्थिति थी। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया और दक्षिणी आफ्रिका में भी परीक्षण किये गये।

स्वीडन (६ ख) में इसी प्रकार के परीक्षणों में प्रथम बार काष्ठ प्रादर्शों की मात्रात्मक क्षति का अध्ययन किया गया। इनमें काष्ठ के १ मीटर लम्बे और २.५ × २.५ सेन्टीमीटर के टुकड़ों के परीक्षण के पश्चात् एक बाह्य बल-तुलन यन्त्र में उनकी दृढ़ता का निश्चयन किया गया। इससे काष्ठों की स्वाभाविक आयु की यथार्थ रूप से परस्पर तुलना की गयी। वहाँ पर एक प्रकार के 'ग्रीन हाउस' भी बनाये गये, जिनमें ऐसे परीक्षणों के परिणाम, क्षेत्रों की अपेक्षा, थोड़े ही समय में प्राप्त हो जाते थे।

भारतवर्ष की वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून में भी काष्ठों के प्राकृतिक स्थायित्व के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् १९२६ में परीक्षण आरम्भ हुए। इनमें

प्रत्येक जाति के सारकाष्ठ में से २ फुट लम्बे और २ इंच × २ इंच के ६ टुकड़े (चौकोर खूँटी के आकार में) काटकर परीक्षण क्षेत्र में, जिसे काष्ठ शवांगण ('टिम्बर ग्रेभयार्ड') भी कहते हैं, गाड़े गये हैं। प्रत्येक काष्ठ-खंड (खूँटी) आधा भूमि के अन्दर और आधा भूमि के बाहर खुले में रहता है। इस प्रकार लगाने से काष्ठ-प्रादर्शों पर सूर्य, वायु, वर्षा का पूर्णतः प्रभाव पड़ता है, जैसा कि प्राकृतिक दशा में प्राप्त होता है। भूमि के अन्दर रहने से काष्ठ में आर्द्रता पर्याप्त मात्रा में रहने के कारण कवक और दीमकों के आक्रमण की अनुकूल स्थिति बनी रहती है। देहरादून में लगभग ८० से १०० इंच तक वर्षा होती है और जलवायु भी साधारणतः समशीतोष्ण है। भूमितल पर कवकों का प्रभाव भी अधिक रहता है। काष्ठ की खूँटियाँ क्षैतिज और उदग्र रेखाओं में लगभग दो-दो फुट की दूरी पर गाड़ी गयी हैं। हरएक काष्ठ का प्राप्ति-स्थान भी ज्ञात रहता है। वर्षा ऋतु के बाद नवम्बर या दिसम्बर के महीनों में प्रत्येक खूँटी का भली प्रकार निरीक्षण किया जाता है और उस समय तक की दशा का आलोकन रजिस्टरों में किया जाता है कि वह स्वस्थ है अथवा उस पर कितनी मात्रा में दीमक व कवक ने आक्रमण किया है। जो खूँटी मंद हनन करने पर टूट जाय तो उसे नष्ट हुआ मान लेते हैं, क्योंकि कवकों या दीमकों द्वारा पूर्ण हानि पहुँचने पर इस प्रकार की चोट काष्ठ सहन नहीं कर सकता। हानि की मात्रा के अभिलेखन पश्चात् यदि काष्ठ पूर्ण नष्ट न हो तो उसे फिर परीक्षण के लिए लगाया जाता है।

३. प्राकृतिक स्थायिता के अनुसार भारत के काष्ठों का वर्गीकरण

पूर्वोक्त प्रकार से लगभग २०० काष्ठ जातियों का भारत की वन-अनुसन्धान-शाला में परीक्षण हुआ है। उससे जो परिणाम निकले तदनुसार उन्हें ६ आयु वर्गों में विभक्त किया गया है। वर्ग १ में वे काष्ठ हैं जिनकी औसत आयु १५ वर्ष या उससे अधिक होती है। वर्ग २ में १० वर्ष से १५ वर्ष तक आयु के, वर्ग ३ में ७ से १० वर्ष तक आयु के, वर्ग ४ में ५ से ७ वर्ष तक की आयु के, वर्ग ५ में २ से ५ वर्ष तक और वर्ग ६ में ० से २ वर्ष तक की आयुवाले काष्ठ रखे गये हैं। सारिणी ८ (क) से लेकर ८ (च) तक में इन ६ वर्गों के काष्ठों के वैज्ञानिक अथवा पारिभाषिक नामों (६ ग) का विवरण है। इन काष्ठों के व्यापारीय नाम दिये गये हैं। प्रत्येक काष्ठ के आगे उसका प्राप्ति स्थान और उसकी माध्य ('एवरेज'), अधिकतम ('मैक्सिमम्') और न्यूनतम ('मिनीमम्') आय भी दी गयी है।

निर्देश-सूची

४ (ग) जी० एम० हण्ट व जी० ए० गैरेट : काष्ठ परिरक्षण ('वुड-प्रिज़र्वेशन') (यू० एस० ए०) १९५३; पृष्ठ २१९।

५ (ङ) एच० ब्रोजे वॉन ग्रोनौ, रिचन् और वॉन डैन वर्ग : पिछले ५० वर्षों में काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रिज़र्वेशन ड्यूरिंग दि लास्ट फिफ्टी इयर्स), (हौलैंड), १९५२; पृष्ठ १४

५ (च) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ १५

५ (छ) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ १९

६ (क) ए० पुरुषोत्तम और एम० जे० मैस्कैरनहस् : काष्ठों का वेग गति स्थायित्व परीक्षणों का प्रमापीकरण ('स्टेन्डर्डाइज़ेशन औफ एक्सीलरेटैड ड्यूरे-बिलिटी टैस्ट्स औन टिम्बर स्पीसीज़'); ('कौमैनवैल्थ फौरेस्ट्री कानफरेन्स्, कैनेडा, के लिए प्रकाशित), १९५२, पृष्ठ २।

६ (ख) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ३।

६ (ग) ,, ,, ,, तत्रैव ,, पृष्ठ ९ से २९।

[सारणी संख्या ८ के लिए पृ० १०७ से १२१ तक देखिए]

सारणी ८ (क) से ८ (च) (काष्ठों का प्राकृतिक स्थायित्व)

सारणी—८ (क), वर्ग-१

माध्य आयु १८० मास (१५ वर्ष) या उससे अधिक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष-कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एकेशिया कैटैच्यू*	कच	उत्तर प्रदेश	२३९	२३९	२३९	
२	अरटोकार्पस लैकूचा*	लकूच	बिहार और उड़ीसा	२१५	२३९	२०३	३ प्रादर्शों का माध्य
३	बसिया ब्यूटिरेशिया*	—	अन्डमान्स्	१७६	२०४	३९	
४	बर्या एमोनिला*	ट्रिंकोमाली काष्ठ	बर्मा	२६०	२६०	२६०	
५	करापा मौल्यूसैन्सिस्*	पुसुर	बर्मा	२४१	२४१	२४१	४ प्रादर्शों का माध्य
६	सिनैमोमम् इनंकटम्*	—	बर्मा	२३३	२३३	२३३	
७	कुप्रूसस् टौरूलोसा*	साइप्रस	उत्तर प्रदेश	२२९	२२९	२२९	
८	डलबर्जिया लैटीफोलिया*	रोज़ वुड	मध्य प्रदेश	२८६	२८८	२७६	
९	डलबर्जिया ओलीभरी*	टमालन	बर्मा	२७४	२७४	२७४	
१०	डलबर्जिया सिसू*	सिसू अथवा शीशम	उत्तर प्रदेश	२८८	२८८	२८८	
११	डाइसोक्सिलम मैलेबैरिकम्*	ह्वाइट सिडार	—	२६७	२६७	२६७	
१२	ग्लूटा टैभोयाना*	ग्लूटा	बर्मा	२६८	२७४	२३८	
१३	मिलीना अर्बोरिया*	गमारी	उत्तर प्रदेश	१९४	२४२	१३४	
१४	हार्डविकिया बिनाटा*	अञ्जन	मद्रास	२१३	२८३	७१	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१५	हैटीरोफ्रैग्मा एडीनोफिलम्*	—	बर्मा	१९३	२७५	८८	
१६	होपिया कोर्डीफोलिया*	होपिया	मद्रास	२३८	२३८	२३८	
१७	होपिया पार्वीफ्लोरा*	होपिया	मद्रास	२७०	२७४	२५०	
१८	लैगस्ट्रोइमिया लैन्सियोलाटा*	बैनटीक	मद्रास	१८५	२४०	५३	
१९	मैलैन्होरिया यूसीटाटा*	थिट्सी	—	२७४	२७४	२७४	
२०	मैसुवा फैरिया*	मैसुवा	आसाम	२७७	२८७	२४५	
२१	पैन्टैस्मी स्वैभिस्*	इंगयिन	बर्मा	२७१	२७१	२७१	
२२	टैरोकार्पस डलबर्जियौइड्स*	अन्डमान पैडौक	—	२८७	२८७	२८७	
२३	टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्*	बीजासाल	बम्बई	२६५	२७६	२३४	
२४	शोरिया रोबस्टा*	साल	बर्मा	२७१	२७१	२७१	
२५	शोरिया रोबस्टा*	साल	बंगाल	१४३	१४३	१४३	
२६	शोरिया रोबस्टा*	साल	रामनगर (यू०पी०)	१३८	१३८	१३८	५ प्रादर्शों का माध्य
२७	शोरिया रोबस्टा*	साल	गोरखपुर (यू०पी०)	१२९	१२९	१२९	
२८	शोरिया रोबस्टा*	साल	हल्द्वानी (यू०पी०)	१४५	१४५	१४५	
२९	शोरिया रोबस्टा*	साल	यू० पी०	२७९	२७९	२७९	
३०	सौयमीडा फैब्रीफ्यूगा*	—	मध्य प्रदेश	२७४	२७४	२७४	
३१	भाइटैक्स एल्टीसिमा*	मिल्ला	कनारा	२३३	२३३	२३३	
३२	जाइलिया जाइलोकार्पा*	इरूल	—	२०४	२४६	१६०	

* इनके प्रादर्श पूर्ण प्रकार से नष्ट नहीं हुए और परीक्षण जारी हैं। अतः यह माध्य आयु अद्य पर्यन्त गणना की है।

सारणी–८ (ख), वर्ग-२

[माध्य आयु १२० मास (१० वर्ष) से लेकर १७९ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया लैबैक्	कोक्को	—	१३९	२५७	५०	
२	एलबीजिया ओडोराटिसिमा*	काला सिरिस्	—	१६३	२४६	८१	
३	एमूरा रोहीटचका	एमूरा	आसाम	१३५	१४४	८३	
४	एर्टोकार्पस इन्टीग्रीफोलिया	जैक	मालाबार	१२८	१६३	५४	४ प्रादर्शों का माध्य
५	बैसिया लैटिफोलिया*	महुवा	बिहार और उड़ीसा	१६७	२८१	३२	
६	कैरिया अर्बोरिया*	—	उत्तर प्रदेश	१५६	२४२	५५	५ प्रादर्शों का माध्य
७	सीड्रस् देवदारा*	देवदार	पंजाब	१७३	२८७	११५	
८	इरियोलीना कैन्डौली	सोलोमन वुड	उत्तर प्रदेश	१२६	२३८	८७	
९	यूकेलिप्टस् प्रजाति*	यूकेलिप्टस्	मद्रास	१५४	१९२	२६	
१०	ग्लूटा ट्रैभन्कोरिका*	—	मद्रास	१२५	२७४	२४	
११	होपिया ग्लेब्रा*	—	मद्रास	१४३	२४४	३९	
१२	लैगरस्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बैनटीक	—	१६२	२३४	४१	
१३	लैगरस्ट्रोमिया हाइपोल्यूका	जारूल	अन्डमान्स्	१४४	२३८	९४	
१४	मैशीलस् मैक्रान्था*	मैशिलस्	मद्रास	१५८	२४२	८६	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष-स्थान
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१५	मैशुवा फैरिया	मैशुवा	मद्रास	१४६	२२७	४५	
१६	माइकीलिया मौन्टाना	चम्प	आसाम	१२१	१६७	५७	
१७	मीम्यूसौप्स् इलैंगी*	बुलैट वुड	मद्रास	११९	२२०	१५	
१८	ओजीनिया डल्बर्जियोइडिज्	साँदन	मध्य प्रदेश	१२२	१२२	१२२	
१९	पैन्टैश बुर्मेनिका	थिट्का	बर्मा	१७१	२६२	१०८	
२०	पैन्टैश ग्रिफिथी*	—	बर्मा	१५६	१५६	१५६	
२१	टैक्टोना ग्रेन्डिस्*	टीक	मध्य प्रदेश	१७४	२७९	४९	

सारणी—८ (ग), वर्ग—३

माध्य आयु ८४ मास (७ वर्ष) से लेकर ११९ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस्	बिहार और उड़ीसा	९७	१०३	७१	
२	बुर्सरा सिराटा	इन्डियन रैंडपियर	बिहार और उड़ीसा	९७	१८५	२२	
३	कैसिया फिस्चुला*	राजबृख	आसाम	११९	१७३	७६	
४	कैस्टैनौप्सिस् ट्रीब्यूलौइडस्	—	बर्मा	८७	८७	८७	
५	डाइकौप्सिस् इलिप्टिका	पाली	मद्रास	८४	२५७	५०	
६	यूजीनिया जम्बोलाना	जामन	बिहार और उड़ीसा	९०	२११	२३	
७	लैगरस्ट्रोमिया फ्लौस्-रैजीनी	जारूल	—	८८	१८३	५९	५ प्रादर्शों का माध्य
८	लैगरस्ट्रोमिया माइक्रोकार्पा	—	—	१११	१२७	६२	
९	स्टीरियोस्परमम् जाइलोकार्पम्	—	मद्रास	१००	१११	८८	
१०	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मध्य प्रदेश	११९	१२२	१०८	
११	टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा*	लौरल	बर्मा	१०२	१४०	५५	
१२	जाइलिया डोलाब्रीफौर्मिस्	पिनकाडो	बर्मा	९७	१९०	३८	

* इनके प्रादर्श पूर्ण प्रकार से नष्ट नहीं हुए और परीक्षण जारी है। अतः माध्य आयु अद्य पर्यन्त गणना है।

सारणी—८ (घ), वर्ग—४

माध्य-आयु ६० मास (५ वर्ष) से ८३ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति स्थान	आयु महीने में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एलबीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस	आसाम	७५	१२७	३२	
२	एलर्टिजिया इक्सैलसा	जूटिली	आसाम	७६	११८	१३	
३	एमूरा वालीची	एमूरा	बंगाल	८१	९६	६५	
४	एनोजाइसस् एक्यूमिनाटा	यौन	बर्मा	७४	१३२	३८	
५	अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	आसाम	६४	८३	५३	
६	बुर्सरा सिरैटा	इंडियन रैड पियर	बर्मा	६४	६७	५५	
७	कैलोफिलम इलैटम्	पून	मद्रास	६३	८१	४४	
८	कैलोफिलम टोमैनटोसम्	पून	बम्बई	६६	७७	४१	
९	सिड्रैला सिरैटा	पहाड़ी तून	बर्मा	७८	१०१	५१	
१०	क्लोस्टैन्थस् कौलीनस्	—	अन्डमान्स्	७२	८७	३७	
११	डल्बर्जिया सिसू	सिसू अथवा शीशम्	—	७३	१०४	५५	
१२	डिप्ट्रोकार्पस इंडीकस्	गुर्जन	कुर्ग	८१	१०३	५३	
१३	डिप्ट्रोकार्पस जिलैनिकस्	होरा	सीलोन	६४	८०	४०	
१४	डाइसौक्सिलम् बाइनैक्टेरी-फरम्	—	बर्मा	८३	८७	७४	
१५	यूजीनिया कैनैरेन्सिस्	जामन	बर्मा	६०	१३३	२९	

१	२	३	४	५	६	७	८
१६	ग्रीविया टिलिफोलिया	धामन	मद्रास	७१	११८	५९	
१७	होपिया ओडोराटा	अन्डमानथिंगन	बर्मा	७९	११८	३१	
१८	कैइया एवसैमिका	सियानैहौर	आसाम	६७	९१	१८	
१९	लैगस्टोरमिया माइक्रोकार्पा	बैनटीक	—	८०	११२	४२	
२०	पारागोरिया स्टीलाटा	थिंगाडू	बर्मा	८३	१०८	६०	
२१	फ़ोबी हैनीशियाना	बौन्सम्	आसाम	८२	८७	६९	
२२	पोडोकार्पस नैरीफोलिया	थिटमिन्	अन्डमान्स्	६१	७७	३३	
२३	पोइसिलौन्यूरौन इन्डीकम	बलागी	मद्रास	६५	९५	५१	
२४	कर्कश लिनिआटा	फलट	दार्जिलिंग (प० बंगाल)	७८	१८६	४१	
२५	शोरिया टैलूरा	टैलूरा	—	६०	६२	५५	
२६	टर्मिनेलिया मन्नी	काला चुगलम्	मध्य प्रदेश	६२	९५	३३	
२७	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	—	६०	६२	५५	
२८	टर्मिनेलिया टोमैनटोसा	लौरेल	मध्य प्रदेश	९१	११८	६७	५ प्रादर्शों का माध्य

सारणी–८ (ङ), वर्ग–५

माध्य-आयु २४ मास (२ वर्ष) से ५९ मास तक

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	**एबिस पिन्ड्रो**	फर	उत्तर प्रदेश	२९	३३	२०	
२	**एबिस पिन्ड्रो**	फर	उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश	२५	३५	१०	
३	**एकेशिया एरैबिका**	बबूल	सिन्ध	३९	५१	३४	५ प्रादर्शों का माध्य
४	**एकेशिया एरैबिका**	बबूल	सिन्ध	५२	५५	४२	
५	**एक्रोकार्पस् फ्रेक्सीनीफोलिअस्**	मुन्दानी	पौलाची (मलाबार)	४१	४४	३१	
६	**एडीना कोर्डीफोलिया**	हल्दू	—	३५	५०	२३	
७	**एडीना कोर्डीफोलिया**	हल्दू	बिहार और उड़ीसा	३०	३९	२२	
८	**एडीना कोर्डीफोलिया**	हल्दू	उत्तर प्रदेश	३१	४०	२८	
९	**एगल मार्मीलौस**	बेल	उत्तर प्रदेश	२७	२९	२२	
१०	**एलबीजिया लूसीडा**	टिप्रिआ सिरिस्	आसाम	३०	४६	२३	
११	**एलबीजिया स्टीप्यूलाटा**	काला सिरिस्	बिहार और उड़ीसा	४२	४५	३२	
१२	**एल्स्टोनिया स्कोलैरिस**	शैतान काष्ठ	—	२५	२८	१८	
१३	**एनीसोप्टरा ग्लेब्रा**	कौन्घम	बर्मा	३२	५३	२२	
१४	**एनौजाइसस् लैटीफोलिया**	एक्सल वुड	पञ्जाब	२९	३१	२४	

१	२	३	४	५	६	७	८
१५	एनौजाइसस् पैन्डूला	करधाई	उत्तर प्रदेश	३६	४२	३१	
१६	अर्टोकार्पस हिर्सूटा	एनी	बम्बई	४६	४६	४६	
१७	अर्टोकार्पस इन्टीग्रीफोलिया	जैक वुड	—	५९	५९	५९	एक ही प्रादर्श
१८	बिस्चोफिया जैभेनिका	बिशप वुड	आसाम	३५	५५	२४	
१९	बोरैसस् फलैबीलीफर	पल्माइरा पांम	बिहार	५५	१२४	६	
२०	ब्रूगीरा प्रजाति	—	—	३६	५४	२९	
२१	ब्रूगीरा प्रजाति	—	—	२४	२९	१८	
२२	ब्रूगीरा प्रजाति	—	—	२४	२९	१८	
२३	कैलोफिलम् वेटियानम्	पून	बम्बई	५९	८१	३८	
२४	कैस्टैनौप्सिस् हिस्ट्रिक्स्	इन्डियन चैस्टनट्	आसाम	३८	३८	३८	
२५	कैसुवैरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुवैरीना	—	२६	३७	१८	
२६	सैड्रीला तूना	तून	बर्मा	३१	३८	२१	
२७	चुक्रेशिया टेब्यूलैरिस्	चिक्रैसी	आसाम	५७	६५	५२	
२८	क्लोरौक्सीलीन स्वीटेनिया	ईस्टइंडियन सैटिन-वुड	मध्य प्रदेश	३९	४६	३४	
२९	सिनैमोमम् सैसीसोडैफनी	सिनैमौन	उत्तर प्रदेश	३३	३८	२१	
३०	सिनैमोमम् इनर्स	सिनैमौन	बर्मा	४३	४६	३३	५ प्रादर्शों का माध्य
३१	क्रिप्टरोनिया पैनीक्यूलाटा	—	आसाम	३३	४६	२३	
३२	साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिङ्ग	आसाम	३६	५५	२४	
३३	डलबर्जिया पैनीक्यूलाटा	—	उत्तर प्रदेश	४५	६२	३७	
३४	डिलीनिया इन्डीका	डिलीनिया	आसाम	२५	२९	२०	५ प्रादर्शों का माध्य
३५	डिप्ट्रोकार्पस एलेटस्	—	बर्मा	५६	७१	४५	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
३६	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफीथी	गुर्जन	अन्डमान	४१	५१	२१	
३७	डिप्ट्रोकार्पस करी	गुर्जन	—	३३	३७	२५	
३८	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	होलौंग	आसाम	३७	४६	२९	
३९	डायौस्पीरौप्स मलैनोक्सीलौन	एबौनी	मध्य प्रदेश	२८	५८	७	
४०	डिप्ट्रोकार्पस औबटचूसीफोलि-अस्	गुर्जन	बर्मा	४४	४५	३८	
४१	डिप्ट्रोकार्पस टच्यूबरक्यूलेटस	इंग	बर्मा	४६	६७	३८	
४२	डिप्ट्रोकार्पस टर्विनेट्स	गुर्जन	बर्मा	३३	३८	२९	
४३	द्राबंगा सोनरैंटियोइडीज़	लम्पती	बंगाल	३३	५०	२०	
४४	यूजीनिया गार्डनैरी	जामन	बंगलोर (दक्षिण कनड़)	४९	५०	४२	
४५	यूजीनिया प्रेईकोक्स	जामन	आसाम	३२	४०	२६	
४६	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री	पौत्नाची (मला-बार)	४१	५०	३७	
४७	हैटीरोफ्रैग्मा रौक्सबर्गी	—	मध्य प्रदेश	३४	७०	१७	
४८	होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया	कान्जू	उत्तर प्रदेश	२५	३४	१४	
४९	होमैलियम् टोम्यनटोसम्	माउकचाऊ	बर्मा	५५	६४	४६	
५०	आइसोनैन्ड्रा प्रजाति	—	आसाम	५४	१९५	१८	
५१	कैड्या फ्लोरीबन्दा	कैड्या	आसाम	२५	२५	२५	
५२	लैगरस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	लैन्डी	मध्य प्रदेश	५१	५८	३८	
५३	लैगरस्ट्रोमिया टोम्यनटोसा	लीज़ा	बर्मा	२५	२९	१५	

१	२	३	४	५	६	७	८
५४	लोफोपिटेलम वेटियानम्	बनाती	मद्रास	३१	३२	२५	
५५	मैशीलस् प्रजाति	मैशीलस्	बंगाल	३६	४१	२९	
५६	मैंगीफरा इन्डीका	आम	बिहार और उड़ीसा	२५	३३	२३	
५७	माइकीलिया कथकार्टी	—	बंगाल	२६	३१	२४	
५८	माइकीलिया चम्पका	चम्पा	—	—	—	—	आगणित
५९	मिट्रेजाइना डाइभर्सीफोलिया	बिङ्गा	बर्मा	२७	३८	८	
६०	मिट्रजाइना पार्भीफोलिया	कैम	बिहार और उड़ीसा	३६	६७	२२	
६१	मोरस एल्बा	मलबरी	पंजाब	३१	३१	३१	३ प्रादर्शों का माध्य
६२	मोरस सिराटा	मलबरी	पंजाब	३७	४१	२२	
६३	पीसिया मोरिन्डा	स्प्रूस	उत्तर प्रदेश	२४	४०	२०	
६४	पाइन्स् इक्सैल्सा	कैल	पंजाब	४६	७९	११	
६५	पाइनस् इन्सिग्निस्	—	मद्रास	३१	४२	२३	
६६	पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	उत्तर प्रदेश	३४	४४	१४	
६७	पोडोकार्पस् वालीचियाना	थिटमिन्	बर्मा	२६	४६	६	
६८	कर्कश लैमीलोसा	बक	दार्जिलिंग(प० बंगाल)	२७	२९	१७	
६९	सैकोपीटेलम् टोम्यन्टोसम्	—	बम्बई	५०	६५	२३	
७०	स्कीमा वालीची	चिलौनी	बंगाल	४५	६४	३४	५ प्रादर्शों का माध्य
७१	शीलीचरा ट्रिजूगा	कुसुम	बिहार और उड़ीसा	५५	९५	३९	
७२	शोरिया एसेमिका	मकई	आसाम	४४	७१	३४	
७३	टर्मिनेलिया अर्जुना (रस-काष्ठ)	अर्जुन	मद्रास	४४	५२	२७	४ प्रादर्शों का माध्य
७४	टर्मिनेलिया अर्जुना (रस और सारकाष्ठ मिश्रित)	अर्जुन	मद्रास	४३	६७	२७	„

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनों में			विषेश कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
७५	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मद्रास	५६	६७	४५	"
७६	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मद्रास	३५	४५	२०	
७७	टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	बिहार और उड़ीसा	३५	५१	२२	
७८	टर्मिनेलिया बियालाटा	सफेद चुगलम	अन्डमान्स्	४३	५५	२५	
७९	टर्मिनेलिया चैबुला	माइरोबोलन काष्ठ	बर्मा	४८	६७	२४	
८०	टर्मिनेलिया मन्नी	काला चुगलम	—	५६	६२	४२	
८१	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	काला होलौक	आसाम	५४	६२	३७	
८२	टर्मिनैलिया माइरियोकार्पा	सफेद होलौक	आसाम	३४	३७	२४	४ प्रादर्शों का माध्य
८३	टर्मिनेलिया ओलीभरी	थान	बर्मा	५९	१२७	३२	
८४	टर्मिनेलिया प्रोसीरा	ह्वाइट बौम्बवे या बदाम	अन्डमान्स्	३७	३९	२८	
८५	टर्मिनेलिया पाइरीफोलिया	लैन	बर्मा	२४	३२	१८	
८६	भैटीरिया इन्डिका	भिल्लापिने	मद्रास	२७	२८	२३	
८७	जैन्थौक साइलम् रहेट्सा	मूलीलाम	मद्रास	५७	५७	५७	

सारणी–८ (च), वर्ग–६

माध्य आयु ० (शून्य) मास से लेकर २३ मास तक

क्रमांक	काष्ठ जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति-स्थान	आयु महीनो मे			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१	एबिस वीबिआना	फर	पंजाब	९	१५	६	
२	एसर कैम्पबलाइ	मेप्ल	दार्जिलिंग (प० बंगाल)	९	१४	६	
३	एलन्थस ग्रैन्डिस	गोकुल	बंगाल	१७	२३	१०	
४	एन्थोसिफेलस् कदम्बा	कदम	आसाम	१६	२३	९	
५	बैम्बूसा अरुन्डनेसिया	बाँस	—	—	—	—	आगणित
६	बैम्बूसा न्यूटन्स्	बाँस	—	—	—	—	,,
७	बैम्बूसा पौलीमोर्फा	बाँस	—	—	—	—	,,
८	बौम्बैक्स इन्सिगनी	सीमल	अन्डमान्स	२२	३०	६	
९	बौम्बैक्स इन्सिगनी	सीमल	अन्डमान्स	१७	३१	१४	
१०	बौम्बैक्स मैलेबैरिकम	सीमल	उत्तर प्रदेश	१२	१२	१२	
११	बौस्वेलिया सिर्राटा	सलाय	बिहार और उड़ीसा	२१	४४	१३	
१२	ब्यूटिया फ्रोन्डोसा	ढाक	—	५	९	३	
१३	कैनैरियम इयूफिलम्	धूप	अन्डमान्स	९	१४	७	
१४	कैनैरियम स्ट्रिक्टम्	धूप	मद्रास	२०	३६	११	
१५	क्रैटेभा रिलीजिओसा	—	उत्तर प्रदेश	९	९	९	

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारीय नाम	प्राप्ति स्थान	आयु महीनों में			विशेष कथन
				माध्य	अधिकतम	न्यूनतम	
१	२	३	४	५	६	७	८
१६	क्रिप्टोकार्या एमिग्डेलीना	—	आसाम	१२	२३	३	
१७	क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका	सूजी	बंगाल	११	११	११	
१८	क्यूलीनिया इक्सेल्सा	करानी	मद्रास	१७	२३	९	
१९	डैन्ड्रोकलेमस् हैमिल्टोनाइ	—	—	—	—	—	आगणित
२०	डैन्ड्रोकलेमस् स्ट्रिक्टस्	—	—	—	—	—	"
२१	डिलीनियाँ पैन्टैजाइना	डिलीनिया	बंगाल	१८	२०	१२	
२२	डायोस्पिरौस पाहिरोकार्पा	—	अन्डमान्स	१९	३७	११	
२३	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफिथी	गुर्जन	बर्मा	२३	२७	२०	
२४	इन्डोस्पर्मम् मैलैसैन्स्	बकोटा	—	—	—	—	आगणित
२५	एगल्हार्डटिया स्पीकाटा	—	आसाम	१७	२३	१२	
२६	फ्रैक्सीनस् इक्सैलसियर	एश	चम्बा राज्य	१३	२१	८	
२७	फ्रैक्सीनस् फ्लोरीबन्दा	एश	कश्मीर	१२	२९	६	
२८	गैरूगा पिनाटा	गैरूगा	बिहार और उड़ीसा	१३	१३	१३	
२९	हाइमैनोडिक्टयोन इक्सैल्सम्	कुथान	उत्तर प्रदेश	२२	३४	१५	
३०	जुगलान्स फैलैक्स	वालनट	कश्मीर	१४	१९	६	५ प्रादर्शों का माध्य
३१	जुगलान्स रेजिया	वालनट	पंजाब	२२	३१	७	
३२	लैनिया ग्रैन्डिस्	झिंगन	उत्तर प्रदेश	१३	१३	१३	
३३	मैशीलश गैम्बलाइ	मैशिलस्	बुक्सा रेंज हैमिल्टनगंज	१९	२३	९	
३४	मैलोसस् फीलीपाइनैनसिस्	चम्प	उत्तर प्रदेश	२१	२३	१८	
३५	माइकीलिया इक्सैल्सा	चम्प	—	१५	२८	९	

१	२	३	४	५	६	७	८
३६	मिल्यूसा भैलूटियाना	—	उत्तर प्रदेश	१३	२२	९	
३७	मिरिष्टिका एटैन्यूआटा	मिरिष्टिका	मद्रास	६	६	६	
३८	पैरीशिया इन्सिग्निस्	लाल धूप	अन्डमान्स्	१८	२१	१४	
३९	पैरोशिया जैक्वीमौन्टियाना	पैरोशिया	पंजाब	११	१४	७	
४०	फोबी प्रजाति	बौनसम्	—	२१	२९	८	
४१	पीसिया मौरिन्डा	स्प्रूस	कश्मीर	१४	२३	९	
४२	प्लैन्चोनिया एन्डैमैनिका	रैंड बौम्बवे	आसाम	२२	२३	१८	
४३	पौलीएल्थिया फ्रैग्रैन्स	—	मद्रास	२०	२१	१५	
४४	पौन्गैमिया ग्लेब्रा	—	बम्बई	१८	२३	१७	
४५	टैरौस्पर्मम एसैरीफोलियम्	मयन्द	—	१८	२८	१६	
४६	साइड्रौक्सीलौन लौंगीपीशियोलेटम्	—	—	—	—	—	आगणित
४७	सोनरैसिया एपीटाला	केवड़ा	बंगाल	२०	२१	१४	
४८	स्टर्क्यूलिया कैम्पैन्यूलाटां	पपीता	—	६	१०	४	
४९	स्टीरियौस्पर्मम् शैलैनौइडीज़	—	आसाम	२२	२३	१८	
५०	स्टीरियौस्पर्मम् स्वाभियोलैन्स्	पादरी काष्ठ	उत्तर प्रदेश	१७	२५	१३	५ प्रादर्शों का माध्य
५१	स्विन्टोनिया फ्लोरीबन्दा	टौंगथयेट	बर्मा	१८	१८	१८	
५२	टर्मिनेलिया चैबुला	माइरोबोलौनवुड	आसाम	१२	१३	९	
५३	टैट्रैमलस् न्यूडीफ्लोरा	थिटपौक	अन्डमान्स	—	—	—	आगणित
५४	उल्मस् वालीचियाना	एल्म	पंजाब	६	११	५	
५५	एरिका कैटैच्यू	बीटलनट (सुपारी)	—	—	—	—	आगणित

भाग ३

अध्याय १

काष्ठ-परिरक्षी

१. काष्ठ-परिरक्षण के सिद्धान्त

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, काष्ठ-विनाशकारक कवक और कीटों को अपने विकास के लिए अनुकूल आर्द्रता, ताप, वायु और उपयुक्त खाद्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। इन अनुकूल दशाओं में से यदि एक अथवा अन्य अवस्थाओं के नियन्त्रण का प्रबन्ध किया जाय, तो काष्ठ की रक्षा की जा सकती है अर्थात् काष्ठ को आक्रमण-कर्त्ताओं से प्रतिरक्षित किया जा सकता है। यदि काष्ठ सदैव शुष्क रहे तो कभी नहीं सड़ता। न्यून तापक्रम में भी काष्ठ सदैव नवीन अवस्था में अर्थात् स्वस्थ रहता है, जैसा कि शीत कटिबन्ध के देशों में पाया जाता है। यदि काष्ठ आर्द्रतापूर्ण हो, जैसा कि गहरे भूमितल में प्रयोग किये गये काष्ठ-आधार-खम्भों की दशा होती है, तब भी काष्ठ सुरक्षित रह सकता है। काष्ठ-ताल ('लौग पौन्ड') में डुबोये हुए काष्ठ भी स्वस्थ रहते हैं, क्योंकि उनमें वायु नहीं रहती। साधारण प्रयोग किये गये काष्ठों में इन उपरि-लिखित तीन आक्रमणानुकूल दशाओं, अर्थात् आर्द्रता, ताप और वायु, का नियन्त्रण असम्भव-सा हो जाता है, परन्तु चौथी दशा का अर्थात् उपयुक्त खाद्य पदार्थ का नियन्त्रण व्यवहार्य हो सकता है। इस प्रकार का नियन्त्रण उन रासायनिक पदार्थों द्वारा जो कवक और कीटों के लिए विष का कार्य करते हैं, काष्ठ का शोधन और व्यापन करना ही है। यही रासायनिक पदार्थ "काष्ठ-परिरक्ष" अथवा परिरक्षी कहलाते हैं। अतः काष्ठ-परिरक्ष वे रासायनिक पदार्थ हैं जिनका यदि काष्ठ पर उचित प्रकार से प्रयोग किया जाय, तो वे उसे काष्ठ-नाशक अभिकर्ताओं के प्रति आक्रमण-रोधी गुण प्रदान कर सकें। परिरक्षी, आक्रमणकारी जन्तुओं के काष्ठीय खाद्य पदार्थ को विषैला बना देते हैं, जिससे ये नाश-कारक जीव काष्ठ से दूर रहते हैं। काष्ठ-परिरक्षी या तो एक विशुद्ध रसायन-संयोग ("कम्पाउन्ड") होता है, या रसायन-संयोगों का मिश्रण। परिरक्षी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। इनके

मूल्य और बनावट भी भिन्न-भिन्न हैं। अनेक प्रकार के काष्ठों पर निर्माण-कार्य में अभीष्ट आयु प्राप्त करने के उद्देश्य से इनका व्यवहार किया जाता है।

काष्ठ को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि परिरक्षी काष्ठ के अन्दर तक व्याप्त हो सके। यह शोधित स्तर इतनी मोटाई तक होना चाहिए कि यदि काष्ठ की सतह पर विपटन[1] अथवा यान्त्रिक क्षति भी हो, तो अशोधित काष्ठ ऊपर दिखाई न पड़ने लगे। अशोधित काष्ठ प्रकट होने से काष्ठ-नाशक जन्तु पुनः आक्रमण कर सकते हैं। प्रत्येक स्थिति में यह अनिवार्य नहीं है कि काष्ठ में पूर्णतया परिरक्षी का अन्तःप्रवेशन हो, परन्तु परिरक्षी इतनी गहराई तक पहुँच जाना चाहिए कि आक्रमणकर्त्ता शोधित काष्ठ को पार न कर सकें। रसकाष्ठ का सम्पूर्ण भाग परिरक्षी द्वारा उपचारित होना अत्यन्त आवश्यक है।

परिरक्षी-व्यापन के साथ-साथ, परिरक्षी का काष्ठ के अन्दर पर्याप्त मात्रा में मौजूद होना भी आवश्यक है। यदि परिरक्षी का काष्ठ में पूर्ण मात्रा में संकेन्द्रण न हो तो आक्रमण-कर्त्ताओं का (मरण) नाश नहीं हो सकता। अतः परिरक्षी की इतनी प्रबलता होनी चाहिए कि वह काष्ठनाशक जन्तुओं के लिए पूर्ण प्रकार से विषैला हो। शोधित काष्ठ को रोधन-शक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब कवक और कीटादि के लिए परिरक्षी की मात्रा सहन करने योग्य न हो।

यदि छेदने या काटने से शोधित-काष्ठ का कोई भी अशोधित भाग प्रकट हो जाय तो उसका परिरक्षोपचार करना पुनः आवश्यक होता है।

२. आदर्श परिरक्षी के आवश्यक गुण

परिरक्षियों के प्रयोग में दो मुख्य बातें विचारणीय हैं। उनमें से एक तो परिरक्षी के गुणों पर आधारित है और दूसरी उसके प्रयोग की रीति पर। कोई भी परिरक्षी उचित प्रकार से व्यवहार किये बिना उपयुक्त सिद्ध नहीं हो सकता। यदि उसके प्रयोग की रीति ठीक नहीं है तो अच्छे से अच्छे परिरक्षी से भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

एक आदर्श परिरक्षी में निम्नलिखित गुणों का होना अत्यावश्यक है—

(१) परिरक्षी ऐसा होना चाहिए कि वह लघु मात्रा में भी काष्ठ-नाशक जन्तुओं के लिए विष हो। यह सम्भव हो सकता है कि कोई परिरक्षी विशेष प्रकार से किसी एक ही नाशकर्ता के प्रति प्रभावशाली हो। उस दशा में उस परिरक्षी का

1 Splitting.

प्रयोग काष्ठ में केवल उसी नाशकर्ता से रक्षा करने के लिए उपयुक्त होगा। यदि कवक, दीमक और छिद्रक-कीट आदि एक से अधिक अभिकर्ताओं से काष्ठ को सुरक्षित रखना है, तो परिरक्षी का चुनाव तदनुसार ही करना पड़ता है, यहाँ तक कि किसी-किसी अवस्था में रासायनिक पदार्थों का मिश्रण अनिवार्य हो जाता है। लेकिन यह तभी किया जाता है जब इन पदार्थों के मिश्रण से कोई रासायनिक परिवर्तन न हो। सामुद्रिक छिद्रक-कीटों के लिए कभी-कभी तीव्र विषैले पदार्थों की आवश्यकता पड़ जाती है। परिरक्षी रसायनों में प्रत्यपसारी गुणों ('रिपैलैन्ट प्रौपर्टीज़') का होना भी आवश्यक है।

(२) परिरक्षी इतना तरल होना चाहिए कि सरलता से काष्ठ के अन्दर तक उसका व्यापन[1] किया जा सके। अनुभव यह है कि यदि परिरक्षी काष्ठ के बाह्य स्तर पर ही लगा रहे तो उससे काष्ठ की आयु बढ़ाने में अधिक सफलता नहीं मिलती। इस प्रकार का बाह्य लेप अल्पकालीन परिरक्षण के लिए ही होता है।

(३) परिरक्षी ऐसा होना चाहिए कि काष्ठ में लगाने के पश्चात् वह जल से न धुल सके। ऐसा होने पर शोधित काष्ठ यदि बाहर वर्षा में भी पड़ा रहे तो परिरक्षी का प्रभाव काष्ठ पर निरन्तर बना रहेगा। परिरक्षी को उड़नशील भी नहीं होना चाहिए और न ऐसा ही होना चाहिए कि उसमें कालान्तर में कोई ऐसा रासायनिक परिवर्तन हो, जिसके कारण वह निष्क्रिय बन जाय। अतः परिरक्षी का स्थायी रहना ही परमावश्यक है।

(४) परिरक्षी की धातुओं पर कोई संक्षारण-क्रिया[2] नहीं होनी चाहिए, जिससे लोहे के संयन्त्रों पर, जिनमें दबाव क्रिया से परिरक्षी द्वारा काष्ठ शोधित किया जाता है, किसी प्रकार की क्षति न पहुँच सके। संक्षारण से न केवल संयन्त्र को ही हानि पहुँचेगी, किन्तु परिरक्षी-विलयन में भी रासायनिक क्रिया द्वारा परिवर्तन हो सकता है, और ऐसा होने पर उसके प्रभाव में भी कमी पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त शोधित काष्ठ के संस्पर्श में यदि धातु की कील, पैंच, अन्वायुक्तियाँ[3] इत्यादि भी आ जायँ, तो क्षरण के कारण वे भी निकृष्ट हो जाती हैं।

(५) परिरक्षी का काष्ठ की प्रबलता पर कोई ऐसा प्रभाव न पड़ना चाहिए, जिसके कारण काष्ठ की दृढ़ता कम हो जाय। दृढ़ता में कमी होने के कारण भयप्रद परिणाम निकल सकते हैं। ऐसा होने पर काष्ठ के जैविक स्थायीपन ('बायोलो-

1 Impregnation. 2 Corrosive Action. 3 Fittings.

जिकल लाइफ') में शोधन के कारण जो लाभ होगा भी, वह सब दृढ़ता की कमी के कारण व्यर्थ हो जायगा।

(६) परिरक्षी विलयन ऐसा होना चाहिए जिसमें १००° सेंटीग्रेड तक गरम रहने पर भी रासायनिक परिवर्तन न हो सके। परिरक्षी को काष्ठ के अन्दर सरलता से प्रवेश कराने के लिए बहुधा उष्ण विलयन की आवश्यकता पड़ती है और उष्णता से काष्ठ में परिरक्षी प्रचूषण भी अच्छा होता है।

(७) परिरक्षी से मनुष्यों और पशुओं को कोई हानि न पहुँचनी चाहिए और न काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय में लगे कार्यकर्ताओं पर ही किसी प्रकार का हानिकर प्रभाव पड़ना चाहिए। शोधित काष्ठ के संस्पर्श में यदि कोई उपयोगकर्ता अथवा घरेलू पशु आ जाय तो परिरक्षी से उस पर भी किसी प्रकार का दुष्प्रभाव न पड़े। यदि अकस्मात् शोधित काष्ठ से कोई व्यक्ति ईंधन का कार्य भी ले तो उससे किसी प्रकार की ऐसी विषैली वाष्प भी न निकले, जिसके कारण मनुष्यों को क्षति पहुँचे।

(८) परिरक्षी यथार्थ मात्रा में प्राप्य होना चाहिए, जिससे काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय में उसकी कमी न पड़ जाय। आर्थिक दृष्टि से इसका उत्पादन इतना हो कि इससे शोधित काष्ठ उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके।

(९) परिरक्षी ऐसा न हो कि इससे काष्ठ की अभिज्वाल्यता बढ़ जाय। जहाँ तक सम्भव हो इससे उपचार करने के पश्चात् काष्ठ लघु-दाह्य ही बना रहे।

(१०) परिरक्षी की रचना ऐसी हो कि काष्ठ में इसका अन्तः-प्रवेशन कराते समय नियन्त्रण किया जा सके। भिन्न-भिन्न प्रयोगों के लिए काष्ठ में यथार्थ परिरक्षी का कई मात्राओं में प्रचूषण कराना पड़ता है। अतः उपयुक्त नियन्त्रण द्वारा इस प्रकार का परिरक्षी-प्रचूषण सम्भव हो सकेगा।

(११) परिरक्षी ऐसा न हो कि काष्ठ के रंग में परिवर्तन कर दे और उपचार करने के पश्चात् उससे अरुचिकर गन्ध भी निकले।

(१२) परिरक्षी इस प्रकार का हो कि उससे काष्ठ को शोधित करने पर उसे बाह्य लेप द्वारा अभिरंजित किया जा सके।

अब तक ऐसे किसी परिरक्षी का आविष्कार नहीं हो सका जो इन पूर्वोक्त संपूर्ण गुणों से युक्त हो। इसमें सन्देह भी है कि भविष्य में ऐसे किसी परिरक्षी का विकास हो सकेगा। पर परिरक्षी के चुनाव में समझ-बूझ की आवश्यकता है और विशेष ध्यान उन्हीं आवश्यकताओं पर देना होगा जो प्रयोग-कार्य के लिए अनिवार्य हों। पाँचवें प्रकरण में स्पष्ट किया गया है कि किन-किन प्रयोग-कार्यों के काष्ठ-उपचारण के लिए

कौन-कौन-से परिरक्षी प्रयुक्त किये जा सकते हैं। परिरक्षी की उपयुक्तता उसके गुणों पर निर्धारित की गयी है। जहाँ तक सम्भव हो, परिरक्षी स्वदेश का ही होना चाहिए, जिससे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न पड़े। काष्ठ-परिरक्षण व्यवसाय की सफलता के लिए परिरक्षियों का उत्पादन स्वदेश में ही होना इसलिए भी आवश्यक है कि युद्ध छिड़ जाने पर उसकी प्राप्यता में रुकावट न पड़े। पिछले विश्व-महायुद्ध में इस प्रकार की कमी पड़ गयी थी और इसी कारण काष्ठ-परिरक्षण को व्यवहार में न लाने के कारण भारत के काष्ठों का व्यर्थ व्यय और वनों का अत्यन्त ही अधिपतन हुआ, यहाँ तक कि इस प्रकार के काष्ठ की प्राप्ति में अब तक सुधार नहीं हो सका।

३ः परिरक्षी को परखने के साधन

परिरक्षियों संबंधी प्रारम्भिक ज्ञान, प्रयोगशालीय परीक्षणों से प्राप्त हो सकता है। प्रयोगशाला के परिणामों से यह सूचना मिल सकती है कि परिरक्षी आशाजनक है या नहीं। यदि आशाजनक परिणाम हो तो उस पर बड़े पैमाने के परीक्षण किये जाते हैं। प्रयोगशाला में परिरक्षी की विषालुता, रासायनिक स्थायित्व, प्रवेशन-शक्ति, संक्षारण, अग्निरोधन और बाह्य-लेपधारण आदि विषयक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

परिरक्षी के अन्य आवश्यक गुणों का, जो काष्ठ-नाशक कवक, दीमक, छिद्रक-कीटों और सामुद्रिक-कीटों से सम्बन्ध रखते हैं, परीक्षण भी प्रयोगशाला में किया जा सकता है। केवल सामुद्रिक जन्तुओं के प्रति अभी तक उतनी संतोषजनक रीतियों का विकास नहीं हुआ है। जिन परीक्षणों से काष्ठ-नाशक जन्तुओं के प्रति शीघ्र परिणाम निकल सकते हैं, उनको वेगकालीन ('एक्सीलरेटेड') परीक्षण कहते हैं। वेगकालीन परीक्षणों से आशाजनक परिणामों के निकलने पर तदनन्तर सेवाकालीन ('सर्विस') परीक्षण किये जाते हैं। वेगकालीन परीक्षणों से थोड़े ही अवसर में फल प्राप्त हो सकते हैं, पर सेवाकालीन परीक्षणों में पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आधुनिक समय में आविष्कृत परिरक्षियों का बड़े व्यावसायिक पैमाने पर प्रयोग करने से पूर्व उनके परीक्षण में पर्याप्त समय लगता है, अर्थात् सेवा-कालीन परीक्षणों के संतोषजनक परिणाम निकलने पर ही किसी परिरक्षी का व्यावसायिक कार्य में प्रयोग किया जा सकता है।

वेगकालीन परीक्षणों के अन्तर्गत निम्नलिखित निश्चयन-प्रयोग आते हैं।

(१) विषालुता-निश्चयन

विषालुता निश्चयन दो प्रकार के काष्ठ-नाशक अभिकर्ताओं के प्रति किया जाता है—(क) कवकों के प्रति और (ख) कीटों के प्रति। कीटों के अन्तर्गत दीमक, छिद्रक-कीट और सामुद्रिक कीट हैं। प्रयोगशाला में इस प्रकार के निश्चयन यथोचित नियन्त्रण के साथ किये जाते हैं। ये इस प्रकार हैं—

(क) कवकों के विरुद्ध

परिरक्षी के विषालुता-गुणों के कवकों के प्रति परीक्षणों में विशेष जाति के काष्ठ-नाशक कवक काच-फ्लास्क में संवर्ध-माध्यम ('कल्चर मीडियम') में उगाये जाते हैं। जिस परिरक्षी का अध्ययन करना हो उसकी भिन्न-भिन्न क्रमबद्ध मात्राएँ इस माध्यम में मिश्रित की जाती हैं। इन फ्लास्कों का, नियन्त्रित ताप और आर्द्रता पर, कोष्ठ-संयन्त्रों में अन्तर्विकास किया जाता है। इस प्रकार कवक को मारने के लिए परिरक्षी के न्यूनतम संकेन्द्रण का निश्चय किया जाता है। इस परिरक्षी के संकेन्द्रण की प्रतिशत मात्रा कुल माध्यम के आधार पर परिरक्षी का मारण-बिन्दु ('किलिंग पौइन्ट') कही जाती है।

पृथक्-पृथक् कवकों के प्रति परिरक्षी के भिन्न-भिन्न मारण-बिन्दु होते हैं। यदि एक ही कवक-जाति के विरुद्ध इस प्रकार के परीक्षण किये जायँ और यदि परिरक्षी की दशा एक-सी ही हो, तो परिरक्षी का विषालुता-मान एक आपेक्षिक अर्हा ('रिलेटिभ वैल्यू') ही होगी। इन परीक्षणों के आधार पर आशाजनक परिरक्षियों का चुनाव किया जा सकता है। प्रत्येक मुख्य देश की अन्वेषणशालाओं में इस प्रकार के परीक्षण भिन्न-भिन्न रीतियों से किये जाते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 'पैट्री डिश' विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें 'मेडीसन नं० ५१७—'फोमस एनौसस्' कवक को पैट्री डिश (गोल पात्र) में स्थित 'माल्ट-अगर' माध्यम में उपजाया जाता है और उसी में विषालुता-मात्रा का निश्चयन किया जाता है।

यूरोप में काष्ठ-गुटिका ('वुड ब्लॉक') रीति प्रयोग में लायी जाती है। सरल ('पाइन') काष्ठ की गुटिकाओं को परिरक्षी के भिन्न-भिन्न संकेन्द्रणों से शोधित करने के पश्चात् चपटे फ्लास्कों में, जिनमें कवक तीव्रता से उगा हो, स्थापित किया जाता है। ऐसी दो शोधित कवक गुटिकाओं के मध्य में एक अशोधित गुटिका, तुलना के उद्देश्य से कवक-सूत्रजाल के ऊपर रख दी जाती है। काष्ठ-गुटिका को परीक्षण के आरम्भ

में और परीक्षण-अवधि के पश्चात् कन्दु ('ओवन') में सुखाकर शुष्क अवस्था में तोल लिया जाता है। भार में शुष्क अवस्था के आधार पर जो प्रतिशत कमी होती है, वही कवक द्वारा विनाश का सूचक है। परिरक्षी का विषालु प्रभाव वह न्यूनतम प्रचूषण है (किलोग्राम प्रति घनमीटर पर) जो कवक के आक्रमण से बचाव करता है।

एक और विधि, जो वर्तमान समय में संयुक्त-राज्य अमेरिका में अधिकतर प्रयोग में लायी गयी, मृदा-गुटिका ('सॉइल ब्लॉक') रीति कहलाती है। इस रीति में सरल-रसकाष्ठ ('पाइन सैपवुड') के $\frac{3}{4}$ इंच के घन ('क्यूब्स्') परिरक्षी के भिन्न-भिन्न संकेन्द्रणों से शोधित कर और तदनन्तर शुष्क किये जाने के पश्चात् चौड़े मुँहवाली बोतलों में आधे तक मिट्टी से भरी और ऊपर समान घनाकार अशोधित काष्ठ-गुटिकाओं पर उगे कवक-सूत्र-जाल की सतह पर रखे जाते हैं। यह
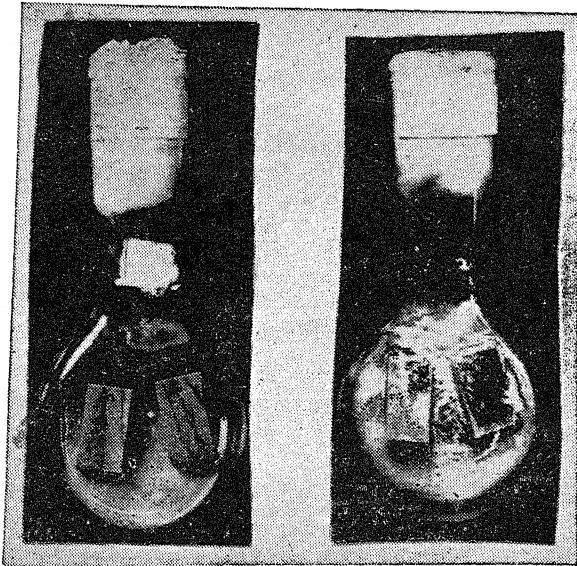
चित्र ३०—कवकों के प्रति विषालुतामान परीक्षणों की प्रयोगशाला में परीक्षित भिन्न विधियों का प्रदर्शन (काष्ठगुटिका विधि)।

परीक्षण लगभग तीन महीनों तक उपयुक्त ताप और आर्द्रता पर चलने के पश्चात् समाप्त किया जाता है। शोधित व अशोधित काष्ठ के गुटके परीक्षण के आरम्भ

और समाप्ति पर तोले जाते हैं। उनके भार में शुष्क-तोल के आधार पर प्रतिशत कमी कवक द्वारा विनाश की निर्देशक है। परिरक्षी के जिस संकेन्द्रण पर कवक के आक्रमण का प्रभाव नहीं होता, उसी से उसके विषालुता-मान का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षण से अन्य पूर्व-कथित परीक्षणों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय सूचनाएँ मिल सकती हैं, क्योंकि इसमें परि-रक्षियों को कुछ सीमा तक ऐसी दशाओं का सामना करना पड़ता है जो प्राकृतिक दशा में काष्ठ के कवकविनाश का कारण हैं। मृदा-गुटिका परीक्षणों में अन्य पूर्वोक्त परीक्षणों से अधिक समय लगता है, पर इनके परिणामों से अधिक व्यापक और स्पष्ट सामग्री मिल सकती है। चित्र ३०, ३१, ३२ में उपरिलिखित कवकों के प्रति विषालुता-मान परीक्षणों की विधियाँ प्रदर्शित की गयी हैं। सारणी ९ में विभिन्न रसायनों का कवक ('मेडीसन् नं० ५१७') के प्रति मरण संकेन्द्रण दिया गया है।

चित्र ३१—कवकों के प्रति विषालुता-मान परीक्षणों की प्रयोगशाला में परीक्षित भिन्न विधियों का प्रदर्शन (मृदा गुटिका विधि)
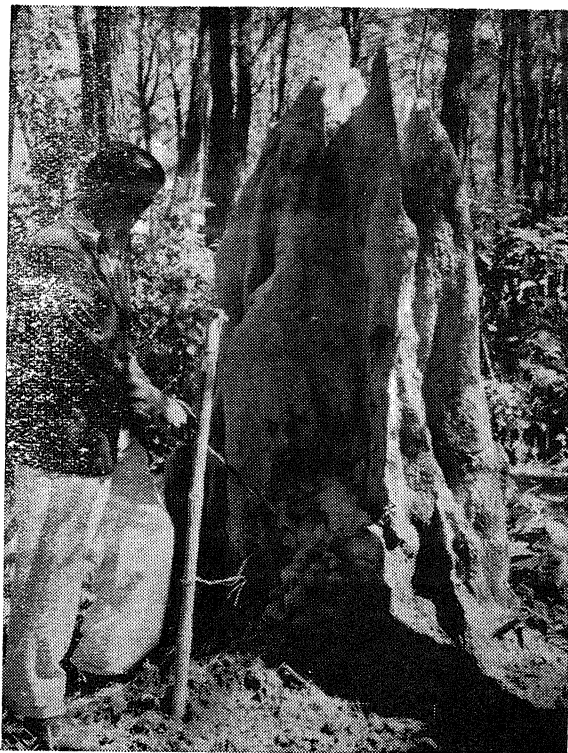
चित्र ३२——दीमकों के प्रति विषालुतामान-परीक्षण-उपचारित और अनुपचारित काष्ठ न्यादर्शों को स्तूपों के अंदर डालकर मिट्टी से बंद कर दिया जाता है, पृ० १३२।

सारणी-९

विभिन्न रसायनों का कवक (मेडीसिन नं० ५१७) के प्रति मरण संकेन्द्रण ('४ ङ) ('किलिंग कंसेन्ट्रेशन')

रसायन	सूत्र '(फारमूला')	मरण-संकेन्द्रण (अजल-संयोग का तौल पर प्रतिशत)
अप्रांगारिक संयोग ('इनॉर्गेनिक कम्पाउण्ड्स)		
एल्यूमिनियम् सल्फेट	$Al_2(SO_4)_3.18H_3O$	०.५ से उपर
आर्सनिक ट्राइऑक्साइड	As_2O_3	०.०२५ (पू० नि० बि०*)
बोरैक्स (सोडियम् टैट्राबोरेट)	$Na_2B_4O_7 10H_2O$	०.१३
बोरिक एसिड	H_3BO_3	०.२५
कैडमियम् सल्फेट (अजल)	$CdSO_4$	लगभग ०.१८
कॉपर आर्सिनेट	$Cu_3(AsO_4)_2.4H_2O$	०.०४ से ०.०५
कौपर सल्फेट	$CuSO_4.5H_2O$	०.०६४ (पू० नि० बि०*)
फैरिक सल्फेट	$Fe_2(SO_4)_3$	लगभग ०.२
लेड नाइट्रेट	$Pb(NO_3)_2$	०.३
मैग्नीशियम् एमोनियम आर्सिनेट	$MgNH_4AsO_4.6H_2O$	०.०६७ (पू० नि० बि०*)
मर्क्यूरिक क्लोराइड	$Hg\ Cl_2$	०.००५ से ०.००६
निकल आर्सिनेट (एमोनेटेड)	—	०.०३ (पू० नि० बि०)*
निकल अर्सिनाइट	$Ni_3 H_6 (AsO_3)_4$	लगभग ०.०३
निकल क्रोमेट (बेसिक)	—	०.०१२ (पू० नि० बि०)*
निकल सल्फेट	$NiSO_4.6H_2O$	०.०२४ से ०.०३
सिल्वर नाइट्रेट	$Ag\ NO_3$	०.०३
सोडियम आर्सिनाइट्र (एसिड)	$Na_2\ HASO_3$	०.०४४ (पू० नि० बि०)*
सोडियम क्रोमेट (अजल)	$Na_2\ Cr\ O_4$	०.०३४
सोडियम डाइक्रोमेट (अजल)	$Na_2\ Cr_2\ O_7$	०.०३
सोडियम् फ्लोराइड	$Na\ F$	०.२५
सोडियम् हाइड्रौक्साइड	$Na\ OH$	लगभग ०.३
सल्फूरिक एसिड	$H_2\ SO_4$	०.१० से ०.१५

थैलियम् सल्फेट (अस्)	Tl_2SO_4	०.०२३ (पू० नि० बि०)*
यूरैनिल एसिटेट (अजल)	$UO_2(C_2H_3O_2)_2$	०.१८
जिंक एसिटेट	$Zn(C_2H_3O_2)_2$	०.४७ (पू० नि० बि०)*
जिंक क्लोराइड	$ZnCl_2$	०.३५
जिंक मैटाआर्सिनाइट	$Zn(AsO_2)_2$	०.१
जिंक सल्फेट (वाणिज्यिक)	$ZnSO_4 \cdot 7H_2O$	०.६५

प्रांगारिक संयोग ('औरगैनिक कम्पाउन्ड्स्)

एल्फाक्लोरोनैफ्थैलीन	$C_{10}H_7Cl$	०.००६
बीटानैफ्थौल	$C_{10}H_7OH$	०.०१५
कैप्रिक एसिड	$C_9H_{19}CO_2H$	०.००९
१—क्लोरोबीटानैफ्थौल	$C_{10}H_6ClOH$	०.००५
कोलटार-क्रियोजोट	—	०.०७
कोलटार क्रियोजोट:		
नमूना ८३८७ (आपेक्षिक घ० १.०४०)	—	०.०५ से ०.१
नमूना ८४०३ (आ० घ० १.०६२)	—	०.१ से ०.२
नमूना ८४०१ (आ० घ० १.०९६)	—	०.४ से ०.५
नमूना १०७४ (आ० घ० १.०४८)	—	०.३५
कोलटार: नमूना.८४०० (आ० घ० १.१६६)	—	०.९ से १.०
कॉपर नैफ्थिनेट संकेन्द्रित (८ प्रतिशत ताँबा)	—	०.१५
कॉपर पैन्टाक्लोरोफीनेट	$Cu(C_6Cl_5O)_2$	०.००२
कोलटार और क्रियोजोट (५०:५०) विलयन	—	०.२ से ०.७ (प्रयुक्त क्रियोजोट के अनुसार)
क्रियोजोट-पैट्रोलियम (५०:५०) विलयन	—	०.५ से ३.० (प्रयुक्त तैल के अनुसार)
डिसाइल एलकोहौल (नार्मल)	$C_{10}H_{21}OH$	०.००४३
२,४-डाइक्लोरोएल्फानैफ्थौल	$C_{10}H_5Cl_2OH$	०.००२ (पू० नि० बि०)*
२,६-डाइक्लोरो-४-नाइट्रोफीनोल	$C_6H_2Cl_2NO_2OH$	०.०१ (पू० नि० बि०)*
२,४-डाइनाइट्रोक्लोरोबैन्जीन	$C_6H_3Cl(NO_2)_2$	०.०१

*पू० नि० बि० का अर्थ पूर्ण निरोध बिन्दु (टोटल इन्हिबिशन पौइन्ट) है।

२,६-डाइनाइट्रोफीनोल	$C_6 H_3 (NO_2)_2 OH$	०.०२३
फ्यूल औइल (इन्धन तैल) (नं० ११०३)	—	४०.० से ऊपर
मृत्तैल (नं० १८४७)	—	४०.० से ऊपर
नोलेज टार	—	०.०८
लिग्नाइट टार क्रियोजोट	—	०.०८
नाइट्रोबीटानैफथौल	$C_{10} H_6 NO_2 OH$	०.०१६ (पू०नि०बि०)
नाइट्रोटौलवीन (मिश्रित)	$C_6 H_4 CH_3 NO_2$	०.०४ (पू० नि० बि०)
ऑइलटार क्रियोजोट: प्रकार 'अ'	—	०.२
प्रकार 'ब'	—	१.० से ऊपर
और्थोक्लोरोफीनोल	$C_6 H_4 Cl OH$	०.०३ से ०.०४
और्थोफीनाइलफीनौल	$C_6 H_4 OH C_6 H_5$	०.०१ से ०.०२
फीनोल	$C_6 H_5 OH$	०.१ से ०.२
पैन्टाक्लोरोफीनौल	$C_6 Cl_5 OH$	०.००२
पैट्रोलियम (मृत्तैल)	—	१०.० से ऊपर
फीनाइल मर्करी ओलिएट	—	०.००२
सोडियम् कैप्रेट	$C_6 H_{19} CO_2 Na$	०.०१९
सोडियम् २,४-डाइनाइट्रोफीनोलेट	$C_6 H_3 (NO_2) ONaH_2O$	०.००५ से ०.००९
सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनोलेट	$C_6 HCl_5 ONa$	०.००२
सोडियम् २,३,४,६-टैट्राक्लोरोफीनोलेट	$C_6 HCl_4 ONa$	०.००२
२,३,४,६-टैट्राक्लोरोफीनोल	$C_6 HCl_4 OH$	०.००२
१,२,४-ट्राइक्लोरोबैन्जीन	$C_6 H_3 Cl_3$	०.००७
२,४,५-ट्राइक्लोरोफोनौल	$C_6H_2Cl_3OH$	०.००१ से ०.००२
वाटर गैस टार क्रियोजोट: (नं० २२३३)	—	६.५
:(न० २२३५)	—	०.६५
:(न० १६)	—	०.७
वुड टार क्रियोजोट	—	०.०२५ से ०.०५
कोमल काष्ठ का	—	०.५
कठोर काष्ठ का	—	०.१

(ख) कीटों के विरुद्ध—

काष्ठ-नाशक कीटों के विरुद्ध परिरक्षियों के विषालुता-मान-परीक्षणों का आरम्भ सन् १९३० के पश्चात् यूरोप में हुआ। जर्मनी के अन्वेषण कर्ताओं ने इन परीक्षणों की विधियाँ निकालीं। जिन सिद्धातों पर इस प्रकार के परीक्षण आधारित हैं वे निम्न-लिखित हैं।

(१) परीक्षण के लिए कीट एक ही उम्र के, बाल और स्वस्थ होने चाहिए।

(२) परीक्षण-जीव अधिक संख्या में प्राप्त हो सकें।

(३) परीक्षण-दशा, जैसे कि अनुकूल ताप, आर्द्रता इत्यादि ऐसी हों जिन्हें सर्वदा एक-सा रखना सम्भव हो सके।

(४) परीक्षण दुहराना सम्भव होना चाहिए।

(५) तुलना के लिए प्रमाप (मानक, 'स्टैन्डर्ड') परिरक्षी को प्रत्येक परीक्षण-माला में शामिल रखना चाहिए।

परिरक्षियों में तीन प्रकार के भेद किये गये हैं। एक तो पाचन-क्रिया में विष का काम करते हैं, दूसरे श्वास-क्रिया में और तीसरे संस्पर्श-क्रिया में। पृथक्-पृथक् परिरक्षियों को परखने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की विधियाँ प्रयोग में लायी गयी हैं।

सन् १९३२ के लगभग कामेसम् ने, जो वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून के भूत-पूर्व काष्ठ-परिरक्षण अधिकारी थे, गेहूँ के आटे में परिरक्षियों के विविध संकेन्द्रण मिलाकर सेंवई बनायीं। इन सेंवइयों की ज्ञात मात्रा चौड़े मुँहवाली छोटी बोतलों में ली गयी और गिने हुए प्रौढ़ छिद्रक कीट उनमें डाल दिये गये, इसके पश्चात् रुई की डाट से बोतलें बन्द कर दी गयीं। निश्चित काल पर इन बोतलों की सेंवइयों का निरीक्षण किया गया और मरे हुए छिद्रक कीटों की संख्या गिनी गयी। न्यूनतम परिरक्षी का संकेन्द्रण, जिसमें संपूर्ण कीटों का मरण हुआ, वही उस रसायन का विषालुता-मान माना गया। इस प्रकार कई परिरक्षी रसायनों की जाँच की गयी।

जर्मनी में इस प्रकार के परीक्षण काष्ठ-गुटिकाओं पर किये गये। काष्ठ-गुटिकाओं को भिन्न-भिन्न रासायनिक परिरक्षियों के संकेन्द्रण से उपचारित करने के पश्चात् उनमें छोटे-छोटे छिद्र बनाये गये और उनके अन्दर गिने हुए कीटों के डिम्भ डाले गये। ये गुटिकाएँ अनुकूल ताप तथा आर्द्रता पर निश्चित समय तक रखी गयीं और तद-नन्तर कीटों के मरण से विषालुता-मान का निश्चय किया गया। इसी प्रकार दीमकों के प्रति भी उनके आचरण के अनुकूल दशाओं का संयोग करने पर विषालुता-सीमा

ज्ञात की गयी । हर एक दशा में अशोधित काष्ठ-गुटिकाएँ नियन्त्रण के लिए प्रयोग में लायी गयीं । सामुद्रिक कीटों पर भी इस प्रकार के परीक्षण किये गये, परन्तु उनकी जैविक परिस्थितियों के नियन्त्रण में कठिनाइयाँ उत्पन्न होने के कारण उनके परिरक्षी का उतना अधिक विकास न हो सका, जितना छिद्रक कीट और दीमकों के निरोधी परिरक्षियों का हुआ। तथापि इन परीक्षणों से विविध रासायनिक पदार्थों के बारे में बहुमूल्य सूचनाएँ मिली हैं। इनसे यह पता लगा है कि बड़े पैमाने पर काष्ठ को वास्तविक सेवा-आयु प्रदान करने के लिए किन-किन परिरक्षियों का अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है।

(२) रासायनिक स्थायित्व

परिरक्षी का रासायनिक स्थायित्व ज्ञात करने के बारे में कोई निश्चित प्रमाप विधियाँ नहीं हैं। कुछ कार्यकर्ताओं ने परिरक्षी से शोधित काष्ठ-गुटिकाओं को चलते हुए या कूपी (बोतल) में रखे हुए पानी में डालकर धावन किया, और धुले पानी में रसायन-मात्रा का विश्लेषण इस लिए किया जिससे ज्ञात हो सके कि शोधित काष्ठ से परिरक्षी कितनी मात्रा में धुलकर निकल जाता है, अर्थात् पानी का उद्विलयन[1] क्रिया पर कितना प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के परीक्षणों से यह सूचना मिलती है कि जल-प्रवाह द्वारा शोधित काष्ठ में से परिरक्षी का लोप हो सकता है या नहीं । कभी-कभी ऐसे परीक्षण-चक्र प्रयोग में लाये जाते हैं, जिनमें गर्मी, शुष्कता और उद्विलयन का प्रभाव शोधित काष्ठ पर क्रमशः पड़ता रहे, अर्थात् ऋतुक्रिया-जैसी दशा प्राप्त हो जाय । इससे भाप द्वारा परिरक्षी की उड़ान या घुलनशीलता का पता भी लग जाता है। कई कार्यकर्ताओं ने शोधित काष्ठ-गुटिकाओं की आरम्भ-कालीन और ऋतुक्रिया-परीक्षण-पश्चात्-कालीन विषालुता का निश्चयन किया, जिससे परिरक्षी के स्थायिता-गुणों के बारे में उपयोगी सूचना मिल सके । परन्तु इस प्रकार के जितने भी परीक्षण प्रयोगशाला में किये जाते हैं, उनसे परिरक्षियों के बारे में वास्तविक और विश्वसनीय प्रभाविता का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता, कि किस तरह व्यवासायिक काष्ठ-परिरक्षण के पश्चात् शोधित काष्ठ को प्राकृतिक अवस्था में नाशकारक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। यह तभी हो सकता है जब शोधित काष्ठ को उपयुक्त आकार और स्थानों में लगाया जाय ।

1 Leaching.

(३) खुले में वृद्धिगत ('एक्सीलरेटैड') परीक्षण, शवांगण परीक्षण ('ग्रेव-यार्ड टैस्टस्')

वृद्धिगत ('एक्सीलरेटैड') परीक्षण एक और प्रकार से भी किये जाते हैं। ये परीक्षण कुछ सीमा तक सेवा-कार्य में उपयोजित परीक्षणों के तुल्य हैं। इनमें लघु-स्थायी काष्ठों के टुकड़ों को परिरक्षोपचार के पश्चात् ऐसी भूमि में गाड़ा जाता है जहाँ कवक और कीटों द्वारा विनाश की अनुकूल दशा हो। सामुद्रिक कीटों के विरुद्ध परीक्षा के लिए काष्ठ-प्रादर्श समुद्र में डुबोये जाते हैं। तुलना के लिए इनके साथ-साथ अशोधित काष्ठ के टुकड़े भी लगाये जाते हैं। इनमें जो काष्ठ-प्रादर्श ('टिम्बर स्पेसीमैन्स्') प्रयुक्त किये जाते हैं वे छोटी टक्कर के होते हैं, जिससे प्रादर्श के संपूर्ण तल-क्षेत्रफल के आयतन के साथ उच्च अनुपात हो। ऐसा होने से काष्ठ-नाशक जन्तुओं का अधिक मात्रा में आक्रमण होता है और साथ ही साथ परिरक्षी को प्राकृतिक धावन और उड़न की अधिकतम दशा प्राप्त हो जाती है। छोटे प्रादर्श होने के कारण परिणाम भी शीघ्रता से मिल सकते हैं। कहीं-कहीं काष्ठ के प्रादर्श शल्कल ('विनियर्स') का टुकड़ों के आकार में प्रयोग करते हैं, जिससे कि परीक्षण के परिणाम और शीघ्र निकल सकें। छोटे गोल रसकाष्ठ के प्रादर्शों का भी बहुधा उपयोग किया गया। काष्ठ-नाशक जन्तु इस प्रकार के रसकाष्ठ के टुकड़ोंको अशोधित दशा में शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। जिन क्षेत्रों में ये परीक्षण किये जाते हैं उनको शवांगण ('ग्रेवयार्ड') कहते हैं, और इस प्रकार के परीक्षण शवांगण-परीक्षण कहलाते हैं। चित्र ३३ में वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून का काष्ठ-शवांगण दर्शाया गया है। सारणी १० में (वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के शवांगण में किये गये परीक्षणों पर आधारित कुछ परिरक्षी-निरीक्षण विवरण दिये गये हैं।

(४) सेवा-परीक्षण ('सर्विस टैस्ट्स्')

सेवा-परीक्षण में व्यवसाय योग्य काष्ठों को परिरक्षियों द्वारा शोधित करके वास्तविक उपयोग में लाते हैं। इन परीक्षणों में उपचारित काष्ठों को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपयोगों में, जैसे कि रेलवे-स्लीपर, बिजली व तार के खम्भे, खानों के आधार-स्तम्भ, समुद्र-तीर के भरण-तट, पुल, गृह, बाड़-वल्ली इत्यादि सेवा-आयु-अपेक्षी कार्यों में विनियोजित किया जाता है। जितनी ही विविध प्रयोग-दशाएँ, खुले में रहने की अवधि और काष्ठ-अंश होंगे, उतने ही विश्वसनीय परीक्षण-परिणाम प्राप्त होंगे। इन परीक्षणों में काष्ठ-जाति, परिरक्षी-प्रकार, उपचार-विधियों,

(पृ० १४२ देखिए)
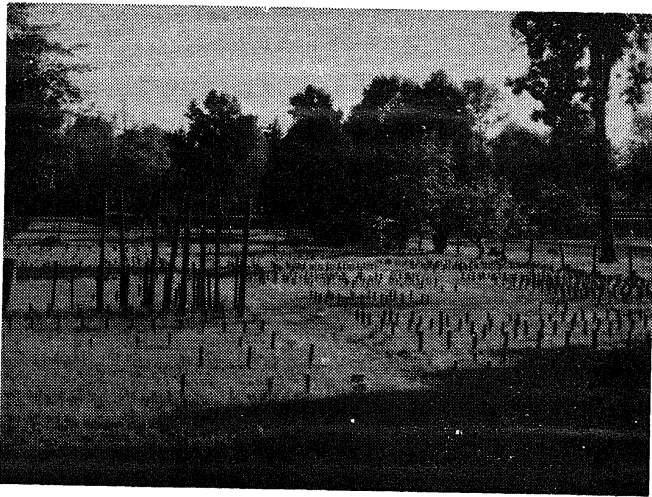
चित्र ३३—वन-अनुसंधानशाला, देहरादून का काष्ठ-शवांगण, पृ० १३८।

सारणी—१०

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा के अन्तर्गत शवांगण ('ग्रेवयार्ड') में परिरक्षियों पर किये गये कुछ परीक्षणों के प्रतिवेदन (रिपोर्ट)।

प्रादर्श—२ फुट × २ इंच × २ इंच, आयताकार

लगाने का दिनांक १७—३—१९३१
निरीक्षण का दिनांक १७—२—१९५९

प्रत्येक जाति का १ प्रादर्श लिया गया

क्रमांक	काष्ठजाति	उपचार-विधा	परिरक्षी प्रचूषण (शुष्क लवण)		निरीक्षण समय पर प्रादर्शों की दशा।			
			पौंड प्रति घनफुट	किलोग्राम प्रति घनमीटर	उपचारित	अवधि वर्ष-मास	अनुपचारित	अवधि वर्ष-मास
१	पाइनस् लोंगीफोलिया	निपीड	१.८२	२९.१२	अ० कि० (द)		न० (द)	०—७
२	एडाइना कौर्डीफोलिया	”	१.१२	१७.९२	म० (द)		न० (द क)	०—७
३	पीसिया मौरिन्डा	”	०.९२	१४.७२	न० (द)	२२—१०	न० (द)	१—७
४	एबिस पिन्ड्रो	”	१.७५	२८.००	म० (द)		न० (द)	०—४
५	बौम्बैक्स मैलैबैरिकम्	”	१.७७	२८.३२	ब० (द)		न० (द)	०—७
६	शाइलीचरा त्रीजुगा	”	२.१६	३४.५६	न० (द क)	११—८	न० (द क)	२—८
७	टर्मिनेलिया टोमैनटोसा	”	०.६१	९.७६	न० (द क)	५—१०	न० (द)	२—८
८	एल्बीजिया प्रोसीरा	”	१.७१	२७.३६	न० (क)	१०—९	न० (द)	५—१०

परिरक्षी एस्क्यू (८ प्रतिशत)

प्रत्येक जाति के ६ प्रादर्श लिये गये { लगाने का दिनांक २४–७–१९३५
निरीक्षण का दिनांक १३–१–१९५९

१	पाइनस् लोंगीफोलिया	निपीड	०.८४	१३.४४	४ अ० किं० (द) २ किं० (द)	न० (द)	०–११
२	एबिस पिन्ड्रो	”	०.९०	१४.४०	३ अ० किं० (द) ३ किं० (द)	न० (द)	४–५
३	पाइनस् इकसैल्सा	”	०.८५	१३.६०	५ किं० (द) १ म० (द)	न० (द)	८–४
४	सीड्रस देवदारा	”	१.१३	१८.०८	३ सा० ३ अ० किं० (द)	न० (द)	१३–११
५	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	”	१.२४	१९.८४	१ किं० (द) २ म० (द) १ ब० (द) १ न० (क) १४–५	न० (द)	१–२
६	डिप्ट्रोकार्पस् मैक्रोकार्पस्	(एस्क्यू ४ प्रतिशत से)	०.६२	९.९२	१ म० (द) १ ब० (द) किं० (क) ४ न० (द) १८–९	न० (द०)	१–८

परिरक्षी क्रियोजोट और इन्धन तैल (४० : ६०)

प्रत्येक जाति के २ प्रादर्श लिये गये { लगाने का दिनांक १६–२–१९३५. निरीक्षण का दिनांक १३–१–१९५९.

१	पाइनस् लौंगीफोलिया	निपीड	६.८५	१०९.६०	१ म० (द) कि. (क)	न० (द)	०–११
२	एबिस पिन्ड्रो	,,	१३.१०	२०९.६०	{ १ सा० १ म० (द) कि (क) }	न० (द)	४–५
३	पाइनस् इकसैलसा	,,	१४.२५	२२८.००	{ १ किं० (द) १ अ० किं० (द) }	न० (द)	८–४
४	सीड्रस देवदारा	,,	९.४५	१५१.२०	{ १ अ० किं० (द क) १ किं० (द) }	न० (द)	१३–११
५	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	,,	५.९०	९४.४०	२ न० (क) १४–४	न० (द)	१–२
६	डिप्ट्रोकार्पस् मैक्रोकार्पस्	,,	५.३५	८५.६०	१ न० (क) १७–५ १ न० (क) १६–७	न० (द)	१–८

टिप्पण —

अ० — अति । म० — मध्यम । (द) — दीमक ।
सा० — सामान्य । ब० — बहु । (क) — कवक ।
किं० — किंचित् । न० — नष्ट ।

परिरक्षी-प्रचूषण और प्रयोग तिथि के बारे में पूर्ण अभिलेख रखे जाते हैं। अमेरिका की काष्ठ-परिरक्षक संस्था ('अमेरिकन वुड प्रीजरवर्स एसोशिएसन्') इस बारे में पूर्ण सूचना रखती है और वहाँ इस प्रकार के कई परीक्षण चालू हैं। समय-समय पर उनके परिणामों के विवरण निकलते रहते हैं। भारतवर्ष में भी वन-अनुसन्धान शाला में इन परीक्षणों का अभिलेखन है। चित्र ३४, ३५ में शोधित काष्ठ के रेलवे स्लीपरों व बिजली के खम्भों पर हुए सेवा-परीक्षण दर्शाये गये हैं।
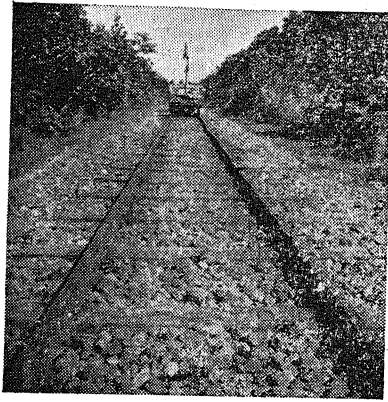
चित्र ३४—उपचारित काष्ठ स्लीपरों का सेवा-परीक्षण।
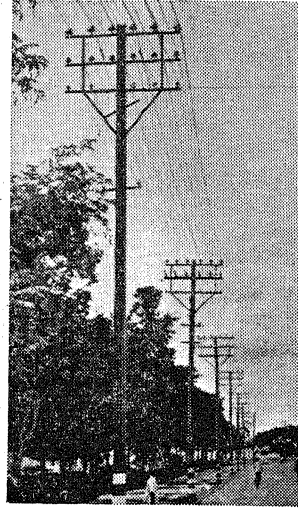
चित्र ३५—सेवा-कार्य में लगे हुए उपचारित काष्ठ खंभों का दृश्य।

(५) परिरक्षी प्रवेश्यता

व्यावहारिक दृष्टि से परिरक्षी की काष्ठ में अन्तः प्रवेशन योग्यता का निश्चयन ठीक प्रकार से किया जा सकता है। भिन्न-भिन्न परिरक्षियों के इस गुण की अर्हात्मक तुलना करने के लिए यथोचित काष्ठ-प्रादर्श और माप संयन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। काष्ठ-उपचार विधियों का भी प्रमापीकरण[1] करना पड़ता है। परिरक्षी ने कितनी गहराई तक प्रवेश किया है, यह काष्ठ को काटने या छिद्रण से विदित हो जाता है।

1 Standardisation प्रामाणिकीकरण, मानकीकरण।

चित्र ३६—परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य।
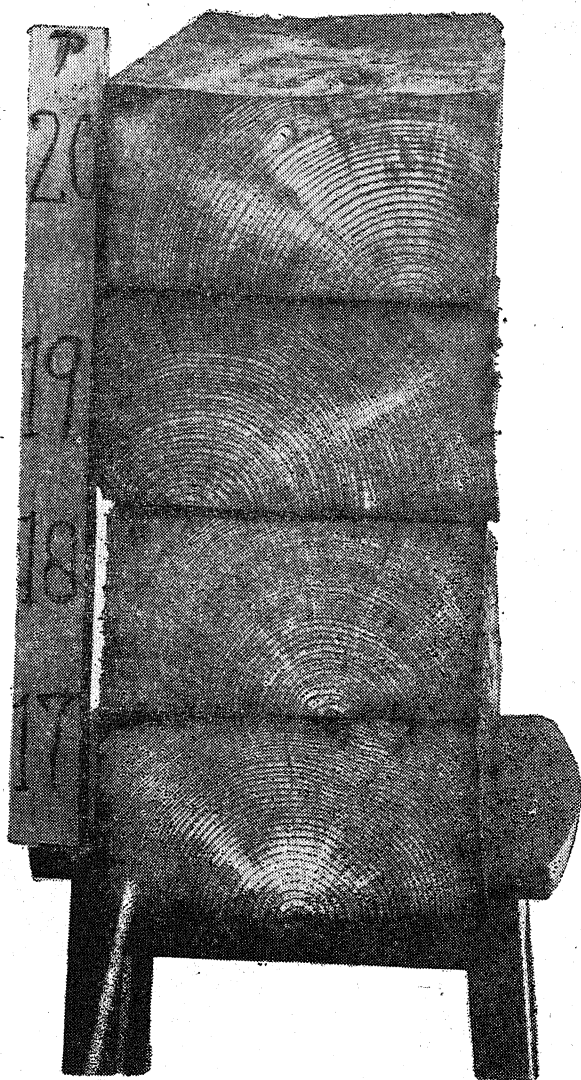
चित्र ३७—परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य।

क्रियोजोट-जैसे तैल-परिरक्षी की, जिसका रंग गहरा होता है, प्रवेश-सीमा ज्ञात करना सरल है। अप्रांगारिक लवण परिरक्षियों का, जो रंगहीन होते हैं, प्रवेश-निश्चयन किसी ऐसे प्रतिकर्त्ता ('रिएजैन्ट') रसायन की सहायता से हो सकता है, जो इसके साथ मिलकर रंगीन प्रतिक्रिया कर सकें। ऐसे प्रतिकर्त्ताओं का विवरण सारणी ११ (परिशिष्ट १) में दिया गया है। काष्ठ में परिरक्षी-प्रवेशन के कुछ दृश्य चित्र ३६,३७ में दर्शाये गये हैं।

(६) अन्य गुणों (धातु-स्पर्श संरक्षण, अग्निरोधन, काष्ठशक्ति पर प्रभाव, इत्यादि) के परीक्षण

परिरक्षियों के विशेष लक्षणों अर्थात् धातु की संगति पर उसका संक्षारण, काष्ठ के अग्निरोधन गुण और शक्ति पर प्रभाव, रासायनिक स्थायित्व, काष्ठ-रूप में परिवर्तन, शोधित काष्ठ की बाह्यलेप-धारण-क्षमता और परिरक्षणकार्य में श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रभाव इत्यादि के परीक्षण करने की विधियों का मापीकरण (केवल अग्निरोधन और शक्ति पर प्रभाव के तुलन के अतिरिक्त) करने के कुछ प्रयत्न किये गये हैं। प्रत्येक कार्यकर्त्ता ने अपनी पृथक्-पृथक् विधियों का प्रयोग किया है।

परिरक्षी के संक्षारण के कारण धातुओं पर कितना प्रभाव पड़ता है यह ज्ञात करने के लिए कुछ कार्यकर्त्ताओं ने धातु के स्वच्छ टुकड़ों को तोलकर परिरक्षी विलयन में डुबोये रखा। ये टुकड़े उसी धातु के थे जो उपचार-संयन्त्र में प्रयोग की जाती थी, जैसे कि लोहा या पीतल। कुछ समय पश्चात् उनको निकाल कर और स्वच्छ कर फिर तोला। भार में जो कमी हुई वह संक्षारण के कारण थी। शोधित काष्ठ का धातु के संस्पर्श में संक्षारण जानने के लिए लोहे या पीतल के पेचों को तोलकर काष्ठ के टुकड़ों में कस दिया। कुछ समय पश्चात् इनको भी निकाल कर और स्वच्छ कर पुनः तौल लिया। अतः इस प्रकार भार में संक्षारण के कारण हुई कमी का निश्चयन किया गया।

परिरक्षी का काष्ठ-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका निर्धारण भी यथोचित परीक्षणों द्वारा किया जा सकता है। शोधित और अशोधित काष्ठ-प्रादर्शों को एक-सी ही आर्द्र-अवस्था में लाकर शक्ति-मापकयन्त्रों द्वारा उनका मान निकाला जाता है। काष्ठ की शक्ति आर्द्रता पर निर्भर रहती है। ज्यों-ज्यों आर्द्रता कम होती है, काष्ठ-शक्ति बढ़ती जाती है; अतः काष्ठ-प्रादर्शों को परीक्षा के पूर्व तुलना के लिए एक ही आर्द्रता पर लाना आवश्यक है। यह दशा प्राप्त होने के लिए काष्ठ-प्रादर्शों

को यथोचित समय तक प्रतिबन्धित कोष्ठों ('कन्डीशनिंग चैम्बर्स') में रहने दिया जाता है जिससे कि उनकी आर्द्र-मात्रा प्रायः समान हो जाय क्योंकि शक्ति की तुलना तभी विश्वसनीय मानी जा सकती है। इस क्षेत्र में कार्य-कर्त्ताओं ने भिन्न-भिन्न आकार के काष्ठ-प्रादर्शों का प्रयोग किया और परीक्षण-विधियों के लिए भी कई प्रकार के यन्त्रों का आयोजन किया हैं।

परिरक्षी-विनियोजन से मानव के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका निर्णय करने के लिए कोई विशेष मापक विधियाँ प्रचलित नहीं हैं क्योंकि जनता के लिए वे परीक्षण धारण अव्यवहार्य हैं। तथापि, परिरक्षी के काष्ठ-परिरक्षण कार्य में प्रयोग के फलस्वरूप जो अनुभव प्राप्त हुआ है उसीसे इस विषय पर आवश्यक सूचना मिल सकती है। इसके अतिरिक्त प्रयोगशाला में प्रयोग किये गये परिरक्षी का पशुओं के प्रति किलोग्राम भार पर घातक मात्रा के निश्चयन से और उनकी जीवन-क्रिया पर पड़े प्रभाव से यह ज्ञान प्राप्त हो सकता है कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। यद्यपि इन विविध गुणों की परीक्षा करने के लिए किन्हीं विशेष मापक विधियों का निर्धारण नहीं किया गया, फिर भी बुद्धिपूर्वक योजना-बद्ध कार्य से जो भी परीक्षण किये जायँ उनसे अवश्यमेव अत्यन्त उपयोगी सूचना मिल सकती है।

४. परिरक्षियों प्रकार

लगभग डेढ़ शताब्दी पूर्व, जब से काष्ठ-परिरक्षियों के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ, परिरक्षियों का उनके रासायनिक और भौतिक लक्षणों के अनुसार साहित्य में उल्लेख है, परन्तु मुख्यतः उनका तीन प्रकारों में वर्गीकरण किया गया है। वे हैं, (क) तैल रूप ('औइल टाइप्'),[1] (ख) जल-विलेय ('वाटर सौल्यूबुल')[2] रूप, और (ग) प्रांगारिक विलायक ('औगैनिक सौल्वैन्ट')[3] रूप। इनका सविस्तर वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) तैल-रूप परिरक्षी

इनमें मुख्यतः राल ('टार') तैल हैं और इनके विशेष गुण निम्न प्रकार से हैं—

(१) ये धावन-रोधी होते हैं, अर्थात् जल-क्रिया से शीघ्र नहीं धुल सकते। अतः एव ये उन काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं जिनका उपयोग बाह्य-कार्य, पानी अथवा भूमि में गाड़ने आदि के लिए करना हो।

1 Oil Type. 2 Water Soluble. 3 Organic Solvent.

(२) धातु पर संक्षारण-क्रिया नहीं होती।

(३) इनसे उपचारित काष्ठों पर रंग-लेप नहीं किया जा सकता ।

(४) जिन वस्तुओं के संस्पर्श में ये आते हैं उन पर फैलने की इनकी प्रवृत्ति होती है ।

(५) इनमें तीव्र गन्ध होती है, जिसे खाद्य या अन्य पदार्थ थोड़ी बहुत मात्रा में ग्रहण कर लेते हैं, भले ही इन्हें इनसे उपचारित काष्ठों के निकट संग्रह क्यों न किया गया हो।

(६) इनके द्वारा उपचारित काष्ठ आरम्भ में अनुपचारित काष्ठ की अपेक्षा अधिक ज्वलनशील[1] होता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् जब तैल का उड़नशील भाग भाफ बनकर उड़ जाता है तो फिर इनमें कोई विशेष ज्वलनशीलता नहीं रहती। इस बात का प्रमाण है कि क्रियोजोट द्वारा शोधित काष्ठ, अशोधित काष्ठ की अपेक्षा अधिक ज्वलनशील नहीं होता।

(७) इनके द्वारा उपचारित-काष्ठ बहुधा धूप में रहने से उत्स्रवित ('ब्लीड्') होते हैं, अर्थात् तैल बाहर निकलकर काष्ठ के ऊपर बहता रहता है।

तैलरूपी परिरक्षियों के समूह में वे उपसृष्ट पदार्थ ('उपजात या बाइ-प्रौडक्टस्') जो कोयला-आसवन ('डिस्टिलेशन') या कोलटार परिष्करण से प्राप्त होते हैं शामिल हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी उपजात हैं जो काष्ठ-आसवन और जल-गैस से (जो घरेलू व्यावसायिक तापन-कार्य में प्रयुक्त की जाती है) प्राप्त होते हैं। पैट्रोल-परिष्करणी ('पैट्रोलियम् रिफाइनैरीज़्') से प्राप्त पदार्थ भी इनमें गिने जाते हैं । इन तैलों में सैकड़ों प्रकार के रासायनिक संयोग हैं जिनका अभी तक निर्णय नहीं हो सका है। इनका अंश भी निर्माण के अनुसार पृथक-पृथक मात्रा में होता है । इन परिरक्षियों के अधोलिखित नाम हैं —

कोलटार क्रियोजोट

सन् १८३८ से जब जौन बैथल ने काष्ठ-परिरक्षण के लिए' टार आइल' का ब्रिटिश पेटैन्ट लिया था, कोलटार क्रियोजोट एक प्रामाणित (मानकित) परिरक्षी[2] गिना जाने लगा है। आज लगभग १२० वर्ष से भी ऊपर हो चुके हैं जब से यह सामान्यतः हर प्रकार के काष्ठ-परिरक्षण के लिए प्रयोग में लाया जाता है और उससे संतोष-

1 Inflammable. 2 Standard preservative.

जनक परिणाम निकले हैं । अमेरिकन काष्ठ-परिरक्षक संस्था की वार्षिक कार्यवाही रिपोर्ट में इस परिरक्षी के व्यावसायिक काष्ठ-परीक्षण कार्य हेतु उपयोग का सांख्यिक विवरण दिया जाता है। उदाहरणार्थ, सन् १९५५ में बिना मिलावट के लगभग १५ करोड़ गैलन कोलटार क्रियोजोट का उस देश में प्रयोग किया गया ।

कोलटार क्रियोजोट जो व्यवसाय में क्रियोजोट नाम से ही प्रसिद्ध है, कोलटार के आसवन से बनाया जाता है। कोलटार, खनिज कोयला (अंगार) से कार्बनीकरण (कार्बोनाइजेशन') द्वारा प्राप्त होता है । तापन-गैस और धातुकार्मिक एवं घरेलू कोयला उत्पादन के हेतु कोयले का कार्बनीकरण किया जाता है। इस कार्बनीकरण से अन्य रासायनिक पदार्थ भी मिलते हैं और प्रमुख उद्योगों में इनकी भी गिनती है। कोल-टार आसवन ('डिस्टिलेशन') से जो प्रभाग पहले निकलते हैं वे हल्के तैल ('लाइट-औइल्स्') कहलाते हैं और इस क्रिया के अन्त में जो शेष रहता है वह निराल ('पिच्') कहलाता है । इन दोनों पदार्थों के मध्य में (२००° सेन्टीग्रेड से ४००° सेन्टीग्रेड तक) उबलनेवाला जो तरल पदार्थ प्राप्त होता है वही क्रियोजोट तैल कहलाता है। इसमें सैकड़ों रासायनिक पदार्थ सम्मिलित हैं, पर मुख्यतः ये तीन वर्ग के होते हैं—(क) उदांगार ('हाइड्रोकार्बन्स्')[१], (ख) राल-अम्ल ('टार एसिडस्')[२] और (ग) राल-क्षार ('टार बेसेज')[३] । इन पृथक-पृथक वर्गों में निम्नलिखित रसायन सम्मिलित होते हैं—

(क) उदांगार में, बैन्जीन, टौल्वीन, जाइलीन, नैफ्थैलीन, फ्लोरीन, एन्थ्रेसीन, इत्यादि, अधिक मात्रा में होते हैं।

(ख) राल-अम्ल में, फीनोल, क्रीजोल, जाइलीनोल, इत्यादि हैं, जो ५ प्रतिशत से कम मात्रा में हैं ।

(ग) राल-क्षार में, पाइरीडीन, क्यूनोलीन, एक्रीडीन, इत्यादि हैं । ये भी राल-अम्ल से अधिक मात्रा में नहीं होते ।

इन उपरि-लिखित सभी रसायनों के क्रियोजोट संयोजन से काष्ठ-नाशक कवक, कीट और सामुद्रिक छिद्रकों पर विषैला प्रभाव पड़ता है । क्रियोजोट एक स्थायी पदार्थ है और जल में नहीं घुलता । अतः इससे काष्ठ-परिरक्षण कार्य में अत्यन्त सफलता मिली है।

क्रियोज़ोट की विशिष्टियों में पूर्वोक्त संयोगों का यथार्थ अनुपात-मात्रा में होने

1 Hydrocarbons. 2 Tar Acids. 3 Tar Bases.

का उल्लेख नहीं है। केवल इतना ही प्रतिबन्ध लगाया गया है कि यह तैल कोलटार से प्राप्त होना चाहिए और इसके आपेक्षिक घनत्व व आसवन तापक्रम की सीमा निश्चित कर दी गयी है। इसमें जो बाह्य-मल पदार्थ पाये जाते हैं उनका भी सीमा-बन्धन कर दिया गया है। भारतीय मानक संस्था ने क्रियोजोट की जो विशिष्टि बनायी है वह निम्न प्रकार से है।

(१) आपेक्षिक भार (३८° सेन्टीग्रेड)—१.०३ से लेकर १.१० तक—सीमित मात्रा।

(२) जल-मात्रा, आयतन पर प्रतिशत, अधिकतम—२.०।

(३) बैन्जीन में न घुलनेवाले पदार्थ, भार पर प्रतिशत, अधिकतम—०.५०।

(४) आसवन प्रभाग भार पर प्रतिशत, अधिकतम—

२१०° सेन्टीग्रेड तक—५
२३५° सेन्टीग्रेड तक—३०
३१५° सेन्टीग्रेड तक—७५

३१५° सेन्टीग्रेड से ऊपर का शेष भाग मृदु हो, न कि चिपकनेवाला।

यह क्रियोजोट बहुधा उस कोलटार से प्राप्त होता है जो उच्च तापक्रम (१६००° सेन्टीग्रेड से २०००° सेन्टीग्रेड) प्रांगारण क्रिया से बना हो, परन्तु लघुतापक्रम (१०००° सेन्टीग्रेड से १४००° सेन्टीग्रेड) कार्बनीकरण से बने कोलटार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनता है जिसे लघु-तापक्रम कोलटार क्रियोजोट कहते हैं। इसका प्रयोग विदेशों में (शीतोष्ण जलवायुवाले देशों में) किया गया है। इसके हल्के प्रभाग में (उड़नेवाले) तैलों की मात्रा अधिक होती है। अतः यह क्रियोजोट, भारत-जैसे उष्ण देशों के लिए उपयुक्त नहीं माना गया है, यद्यपि इससे बड़े पैमाने में परीक्षण नहीं किये गये हैं।

क्रियोजोट का पर्याप्त मात्रा में (लगभग ३,६०० टन प्रतिवर्ष) उत्पादन, शालीमार टार प्रौडक्टस् (१९३५) लिमिटेड, कलकत्ता, के उद्योग-केन्द्रों में होता है। अंगार आसवन, जिससे क्रियोजोट का उत्पादन होता है, एक प्रकार का प्रमुख उद्योग गिना जाता है। आर्थिक दृष्टि से भी क्रियोजोट का मूल्य यथोचित है।

एन्थ्रेसीन अथवा कार्बोलीनियम तैल भी उच्च आपेक्षिक भारवाले और उच्च उबलनेवाले क्रियोजोट हैं और भारतवर्ष-जैसे उष्ण प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, पर इनमें अधिक ठोस पदार्थ रहते हैं जिनके कारण यह तैल काष्ठ के अन्तः-प्रवेशन के लिए सुविधाजनक नहीं हैं।

लिग्नाइट कोल से प्राप्त टार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनाया जाता है जो लिग्नाइट टार क्रियोजोट कहलाता है। यह हल्का तैल है जिसका आपेक्षिक भार जल से कम होता है और टार-अम्ल की मात्रा अधिक होती है। इससे अभी तक परीक्षण नहीं किये गये हैं और हल्का तैल होने से इससे संतोषजनक परिणाम की आशा भी नहीं की जा सकती। 'वाटर-गैस' (जल-वाति) टार से भी एक प्रकार का क्रियोजोट बनाया जाता है। इसे वाटर-गैस-टार क्रियोजोट कहते हैं। यह कम प्रभावशाली होने के कारण प्रायः प्रयोग में नहीं लाया जाता।

क्रियोजोट-कोलटार मिश्रण (५० प्रतिशत तक) का अमेरिका में काष्ठ-परिरक्षण में प्रयोग किया गया है। वहाँ यह अनुभव है कि इससे उपचार किये गये रेलवे-स्लीपरों में फटन कम होती है यद्यपि शोधित काष्ठ के ऊपर इस तैल-मिश्रण के फैलने की अधिक आशंका होती है। भारत में इसका प्रयोग अभी तक नहीं किया गया, पर सामुद्रिक काष्ठ उपचार के लिए, वन-अनुसन्धानशाला ने इससे परीक्षण अभी आरम्भ किये हैं। वैसे कोलटार का भी बहुधा पृथक प्रयोग किया जाता है, पर यह गाढ़ा होने से काष्ठ की सतह पर शीघ्र नहीं सूखता और काष्ठ में इसका प्रचूषण भी नहीं कराया जा सकता। इसी कारण केवल कोलटार से उपचारित काष्ठों के परिणाम संतोषजनक नहीं रहे।

सौलिग्नम् और क्रियोजैन्ट् भी स्वामि-काष्ठपरिरक्षी ('प्रोप्राइटरी वुड प्रीजरवेटिव्स्') हैं। ये उच्च उबालवाले क्रियोजोट हैं, और काष्ठ पर कूँची से लेप करने के लिए उपयुक्त हैं। क्रियोजैन्ट, शालीमार टार प्रौडक्टस् कम्पनी ने बनाया है।

काष्ठ-राल ('वुड-टार क्रियोजोट')

वुड-टार क्रियोजोट, काष्ठ आसवन से प्राप्त काष्ठ-राल से उसी प्रकार बनाया जाता है जैसे कि कोलटार क्रियोजोट कोलटार से। इसमें एसिटिक एसिड की मात्रा अधिक रहती है। यह कोलटार क्रियोजोट की अपेक्षा कम प्रभावशाली है और इससे लोहे के उपचार-संयन्त्रों पर संक्षारण भी अधिक होता है। सन् १९२८ के लगभग मैसूर वन-विभाग ने आइरन एन्ड स्टील वर्कस् से प्राप्त वुड-टार क्रियोजोट से व्यावसायिक काष्ठ-परिरक्षण किया था, पर लोह-संयन्त्रों के संक्षारण के कारण परिरक्षी को बदलकर कोलटार क्रियोजोट का प्रयोग करने लगे। इसका उत्पादन भी अत्यन्त कम है और जितना भी बनता है वह अन्य कार्य और औषधियों के लिए ही काम आता है।

'पैट्रोलियम ऑइल्स' (मिट्टी के तैल)

ये एक प्रकार के खनिज-तैल हैं। इनके कई नाम हैं जैसे, इन्धन तल ('फ्यूयल ऑइल'), भ्राष्ट्र-तैल ('फर्नेस्-ऑइल') अपरिष्कृत-तैल, ('क्रूड ऑइल') और पीड-

ज्वाल-तैल ('डीजल ऑइल')। खनिज-तैल के परिष्करण ('रिफाइनिंग') और आसवन क्रियाओं से ये भिन्न-भिन्न प्रभागों में प्राप्त होते हैं। इन तैलों की काष्ठ-विनाश कारक विरोधी विषालुता क्रियोजोट की अपेक्षा अत्यन्त कम है, पर ये खनिज तैल, आर्द्रता-रोधी गुण प्रदान करने के कारण कुछ सीमा तक काष्ठ को सड़ने से बचा देते हैं। इन तैलों में भी आधार तत्त्वों की भिन्नता के कारण परस्पर भेद होता है। जिनका मूल, 'एस्फल्ट' होता है उनमें सुरभि संयोग ('एरोमैटिक कम्पौन्डस्') अधिक मात्रा में होते हैं जिससे वे विषालुतायुक्त हो जाते हैं। जिनका मूल 'पैरेफिन' (मृद्वसा) होता है उनमें स्नैहिक संयोग ('एलीफैटिक कम्पौन्डस्') होते हैं जो अपेक्षाकृत कम विषैले हैं। कुछ वर्तमान परिष्करण उद्योगों में भंजन ('क्रैकिंग') क्रिया से इन तैलों में भारी परिवर्तन हो जाते हैं और इनसे संश्लिष्ट क्रियो-जोट ('सिन्थैटिक क्रियोजोट') बनाया गया है। इनसे कुछ अच्छे परिणाम निकले हैं। पर अभी इनका उत्पादन अधिक मात्रा में नहीं हुआ है यद्यपि अमेरिका में इन पदार्थों के कई एकस्व ('पेटैन्टस्') लिये जा चुके हैं। पतले मिट्टी के तैल से काष्ठ-छिद्रकों को मारने में सफलता प्राप्त हुई है, पर यह तैल स्थायी नहीं रहता और कुछ समय पश्चात् काष्ठ से उड़ जाता है। काष्ठ-परिरक्षण कार्य में भी इस प्रकार के तैलों से काष्ठ की अभिज्वाल्यता बढ़ने का भय है।

खनिज-तैलों का प्रयोग बहुव्ययी क्रियोजोट को मन्द करने के लिए किया जाता है। व्यवसायिक काष्ठ-परिरक्षण के लिए यह तेल ५० प्रतिशत तक क्रियोजोट में मिलाये जाते हैं। इन तैलों का प्रयोग कुछ ठोस विषैले संयोगों को घोलने में भी किया गया है जिससे कि काष्ठ में ये संयोग व्यापित किये जा सकें।

तैल पायस ('ऑइल इमलशन्स्')

पानी में क्रियोजोट के पायस का प्रयोग, काष्ठ के अन्दर उसके व्यापन और तदनन्तर उपचारण-व्यय को कम करने के उद्देश्य से किया जाता है। विष-लवणों के खनिज-तैल द्वारा पायस बनाने का उद्देश्य लवणों को पानी में अघुलनशील बनाने का है। यद्यपि इस प्रकार के परिरक्षी संगठन, काष्ठ-परिरक्षण कार्य में लाये गये हैं, पर इनको तैयार करने की विधियाँ असुविधाजनक होने के कारण, व्यावसायिक काष्ठ-परिरक्षण में सफलता नहीं मिली। पायस के लम्बे अवसर तक स्थायी न रहने और फट जाने के कारण, वह परिरक्षीय प्रयोजन के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुए।

(ख) जलविलेयरूप परिरक्षी

जो परिरक्षी पानी में घोले जाते हैं, वे जल-विलेय परिरक्षी कहे जाते हैं। इनके दो वर्ग हैं। एक तो इनमें शुद्ध (अमिश्रित) जल-विलेय परिरक्षी हैं, और दूसरे स्थिर अथवा बद्ध (मिश्रित) जलविलेय परिरक्षी। चाहे ये किसी भी वर्ग के हों, इनके मुख्य गुण निम्न प्रकार से होते हैं।

(१) ये तैल-परिरक्षी से कम गाढ़े होते हैं, जिसके कारण इनसे काष्ठ के अन्तर्व्यापन में सरलता होती है।

(२) ये बहुधा गंधहीन होते हैं।

(३) इनसे उपचारित काष्ठों के सूखने पर उन पर बाह्य-लेपन किया जा सकता है।

(४) ये काष्ठ अभिरञ्जन नहीं करते न सतह पर फैलते ही हैं।

(५) ये काष्ठ की अभिज्वाल्यता (ज्वलनशीलता) को नहीं बढ़ाते।

(६) ये परिरक्षी की अपेक्षा सस्ते होते हैं, और चूर्ण रूप में होने के कारण इन्हें इधर-उधर ले जाने में सुगमता होती है।

(७) यद्यपि शुद्ध (अमिश्रित) लवण पानी में घुलनशील होने के कारण अन्दर के कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं, पर स्थिर (मिश्रित) वर्ग-वाले परिरक्षी लवण बाहर (खुले में) और अन्दर, अर्थात् दोनों कार्यों के लिए योग्य समझे गये हैं, चाहे उनसे उपचारित काष्ठ भूमि के संस्पर्श में हों अथवा पानी के।

(८) इनसे उपचारित काष्ठों को पुनः सुखाना आवश्यक होता है, और इसलिए अंत में काष्ठ-भार, तैल द्वारा उपचारित काष्ठ की अपेक्षा, हल्का रहता है।

(९) इनमें कुछ ऐसे भी परिरक्षी हैं जो काष्ठ की पेटियों के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं क्योंकि इनमें संचित खाद्य-पदार्थ दूषित नहीं हो सकते।

(१०) ये हरे अथवा शुष्क, सभी प्रकार के काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त हैं।

जल-विलयन परिरक्षी मुख्यतः अप्रांगारिक लवण होते हैं। इनका वर्णन अधो-लिखित प्रकरणों में दिया गया है—

(१) शुद्ध (अमिश्रित) जल-विलेय परिरक्षी

आर्सेनिक (संखिया या नैपालिक)

कई वर्षों से आर्सेनिक के यौगिक परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त किये जा रहे हैं। आर्सेनिक के जारेय ('आर्सेनिक औक्साइड') का उपयोग बहुधा अकेले या अन्य लवणों के साथ काष्ठ-परिरक्षण कार्य में किया गया है।

कच्ची धातुओं के विधायन में आर्सेनिक एक उपजात पदार्थ है और इसका उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में स्वीडन और पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका में होता है।

आर्सेनिक यौगिक काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओं के प्रति अत्यन्त ही विषैले होते हैं। इनमें दीमकों को मारने की शक्ति विशेषतः अत्यधिक होती है। मानव और पशुओं के लिए भी ये विष हैं। अतः इनके प्रयोग-काल में सावधान रहने की आवश्यकता है यद्यपि इनके द्वारा न तो मनुष्य के मरण का विशेष संकेत ही मिला है और न गृह-निवासियों को, जहाँ इससे उपचारित काष्ठ प्रयुक्त किये गये, कोई हानि होने की सूचना ही मिली है।

भारतवर्ष में सन् १९११ से १९१६ तक परीक्षणार्थ काष्ठ के कुछ रेलवे-स्लीपर 'पौवेल विलयन' से उपचार करने के पश्चात् रेलवे लाइनों में लगाये गये। जिन काष्ठों का उपचार किया गया वे अल्प-स्थायी चीड़, कैल और सैन जाति के थे। 'पौवेल विलयन' में 'आर्सेनिक ट्राइ औक्साइड' और शीरे को पानी में घोला गया था। उन शोधित स्लीपरों से अच्छे परिणाम (८क) निकले हैं, और मुख्य लाइनों में २० वर्ष से ऊपर की ही औसत आयु उन्हें प्राप्त हुई है।

आर्सेनिक के बहुत-से एकस्वी-कृत परिरक्षी संगठनों में प्रयोग का वृत्तान्त आगे दिया गया है।

कॉपर सल्फेट (ताम्र शुल्बीय-नीला थोथा)

कॉपर सल्फेट् का परिरक्षी के रूप में प्रयोग फ्रांस और अन्य यूरोपीय देशों में १०० वर्ष से भी अधिक पूर्व किया गया था। यह काष्ठ-नाशक कवकों के प्रति अत्यन्त प्रभावशाली है। इसके प्रयोग में यह असुविधा है कि इससे लोह-संयन्त्रों का संक्षारण होता है और यह शीघ्र ही घुलकर काष्ठों में से निकल जाता है।

इसका प्रयोग 'बूशरी' प्रक्रिया से हरी काष्ठ बल्लियों के उपचार के लिए फ्रांस और जर्मनी में अधिकतर किया गया और उससे अच्छे परिणाम निकले। 'बूशरी' प्रक्रिया में केवल ताँबा, रबर और काष्ठ काम में लाये गये और लोह उपकरण का

त्याग कर दिया गया । इसका उपयोग पानी में बहुधा १ प्रतिशत से लेकर ४ प्रतिशत तक घोल बनाकर किया जाता है ।

जिस पानी में कैलशियम या मैगनीशियम के लवणों की मात्रा हो उसका नीले थोथे के घोल बनाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके कारण कौपर सल्फेट का अन्य अघुलनशील लवणों में परिवर्तन हो जाता है जिसके कारण यह रसायन अक्रियाशील हो जाता है । जिस धरती पर एमोनिया या चूना हो वहाँ भी कॉपर सल्फेट द्वारा उपचारित काष्ठ असफल रहे हैं ।

कॉपर सल्फेट के क्रोमियम लवणों के साथ मिश्रण का बहुत-से स्वामि-परिरक्षी संगठनों में प्रयोग किया गया है । इस प्रकार के मिश्रण से धातु पर संक्षारण भी नहीं होता और धावन क्रिया द्वारा लोप हो जाने की सम्भावना भी नहीं रहती । अगले प्रकरणों में इस प्रकार के संगठनों का वर्णन किया गया है ।

मरक्यूरिक क्लोराइड—करोसिब् सब्लिमेट (पारद नीरेय)

इस रसायन के काष्ठ-परिरक्षण में प्रयोग का अभिलेखन सन् १७०५ से है । १८३२ में जौन क्यान नामक वैज्ञानिक ने इंग्लैंड में इसका एकस्वीकरण किया था, और इस परिरक्षी विलयन में काष्ठ को डुबाने की प्रक्रिया को कायैनाइजिंग नाम दिया गया है । सन् १८४८ में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोवल नामक स्थान पर इस प्रक्रिया से काष्ठ उपचारण के लिए व्यावहारिक संयन्त्र खोला गया जो १९३८ तक चलने के पश्चात् बन्द कर दिया गया ।

मरक्यूरिक क्लोराइड एक विषैला पदार्थ है । इससे लोह में संक्षारण होता है और यह मनुष्यों के लिए घातक विष भी है । इस कारण इसका प्रयोग सीमित मात्रा में ही हुआ । सन् १९२६ में जर्मनी में एक संक्षारणरोधी लेप को लोह-उपचारण संयन्त्र में लगाकर और काष्ठ-ठेला गाड़ियों को उपचार प्रभार के लिए प्रयोग कर व्यावसायिक काष्ठ-शोधन कार्य किया गया । सन् १९३६ में भी चैकोस्लोवाकिया में निपीड विधि से इस रसायन द्वारा काष्ठ-शोधन किये जाने का अभिलेख मिलता है । इससे उपचारित काष्ठ खम्भों की आयु जर्मनी में १४½ वर्ष से १६½ वर्ष तक रही जब कि क्रियोजोट द्वारा उपचारित काष्ठ-खम्भों की औसत आयु २३ वर्ष की थी । इस परिरक्षी के प्रायः १ प्रतिशत भाग का पानी में घोल बनाकर उपयोग किया जाता था । इस रसायन की प्रवृत्ति भी काष्ठ से पानी में घुलकर निकल जाने की थी और इसका मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक था । अतः इसका प्रयोग सीमित ही

रहा, यद्यपि अन्य रसायनों के साथ इसके मिश्रण को संक्षारण और धावन-रोधी बनाने के उद्देश्य से परीक्षण किये गये। ऐसे संगठनों का एकस्वीकरण ब्रिटिश संयुक्त राज्य में किया गया ।

सोडियम् फ्लोराइड

यह परिरक्षी संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९१४ में परीक्षणार्थ प्रयुक्त किया गया, और उसके थोड़े ही समय पश्चात् रेलवे और खान के स्लीपरों तथा अन्य प्रकार के काष्ठ के उपचार के लिए काम में लाया जाने लगा। यूरोप में बहुत काल तक यह प्रयोग बिना किसीके साथ मिश्रण किये जानेवाले लोकप्रिय परिरक्षियों में एक था। यह कवकों के प्रति अति प्रभावशाली है, और इससे धातुओं का संक्षारण भी अधिक नहीं होता ।

यह भारी पानी और चूने के संस्पर्श पर निस्सादित हो जाता है। इस कारण इसका परिरक्ष प्रभाव भी कम हो जाता है। इसका विषालुमान जिन्क क्लोराइड के समान है, पर महँगा होने के कारण इसका उतना अधिक प्रयोग नहीं किया जाता जितना कि जिंक क्लोराइड का। यह जल द्वारा काष्ठ पर से धुल जाता है, अतः आन्तरिक काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त है। पानी में ४ प्रतिशत तक इसका घोल उपचार के लिए पर्याप्त होता है। यह जिंक क्लोराइड की तरह आर्द्रताग्राही[1] नहीं होता, अतः थैलियों में बिना गीला हुए ही परिवहित किया जा सकता है। परिरक्षी के लिए यह एक सुविधाजनक गुण है ।

निकट पूर्व-काल में क्रोमियम लवणों के साथ इसके कुछ ऐसे संयुक्त संगठनों का विकास हुआ है जिनके कारण इसमें जल-रोधी और स्थायी गुण आ जाते हैं ।

जिंक क्लोराइड

जिंक क्लोराइड को भी १०० वर्ष से ऊपर परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त होते हो गये हैं। सन् १८३८ में विलियम वर्नेट नामक वैज्ञानिक ने इंग्लैंड में इसका एकस्वीकरण कराया था । इसका प्रयोग यूरोप में इतना नहीं हुआ जितना संयुक्त-राज्य अमेरिका में, पर वहाँ भी इसकी कई त्रुटियों के कारण इसका प्रयोग कम होता जा रहा है ।

जिंक क्लोराइड से कई लाभ हैं। यह अल्प-मूल्य का है। इससे शोधन करने के पश्चात् काष्ठतल स्वच्छ रहता है और तदनन्तर उस पर बाह्य-लेप किया जा सकता

1 Hygroscopic.

है। उपचार-संयन्त्रों में इस परिरक्षी का व्यवहार भी सुविधाजनक है। इसमें अग्नि-रोधक गुण भी हैं, और इससे उपचारित होने पर काष्ठ अग्निरोधी भी बन जाता है।

यह भी सोडियम् फ्लोराइड की तरह काष्ठ से पानी द्वारा धुल जाता है अथवा उद्विलयित हो जाता है। काष्ठ-उपचार के लिए लगभग ४ से ६ तक प्रतिशत इसका घोल पानी में बनाया जाता है। यह हवा से आर्द्रता ग्रहण कर लेता है और इसी आर्द्रताग्राही गुण के कारण इसको बन्द पात्रों में रखा जाता है। यह बहुधा गाढ़े विलयन (५० से ७० प्रतिशत तक) के रूप में मिलता है। इसके विलयन के लिए थोड़ी मात्रा में अम्ल की आवश्यकता पड़ती है जिससे तलछट नहीं रहती।

इसके द्वारा काष्ठ-उपचार की विधि 'कार्ड' विधि कहलाती है। इस विधि में क्रियोजोट के साथ इसके मिश्रण को काष्ठ में ब्याप्त किया जाता है। कभी-कभी इससे उपचारित होने के पश्चात् काष्ठ का क्रियोजोट से पुनः शोधन किया जाता है जो एक प्रकार से द्वि-प्रक्रिया है। उद्विलयन ('लीचिंग') से रक्षा करने के लिए अन्य तैल (पैट्रोलियम् तैल) से भी पश्च-उपचार किया जाता है।

सन् १९११–१६ के परीक्षणों में वन-अनुसन्धानशाला ने कुछ रेलवे-स्लीपरों पर जिंक क्लोराइड और तैल के मिश्रण द्वारा सेवा-आयु निर्णयन के लिए कुछ उपचार किये थे। इससे आयु की (८ ख) कुछ वृद्धि तो अवश्य हुई, पर अधिक वर्षावाले स्थानों में कुछ संतोषजनक परिणाम नहीं निकले।

इस परिरक्षी का क्रोमियम् लवणों के साथ संयुक्त संगठन धुलने से बचाव करने के लिए किया गया।

जिंक सल्फेट्

दक्षिणी अफ्रिका की खानों में जिंक सल्फेट द्वारा उपचारित काष्ठों से अच्छे परिणाम निकले। वहाँ यह रसायन, अयस्क-विधायन ('ओर प्रोसैसिंग') क्रिया से प्राप्त एक उपसृष्ट पदार्थ था और मितव्ययी होने के कारण प्रयोग में लाया जाता था। बाद में अन्य लवणों के साथ विशेषतः सोडियम् फ्लोसिलिकेट के साथ इसका मिश्रण कर निपीड क्रिया द्वारा खान-काष्ठों के उपचार के लिए काम में लाया जाने लगा। जहाँ यह रसायन प्रचुर मात्रा में मिले वहाँ इसका उपयोग लाभप्रद हो सकता है।

सिलिकोफ्लोराइडस्

हाइड्रोफ्लोसिलिसिक् अम्ल के मैग्नीशियम्, जिन्क और सोडियम् के लवण, परिरक्षी के रूप में प्रचलित हैं। यह लवण काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओं के प्रति पर्याप्त

विषालु हैं, पर लोह-संयन्त्रों का इनके कारण संक्षारण होने से इनका अधिकतर प्रयोग नहीं किया जाता। इन रसायनों के कई ऐसे एकस्वी-संगठन हैं जिनका परिरक्षण-कार्य में उपयोग हुआ है। ये अपेक्षाकृत अल्प-जलविलेय पदार्थ हैं।

बोरिक एसिड (टांकिक अम्ल) और बोरैक्स (सुहागा)

आस्ट्रेलिया में बोरिक अम्ल **लिक्टस्** प्रजाति के छिद्रक कीटों का नाश करने में प्रभावशाली सिद्ध हुआ है, विशेषतः उन काष्ठों के उपचार के लिए जिनमें रस-काष्ठ हों। बोरिक अम्ल पृथक ही या सुहागे के साथ मिलाकर अन्तःप्रयुक्त काष्ठों (जैसे उपस्कर एवं भवन-निर्माण काष्ठ) के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है। ये जल-विलेय पदार्थ हैं और लौह-आधान में संक्षारण के कारण प्रयोग नहीं किये जा सकते।

सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट

इस रसायन से काष्ठ-उपचारण करने के पश्चात् हवा में कार्बन-डाइ-ऑक्साइड (प्रांगार द्विजारेय) से क्लोरीनेटेड फीनौल (नीर-दर्शव) जो तीव्र-विष हैं, पृथक् हो जाते हैं। क्लोरीनेटेड फीनौल जल में अघुलनशील हैं, अतः स्थायी रहने के कारण अन्य जल-विलेय परिरक्षियों की अपेक्षा अधिक काल तक सक्रिय रहते हैं। सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट काष्ठ को अभिरञ्जक कवकों से दाग लगने से बचाता है। इसीलिए संशोषण काल में नील-वर्ण दाग उत्पन्न होने से अस्थायी काष्ठों की रक्षा के हेतु इस रसायन का जल-विलयन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। काष्ठ को इसके १ प्रतिशत पानी के घोल में डुबोने मात्र से ही पर्याप्त समय तक काष्ठ-अभिरञ्जन-रोधन में सफलता प्राप्त हुई है।

निकल (रूपक) लवण

यद्यपि इस रसायन से बड़े पैमाने पर परीक्षण नहीं किये गये, तथापि जितने भी परिणाम प्राप्त हुए हैं वे आशाजनक हैं, विशेषतः तब जब इन्हें संखिया से संयुक्त किया गया हो। यदि टंकशाला ('मिन्ट') परिष्करणी में ये अधिक मात्रा में लघु-व्यय-उपजात रूप मे प्राप्त हो सकें तो संशोधन के पश्चात् ये उपयोगी परिरक्षी सिद्ध हो सकते हैं।

(२) बद्ध-रूप (मिश्रित) जल-विलेय परिपक्षी

पूर्वोक्त सरल रासायनिक परिरक्षियों को क्रोमियम (वर्णातु) संयोगों के साथ मिलाने से बहुधा बद्ध-रूप परिरक्षी का संगठन होता है। इस प्रकार से मिश्रण करने

का उद्देश्य यही है कि इनसे काष्ठ-उपचार होने के पश्चात् विषालु-रसायन जल में अघुलनशील बन जाते हैं। ऐसे रसायन-संगठनों का मुख्यतः एकस्वीकरण किया गया है और अधिकांश में ये ही असली स्वामि-परिरक्षी हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

एस्क्यू (कौपर-क्रोम-आर्सेनिक मिश्र)

भारतवर्ष में सन् १९३३ में एस० कामेसम ने जो काष्ठ परिरक्षण शाखा, वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के भूतपूर्व कार्यभारी अफसर थे इस परिरक्षी-संगठन का एकस्वीकरण किया था। इसकी रचना इस प्रकार है—

आर्सेनिक पैन्टोक्साइड् ($As_2O_5 \cdot 2H_2O$) १ भाग,
कॉपर सल्फेट् ($CuSo_4 \cdot 5H_2O$) ३ भाग,
पौटेशियम अथवा सोडियम डाइक्रोमेट (K_2 या $Na_2Cr_2O_7$) ४ भाग।

उक्त रसायनों का मिश्र लेकर ४ से ८ प्रतिशत तक पानी के घोल में प्रयोग किया जाता है। इस मिश्र में क्रोमियम लवण का कार्य विषालु आर्सेनिक और कॉपर लवणों को काष्ठ में स्थिर अथवा बद्ध करना है। इसके अतिरिक्त क्रोमियम लवण धातुओं को कॉपर सल्फेट द्वारा संक्षारित होने से भी बचाते हैं। इस परिरक्षी मिश्र[1] के जल-विलयन को उच्च तापक्रम पर (४०° सेन्टीग्रेड से ऊपर) गरम करने से निस्सादन[2] होने लगता है, अतएव इसको वायुमंडलीय ताप पर ही उपचारित किया जाता है।

काष्ठ को उपचार के पश्चात् हवा में ३ या ४ सप्ताह तक सूखने दिया जाता है और तदनन्तर पूर्वोक्त रसायन काष्ठ में बद्ध हो जाते हैं और जल में परिच्युत नहीं किये जा सकते अर्थात् जल में वे अघुलनशील बन जाते हैं। इसी कारण विष-रसायनों का प्रभाव कालान्तर तक बना रहता है। यदि इस रसायन से उचित प्रकार से निपीड क्रिया द्वारा काष्ठ-शोधन किया जाय और यथोचित मात्रा में इसका काष्ठ में प्रचूषण कराया जाय तो अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। बाहर खुले में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों के उपचार के लिए यह परिरक्षी विशेषतः उपयुक्त है। इसका एकस्वीकरण संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में भी हो चुका है। अमेरिका में यह ग्रीनसौल्ट (हरा-लवण) नाम से प्रसिद्ध है। संयुक्त राज्य अमेरिका में बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज ने एस्क्यू पर कई परीक्षण किये हैं। वहाँ कई परिपत्र प्रकाशित हुए हैं जिनमें इन परीक्षणों के परिणाम दिये हुए हैं। उनसे यही पता चलता है कि यह परिरक्षी वहाँ सफल रहा है।

1 Composition. 2 Precipitation अवक्षेपण।

भारतवर्ष में भी सन् १९३४ से लेकर वर्तमान समय तक काष्ठ-परिरक्षण क्षेत्र में बड़े और छोटे पैमाने पर इस परिरक्षी से जितने भी परीक्षण किये गये हैं वे भारतीय वन-प्रकाशन के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। इसमें इस परिरक्षी द्वारा शोधित काष्ठ पर जितने भी परिणाम निकले हैं उनका पूर्ण विस्तार से विवरण दिया गया है। इनसे यही संकेत मिलता है कि यदि एस्क्यू उचित मात्रा में प्रचूषण कराया जाय तो उससे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। एस्क्यू-शोधित काष्ठ खम्भों का सर्वप्रथम बड़े पैमाने पर सेवा-परीक्षण ट्रावन्कोर (अब केरल) राज्य में आरम्भ हुआ। २० वर्ष उपरान्त अब भी ये शोधित खम्भे अच्छी दशा में हैं, जब कि अशोधित खम्भे थोड़े ही समय में (२ या ४ वर्ष के अन्दर ही) नष्ट होते रहे। समुद्र-जल में भी एस्क्यू शोधित काष्ठ-प्रादर्श सामुद्रिक कीटों के आक्रमण से कई वर्षों तक सुरक्षित रहे। समुद्र में काष्ठ-विनाशकारक परिस्थितियाँ अत्यन्त उग्र रहती हैं और तीव्र विष-रसायन भी वहाँ असफल रहे।

एस्क्यू एकस्वीकृत परिरक्षी है, पर भारत सरकार बिना अधिकारशुल्क[1] दिये ही इसका प्रयोग कर सकती है। सर्वश्री एस्क्यू वुड प्रौड्क्टस्, कलकत्ता, इस परिरक्षी के एक मात्र निर्माता हैं।

सैल्क्यूर (कॉपर-क्रोम मिश्र)

इस परिरक्षी का आविष्कार स्कॉटलैंड में सन् १९२७ में गन् ने किया। तभी ब्रिटेन में इसका एकस्वीकरण हुआ। आरम्भ काल में इसमें कॉपर सल्फेट और सोडियम् या पौटेशियम् डाइक्रोमेट, लगभग बराबर मात्रा में मिश्रित किये गये थे, और इस प्रकार मिलाने से जो जल-विलयन में निस्साद या तलछट ('प्रेसीपिटेट्') हो जाता था, उसको घोलने के लिए थोड़ा एसीटिक अम्ल डाला जाता था। उसके पश्चात् शनैः-शनैः इस में सुधार किया गया और एसिटिक अम्ल के स्थान पर क्रोमिक अम्ल मिलाया गया, और कुछ समय बाद क्रोमियम एसिटेट का प्रयोग होने लगा।

सन् १९५० में इसका संगठन इस प्रकार था—

कॉपर सल्फेट ($CuSO_4 \cdot 5H_2O$)	५० भाग,
सोडियम डाइक्रोमेट ($Na_2Cr_2O_7 \cdot 2H_2O$)	४७.५ भाग,
क्रोमिक एसिड (CrO_3)	१.६८ भाग,

(जो २.५ भाग सोडियम् डाइक्रोमेट के तुल्य है)

बहुधा इसका ४ से ५ प्रतिशत भाग पानी के घोल में प्रयुक्त किया जाता है।

1 Royalty.

वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के परीक्षणों में इस परिरक्षी से भी अच्छे परिणाम निकले हैं।

आज कल इसी प्रकार का एक नया परिरक्षी 'कुक्रोम' नाम से बेचा जा रहा है। यह मेसर्स किनलैब, कलकत्ता से मिल सकता है।

कॉपर-क्रोम बोरिक मिश्र

यह परिरक्षी एस्क्यू का ही एक प्रकार है जिसमें आर्सेनिक के स्थान पर उसका १.५ गुना बोरिक अम्ल मिलाया जाता है। इसका संगठन इस प्रकार है—

बोरिक एसिड	१.५ भाग,
कॉपर सल्फेट	३ भाग,
सोडियम डाइक्रोमेट	४ भाग।

इसके निर्माता भी मेसर्स ऐस्क्यू वुड प्रौडक्टस् हैं। आर्सेनिक की अनुपस्थिति में यह इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता जितना कि एस्क्यू, यद्यपि इस पर महानुमाप (बड़े पैमाने के) परीक्षण आरम्भ नहीं किये गये हैं।

'थौलडौन' लवण (जिंक-कॉपर-क्रोम-आर्सेनिक मिश्र)

इसमें एस्क्यू के संयोग के अतिरिक्त जिंक के लवण (जिंक सल्फेट) भी हैं। इसका आविष्कार सन् १९३८ के लगभग स्वीडन में हुआ और तदनन्तर इसका एकस्वीकरण भी किया गया। देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के लघु-अनुमाप[1] (छोटे पैमाने के) परीक्षणों में इससे अच्छे ही परिणाम निकले हैं, पर अभी तक इनको थोड़ा ही समय हुआ है, और पर्याप्त अनुभव एवं सेवाकाल के बाद ही इसके बारे में निर्णय किया जा सकता है।

क्रोमेटेड जिंक क्लोराइड

जिंक क्लोराइड को पानी में घुलने से बचाने के लिए उसमें न्यूनतम २० प्रतिशत के लगभग सोडियम् डाइक्रोमेट डाला जाता है। अतः क्रोमेटेड जिंक क्लोराइड द्वारा उपचारित काष्ठ नम स्थानों के लिए उपयुक्त है। इस संगठन का प्रायः ६ से लेकर ८ प्रतिशत तक जल विलयन काष्ठ-उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है। इसको ७०° सेन्टीग्रेड से ऊपर गरम करने पर निस्सादन होने लगता है। यद्यपि इसका एकस्वीकरण नहीं हुआ है, पर कुछ ऐसे क्रोमियम ट्राइऑक्साइड व अन्य अम्ल संयोगों

1 Small scale.

के इस परिरक्षी संगठन में मिश्रण का, निस्सादन को बचाने के लिए, अमेरिका में एक-स्वीकरण किया गया है।

एक और एकस्व-परिरक्षी इस क्रोमेटेड-जिंक-क्लोराइड में कॉपर क्लोराइड मिलाने से बना है। इसका नाम कॉपराइज्ड्-क्रोमेटेड-जिंक क्लोराइड है। इसका सूत्र इस प्रकार है—

कौपर क्लोराइड	७ प्रतिशत,
जिंक क्लोराइड	७३ प्रतिशत,
सोडियम् डाइक्रोमेट	२० प्रतिशत।

यह साधारण क्रोमेटैड जिंक क्लोराइड से अधिक प्रभावशाली बतलाया गया है क्योंकि इसमें ताम्र है, पर भारत में एतद्विषयक अनुभव अभी तक प्राप्त नहीं है।

'वुलमन' लवण (फ्लोराइड-फीनोल मिश्र)

इसी परिरक्षी मिश्र का आविष्कार वुलमन ने जर्मनी में सन् १९०७ के लगभग किया। आरम्भ में उसने खनिज-काष्ठ के उपचार के लिए फ्लोरीन के लवण प्रयोग किये, पर बाद में उसने अन्य लवणों को जैसे, डाइनाइट्रोफीनोल, सोडियम्-हाइड्रोजन-आर्सिनेट, सोडियम क्रोमेट मिलाकर सुधारा। अब यह कई नामों से प्रसिद्ध है, जैसे टैनैलिथ, ट्रायोलिथ, इत्यादि। सन् १९३४ में जिस संगठन का अमेरिका में एकस्वीकरण किया गया वह इस प्रकार है—

सोडियम् फ्लोराइड	२५ प्रतिशत,
सोडियम् हाइड्रोजन आर्सिनेट	२५ प्रतिशत,
सोडियम् क्रोमेट	३७.५ प्रतिशत,
डाइनाइट्रोफीनोल	१२.५ प्रतिशत।

यद्यपि मन्द-जलवायु वाले यूरोपीय देशों में इस परिरक्षी से अच्छे परिणाम निकले हैं, पर देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षणों में इससे संतोषजनक फल नहीं प्राप्त हुए। सम्भव है कि भारतवर्ष-जैसे उष्ण देश में विषालु पदार्थ या तो उड़ गये या पूर्ण प्रकार से बद्ध न होने के कारण जल में धुलकर लुप्त हो गये।

जिक मैटा आर्सिनाइट

यह जिक ऑक्साइड (ZnO) और आर्सेनिक ट्राइऑक्साइड (As_2O_3) को ४०:६० के अनुपात में जल में, जिसमें एसीटिक अम्ल हो, मिलाने से बनता है।

जाती है, पर कुछ समय पश्चात् उत्पत तैल के उड़ जाने पर शोधित और अशोधित काष्ठ में कोई भेद नहीं रहता ।

(७) इनमें से कुछ परिरक्षी गन्धवाले भी होते हैं जिनके कारण इनके निकट संचित खाद्य वस्तुओं में गन्ध फैल जाती है परन्तु इनमें से कुछ परिरक्षी गन्धहीन भी होते हैं ।

(८) ये प्रायः दूसरे प्रकार के परिरक्षियों से मंहँगे होते हैं ।

(९) इनसे काष्ठ नहीं फूलता, अतः काष्ठ को उपचार से पहले सही आकार में काटा जा सकता है ।

(१०) विलायक के उड़ जाने के पश्चात्, उपचारित काष्ठ से पेड़ अथवा पौधों को हानि नहीं पहुँचती, अतएव ये कृषि और उद्यान कार्य में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं ।

ये कार्बनिक-विलायक प्रकार के परिरक्षी व्यवसाय में बहुधा स्वामिक-पदार्थों में मिलते हैं । इनमें एक या उससे अधिक भिन्न-भिन्न यौगिक पदार्थ मिले रहते हैं । जिन-जिन रसायनों (रसद्रव्यों) का प्रयोग का इनमें किया जाता है, वे सभी प्रकार के काष्ठ-विनाशकारकों के प्रति विष का कार्य करते हैं । यद्यपि मुख्यतः इनका प्रयोग कूँची से लगाने और डुबोने के लिए किया जाता है, पर निपीड़-क्रिया विधि और उष्ण-शीत विधि में भी इन्हें खुले कुण्ड में काष्ठ के भीतर प्रविष्ट किया जा सकता है । इन परिरक्षी पदार्थों का वर्णन नीचे दिया गया है ।

पैन्टाक्लोरोफ़ीनोल

यह एक स्फट रासायनिक यौगिक है जो फ़ीनोल और क्लोरीन गैस के संयोग से बनाया जाता है । सन् १९३० के लगभग संयुक्त-राज्य अमेरिका में परिरक्षी के रूप में इसका विकास हुआ । यह पानी में अघुलनशील है, और एक स्थायी रसायन (रस-द्रव्य) है । यह काष्ठ-नाशक कीटों और कवकों के प्रति अत्यन्त विषालु है, पर सामुद्रिक कीटों को मारने में इतना प्रभावशाली नहीं है । पैन्टाक्लोरोफीनोल, मिट्टी अथवा इन्धन तैल और अन्य उत्पत तैलों में आसानी से घुल जाता है । इसका ५ प्रतिशत का तैल विलयन काष्ठ-उपचार के लिए प्रयुक्त होता है । यदि इसके उत्पत तैल-विलयन से काष्ठ का उपचार किया जाय तो उसके पश्चात् काष्ठ-पृष्ठ स्वच्छ रहता है, और उस पर रंगलेप भी किया जा सकता है । अतः यह परिरक्षी काष्ठ की चौखटों, द्वारों और पट्टों के उपचार के लिए उपयुक्त है । यदि भारी भूतैल (पैट्रोलियम) विलायक में इसका घोल किया गया हो तो रेलवे-स्लीपरों और बल्लियों के उपचार के लिए वह

उपयुक्त होता है, क्योंकि उस अवस्था में वह अधिक स्थायी रहता है। क्रियोजोट-जैसे तैलीय परिरक्षी को अधिक तीव्र बनाने के लिए उसमें बहुधा कुछ अंश तक पैन्टाक्लोरोफीनोल घोल दिया जाता है। इसके फलस्वरूप यह मिश्रण अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

इसका उत्पादन और प्रयोग अमेरिका में ही सबसे अधिक है। सन् १९५१ में वहाँ लगभग ३० करोड़ पौंड पैन्टाक्लोरोफ़ीनोल काष्ठ-परिरक्षण उद्योग के काम में लाया गया। वहाँ इसके कई प्रकार के स्वामिक-तेल-विलयन, व्यवसाय में मिलते हैं। यह परिरक्षी स्वभावतः काष्ठ-तेल पर स्फट (मणिभ) रूप में एकत्रित रहता है। इस वृत्ति को रोकने के लिए स्वामिक-संगठनों में थोड़ा बिरोजा ('रोज़िन') मिला दिया जाता है। इससे परिरक्षी बद्ध हो जाता है। इस परिरक्षी के स्वामिक-मिश्र में टैट्राक्लोरोफीनोल और अधः वर्ग के क्लोरीनेटेडफीनोल भी रहते हैं, पर अधः वर्ग के क्लोरीनेटेडफीनोल उतने स्थायी और प्रभावशाली नहीं होते। इसके स्पर्श से शरीर में संताप होता है और इसकी धूल से छींकें भी बहुत आती हैं। अतएव इस परिरक्षी से काम लेते समय सावधान रहना पड़ता है। यदि पूर्वोपाय किये जायँ तो इसके व्यवहार में आपत्ति नहीं हो सकती।

कॉपर और जिंक के साथ भी पैंटाक्लोरोफीनोल के संयोग का उल्लेख पाया जाता है। वह कॉपर पैन्टाक्लोरोफीनेट और जिंक-पैन्टाक्लोरोफीनेट के नाम से प्रसिद्ध हैं। आशा की जाती है कि जल में अघुलनशील होने के कारण ये प्रभावशाली परिरक्षी सिद्ध होंगे।

भारतवर्ष में इसका उत्पादन नहीं होता। प्रायः विदेशों से इसका आयात किया जाता है। मौन्सैन्टो कैमिकल्स् (इन्डिया) लिमिटेड्, जो इसके निर्माता हैं, इसको 'सैन्टोफन् २०' नाम से बेचते हैं। अभी हाल में पता चला है कि बम्बई की एक फर्म ने भी इसे बनाना आरम्भ किया है।

देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला में किये गये लघु-अनुमाप परीक्षणों में 'सैन्टोफन २०' से अच्छे परिणाम निकले हैं। इससे शोधित रेलवे-स्लीपरों पर भी क्रियोजोट शोधित स्लीपरों की तुलना में सेवा-परीक्षण किये गये हैं, पर अभी तक इतना समय नहीं हुआ है कि कोई परिणाम निकल सकें।

धातु नैफ्थीनेट् (कॉपर और जिंक नैफ्थीनेट्)

कॉपर और जिंक नैफ्थीनेट, कॉपर और जिंक लवणों के साथ नैफ्थिनिक अम्ल के संयोग से बनते हैं। नैफ्थिनिक अम्ल मृत्तैल-परिष्करण ('पैट्रोलियम रिफाइनिंग')

का उपजात पदार्थ है। नैफ्थिनेट्स बहुधा मोम या गोंद की तरह चिपचिपे पदार्थ होते हैं। इनके तैल-विलयन का काष्ठ-परिरक्षण में ठीक उसी प्रकार प्रयोग किया जाता है जैसे कि पैन्टाक्लोरोफीनोल का। कॉपर नैफ्थिनेट हरे रंग का और जिंक नैफ्थिनेट रंगहीन होता है। कॉपर नैफ्थिनेट, जिंक नैफ्थिनेट की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। इनके विलयन का संकेन्द्रण कॉपर और जिंक धातु के आधार पर माना जाता है। कूँची से लगाने और डुबोने की क्रिया में १ से लेकर ३ प्रतिशत तक ताम्र के आधार पर विलयन उपयुक्त है। निपीड उपचार के लिए ०.५ प्रतिशत का (ताम्र के आधार पर) विलयन पर्याप्त है।

विदेशों में लगभग ५० वर्ष से इसका प्रयोग किया जा रहा है और इससे परिणाम भी संतोषजनक निकले हैं। यह स्थायी रसायन है और जल में अघुलनशील है। काष्ठ-उपचार के पश्चात् इन पर रंगलेप किया जा सकता है। कॉपर नैफ्थिनेट से काष्ठ में हरापन आ जाता है और जिंकवाला काष्ठ रंगहीन रहता है। इनमें गंध भी पर्याप्त मात्रा में रहती है। इससे धातु पर किसी प्रकार का संक्षारण नहीं होता।

इन परिरक्षियों का एकस्वीकरण विदेशों में किया गया है। कुप्रिनौल नामक परिरक्षी यूरोपीय देशों में प्रसिद्ध हैं। हार्डीप्रूफ और आल्मेटोक्स् नाम के एकस्व-परिरक्षी भी भारतवर्ष में प्रचलित हैं। यह सब कॉपरनैफ्थीनेट के तैल-विलयन हैं, पर इनमें भेद केवल विलायक का रहता है। किसी में हलका और किसी में भारी मृत्तैल विलयन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अमेरिका में दूसरे महायुद्ध के बाद जब क्रियोजोट की कमी हो गयी थी, तब कॉपर नैफ्थीनेट का अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया। कहा जाता है कि सन् १९४७ में २० लाख से लेकर २५ लाख पौंड तक कॉपर नैफ्थिनेट का प्रयोग किया गया।

यह परिरक्षी पेड़ और पौधों के लिए हानिकारक नहीं है। इसलिए यह कृषि और उद्यान में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त है।

देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला के परीक्षणों में कॉपर नैफ्थिनेट से संतोषजनक परिणाम निकले हैं।

क्लोरीनेटैड नैफ्थैलीन (नीरजित नैफ्थैलीन)

क्लोरीनेटैड नैफ्थैलीन में तीन प्रकार के यौगिक हैं—मोनोक्लोर (एक-नीरजी), डाइक्लोर (द्वि-नीरजी), और ट्राइक्लोर (त्रि-नीरजी) नैफ्थेलीन। ये तीनों संयोग काष्ठ-नाशक कवक और विशेषतः कीटों के प्रति हानिकारक हैं, पर इनमें प्रथम और

द्वितीय-क्लोरीनैटेड संयोग मनुष्यों और पशुओं के प्रति उतने हानिकारक नहीं हैं जितने कि तृतीय हैं। ये स्पर्शी और श्वसन विष हैं।

चालीस वर्ष पहले इनका आविष्कार जर्मनी में हुआ था, और यह वहाँ ही अधिकतर प्रचलित हैं। 'जाइलैमोन' नाम का परिरक्षी, जिसमें क्लोरीनेटैड नैफ्थैलीन हैं, जर्मनी का एक प्रसिद्ध परिरक्षी है और इसका एकस्वीकरण भी वहीं हुआ है। वन-अनुसन्धान शाला, देहरादून, के परीक्षणों में इससे कोई विशेष आशाप्रद परिणाम नहीं निकले हैं। सम्भव है कि यहाँ उष्ण जलवायु के कारण इसके उत्पत-विषैले पदार्थ उड़ गये हों।

कॉपर और जिंक रेजीनेट

देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला में चीड़-लीसा ('चीर-रेज़िन') और ताम्र व कुप्यातु के टुकड़े अथवा चूर्ण के संयोग से एक प्रकार के प्रांगारिक (कार्बनिक) विलायक रूप परिरक्षी का आविष्कार हुआ है। यह ताम्र ('कॉपर') के संयोग से उत्पन्न कॉपर रेजीनेट और कुप्यातु ('जिंक') के संयोग से जिंक रेजीनेट कहलाता है। इनको बनाने की विधि इस प्रकार है

चीड़-लीसा का बैन्जीन में विलयन बनाने के पश्चात् उसको एक ताम्र के बर्तन में रख दिया जाता है। कॉपर और जिंक के टुकड़ों को एक काष्ठ के छिद्रवाले चपटे बक्से में रख कर और उसको विलयन के मध्य में लटका कर बिजली के मोटर द्वारा घुमाया जाता है। ताम्र के बर्तन को वाष्प या बिजली द्वारा गरम किया जाता है और धातु के टुकड़ों के साथ लीसा-विलयन के संयोग से कॉपर या जिंक लीसेय यौगिक पदार्थ बन जाता है। इस पदार्थ का यथार्थ संकेन्द्रण, मृत्तैल (भूतैल) या अन्य विलायक में घोल कर, परिरक्षी विलयन बन जाता है। इस प्रकार ३.६३ प्रतिशत कॉपर के आधार पर और ६.७५ प्रतिशत जिंक के आधार पर विलयन प्राप्त हो चुका है। कॉपर के विलयन को लगभग ६ गुना और जिंकवाले को २ गुना मंद अथवा अवमिश्रण कर काष्ठ-परिरक्षण कार्य में प्रयुक्त कर सकते हैं।

इस परिरक्षी से एक लाभ यह है कि लीसे के कारण इसमें वार्निश के भी गुण प्राप्त हो जाते हैं। अतः इसका लेप संयुक्त परिरक्षी एवं वार्निश का काम करता है। कॉपर परिरक्षी का रंग हरा और जिंक का रंगहीन होता है।

वन-अनुसन्धान शाला के अन्तर्गत किये गये वेगकालीन परीक्षणों से यही अनुमान लगता है कि इससे संतोषजनक परिणाम निकलेंगे। प्रयोगशाला में किये गये प्रयोग द्वारा प्राप्त कवक प्रतिरोधी विषालुता अर्हा से यही प्रतीत होता है कि यह पर्याप्त मात्रा

में प्रभावशाली है। सामुद्रिक कीटों के प्रति भी इससे अच्छे परिणाम निकले हैं। यह आयात किये गये कॉपर नैफ्थीनेट से सस्ता (नि० सू० में ९ दे०) है।

बैन्जीन हैक्जाक्लोराइड (बी० एच० सी०)

बैन्जीन हैक्जाक्लोराइड का गामा-आइसोमर, जो बहुधा गैमैक्सेन नाम से भी प्रसिद्ध है, काष्ठ-नाशक कीटों को मारने में, विशेषतः छिद्रक कीटों को मारने में, अत्यन्त उपयोगी है। यह एक स्थायी रसद्रव्य नहीं है, पर इसका तैल रूपी स्थायी परिरक्षियों में मिश्रण किया जा सकता है जिससे वे अधिक प्रभावशाली बन जायँ। इसका जल में फैलनेवाला एक चूर्ण तैयार कर दिया गया है जिसका प्रयोग जलविलयन परिरक्षी में मिश्रण के पश्चात् कर सकते हैं। इसके मिश्रण द्वारा परिरक्षोपचार करने पर पर्याप्त समय तक छिद्रक कीटों से विशेषतः लिक्टस् प्रजाति के छिद्रकों से रक्षा हो सकती है।

कहीं-कहीं डी० डी० टी० का भी प्रयोग तैल विलायक रूपी परिरक्षियों में किया जाता है। एकस्व किये गये स्वामीय-परिरक्षियों में इसको मिलाने की सूचना मिली है। अतएव इसको मिलाने से भी वही फल प्राप्त हो सकते हैं जो कि बी० एच्० सी० से होते हैं।

डील्ड्रिन

डील्ड्रिन एक प्रकार का क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन (नीरजित उदांगार) है। यह भी तैल-विलेय पदार्थ है। लोक-स्वास्थ्य के क्षेत्र में मच्छर इत्यादि को मारने में इससे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। अतः काष्ठ-नाशक कीटों के नियन्त्रण के लिए यह भी एक उपयुक्त पदार्थ है। यह एक प्रकार का संस्पर्श विष है। इसको कवकमार परिरक्षियों के साथ मिलाने से एक आदर्श परिरक्षी संगठन बन सकता है। ऐसा एक मिश्र बर्मा शेल कम्पनी ने बनाया है, जो 'डील्ड्रिन—पी० सी० पी० विलयन—३:९' नाम से विख्यात है। पी० सी० पी० का अर्थ पैन्टाक्लोरोफीनोल से है जो एक सर्वगुण परिरक्षी है। अतएव इन दोनों रसायनों का मिश्रण एक उपयोगी परिरक्षी सिद्ध हो सकता है। काष्ठ-उपचार के लिए इस मिश्र को अपने से ४ गुना मृत्तैल में मिला कर निपीड क्रिया द्वारा काष्ठ में प्रचूषित कराने के उद्देश्य से इसका उपयोजन हुआ है। यह भी कहा गया है कि इस मंद किये विलयन का ०.५ गैलन प्रति घन फुट काष्ठ में प्रचूषण कराने से संतोषप्रद परिणाम निकल सकते हैं। बर्मा-शेल कम्पनी ने इनका एक ऐसा संगठन भी बनाया है जिसका जल में बनाया गया पायस ('इमल्शन') अल्प उपचार के लिए कम खर्चीला और लाभप्रद है।

५. परिरक्षियों का चुनाव

पूर्वोक्त परिरक्षियों के वर्णन से यह स्पष्ट हो गया है कि परिरक्षियों के भिन्न-भिन्न गुण अथवा लक्षण होते हैं। काष्ठ-उपचार के लिए यह आवश्यक है कि परिरक्षियों की इन विशेषताओं पर ध्यान दिया जाय। विविध कार्यों के निर्माण-काष्ठ के उपचार के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के परिरक्षी उपयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ जो काष्ठ सीमेंट-प्लास्टर के संस्पर्श में हो उसके उपचार के लिए तैलरूप परिरक्षी उपयुक्त नहीं है। इसी प्रकार खाद्य पदार्थों के संस्पर्श में आनेवाले काष्ठ-शोधन के लिए विषालु परिरक्षियों का उपयोग उचित नहीं है। बीज और पौधौं की काष्ठ-पेटियों के उपचार के लिए तैल रूपी परिरक्षी का उपयोग ठीक नहीं है, क्योंकि टार तैल पौधों के लिए विष का काम करता है, और उससे पेड़ पौधे मर जाते हैं। ऋतुक्षरण से बचाने के लिए बहुधा तैलेय परिरक्षी का प्रयोग किया जाता है, और यदि जल-विलयन परिरक्षी प्रयुक्त भी किये गये हों तो उनके ऊपर आर्द्रता-रोधी लेप लगाना आवश्यक हो जाता है। सामुद्रिक-काष्ठों के उपचार के लिए या तो तैलेय परिरक्षी प्रयुक्त किये जायें या जल-विलेय बद्ध-रूपी परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। सारिणी संख्या १२ में तीनों प्रकार के (प्ररूप) परिरक्षियों की विभिन्न काष्ठ-उपचार के लिए उपयुक्तता के उदाहरण दिये गये हैं।

सारणी—१२

क्रमांक	काष्ठ का प्रयोग	तैलेय परिरक्षी	जल-विलेय रूपी परिरक्षी		प्रांगारिक (कार्बनिक) विलायक रूपी परिरक्षी
			शुद्ध-रूपी	बद्ध-रूपी	
१	रेलवे-स्लीपर	अति-उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	साधारणतया उपयुक्त यदि विपटन-रोधी माध्यम से पश्च उपचार किया जाय	खर्चीला होने से उपयुक्त नहीं
२	बिजली या तार के खम्भे	साधारणतया उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	अति उपयुक्त	पैन्टाक्लोरोफीनौल को छोड़ अन्य उपयुक्त नहीं
३	बाड़-खम्भ	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	”
४	सामुद्रिक-आधार-खम्भ	अति उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं
५	पुल-निर्माण	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	पैन्टाक्लोरोफीनौल को छोड़ अन्य उपयुक्त नहीं

६	गृह-निर्माण, फैक्टरी की छतें और ट्रस, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त। बाहर खुले में रंगलेप आवश्यक है	उपयुक्त	अति उपयुक्त
७	मुर्गीखाना, सुअर-गृह, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं
८	नौ-निर्माण	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त
९	रेल-डिब्बे, लॉरीकाय ('बडी)' इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त
१०	कृषि, उद्यान, कंचगृह, पेटी, इत्यादि	उपयुक्त नहीं	साधारणतया उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त
११	खाद्य पदार्थ-संचय कोष्ठ	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त नहीं
१२	उपस्कर (फर्नीचर), स्तर-काष्ठ (प्लाइवुड) इत्यादि	उपयुक्त नहीं	उपयुक्त	उपयुक्त	उपयुक्त

६. संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रयुक्त किये गये परिरक्षियों का विवरण

काष्ठ-परिरक्षण में संयुक्त राज्य अमेरिका सब देशों से प्रगतिशील है। अतएव, उदाहरणार्थ, सारिणी १३ में वहाँ प्रयोग किये गये परिरक्षियों का विवरण दिया गया है। यह विवरण अमेरिकन काष्ठ परिरक्षक संस्था ('अमेरिकन वुड प्रिज़र्वर्स एसोसियेशन) की १९५६ की कार्यवाही ('प्रोसीडिंग्स्') में दिया गया है। यह इस प्रकार है।

सारणी १३

संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९५४ और सन् १९५५ में प्रयुक्त किये गये काष्ठ-परिरक्षी और अग्नि-रोधी संगठन

परिरक्षी	सूचना देने वाले परिरक्षण-निर्माणी की संख्या	सन् १९५४ में	सन् १९५५ में
		गैलन	गैलन
क्रियोजोट (अकेले)	२०१	८६८६२४९३	९७२७९७१९
क्रियोजोट-कोलटार मिश्र में क्रियोजोट	९५	३९०५८५२९	३११४४६७७
क्रियोजोट-मृत्तैल मिश्र में क्रियोजोट	६५	२३०३३७१७	२१६०५४१०
अन्य मिश्र	२	४६०८१३	५९१७१२
कुल क्रियोजोट	२२५	१४९४१५५५२	१५०६२१५१८
क्रियोजोट-कोलटार मिश्र में कोलटार	९५	१९१६४६०३	१४५३९१९७
कुल क्रियोजोट और कोलटार		१६८५८०१५५	१६५१६०७१५
क्रियोजोट-मृत्तैल मिश्र में मृत्तैल	६५	२७३४४७१२	२५४०७५१२
पैन्टाक्लोरोफीनोल—मृत्तैल मिश्र में मृत्तैल	१११	१९९०३०२१	२४५९६१२८
अन्य मिश्र	१	४४५८४४	५७५२३८
कुल मृत्तैल	१५४	४७६९३५७७	५०५७८८७८
विविध	६	१०२४१३	१०९८५६
कुल तैल		२१६३७६१४५	२१५८४९४४९

		१९५४ में, पौंड	१९५५ में, पौंड
पैन्टाक्लोरोफीनौल	११२	८३४०९९७	१०५०२८९७
क्रोमेटैड जिंक क्लोराइड।	२७	२४०९८५७	२५८३८३५
वुलमन लवण (टैनेलिथ)	३५	१९६६७९०	२१३३२१५
सैलक्यूयर	१९	१०८८९४८	१४३१७८०
मिनैलिथ *	९	३०७७९९	८८३९४७
प्रटिक्सौल और पाइरीजोट *	३	७२१५७०	६८२७०९
चैमोनाइट	४	२७९७६६	३५९०५१
बोलीडोन लवण	४	२७५६९५	३४१८५६
कूपराइज्ड क्रोमेटैड जिंक-क्लोराइड	९	४०८६३८	३३३११८
औसमौस	१३	५६७७५	२२४९६१
अन्य	६	१५७८५५	१९५२४६
कुल ठोस पदार्थ		१६०१४६९०	१९६७२६१५

७ भारत में काष्ठ-परिरक्षियों की माँग।

अभी तक भारत में प्रयुक्त परिरक्षियों के बारे में कोई आँकड़े प्राप्त नहीं हैं, और भविष्य में कितनी मात्रा में परिरक्षियों की आवश्यकता होगी, इस की भी कोई निश्चित सूचना नहीं है। एक स्थूल गणना (३क) के अनुसार यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान समय में काष्ठ-परिरक्षियों की माँग निम्न प्रकार से है—('३ क' के लिए भाग के अन्त में निर्देश-सूची देखिए)।

परिरक्षी	लगभग प्रतिवर्ष अपेक्षित मात्रा
(क) क्रियोजोट—	६००० टन से लेकर ७०००टन तक, अर्थात् लगभग १२ लाख गैलन से लेकर १४ लाख गैलन तक।
(ख) मृत्तैल अथवा इंधन तैल—	पूर्वोक्त समान मात्रा।
(ग) क्रियो-जैन्ट और सौलिगूनम्	५ टन से १० टन तक (लगभग १००० गैलन से २००० गैलन तक)।
(घ) एस्क्यू—	१०० टन से लेकर १५० टन तक (ठोस लवण)।

(ङ) अन्य (विविध परिरक्षी)—
जैसे, पैन्टाक्लोरोफीनौल, सोडियम्-पैन्टाक्लोरोफीनेट, जिक क्लोराइड, कॉपर सल्फेट (नीलाथोथा), सोडियम्-और पोटेसियम् डाइक्रोमेट (लाल-कसीस), आर्सेनिक पैन्टोक्साइड (संखिया), इत्यादि— ५० टन से लेकर ७५ टन तक (ठोस पदार्थ)।

(च) बोरिक अम्ल और सुहागा— ५ टन से १० टन तक (ठोस पदार्थ)

(छ) कॉपर और जिक नैफ्थीनेट, डील्ड्रिन-पैन्टाक्लोरोफीनोल मिश्र— ५ टन तक (ठोस पदार्थ)।

पूर्वोक्त परिरक्षी रसायनों की भारत में प्राप्यता के विषय में जो सूचना मिली है वह इस प्रकार है—

(क) क्रियाजोट—इसका उद्भव और निर्माण स्वदेश में ही है, यद्यपि पिछले दिनों इसका निर्माण अपरिष्कृत ('क्रूड') टार की अप्राप्यता के कारण कम हो गया था।

(ख) मृत्तैल अथवा इंधन तैल—बड़ी मात्रा में प्राप्य है, यद्यपि कुछ भाग आयात किया जाता है। आशा है कि भविष्य में खनिज-तैल के विकास से स्वदेशीय उत्पादन पर्याप्त मात्रा में हो सकेगा।

(ग) क्रियोजोट और सौलिगनम्—सीमित मात्रा में उपलब्ध है, यद्यपि कुछ भाग स्वदेश में बनता है।

(घ) ऐस्क्यू और कुक्रोम—इनका स्वदेश में निर्माण होता है, यद्यपि एस्क्यू के लिए संखिया विदेशों से आयात की जाती है।

(ङ) अन्य विविध परिरक्षी—पैन्टाक्लोरोफीनोल और सोडियम् पैन्टाक्लोरोफीनेट विदेशों से आयात किये जाते हैं, पर हाल में ही इनका स्वदेश में निर्माण होने के बारे में सूचना मिली है।

जिक क्लोराइड, कॉपर सल्फेट, सोडियम और पोटैशियम डाइक्रोमेट का बड़ी मात्रा में स्वदेश में निर्माण होता है।

आर्सनिक पैन्टोक्साइड—विदेशों (विशेषतः स्वीडन) से आयात किया जाता है। कहा जाता है कि इसके अयस्क ('ओर्स') कश्मीर में पाये जाते हैं और इसका स्वदेश-निर्माण सम्भव है।

(च) बोरिक अम्ल और सुहागा—विदेशों से आयात किया जाता है।

(छ) कॉपर और जिंक नैपथीनेट, डील्ड्रिन, इत्यादि—नैफ्थैनिक अम्ल का आयात किया जाता है और फिर उसी से भारत में कॉपर और जिंक के लवण बनाये जाते हैं। आशा है कि जब भारत में तैल-परिष्करणी ('ऑइल-रिफाइनैरीज') स्थापित हो जायँगी तो नैफ्थैनिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जायगा। डील्ड्रिन का आयात किया जाता है।

कुछ स्वामिक परिरक्षी, अर्थात् वुलमन लवण, बैसीलिट, कोबरा काष्ठ-परिरक्षी जाइलैमौन, इत्यादि लाइसैन्स् मिलने पर विदेशों से आयात किये जा सकते हैं।

अध्याय २

उपचार के लिए काष्ठ की तैयारी

परिरक्षोपचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि काष्ठ को भली-भाँति तैयार किया जाय। तभी इस कार्य में सफलता प्राप्त हो सकती है। तैयार करने से यह आशय है कि काष्ठ को इस दशा में लाया जाये जिससे परिरक्षी का सरलता से काष्ठ में अन्तः व्यापन किया जा सके। इस दिशा में कई उपाय करने पड़ते हैं, जैसे कि बाह्य और आन्तर छाल निकालना, काष्ठ की सतह और गाँठों को साफ करना, उचित आकार में काटना, यथार्थ आर्द्रता तक संशोषण करना, वाष्प-क्रिया और शून्यक में सुखाना, आपाक (भट्ठी) संशोषण, छिद्रण करना, इत्यादि-इत्यादि। यद्यपि एक उपचार-विधि जो बूशरी प्रक्रिया के नाम से प्रसिद्ध है, ऐसी भी है जो हरे काष्ठ के वल्क सहित शोधन के लिए उपयुक्त है। एक औसमौस विधि है जो हरे काष्ठ को वल्क-रहित कर बाह्य लेपन करने में सक्रिय है, तथापि उपचार से पूर्व काष्ठ का उचित प्रकार से तैयार किया जाना अनिवार्य है। परिणाम तभी सफल हो सकते हैं। इस दिशा में क्रमानुसार जो कार्य करने पड़ते हैं वे नीचे दिये गये हैं।

(१) छीलना

उपचार के लिए ,खम्भों और बल्लियों-जैसे गोल काष्ठ को, वल्करहित अथवा छालरहित करना अत्यावश्यक है, क्योंकि वल्क से होकर तरल पदार्थ प्रविष्ट नहीं हो सकता। केवल बाह्य-वल्क ही नहीं, किन्तु आन्तर-वल्क को भी छीलना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, यदि वल्क को काष्ठ में रहने दिया जाय तो उससे काष्ठ के सूखने में बाधा पड़ती है। वल्क की उपस्थिति से काष्ठ-नाशक कवक और छिद्रक कीटों को भी आश्रय मिलता है।

वसन्त तथा ग्रीष्म ॠतु के आरम्भ में आन्तर वल्क कोमल और पिच्छिल रहता है, और तब उसको सरलता से उतार सकते हैं। इसके लिए साधारण औजार

जैसे कि कुल्हाड़ी और द्वि-हस्तक दराँती उपयुक्त होते हैं। अन्य ऋतु में आन्तर-वल्क इतनी दृढ़ता से चिपटा रहता है कि उसको निकालने में कठिनाई पड़ती है। वल्क-सहित काष्ठ को पानी में डुबोकर रखने या वाष्पीकरण से वल्क आसानी से निकल जाता है। स्तरकाष्ठों के लट्ठों का वल्क इसी प्रकार उतारा जाता है, पर यह विधि काष्ठ-परिरक्षण कार्य में व्यवहार्य नहीं है। विदेशों में यह कार्य मशीनों द्वारा भी होता है, परन्तु भारत में श्रम सुलभ एवं सस्ता होने से हाथ से ही छीलना लाभदायक है। यह कार्य, जहाँ कहीं जंगलों में नया कटान हो, आसानी से किया जा सकता है, और तत्पश्चात् काष्ठ का भार भी परिवहनार्थ कम हो जाता है। इससे कवक और छिद्र-कीटों के आक्रमण की आशंका कम हो जाती है और काष्ठ को परिवहन में शीघ्र सूखने का अवकाश मिल जाता है। देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला ने इसके लिए एक द्वि-हस्तक दराँती का उपयोग किया जिससे शीघ्रता और आसानी से यह कार्य हो सकता है। यह दराँती चित्र ३८ में दर्शायी गयी है।
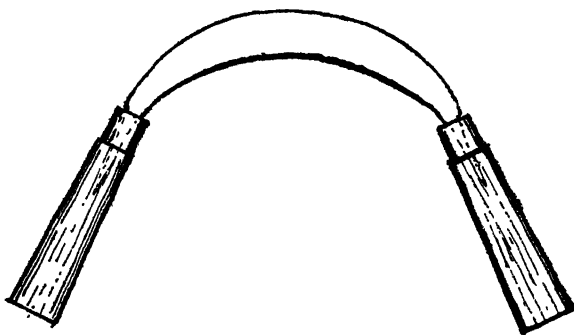
चित्र ३८—वल्क छीलने की द्वि-हस्तक दराँती।

बाड़-खम्भों को छीलने की एक मशीन, देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला ने, पश्चिमी जर्मनी से आयात की है। यह मृत्तैल के इन्जन से चलती है और इससे सरलतापूर्वक कार्य किया जा सकता है। इसको चित्र ३९ में दिखलाया है। इसका मूल्य लगभग ३२५० रुपया है। इसका भार भी कम है और इसका इधर-उधर ले जाना भी आसान है।
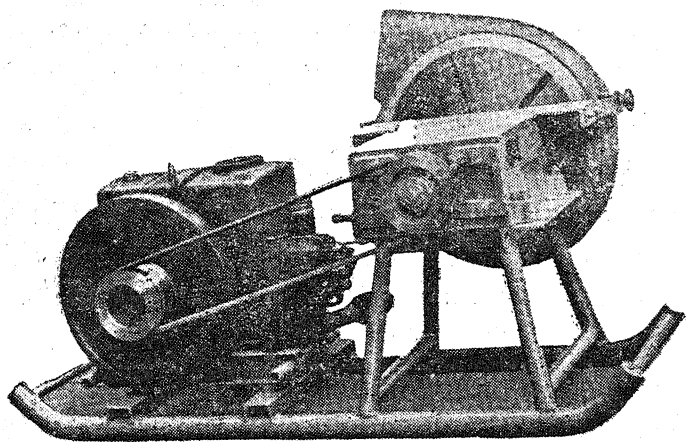
चित्र ३९–बाड़-खंभ छीलने की मशीन।

(२) क्षतिरोधक उपाय 'प्रोफिलैक्टिक् मेजर्स'

काष्ठ-लट्ठों के छिलने के पश्चात् उन पर कवक (विशेषतः अभिरञ्जन कवक) के आक्रमण की आशंका रहती है। इसके अतिरिक्त रस-काष्ठ (बाह्य-काष्ठ) शीघ्र ही छिद्रक-कीटग्रस्त हो जाते हैं। भूमि के संस्पर्श से दीमकों का भी आक्रमण आरम्भ हो जाता है। काष्ठ के खण्डित होने पर भी आक्रमण की दशा प्रवृत्त रहती है। इसकी सुरक्षा के निमित्त क्षतिरोधक उपाय अनिवार्य हो जाते हैं। यदि स्थायी काष्ठ जैसे कि टीक, साल, देवदार, इत्यादि हों तो उनका भी रसकाष्ठ आक्रमण-संक्रान्त रहता है। अधिकांश द्वितीय श्रेणी के काष्ठों के रस-काष्ठ और सारकाष्ठ दोनों ही अस्थायी होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि उनको क्षति से बचाया जाय। भारत-जैसे देश में, जिसका अधिकतर भाग उष्ण कटिबंध में है, नम-ऋतु के आरम्भकाल में और सर्वांग वर्षा-ऋतु में क्षति की आशंका अधिक रहती है। अतएव पूर्ण-परिरक्षोपचार से पूर्व उनका अल्पकालीन उपचार, जो क्षतिरोधक उपायों द्वारा किया जाता है, लाभप्रद होता है। इन क्षतिरोधक उपायों में वे उपाय भी सम्मिलित हैं जो काष्ठ के सिरों (टक्करों) पर लेप लगाकर उसे फटने से बचाते हैं। इन क्षतिरोधक उपायों का सविस्तर वर्णन सारणी १४ (परिशिष्ट २) में दिया गया है। इस सारणी में, प्रयोग किये जानेवाले परिरक्षी, उनकी मात्रा, मूल्य, लगाने की विधि, इत्यादि का पूर्ण विवरण

दिया गया है। पाश्चात्य देशों में यह भी प्रथा है कि क्षतिरोधक उपचार में मन्द-निपीड द्वारा उन्हीं परिरक्षियों का प्रयोग होता है जो बाद में पूर्ण प्रकार से निपीड क्रिया द्वारा शोधन करने के उद्देश्य से उपचार-संयन्त्र-प्रांगण ('ट्रीटिंग प्लान्ट यार्ड') में संग्रह किये जाते हैं।

(३) संशोषण[1]

उपचार क्रिया करने के पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि काष्ठ शुष्क हो। यदि काष्ठ गीला होगा अर्थात् उसकी कोशाओं में स्वतन्त्र पानी होगा तो परिरक्षी के प्रवेश कराने में रुकावट पड़ेगी। अतः काष्ठ की आर्द्रता तन्तु-परिपूर्णक बिन्दु ('फाइबर सैच्यूरेशन पौइन्ट') अर्थात् २५ से ३० प्रतिशत से कम होनी चाहिए। यह कितनी कम होनी चाहिए इसका कोई निश्चित परिमाण नहीं है, क्योंकि यह सब काष्ठ-जाति आकार, प्रयोग किये जानेवाले परिरक्षी और उपचारित-काष्ठ के उपयोग पर निर्भर रहता है। जल-विलयन रूपी परिरक्षी से उपचार करने के लिए उतनी अधिक शुष्कता नहीं चाहिए जितनी कि तैल-रूपी परिरक्षी से उपचार करने के लिए आवश्यक है, क्योंकि जल और काष्ठ-रस परस्पर मिल जाते हैं, पर तैल और काष्ठ-रस नहीं मिल सकते। अतएव गीले काष्ठ-खम्भों, बल्लियों और नये परिवर्तित काष्ठ टुकड़ों का उपचार कराने से पूर्व उनमें यथोचित आर्द्रता लाने के लिए निम्न संशोषण-विधियों का प्रयोग किया जाता है।

(अ) वायु-संशोषण (हवा में सुखाना)

हरे काष्ठ को उपचार के पूर्व सुखाने की सर्वसाधारण विधि बाहर खुले में उसका उचित प्रकार से चट्टा लगाना है। गीला काष्ठ यदि बाहर वर्षा से बचा दिया जाय, तो हवा में सूखने लगता है। यह सुखाने की सबसे सरल विधि है। यथोचित समय में, जो स्थान के जल-वायु व आपेक्षिक आर्द्रता पर निर्भर रहता है, काष्ठ उस स्थान की सम-आर्द्रता में पहुँच जाता है। शुष्क स्थानों में सम-आर्द्रता ५ प्रतिशत तक कम रहती है, और नम स्थानों में २० प्रतिशत से भी ऊपर रहती है। सामान्यतः भारत के मध्यवर्ती स्थानों में हवा में पूर्णतया संशोषित काष्ठ १२ से लेकर १५ प्रतिशत आर्द्रता पर रहता है। प्रतिशत आर्द्रता की गणना काष्ठ को भट्ठी द्वारा सुखाये गये भार के आधार पर की जाती है। वायु-संशोषित काष्ठ की आर्द्रता, काष्ठ की जाति

1 Seasoning.

और मोटाई पर भी निर्भर रहती है। काष्ठ की मोटाई जितनी अधिक होगी, सम-आर्द्रता पर पहुँचने में उसे उतना ही अधिक समय लगेगा। घने और ठोस काष्ठ के सूखने में भी पर्याप्त समय की आवश्यकता पड़ती है। रेलवे-स्लीपर, बल्लियाँ इत्यादि को भली प्रकार सूखने में कई महीने लग जाते हैं। फिर भी इन काष्ठों के आन्तरतम भाग गीले ही रहते हैं, यद्यपि बाह्य स्तर घेरे से कुछ दूरी तक अन्दर की ओर शुष्क हो जाता है। पतले काष्ठ, तख्ते इत्यादि समान प्रकार से शुष्क हो जाते हैं। काष्ठ को उचित प्रकार से वायु-संशोषित करने में निम्न बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

सर्वप्रथम संशोषण के लिए उपयुक्त भूमि को ढूँढना चाहिए। वायु-संशोषण के लिए काष्ठ का चट्टा लगाने योग्य भूसि स्वच्छ और ढालू होनी चाहिए, ताकि उसमें पानी एकत्रित न हो। नीची भूमि में सील के कारण कवक की वृद्धि होती है। वहाँ पर झाड़ियाँ भी न होनी चाहिए अपितु वायु-संचालन के लिए खुला स्थान हो। काष्ठ के चट्टे क्षैतिज दिशा में भूमि से कम से कम आधा मीटर ऊँचे उठे हुए सीमेंट या सु-उपचारित काष्ठ के आधार-स्तम्भों पर स्थित हों, जिससे उनके नीचे से वायु-संचालन भली प्रकार हो सके। ये आधार-स्तम्भ लगभग ३ मीटर की दूरी पर स्थित हों और इनके सिरे भी चौरस रहें, जिससे क्षैतिज दिशा में आधार-बत्ते या बल्लियाँ भली प्रकार स्थिर रह सकें। आधार-स्तम्भ सीमेंट या उपचारित काष्ठ के होने के कारण दीमक के भूमि से काष्ठ पर चढ़ने की संभावना भी न रहेगी। काष्ठ के चट्टों के बीच में निरीक्षण के लिए आने-जाने के मार्ग भी हों, जिससे काष्ठ-खण्डों को उतारने अथवा चढ़ाने में सुविधा हो सके। बीच-बीच में कहीं मार्ग इतने भी चौड़े हों कि गाड़ियों के परिवहन में रुकावट न पड़े। काष्ठ का चट्टा भी नियमानुसार लगाया जाता है। सबसे भारी काष्ठ को नीचे और उससे कम मोटाई अथवा लम्बाई वालों को क्रमानुसार ऊपर की ओर लगाते हैं। काष्ठ के स्तरों के बीच में समान मोटाई के आड़े बत्ते ('क्रौसर्स') भी हों, जिससे संपूर्ण चट्टे में वायु का संचार बिना रुकावट हो सके। आड़े बत्ते उदग्र दिशा में भी एक ही पंक्ति में रहें। इससे लकड़ी टेढ़ी नहीं होने पाती और उसमें फटन भी कम होती है।

रेलवे-स्लीपरों के चट्टे लगाने की सर्वोत्तम विधि १ में ९ की ('वन इन नाइन') है, अर्थात् ९ स्लीपरों के स्तर में एक स्लीपर आड़े बत्ते का कार्य करता है। इसी प्रकार चट्टा ४ या ५ मीटर तक ऊँचा लगाया जाता है। अधिक फटनेवाले काष्ठ-स्लीपरों के संवृत चट्टे लगाते हैं, जिनमें ९ स्लीपरों का एक स्तर दूसरे स्तर से आड़ा रहता है। यद्यपि इसमें संशोषण-क्रिया में विलम्ब हो जाता है, तथापि इस विधि द्वारा

काष्ठ में विपटन कम रहता है। काष्ठ के स्लीपरों के सिरे, मुख्यतः जिनमें बद्ध-मज्जक ('बौक्स्ड् हार्ट') रहता है, बहुधा संशोषण क्रिया में सावधानी रखने पर भी फट जाते हैं। इनको कुछ सीमा तक प्रति-विपटन लोह-पत्तियों से रोका जा सकता है। इन लोह-पत्तियों को 'ऐस', 'ज़ैड्' और 'सी'–लोह कहते हैं, जो चित्र ४० में दिखाये गये हैं।
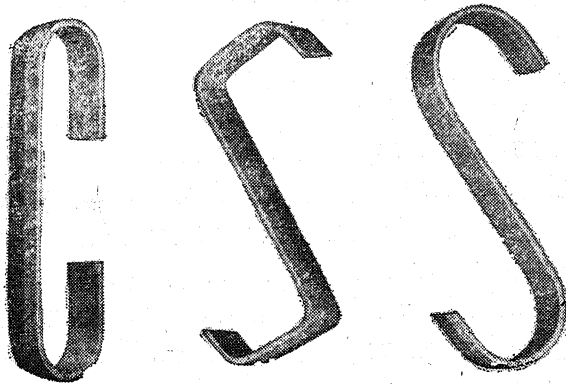
चित्र ४०–**प्रतिविपटन लोह पत्तियाँ।**

स्लीपर के सिरों को जैक से बन्द कर विपटन के आर-पार ठोका जाता है। कहीं-कहीं सिरों को इस प्रकार मिलाकर लोह-पत्तियों से चारों ओर बाँधा भी जाता है।

बिजली, तार और बाड़ के काष्ठ-खम्भों का चट्टा भी इसी प्रकार लगाया जाता है। कहीं-कहीं आड़े बत्ते चौकोर आकार के होते हैं, पर अधिकांश अवस्थाओं में खम्भों का ही प्रयोग आड़े बत्तों के रूप में किया जाता है। सबसे ऊपर का स्तर ढलवाँ बना दिया जाता है, जिससे वर्षा का पानी बह जाय। चित्र ४१, ४२, ४३ में रेलवे-स्लीपर, बिजली, तार व बाड़ के खम्भों के संशोषण चट्टे दिखाये गये हैं।

भारत में भिन्न-भिन्न जलवायु वाले स्थान हैं। कोई तो अति उष्ण है, कोई शुष्क और कोई उष्ण-नम है। अतः आवश्यक है कि काष्ठ को वायु-संशोषण के अवधि-काल में जलवायु की चरम सीमा से सुरक्षित रखा जाय, जिससे विपटन (स्प्लिटिंग) और सड़न के कारण क्षति न हो। इसी कारण संशोषण-चट्टे शालाओं के अन्दर लगाने चाहिए। देहरादून की वन-अनुसन्धान-शालास्थ काष्ठ-संशोषण शाखा ने ऐसी शालिकाओं (sheds) की कई प्रकार की रचनाएँ की हैं, जो तीव्र, मध्यम और अधम श्रेणी की फटने-

चित्र ४१—रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाड़-खंभों के वायु संशोषण चट्टे ।
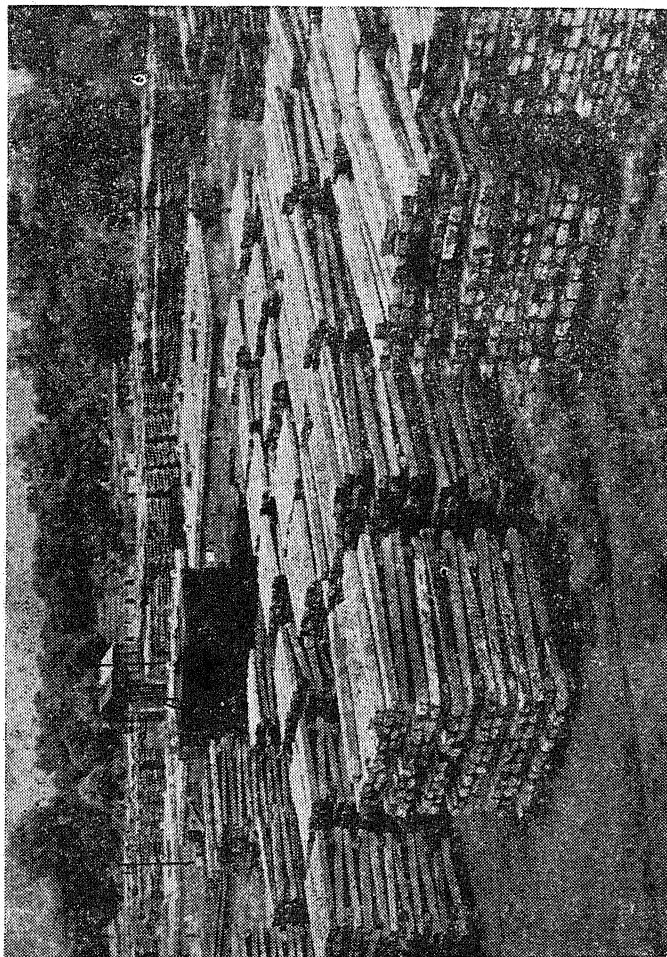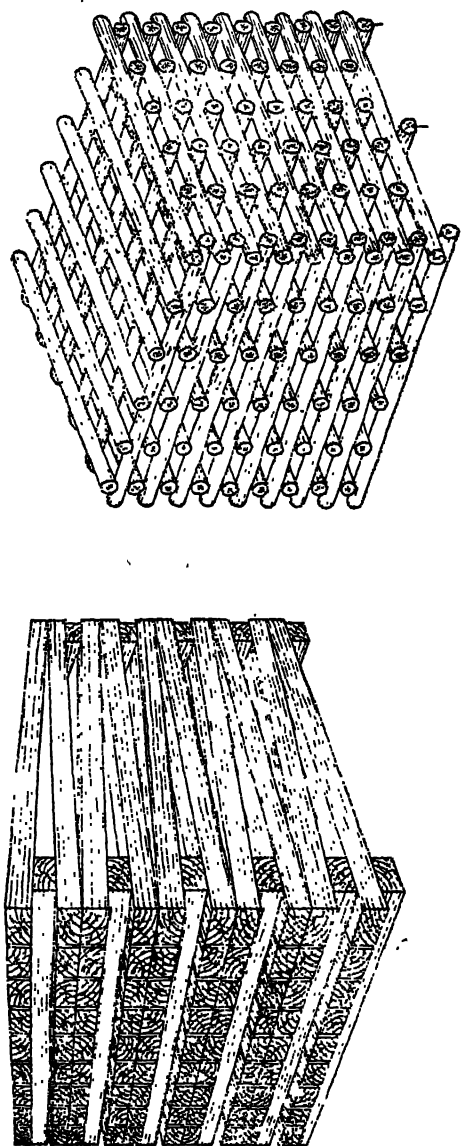
चित्र ४२—रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाड़-खंभों के वायु संशोषण चट्टे ।

वाली लकड़ियों के लिए उपयुक्त हैं। इनमें वर्षा एवं गरम और शुष्क हवा के आवागमन का नियन्त्रण करने के साधन रहते हैं। ये शालिकाएँ सामान्यतः तीन प्रकार की होती हैं। इनमें से एक तो अधिक फटनेवाली लकड़ियों के चट्टे के लिए चारों तरफ बन्द रहती है और केवल छत के नीचे खुली रहती है। दूसरे प्रकार की शालिका केवल उत्तर की ओर खुली रहती है तथा अन्य तीनों ओर से बन्द रहती है। इसमें मध्यम श्रेणी के फटनेवाले काष्ठों का चट्टा लगाया जाता है। तीसरे प्रकार की शालिका चारों तरफ खुली रहती है, जो उन काष्ठों के चट्टे के लिए उपयुक्त है जो फटनेवाले नहीं होते। इन
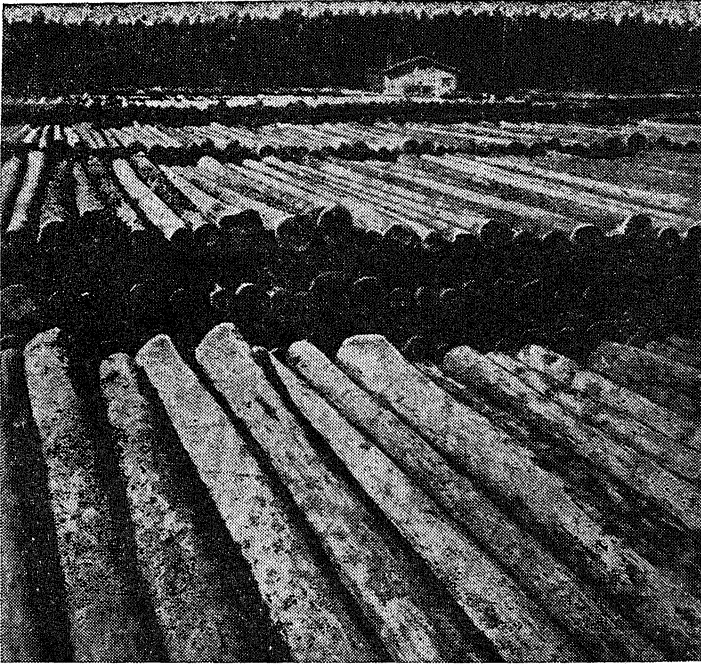
चित्र ४३—**रेलवे-स्लीपरों, बिजली, तार व बाड़-खंभों के वायु-संशोषण चट्टे।**

शालिकाओं को यदि स्थायी बनाना हो तो ईंट की दीवारों और सीमेंट-एस्बैसटौस् की छतों का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु मितव्ययी उपचारित काष्ठ-खम्भ और फूस

की छतों का प्रयोग भी छादक के लिए संतोषजनक होता है। चित्र ४४ में इस प्रकार के छादकों का प्रदर्शन है।
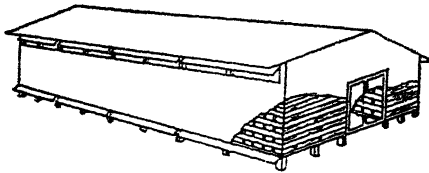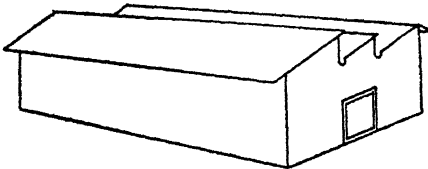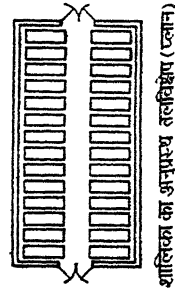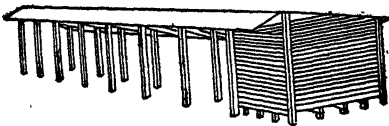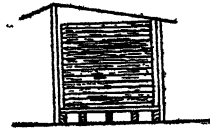
चित्र ४४—वायु-संशोषण शालिकाएँ।

इस प्रकार की शालिकाएँ, जल-विलयन द्वारा उपचारित काष्ठ के उपचार-कालोत्तर वायु-संशोषण के लिए, काष्ठ को परिरक्षी-बद्ध करने के उद्देश्य से उपयोगी सिद्ध हुई हैं। एस्क्यू-जैसे परिरक्षी द्वारा काष्ठ-उपचार करते समय काष्ठ को कुछ समय तक छप्परों के नीचे तत्काल सुखाना आवश्यक है। ऐसा करने से परिरक्षी वर्षा से धुलेगा नहीं और उसे काष्ठ में बद्ध होने का अवकाश मिल जायगा। यह संशोषण-अवधि लगभग तीन या चार सप्ताह की होती है। उसके पश्चात् उपचारित काष्ठ का जैसे भी चाहें प्रयोग कर सकते हैं।

(आ) आपाक संशोषण (भट्ठी में सुखाना)

यदि काष्ठ अधिक मोटाई का न हो अर्थात् ५ सैन्टीमीटर (२ इंच) से अधिक मोटा न हो, तो आपाक अथवा भट्ठी ('किल्न') में शीघ्र और इच्छानुसार सुखाया जा सकता है। यह विधि तख्तों और बत्तों को सुखाने के लिए अत्यन्त लाभदायक है। किल्न एक प्रकार के बन्द कमरे होते हैं, जिनमें गरम वायु का परिवहन नियन्त्रित किया जा सकता है। उनमें वाष्प द्वारा आर्द्रता देने की भी सुविधा रहती है और संशोषण को यहाँ तक नियन्त्रित किया जाता है, जिससे विपटन भी न हो और यथा-सम्भव शीघ्रतापूर्वक लकड़ी सुखायी भी जा सके। इन भट्ठियों में आरम्भ में कम ताप और अधिक आपेक्षिक आर्द्रता (उदाहरणतः ४०° सेन्टीग्रेड और ८५ प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता) पर उसे सुखाया जाता है और अन्त में दोनों की ही तीव्र अवस्था, अर्थात् ५५° सेन्टीग्रेड और ४० प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता, पर संशोषण किया जाता है। काष्ठ की जाति, आकार और मोटाई के अनुसार संशोषण अनुसूचियों के आधार पर उनमें परि-वर्तन किया जाता है। काष्ठ में अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त होने पर संशोषण क्रिया बन्द की जाती है। वायु-संशोषण द्वारा काष्ठ को अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त करने में कई महीने लगते हैं। वह अभीष्ट आर्द्रता आपाक-संशोषण द्वारा कुछ ही दिनों में हो जाती है। नम जलवायु वाले स्थानों के लिए ये भट्ठियाँ लाभकारी सिद्ध हुई हैं। आपाक कई प्रकार के होते हैं, जो इन्टर्नल् फैन किल्न, एक्सटर्नल ब्लोवर किल्न, इत्यादि नामों से प्रसिद्ध हैं। एक प्रकार के स्मोक-किल्न भी हैं जिनमें अग्नि से तप्त वायु का भट्ठी में परिवहन होता है। इनमें बहुत अधिक खर्च नहीं पड़ता। चित्र ४५ में आपाक-संशोषण के लिए भट्ठी ('किल्न') दिखायी गयी है।

भट्ठियों द्वारा काष्ठ-संशोषण करने के कई लाभ हैं। एक तो इनमें विपटन नहीं होता, तथा और काष्ठ-नाशक अभिरञ्जक कवकों का भी नाश हो जाता है। जो छिद्रक कीट काष्ठ के अन्दर प्रविष्ट रहते हैं, उनके डिम्भ (लारभा) इत्यादि भी मर जाते हैं। जल-विलयन-परिरक्षी द्वारा उपचारित काष्ठों का, जिनकी उपस्कर और अन्य निर्माण-काष्ठ के लिए शीघ्र आवश्यकता होती है, इन भट्ठियों में दक्षतापूर्वक संशोषण किया जा सकता है।

(इ) वाष्प-संशोषण

वाष्प-संशोषण क्रिया का सिद्धान्त यह है कि जब कोई ऐसा प्रांगारिक यौगिक विलायक, जिसका क्वथनांक पानी के क्वथनांक से अधिक हो, वाष्प द्वारा हरे काष्ठ में

से पार कराया जाय तो वह अपनी वाष्प के साथ काष्ठ की आर्द्रता को जल-वाष्प में परिणत कर निकाल ले जाता है। इस क्रिया को पर्याप्त समय तक चालू रखने से,

चित्र ४५—आपाक संशोषण के लिए भट्ठी।

आर्द्र काष्ठ का संपूर्ण जल निकाला जा सकता है, जो एक प्रकार से काष्ठ-संशोषण के ही तुल्य है। प्रांगारिक विलायक-वाष्प और जल-वाष्प के मिश्रण को एक विशेष प्रकार

के साधित्र में जमा कर दोनों वाष्पों को पृथक्-पृथक् किया जाता है। इस प्रकार अलग हुए प्रांगारिक विलायक का बार-बार प्रयोग कर सकते हैं। इस क्रिया का एकस्वीकरण संयुक्त राज्य अमेरिका में सन् १९४८ में हुआ है। वहाँ कुछ काष्ठ-परिरक्षण-बाणिज्य सम्बन्धी संयन्त्रों में परिरक्षोपचार के पूर्व यह वाष्प-संशोषण विधि प्रयुक्त की जाती है। विशेषतः हरे काष्ठों के रेलवे-स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण के पूर्व इस विधि से इन स्लीपरों का संशोषण किया जाता है। यद्यपि इसमें अधिक समय लगता है और इसमें विशेष संयन्त्रों की आवश्यकता भी है, पर कहा जाता है कि इसके कारण काष्ठ की सतह पर केश-तुल्य छोटी-छोटी दरारें उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हीं में से परिरक्षी गहराई तक प्रविष्ट हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप काष्ठ अधिक समय तक सुरक्षित रह सकता है। यह भी कहा गया है कि रेल-पथ में इस प्रकार उपचारित स्लीपरों का फटना कम रहा और सेवा-आयु भी अन्य सामान्य विधि से उपचारित स्लीपरों की अपेक्षा अधिक रही। इस वाष्पीकरण क्रिया का मुख्य लाभ यह है कि हरे काष्ठ के लम्बे समय तक अन्य विधि से संशोषण की प्रतीक्षा किये बिना ही उसका शीघ्र उपचार किया जा सकता है और साधारण-संशोषण क्रिया से जो काष्ठ को क्षति पहुँचती है वह भी बचायी जा सकती है।

(ई) वाष्पीकरण द्वारा समुचितोपचार (स्टीम कन्डीशनिंग)

इस क्रिया से हरे या आंशिक-संशोषित काष्ठ को उपचार से पूर्व वाष्पीकरण द्वारा उपचार योग्य बनाया जाता है। इस क्रिया में काष्ठ को साधन-संयन्त्र (रम्भ) में डालकर घंटों तक दबाव के साथ वाष्पीकरण ('स्टीमिंग') किया जाता है। वाष्प का दबाव २० पौंड प्रति वर्ग इंच (१.४०६ किलोग्राम प्रति वर्ग-सैन्टीमीटर) के लगभग होता है। उसके पश्चात् रम्भ में शून्यक ('वैकुअम्') लगा देते हैं जिसके कारण काष्ठ की आर्द्रता कम हो जाती है और साथ-साथ कवक और छिद्र-कीट मर जाते हैं, अर्थात् काष्ठ-नाशक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। वाष्पीकरण कितने दबाव पर और कितने समय तक रखना है, इसका निर्णय सूत्रों और वक्रों द्वारा किया जाता है। यह काष्ठ-जाति और उसके आकार पर निर्भर रहता है। सारांश में, वाष्पीकरण का उद्देश्य है वाष्प द्वारा वस्तु को गरम करना। वाष्प का जितना अधिक दबाव होगा उतना ही काष्ठ का ताप भी बढ़ेगा। जब काष्ठ में यथोचित गहराई तक ताप बढ़ जायगा तो शून्यक के कारण उसमें से आर्द्रता क्वथनांक-तापक्रम ('बौइलिंग पौइन्ट') से कम तापक्रम पर वाष्प बनकर उड़ने लगेगी। इसी सिद्धान्त के आधार पर हरे काष्ठ

का वाष्पीकरण किया जाता है। यह क्रिया वहीं की जा सकती है जहाँ इसको करने के साधन हों। निपीड क्रिया को उपयोग में लानेवाले उपचार-संयन्त्रों में इसे करने की सुविधा प्राप्त हो सकती है।

संयुक्त-राज्य अमेरिका की वन-पदार्थ प्रयोगशाला में मैक्लीन नामक इन्जीनियर ने, अभीष्ट आर्द्रता प्राप्त करने के लिए कौन-सी जाति, आकार और आर्द्रता के काष्ठ का कितने समय तक और कितनी मात्रा में वाष्पीकरण करना है, इसके लिए वक्र बनाये हैं। इन वक्रों के निर्देशन से यथार्थ वाष्पीकरण-समय का निर्णय कर सकते हैं। इसमें भी सावधानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि यदि वाष्प का दबाव अधिक हो या अधिक समय तक वाष्पीकरण किया जाय तो काष्ठ के फटने का भय रहता है।

(उ) शून्यक में उबालना ('बौइलिंग अन्डर वैकुअम')

हरे काष्ठ में उपचार योग्य आर्द्रता लाने की एक और विधि काष्ठ को क्रियोजोट में डुबोकर और उसके ऊपर शून्यक देकर उबालने की है। इस विधि का एकस्वीकरण
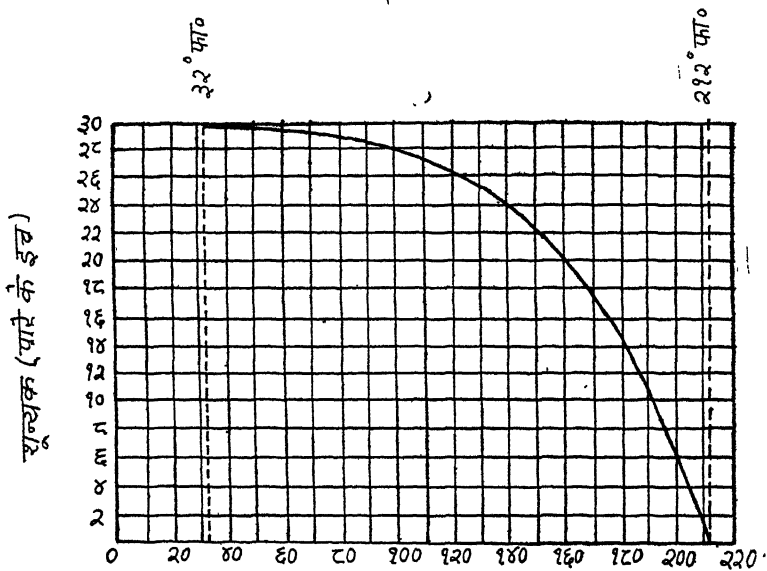
चित्र ४६—शून्यक के अनुसार जल के उबलने का तापक्रम।

बोल्टन ने १८७९ ई० में इंग्लैण्ड में कराया था। यह बोल्टन् की विधि कहलाती है। इस विधि का सिद्धान्त यह है कि यदि जल को उसके ऊपर शून्यक (वैकुअम) देकर गरम किया जाय तो उसका उबाल तापक्रम कम हो जाता है। चित्र ४६ में जो वक्र दिया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है।

यह क्रिया उपचार-साधन-संयन्त्रों में की जा सकती है। निपीड क्रिया द्वारा क्रियोजोट से जहाँ काष्ठ उपचार करना हो, वहाँ के लिए यह विधि उपयुक्त है। इस क्रिया से हरे काष्ठ का तत्काल उपचार हो सकता है और वायु-संशोषण काल में जिन अस्थायी काष्ठों पर कवक और छिद्रक कीटों से आक्रमण का भय रहता है, वह दूर हो सकता है। तैलीय पदार्थ द्वारा उपचार करने से काष्ठ-विपटन की आशंका भी कम रहती है। आसाम और अंडमान-जैसे स्थानों में, जहाँ का जलवायु नम होने के कारण वायु-संशोषण में अत्यधिक समय लगता है और वायु-संशोषण अवधि में काष्ठ के कवक से सड़ने की दशा सर्वदा बनी रहती है, वहाँ उचित समय तक क्रियोजोट माध्यम में शून्यक देकर उबालने और तत्पश्चात् निपीड क्रिया द्वारा क्रियोजोटीकरण करने से काष्ठ को बहुत बड़ी मात्रा में बचाया जा सकता है।

(४) पूर्व कटाई और छिद्रण

काष्ठ के परिरक्षोपचार से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कटाई व छटाई उपचार के पूर्व ही की जाय। यदि ऐसा न किया गया तो काटने व छेदने से अनुपचारित काष्ठ के खुल जाने की आशंका रहती है, जिसके कारण इस दुर्बल स्थान से काष्ठ-नाशक जीवाणु का आक्रमण आरम्भ हो जाता है, और यदि काष्ठ पूर्णतया परिरक्षी से व्याप्त न हो, तो काष्ठ-अंग विफल हो जाता है, जैसे शृंखला की शक्ति उसकी सबसे निर्बल कड़ी की शक्ति के ऊपर निर्भर रहती है। ऐसी दशा होने पर काष्ठ-परिरक्षण का उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। यदि उपचार के पश्चात् काष्ठ को काटना अनिवार्य हो तो अनुपचारित काष्ठ के प्रकट होने पर उसमें परिरक्षी के गाढ़े विलयन से परिपूर्णतया लेप लगा देना चाहिए। यदि वहाँ पर छिद्र किया गया हो तो एक विशेष-संयन्त्र द्वारा निपीड क्रिया से उस स्थान पर परिरक्षी व्यापन किया जा सकता है, जिससे यह दोष मिट जाता है।

काष्ठ-स्लीपरों में रेल-आसन पर उपचार (क्रियोजोटीकरण) से पूर्व खाँचे और प्रकील (Spike) छिद्र किये जाते हैं। ऐसा करने पर रेलों को ठीक प्रकार से बैठाने, प्रकील ठोकने के लिए स्लीपरों को फिर से छीलने और छिद्रण की आवश्यकता नहीं

पड़ती । स्लीपर के रेल-आसन और प्रकील के स्थानों को विशेष प्रकार से सुरक्षित रखने की आवश्यकता है । इन स्थानों पर यदि सड़न हो जाय तो पटरी काष्ठ के अन्दर धँसने लगती है और स्पाइक ढीले पड़ जाते हैं, जिससे गाड़ी के पटरी से उतरने का भय रहता है । भारत के उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान पर स्लीपरों के क्रियोजोटीकरण कार्यालय में स्लीपरों की चौकोर टक्कर काटने और रेल-आसन को छीलने की मशीनें हैं । प्रकील-छिद्रण हस्त-श्रम से किया जाता है, स्लीपरों के सिरों पर संक्षेप में अक्षर और क्रमांक खोदे जाते हैं, जिससे कि काष्ठ-जाति, उपचार और विधायन समय का ब्यौरा ज्ञात हो सके । चित्र ४७, ४८, ४९, ५० में इन क्रियाओं का प्रदर्शन किया गया है ।
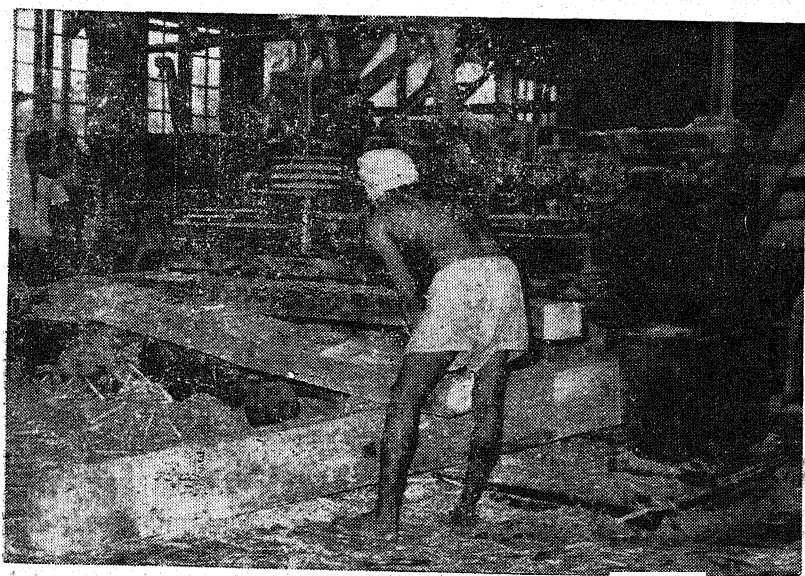
चित्र ४८—मशीन द्वारा रेल-आसन छीलना।

बिजली और तार-खम्भों के सिरे उलटे 'वी' (Λ) अक्षर के आकार में काटे जाते हैं, जिससे वर्षा का पानी तुरन्त बह जाय । उनके ऊपर आड़ी पट्टियाँ ('क्रौस आर्मस्') लगाने के लिए भी उपचार से पूर्व छीलन व छिद्रण किया जाता है,
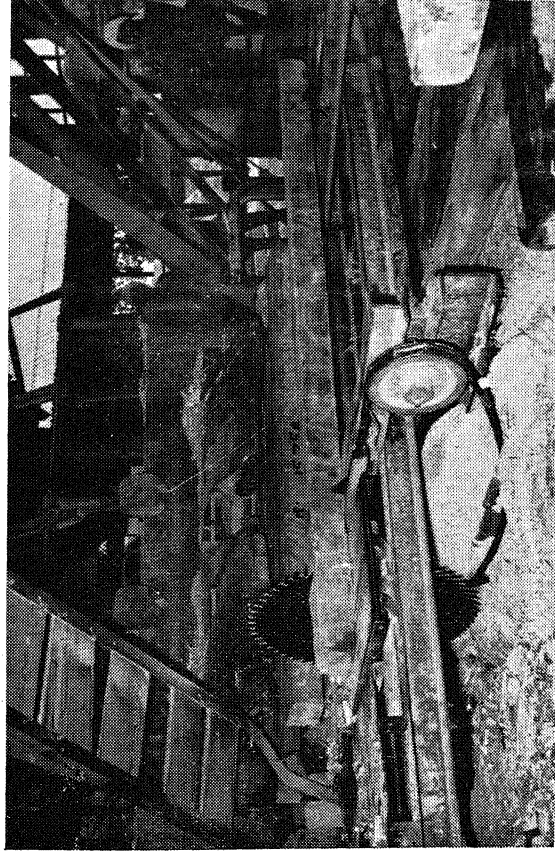
चित्र ४७——धिलवां क्रियोजोटीकरण संयन्त्र में स्लीपरों के टक्कर काटना, पृ० १९० ।

चित्र ४९—हस्तक्रिया द्वारा प्रकील-छिद्रण।

चित्र ५०—स्लीपरों पर अक्षर लिखना और उन्हें क्रमांकित करना।

जिससे कि शोधन के पश्चात् काटने व छिद्रण करने की आवश्यकता न पड़े। इसी प्रकार अन्य निर्माण-काष्ठों में भी शोधन से पूर्व उचित आकार में ढाँचा बना लेना आवश्यक है ।

(५) भेदन ('इनसाइजिंग')

बहुत से काष्ठ-परिरक्षी व्यापन-रोधी होते हैं, अर्थात् काष्ठों में परिरक्षी-प्रवेश कराना दुष्कर होता है। काष्ठ में परिरक्षी-व्यापन पार्श्व (साइड) और छोर('एन्ड') भाग से होता है। कुछ अप्रवेश्य काष्ठ पार्श्व-भाग से व्यापित न होने पर भी छोर भाग से कुछ दूरी तक परिरक्षी के प्रवेश योग्य बनाये जा सकते हैं। इस गुण की विद्यमानता के कारण इन काष्ठों के पार्श्व-भाग का एक विशेष प्रकार के लोह-दन्तों से परिरक्षोपचार-पूर्व भेदन किया जाता है, जिससे बाद में निपीड क्रिया से उपचार करने पर परिरक्षी का सामान्यतः दन्त की गहराई तक प्रवेश हो सके। ये भेदन-दन्त दो प्रकार के होते हैं । इनमें से एक तो छेनी के सिर और दूसरा सीप के सिर के समान होता है। इनसे काष्ठ-तन्तु का कर्तन हो जाता है, जिसके कारण परिरक्षी का समान रूप से दोनों छोरों से व्यापन हो जाता है । ये दन्त सामान्यतः १ इंच से लेकर १.२५ इंच तक लम्बे और आधार पर लगभग ०.२५ इंच मोटाई के तथा ०.७५ इंच चौड़े होते हैं। इनको काष्ठ की सतह से लम्बाई में (काष्ठ के रेशे की दिशा में) ०.७५ इंच गहरे तक प्रवेश कराया जाता है । भेदनक्रिया मशीन द्वारा होती है, जिसमें उदग्र और क्षैतिज दिशा में चार भेदन-दन्त लगे हुए ड्रम घूमते रहते हैं, काष्ठ-खंड इनके बीच में से होकर निकाला जाता है । ड्रमों के दबाव के कारण काष्ठ-भेदन हो जाता है ।

भेदन की दूरी और उनका प्रतिरूप काष्ठ की जाति के ऊपर निर्भर रहता है । इनका वितरण इतना ही होना चाहिए, जितना कि परिरक्षी को समान रूप से व्यापन करने के लिए आवश्यक हो। उससे अधिक मात्रा में भेदन करने पर काष्ठ के बल को क्षति पहुँचने की सम्भावना रहती है।

चित्र ५१ में एक भेदन करने की मशीन दिखलायी गयी है । उससे भेदन किये गये काष्ठ-स्लीपर के तल पर भेदन का वितरण स्पष्ट है।

भारत में उत्तरी रेलवे के धिलवाँ स्थान के क्रियोजोटीकरण कार्यालय में फर, स्प्रूस, कैल और देवदार जाति के व्यापन-रोधी काष्ठों के स्लीपरों का परिरक्षोपचार-पूर्व भेदन किया जाता है । इसके कारण इन स्लीपरों के पार्श्व-भाग में समान रूप से चारों ओर ०.७५ इंच गहराई तक परिरक्षी का प्रवेश हो जाता है। इसी के

फलस्वरूप इन जातियों के स्लीपरों से संतोषजनक सेवा-आयु प्राप्त हुई है। इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि पूर्व-भेदन के कारण स्लीपरों के सेवा-अवधि-काल में विपटन कम रहा है।
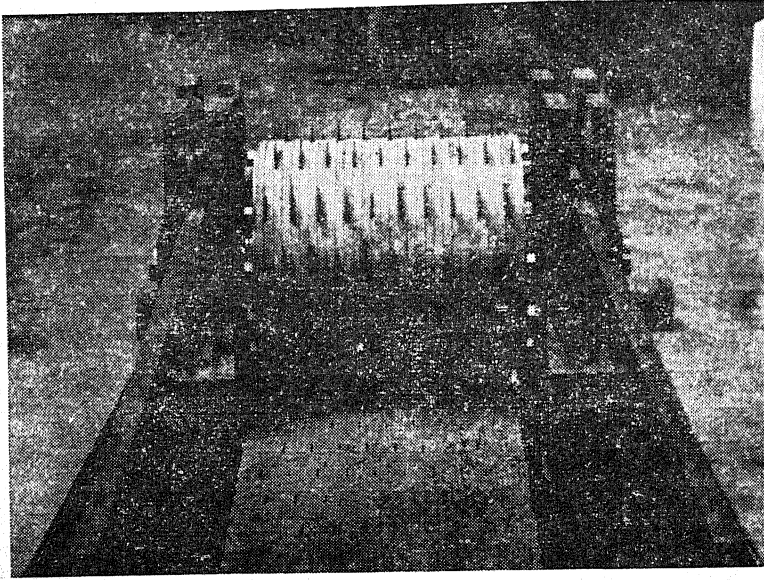
चित्र ५१—काष्ठों का भेदन करने की मशीन।

अध्याय ३

उपचार-विधाएँ

परिरक्षी को व्यवहार में लाने की रीतियाँ उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती हैं जितना कि उनका रासायनिक संगठन। परिरक्षी प्रतिष्ठित अर्थात् प्रथम श्रेणी का होने पर भी यदि अनुचित प्रकार से प्रयुक्त किया गया हो, तो उचित प्रकार से प्रयुक्त किये गये लघु अर्थात् हीन परिरक्षी से भी अल्प-प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है। अतः काष्ठ-परिरक्षण क्षेत्र में परिरक्षी-उपचार-विधियों के अन्वेषण-कार्य पर उतना ही बल दिया जाता है, जितना परिरक्षी-रसायनों के आविष्कार पर।

काष्ठ के सरंध्र होने के कारण यही विश्वास किया जाता है कि उसको परिरक्षी विलयन में डुबोने मात्र से ही परिरक्षी अंतर्व्याप्त हो सकेगा। पर यथार्थ में ऐसा नहीं होता। परिरक्षी के अन्तः-प्रवेशन में अनेक बाधाएँ पड़ती हैं। इस विषय में अन्वेषण करनेवालों का यही लक्ष्य और उद्देश्य रहा है कि ऐसी उपचार-विधाएँ ढूँढ निकाली जायँ, जिनके द्वारा काष्ठ को हानि पहुँचाये बिना ही यथोचित मात्रा में परिरक्षी का समान रूप से काष्ठ के अन्दर दूर तक प्रवेश कराया जा सके। कृत्रिम निपीड क्रिया से इस दिशा में सफलता (४ च) उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ काल से प्राप्त हुई। इसमें विशेष संयन्त्रों की आवश्यकता थी। सन् १८३० और १८४० में कौथल, बूशरी, बर्नेट और क्यान नामक वैज्ञानिकों ने जो उपचार प्रक्रियाएँ निकालीं, उनका उल्लेख काष्ठ-परिरक्षण के इतिहास में पाया जाता है। तबसे इस क्षेत्र में लगातार प्रगति होती जा रही है, पर अभी तक व्यावहारिक दृष्टि से संतोषजनक किसी ऐसी विधा का आविष्कार नहीं हुआ जो सभी काष्ठों में पूर्ण रीति से परिरक्षी का व्यापन करा सके, यद्यपि इस दिशा में कुछ मात्रा तक सफलता प्राप्त हो चुकी है।

स्थूल रूप से काष्ठ-परिरक्षण-उपचार रीतियों का दो विधाओं में वर्गीकरण किया गया है। इनमें पहली तो अनिपीड विधाएँ हैं और दूसरी निपीड विधाएँ। अनिपीड विधाएँ वे सामान्य विधाएँ हैं जिनमें कृत्रिम दबाव का प्रयोग नहीं किया जाता, किन्तु निपीड विधा में कृत्रिम दबाव का प्रयोग, बन्द लोह-रम्भों द्वारा किया जाता है। इसका सविस्तर वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

१. अनिपीड[1] विधाएँ

अनिपीड विधाएँ परिरक्षोपचार की वे रीतियाँ हैं जिनमें निपीड अर्थात् दबाव का किसी भी रूप में प्रयोग न किया गया हो। इनमें वे क्रियाएँ भी सम्मिलित हैं जिनमें मन्द-वायु दबाव का प्रयोग हरे काष्ठ के उपचार के लिए साधारण यन्त्रों द्वारा किया जाता है। जीवित वृक्षों का परिरक्षोपचार भी इन्हीं विधियों के अन्तर्गत है। इनमें कई विधियों का एकस्वीकरण किया गया है। मुख्यतः ये विधियाँ निम्न प्रकार की हैं।

(क) आदहन ('चारिंग')

कभी-कभी काष्ठ को अल्प सुरक्षा के लिए बाह्य सतह पर किसी मशाल (टॉर्च) द्वारा आदग्ध अथवा प्रांगारित करते हैं। विशेष कर खंभों के बाह्यस्तर को आग में जलाने से उनकी सुरक्षा हो जाती है। यदि प्रांगारित (कार्बनीकृत) स्तर टूटकर न गिरे तो कुछ समय तक यह अन्दर के काष्ठ को सुरक्षित रख सकता है, पर सर्वदा ऐसा होना सम्भव नहीं है। कुछ सीमा तक काष्ठ के प्रांगारण से उत्पन्न पदार्थ भी अन्दर के काष्ठ को सुरक्षित रखने में सहायक होते हैं, पर प्रांगारित पदार्थ अधिक मात्रा में न होने के कारण कुछ समय पश्चात् वे लुप्त हो जाते हैं। इस क्रिया से कहीं-कहीं अच्छे परिणाम प्राप्त होने का उल्लेख (४ च) मिलता है, पर इससे अधिक समय तक सुरक्षा की आशा नहीं की जा सकती। सीमित खर्चवाली होने के कारण अल्प-सुरक्षा के लिए, विशेष कर बाड़ के खम्भों के परिरक्षण के लिए, यह क्रिया उपयुक्त है।

(ख) कूर्चन और शीकरन ('ब्रशिंग[2] और स्प्रेइंग'[3])

परिरक्षी को कूची से लगाना कूर्चन और पिचकारी से छींटना शीकरन कहलाता है। इस क्रिया से परिरक्षी काष्ठ की सतह पर ही रहता है, यद्यपि केशाल ('कैपीलरी'[4]) क्रिया के फलस्वरूप कहीं थोड़ी ही दूरी तक परिरक्षी प्रवेश कर सके, परन्तु इस विधि से सामान्यतः परिरक्षी बहुत ही कम दूरी तक प्रविष्ट हो पाता है। यह प्रवेश-रोधी गुण काष्ठ में स्वाभाविक होता है, इसी कारण इन सामान्य विधियों से परिरक्षी का प्रवेश कराना कठिन हो जाता है। कूर्चन और शीकरन के उपचार काष्ठ के अस्थायी परिरक्षण की सरल विधियाँ हैं। इनमें कहीं विशेष कीमती यन्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ती और थोड़ी ही पूँजी लगाने से कार्य किया जा सकता है। साधारण कूची और पिचकारियों से ही काम चल जाता है। ये चीजें सभी

1 Pressure-less. 2 Brushing. 3 Spraying. 4 Capillary.

जगह आसानी से ले जायी जा सकती हैं। इस कार्य के लिए अधिक मात्रा में परिरक्षी का संग्रह करना आवश्यक नहीं होता। परिमित मात्रा में ही परिरक्षी का संचय किया जा सकता है।

इन विधियों का प्रयोग मुख्यतः कटान के पश्चात् हरे काष्ठ को क्षति-रोधक बनाने के लिए किया जा सकता है या स्थिरीकृत काष्ठ के तत्स्थानीय ('इन सिटचू') उपचार के लिए। इन विधियों का प्रयोग एक निश्चित अवकाश के बाद पुनः क्रम से निरन्तर करते रहने से, काष्ठ को चिरकाल तक भी सुरक्षित रख सकते हैं, यदि काष्ठ के प्रत्येक भाग, अर्थात् उसके कोने-कोने में, परिरक्षी का लेपन किया जाना सम्भव हो। काष्ठ के संयन्त्रों द्वारा स्थायी उपचार के पूर्व इस प्रकार की विधियों का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

कूर्चन और शीकरन विधियों में काष्ठ की सतह पर परिरक्षी का लेप उदारता-पूर्वक लगाना चाहिए। काष्ठ का प्रत्येक भाग खूब तर कर देना आवश्यक है। कम से कम आरम्भ में दो लेप लगाना उचित होगा। एक लेप के सूखने पर ही दूसरा लेप लगाया जा सकता है। इस क्रिया से काष्ठ के पार्श्व-भाग की अपेक्षा, छोर भाग से अधिक दूरी तक परिरक्षी का प्रवेश हो जाता है। हरे काष्ठों में परिरक्षी के घोल का प्रयोग करने पर प्रसारण-क्रिया द्वारा काष्ठ में थोड़ी गहराई तक परि-रक्षी-व्यापन की सम्भावना रहती है। लेप करने से पूर्व तैलीय परिरक्षी को गरम कर लेना आवश्यक है। इससे तैल पतला हो जाता है और काष्ठ में प्रचूषित होने में सहायक होता है। जल-विलयित और प्रांगारिक विलायक परिरक्षी का शीत अवस्था में भी प्रयोग कर सकते हैं।

कूर्चन और शीकरन विधियों का प्रयोग उन अवस्थाओं में भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है, जहाँ उपचारित काष्ठ को फिर से छीलने या काटने पर अनुपचारित काष्ठ प्रकट हो गया हो। इन जगहों पर परिरक्षी का उदारतापूर्वक लेप करने से न्यूनाधिक रूप में यह दोष मिट सकता है।

(ग) डूबन ('डिपिंग'[1])

डूबन क्रिया में निर्माण काष्ठ को कुछ ही सेकन्ड या मिनट तक किसी पात्र में रखे परिरक्षी में डबो देते हैं। इसके पश्चात् उसमें से काष्ठ बाहर निकाला जाता है और उसमें से टपकन एकत्र कर फिर से पात्र में रख ली जाती है। तैलीय परिरक्षी

1 Dipping.

को उसमें डुबाने से पूव गरम करना उचित है, क्योंकि इससे काष्ठ को परिरक्षी के प्रचूषण में सहायता मिलती है। अन्य प्रकार के परिरक्षी-विलयन को भी थोड़ी मात्रा में गरम करना उपयुक्त होगा, यदि ऐसा करने से कोई नुकसान न हो।

यद्यपि यह क्रिया कूर्चन और शीकरन क्रिया से महँगी पड़ती है, तथापि कूर्चन और शीकरन की अपेक्षा इस डुबाने की क्रिया से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं, क्योंकि इस क्रिया में काष्ठ को परिरक्षी के स्पर्श में रहने का अधिक अवकाश मिलता है, जिसके फलस्वरूप काष्ठ की दरारों और छेदों में परिरक्षी आसानी से पहुँच जाता है। इस काम में परिरक्षी के संचय के लिए बड़े पात्र की आवश्यकता पड़ती है और परिरक्षी भी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में संग्रह करना पड़ता है।

डुबोने की क्रिया अल्पस्थायी काष्ठों की आयु को थोड़े ही वर्ष (बाहर खुले में ४ या ५ वर्ष तक) अधिक बढ़ाने में सहायता करती है और संरचनात्मक काष्ठों की अल्पकालिक सुरक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। खिड़की के चौखटों, दरवाजों और सिल्लियों को प्रांगारिक-विलायक परिरक्षी द्वारा उपचारित करने के लिए भी यह क्रिया विशेष प्रकार से उपयुक्त है। यदि काष्ठ शुष्क हो तो उसे कुछ अधिक समय तक परिरक्षी विलयन में डुबाये रखने से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। पर यह क्रिया सर्वांग-पूर्ण निपीड क्रिया का स्थान नहीं ले सकती।

(घ) चूषण ('सोकिंग'[1] और 'स्टीपिंग'[2])

इस विधा में काष्ठ को परिरक्षी से भरी टंकी में डुबोकर कई दिनों तक पड़ा रहने दिया जाता है। डुबोकर रखने की अवधि काष्ठ की जाति, आकार और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। यह अवधि एक या दो दिन से लेकर कई महीनों तक की भी हो सकती है। यह ऊपर लिखी सब विधियों से, अर्थात् कूर्चन, शीकरन और डूबन की अपेक्षा बहुव्ययी है, क्योंकि इसमें साधन-संयन्त्र और परिरक्षी की अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। यह विधि काष्ठ के बड़े पैमाने के उपचार के लिए उपयुक्त नहीं है। परन्तु इस विधा में पूर्वोक्त सब विधाओं से अधिक मात्रा और गहराई तक परिरक्षी प्रचूषण कराने के फलस्वरूप अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

यह क्रिया शुष्क तथा हरे, दोनों काष्ठों के लिए उपयुक्त है। शुष्क काष्ठ के लिए गरम तैल अथवा घोल के रूप में तथा हरे काष्ठ के लिए जलीय घोल के रूप में तैयार किया परिरक्षी लाभप्रद होता है। शुष्क काष्ठ में परिरक्षी आचूषित हो

1 Soaking. 2 Steeping.

अमेरिका, तीनों में इस विधि का एकस्वीकरण हो गया है। इस में जल-विलयित गाढ़े घोल के रूप में परिरक्षी की मोटी तह का हरे काष्ठ की सतह पर लेप किया जाता है। तत्पश्चात् उस काष्ठ को बन्द चट्टे में लगाकर तिरपाल या अन्य जल-रोधी वस्त्र से ढक दिया जाता है, जिससे वायु-संशोषण न हो सके। कुछ दिनों पश्चात् एक मास से लेकर तीन मास की अवधि के बाद (काष्ठ की जाति और परिमाण के अनुसार) यह उपचार समाप्त कर दिया जाता है। इससे परिरक्षी काष्ठ में पर्याप्त गहराई तक प्रवेश कर जाता है। इस विधि में सोडियम् फ्लोराइड्[1], डाइनाइट्रोफीनौल,[2] क्रोमेट्स्[3] और कभी-कभी संखिया[4] के मिश्रण का परिरक्षी के

चित्र ५२—कोदाई कनाल में आसारण विधि द्वारा काष्ठ-खंभ का उपचार।

रूप में प्रयोग किया जाता है। बिजली और बाड़ के खम्भों के लिए यह अति उपयोगी है और इस विधि से बद्धरूप परिरक्षी का प्रयोग करने पर संतोष-

1 Sodium Fluoride. 2 Dinetrophenol. 3 Chromates.
4 Arsenic.

जनक परिणाम निकल सकते हैं। इस क्रिया से कोदाइ कैनाल में **पाइनस् इन्सिग्निस्**[1] काष्ठ से बने बिजली-खम्भों का उपचारण चित्र ५२-५३ में दिखलाया गया है। वहाँ की नगरपालिका ने ऐसे २००० उपचारित खम्भे लगाये हैं।
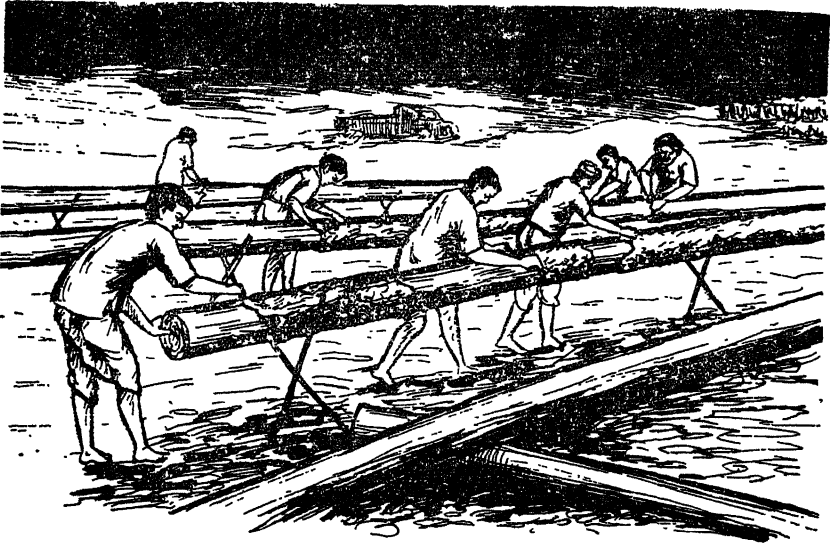
चित्र ५३—कोदाई कनाल में आसारण विधि द्वारा काष्ठ-खंभ का उपचार।

इस विधि के मूलभूत सिद्धान्त का परिरक्षी पट्टी बन्धन में भी प्रयोग किया जाता है। पट्टी बन्धन में जल-विलेय परिरक्षी का गाढ़ा लेप मोटे वस्त्र की पट्टी पर लगा कर, हरे खम्भे के भूमि-निकटवर्ती भाग के कुछ ऊपर और नीचे, जहाँ कवक और दीमकों के आक्रमण की संभावना बनी रहती है, बाँधा जाता है। प्रसारण क्रिया से परिरक्षी खम्भे के ऊपर और नीचे फैलकर काष्ठ को सुरक्षित रखता है। इस विधि का एकस्वीकरण स्वीडन में सन् १९२० में हुआ, फिर १९२८ में जर्मनी में भी इसका प्रयोग होने लगा। कहीं-कहीं संपूर्ण हरे खम्भे पर परिरक्षी का लेप कर उसके ऊपर जल-रोधी कागज लपेटा जाता है, फिर प्रसारण क्रिया द्वारा संपूर्ण भाग में कुछ गहराई तक परिरक्षी फैल जाता है। एक पुरानी विधि काष्ठ में छिद्र कर

1 Pinus Insignis.

और उसमें परिरक्षी चूर्ण भरकर डाट से बन्द कर देने की भी है। इसका उपयोग काष्ठ के उन्हीं भागों पर किया जाता है जहाँ काष्ठनाशक अभिकर्त्ताओं के आक्रमण की संभावना हो। अमेरिका में इस विधि से डगलस फर जाति के खम्भों के उपचारण द्वारा उनकी आयु अनुपचारित काष्ठ से कई गुनी (४ ज्ञ) बढ़ा दी गयी। यदि बद्धरूपी जल-विलेय परिरक्षी का प्रयोग किया जाय तो आशा की जा सकती है कि शायद इन पूर्वोक्त विधियों से अच्छे परिणाम निकलें। पर भारत में कोदाइकैनाल के अतिरिक्त इस प्रकार से प्रयोग में लायी गयी विधियों का अनुभव प्राप्त नहीं है। इस सम्बन्ध में बड़े पैमाने के परीक्षणों की आवश्यकता है।

(च) रस-विस्थापन ('सैंप डिस्प्लेसमैण्ट'।)[1]

रस-विस्थापन विधा में हरे काष्ठों के रस (सैंप) को धकेलकर उसके स्थान में परिरक्षी जल-विलयन भर देते हैं। इस विधा की मुख्य रीति बशरी प्रक्रिया के नाम से प्रसिद्ध है। फ्रान्स के डाक्टर बूशरी नामक वज्ञानिक न सन् १९३८ में खड़े हरे पेड़ों या नये गिराये वल्क और टहनियों सहित पेड़ों के उपचार के लिए यह विधि निकाली थी। इसमें परिरक्षी को एक रबड़ की थैली या अन्य किसी पात्र में लेकर पेड़ के निचले भाग में काष्ठ के अन्दर प्रवेश कराया जाता है और तब पत्तियों के द्वारा जल-उद्वाष्पन के साथ परिरक्षी को भी काष्ठ-रसधारा के साथ ऊर्ध्व दिशा की ओर खींच लिया जाता है, यहाँ तक कि टहनियों और पत्तियों में भी परिरक्षी प्रवेश कर जाता है। इस क्रिया से यद्यपि संपूर्ण रस-काष्ठ में परिरक्षी व्याप्त हो जाता है, पर परिरक्षी का कुछ अंश निरर्थक ही रहता है, इसलिए यह विधि सुविधाजनक नहीं पायी गयी।

बाद में नवीन कटान के हरे पेड़ों की टहनियाँ काटने के पश्चात् उन्हें वल्क सहित खम्भे के आकार में बनाकर काष्ठ हरा रहते ही उनका उपचार होने लगा। इसमें खम्भे के मुण्ड-छोर (मोटे सिरे) पर दृढ़ता से टोपी लगाकर उच्च-कोटीय परिरक्षी विलयन-पात्र में लगी नली द्वारा उसके भीतर पहुँचाया जाता है, तब खम्भे के तनु छोर (पतले सिरे) से काष्ठ-रस बहना आरम्भ होने लगता है। यह बहाव परिरक्षी विलयन के उच्चस्तरीय भार, तरलस्थैतिक (हाइड्रोस्टैटिक[2]) निपीड और अंशतः काष्ठ-खम्भे के तिरछा रहने के कारण होता है। कुछ समय पश्चात्, जिसमें कई दिन तक लग जाते हैं, खम्भ के तनु छोर से परिरक्षी बहने

1 Sap-displacement. 2 Hydrostatic Pressure.

लगता है। यह क्रिया खम्भे के मुण्ड-छोर पर पुराने मोटर-ट्यूब के टुकड़े को कसकर बाँधकर और तब उसे परिरक्षी पात्र बनाकर भी की जा सकती है। यथार्थ मात्रा में परिरक्षी निकलने पर क्रिया समाप्त कर दी जाती है। तब काष्ठ को, उसका वल्क छीलकर और वायु-संशोषण करके काम में लाया जा सकता है।

फिनलैंड और जर्मनी में ऐसे संयन्त्र हैं जहाँ बूशरी प्रक्रिया से सैकड़ों काष्ठ-खम्भों का एक साथ उपचार किया जाता है। इनके लिए एक उच्च मञ्च पर मध्यवर्ती कुंड स्थापित किया जाता है, जो परिरक्षी प्रदायक होता है। आरम्भ-काल में इस विधि के लिए कॉपर सल्फेट[1] (नीला थोथा) का विलयन परिरक्षी के रूप में प्रयुक्त किया जाता था, पर अब इसमें किसी भी जल-विलेय परिरक्षी का प्रयोग कर सकते हैं। यदि परिरक्षी रंगीन हो तो क्रिया की समाप्ति का अनुमान सरलता से हो सकता है। यूरोपीय देशों में इस प्रकार उपचारित काष्ठ के खम्भे बहुत संख्या में लगाये गये, उनकी सेवा-आयु के बारे में अभिलेख प्राप्त हुए हैं। कहीं-कहीं इनसे संतोषजनक परिणाम निकले हैं, जो प्रयुक्त परिरक्षी, जल में उसके संक्रेन्द्रण, उपचार-अवधि, काष्ठ-जाति और स्थानीय जल-वायु आदि पर निर्भर हैं। उपचार के लिए काष्ठ-खम्भे नये कटान के होने चाहिए। यदि इस विधि से तुरन्त ही उपचार करने में कुछ विलम्ब हो जाय, तो शुष्क छोर को काटने पर ही यह विधि कार्यकर सिद्ध हो सकती है। अतः वनों के समीप ही इस कार्य के संयन्त्र स्थापित किये जा सकते हैं। तैलीय और प्रांगारिक-विलायक परिरक्षी का प्रयोग इस विधि में नहीं किया जा सकता। भारत के उत्तर प्रदेश में अल्मोड़ा नामक स्थान की नगरपालिका ने कुछ हरे चीड़-खम्भों का एस्क्यू परिरक्षी से इस विधि द्वारा उपचार किया था और तत्पश्चात् नगर में बिजली के खम्भों के रूप में वे खम्भे लगाये गये थे। उनमें से जो खम्भे समुचित प्रकार से उपचारित हुए थे, वे लगभग १२ वर्ष के सेवा-कार्य के पश्चात् अब भी अच्छी दशा में हैं।

उपरिलिखित विधा से काष्ठ के लम्बे खम्भों के उपचार में कई दिन (लगभग २ सप्ताह) लग जाते हैं, जिससे इस विधा के वाणिज्योपयोग में बाधा पड़ती है। इस समस्या को सुलझाने के लिए देहरादून वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने इस विधि में कई परीक्षण करने के बाद संशोधन (१घ) किया। परिरक्षी कुण्ड की ऐसी रचना की गयी जिससे उसम २५ या ३० पौंड प्रति

1 Copper Sulphate.

चित्र ५५—हरे काष्ठ खंभों का उपचार, पृ० २०३।
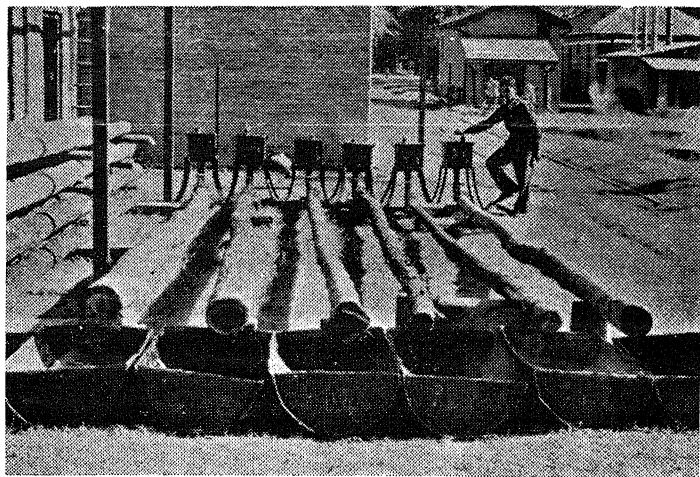
चित्र ५४——हरे काष्ठ खंभों का उपचार, पृ० २०३।
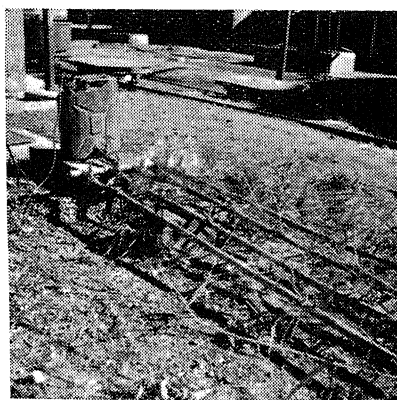
चित्र ५६——पूर्ण गोल हरे बाँसों का उपचार, पृ० २०३।

वर्ग इंच (१.७६ या २.११ किलोग्राम प्रति वर्ग सें.) हस्त या पद-पम्प द्वारा वातिक् दबाव ('न्यूमैटिक प्रशर') आ सके। दबाव-माप मोटर टायर-पैन-गेज से नापा जा सकता है। परिरक्षी-कुंड, पैट्रोल टंकी या पतले लोहे की चादर का बनाया जा सकता है, और उसकी डाट में वाल्व लगाने से हवा रोकी जा सकती है। टंकी के तले में एक निकास-नल लगा रहता है, जिसका अन्त-भाग एक मोटे नल द्वारा निपीड रबड़-नाल द्वारा काष्ठ-खम्भ के तनु-छोर से दृढ़ता से बाँधा जा सके। इस उपचार रीति में यह आवश्यक नहीं है कि खम्भे का मुंड-छोर ही परिरक्षी से संबद्ध हो। कोई भी छोर, जो रबर-टयूब में ठीक प्रकार से बैठ जाय, लगाया जा सकता है। इस विधि में यह ऐसी विशेष सुविधा है जो उपर्युक्त विधि में नहीं है। इस प्रकार काष्ठ-खंभ को बाँधने पर, कुंड में परिरक्षी-विलयन पर (लगभग २५ पौंड प्रति व० इं० अर्थात् १.७६ किलोग्राम प्रति व० सें० तक) वातिक दबाव दिया जाता है। इस दबाव के कारण खुले छोर से काष्ठ-रस अति वेग से बहने लगता है और प्राय: २० फुट लम्बे खम्भे का उपचार लगभग दो-तीन दिन के अन्दर ही हो सकता है। एस्क्यू परिरक्षी द्वारा किये जानेवाले इस प्रकार के उपचार का प्रदर्शन, **चित्र ५४, ५५** में किया गया है। **चित्र ५६** में हरे पूर्ण गोल बाँसों का उपचार भी दर्शाया है। इस सामान्य साधित्र में ५ या ६ बाँसों की शोधन-क्रिया एक साथ हो सकती है। उपयुक्त टंकी और नलों को जोड़ने से ऐसा भी उपचार-संयन्त्र बनाया जा सकता है जिसमें प्राय: ५० या ६० बाँसों का एक साथ उपचार हो सके।

गोल बाँसों का उपचार दुष्कर कार्य है, केवल यही एक ऐसी विधि है जिससे पूर्ण प्रकार से बाँसों का उपचार किया जा सकता है। टहनी सहित बाँसों का उपचार करने पर गाँठों के द्वार से परिरक्षी बहने लगता है तथा उसकी हानि बचा दी जा सकती है।

बाँसों पर इस विधि से किये गये उपचार-परीक्षणों से यह परिणाम निकले हैं कि तीन वर्ष उम्र तक के बाँस संतोषजनक रूप में उपचारित हो सकते हैं। बाहर खुले में उपयोग के योग्य बाँसों का इस विधि से उपचार करने में लगभग तीन घंटे लगते हैं, किन्तु जिन बाँसों का प्रयोग भीतरी जगह में किया जाय उनके लिए दो घंटे लगते हैं। क्षतिरोधक उपायों के लिए आधे घंटे की उपचार-अवधि पर्याप्त है। बाँसों की संपूर्ण लम्बाई, केवल सिरे और जड़ के भाग को छोड़कर, इस रीति से शोधित की जा सकती है। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले बाँसों का इस विधि से उपचार करने में कठिनाई पड़ती है। यदि बाँसों की निर्माण-शक्ति लगभग तीन

वर्ष में परिपूर्ण हो जाय, जैसी कि आशा की जाती है, तो इस उम्र तक ही उपचार कर लेना उचित होगा। तीन वर्ष से अधिक उम्र वाले बाँसों के उपचार के विषय में, काष्ठ-परिरक्षण शाखा की प्रयोगशाला में परीक्षण चल रहे हैं। आशा है कि निकट भविष्य में इसका भी समाधान प्राप्त हो जायगा। तब तक यही उचित होगा कि अधिक उम्र वाले बाँसों को फाड़कर और उनका वायु-संशोषण करके ही उन्हें निपीड क्रिया से शोधित किया जाय।

काष्ठ-खम्भों का वल्क, उपचार के पश्चात् उतारा जाता है। बाँसों की टहनियाँ साफ कर उन्हें समूचा या फाड़कर रख दिया जाता है। प्रयोग करने के पूर्व कम से कम ३ या ४ सप्ताह तक छादित स्थान के अन्दर इनका वायु-संशोषण करना आवश्यक होता है।

इस प्रकार के उपचार-संयन्त्र सुवाह्य होते हैं और इधर उधर, विशेष कर पर्वतीय स्थानों में, ले जाने के लिए सुगम होते हैं। जंगल के निकटवर्ती स्थानों में इस प्रकार के संयन्त्रों की स्थापना करना और उपचार-कार्य समाप्त हो जाने पर, आसपास के कार्य-क्षेत्र में उनका स्थान-परिवर्तन वहाँ सरलता से किया जा सकता है जहाँ हरे काष्ठ प्राप्य हो सकें। बाँसों के इस प्रकार के साधन-संयन्त्र ग्रामीण सामुदायिक विकास योजना केन्द्रों में स्थापित करना लाभप्रद होगा। वहाँ पर उपचार किये गये हरे काष्ठ व बाँसों का उपयोग गृह और अन्य निर्माणकार्यों के लिए मितव्ययी सिद्ध हो सकता है। इस कार्य में अधिक पूँजी की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने पाँच बाँसों या एक बड़े काष्ठ-खम्भे (बल्ली) के उपचार के लिए लगभग १०० रुपये में एक साधित्र बनाया है। यह मृदु-इस्पात चादर का बना एक प्रबल संयन्त्र है।

(छ) तापन और शीतन,[1] खुले कुण्ड में

इस रीति से काष्ठ-उपचार खुली टंकियों में किया जाता है। अतः इसको उष्ण और शीत खुली टंकी विधा भी कहते हैं। इस विधा का सिद्धान्त है कि यदि संशोधित काष्ठ को खुली टंकी में रखे हुए क्रियोजोट तैल में डुबोकर गरम किया जाय, तो काष्ठ-कोशा में समावृत वायु फैलने लगती है, और साथ ही काष्ठ की आर्द्रता भी वाष्प में परिणत होकर बाहर निकलने लगती है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि तैल उबल रहा हो। पर वास्तव में उतने ताप पर क्रियोजोट

1 Heating and cooling in open tank.

नहीं उबल सकता। कुछ देर तक गरम करने के पश्चात् यदि वही डुबोया काष्ठ तैल सहित ठंडा किया जाय, तो काष्ठ में से फैलकर निकली हवा और जल-वाष्प के स्थान पर शून्यक बन जाता है, जिसके फलस्वरूप वायुमण्डलीय दबाव द्वारा तैल, काष्ठ की कोशाओं के अन्दर व्याप्त हो जाता है। काष्ठ में तैल अथवा परिरक्षी का प्रचूषण और व्यापन, काष्ठ की जाति, आर्द्रता, परिमाण, तापनकाल, शीतन-तापक्रम और परिरक्षी के आलगत्व[1] अर्थात् गाढ़ेपन पर निर्भर रहता है। यद्यपि कुछ सरंध्र काष्ठों में तापन के समय कुछ परिरक्षी प्रचूषण भी हो जाता है, पर मुख्यत: शीतन काल में ही परिरक्षी-प्रचूषण और प्रवेशन होता है। काष्ठ के तापन और शीतन कराने की कई रीतियाँ हैं। एक रीति उसी टंकी में गरम और उसी में ठंडा करने की है, जिसमें लगभग २४ घंटे लग जाते हैं और इतने समय में केवल एक ही काष्ठ-प्रभार का उपचार करना सम्भव होता है। कहीं-कहीं यह प्रथा है कि तापन एक कुंड में और शीतन दूसरे ऐसे कुंड में किया जाता है, जिसमें ठंडा परिरक्षी रखा हुआ हो। इसमें गरम किये हुए काष्ठ को तुरन्त ही शीत परिरक्षी में डुबोना पड़ता है, जिससे कि स्थानान्तरण काल में काष्ठ-कोशा में वायु-प्रवेश होने का अवकाश न मिले। यदि इसमें कुछ विलम्ब होगा तो परिरक्षी उचित मात्रा में प्रविष्ट न हो सकेगा। कहीं गरम परिरक्षी को कुंड से तुरन्त निकालकर उसकी जगह ठंडा परिरक्षी भर दिया जाता है और कहीं काष्ठ को भट्ठियों में गरम कर तुरन्त ही ठंडे परिरक्षी के कुंड में डुबोया जाता है। जो भी क्रिया की जाय, इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि तापन के पश्चात् शीतन-काल में काष्ठ यथासम्भव परिरक्षी से समावृत रहे। यदि ऐसा न किया गया तो संतोषप्रद परिणाम नहीं प्राप्त होंगे।

इस विधि से तैल और जल-विलयन रूपी परिरक्षी प्रयुक्त किये जा सकते हैं, पर बहुधा यह विधि क्रियोजोट और इन्धन तैल के मिश्रण से उपचार करने के लिए उपयुक्त है, क्योंकि तैल का यह मिश्रण बिना उद्वाष्पन हुए अधिक ताप तक गरम किया जा सकता है और जल-विलयन की अपेक्षा कम आपेक्षिक ताप होने के कारण शीघ्रता से गरम हो सकता है। जल-विलयन को गरम करने से भाप बनने का भय रहता है। लगातार गरम करने से जल-विलयन में परिरक्षी का संकेन्द्रण परिवर्तित होता रहता है और रासायनिक क्रिया द्वारा तलछट बनने की आशंका भी बनी रहती

1 Viscosity, श्यानता।

है। तैलीय परिरक्षी (क्रियोजोट और इन्धन तैल) के ५०:५० मिश्रण को ९५° सेन्टीग्रेड से लेकर १००° सेन्टीग्रेड तक गरम किया जाता है, और इसी तापक्रम को शीतनपूर्व, कुछ घंटों तक स्थिर रखना पड़ता है। तैल का शीत तापक्रम ३५° सेन्टीग्रेड से नीचे नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे कम तापक्रम पर तैल में वर्तमान ठोस पदार्थों के जमने की आशंका रहती है। जल-विलयन परिरक्षी को ८०° सेन्टीग्रेड से ऊपर गरम करना उचित नहीं है, उसको वायुमंडल ताप (यदि ५° सेन्टीग्रेड से कम न हो) तक भी ठंडा किया जा सकता है। उपचारकाल में काष्ठ को परिरक्षी-द्रव में बाँधकर या उस पर भार देकर डुबाये रखना अनिवार्य है।

इस विधि से उपचार करने की अवधि काष्ठ-प्रजाति, परिमाण और आर्द्रता पर निर्भर रहती है। सामान्य प्रकार से निर्माण-काष्ठों, स्लीपरों और बल्लियों के उपचार में, एक ही कुंड प्रयोग करने पर, लगभग २४ घंटे लगते हैं, जिसमें ४ से लेकर ६ घंटे तक तापन-क्रिया में और शेष समय (रात्रि भर) शीतन-क्रिया में लगता है। प्रति दिन एक ही उपचार-प्रभार किया जा सकता है। यदि तापन और शीतन पृथक्-पृथक् कुंडों में किये जायँ, तो प्रति दिन तीन पारी (रात और दिन) काम करने से कम से कम तीन उपचार-प्रभार किये जा सकते हैं। इस विधि से परिरक्षी-प्रचूषण का नियन्त्रण करने में कठिनाई पड़ती है, पर यदि संयन्त्र-चालक दक्षतापूर्वक कार्य करे और उसे पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो तो यथावत् प्रचूषण कराने में सफलता हो सकती है। परिरक्षी का अधिक मात्रा में प्रचूषण होने पर काष्ठ-भार का थोड़े समय तक पुनः तापन करने से प्रचूषण की अभीष्ट मात्रा प्राप्त हो सकती है।

इस विधि से रसकाष्ठ में परिरक्षी-प्रवेश संपूर्णतया हो जाता है, और कुछ ऐसे काष्ठों के सारकाष्ठ में भी परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है जिनके रन्ध्र खुले हों। खम्भों (विशेष कर बाड़-खम्भों) के लिए यह विधा अति उपयोगी है। इसमें अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं पड़ती और परिरक्षण कार्य करना भी जटिल नहीं होता।

चित्र ५७ में वन-अनुसन्धान शाला में स्थापित एक तापन-शीतन द्वारा उपचार करने का अछादित कुंड (खुली टंकी) दिखलाया गया है। वाष्पित्र[1] से वाष्प प्राप्त होने की सुविधा मौजूद होने की वजह से इस टंकी में वाष्प द्वारा गरमी पहुँचाने

1 Boiler.

के नल हैं। जहाँ ऐसा न हो वहाँ टंकी के नीचे एक सिरे से लम्बी नाली बनाकर अग्नि से गरम किया जा सकता है। नाली के दूसरी ओर एक चिमनी बनाना इस लिए आवश्यक है, जिससे कि हवा आती-जाती रहे और अग्नि प्रज्वलित रहे। जितनी मात्रा में काष्ठ का उपचार करना हो उसी के अनुसार यह कुंड छोटा या बड़ा बनाना चाहिए। एक प्रकार की साधारण टंकी ४५ गैलन वाले गोल ड्रम को लम्बाई में बीचों-बीच से काटकर और सिरे के टुकड़ों को काट और जोड़कर सन्धान ('वैल्ड') करके बनायी जा सकती है। इसमें तापन के लिए
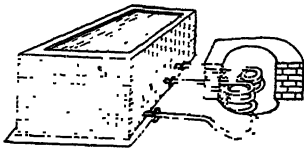
चित्र ५८—(ऊपर) ड्रमों को काटने से बनाया गया कुंड।

(नीचे) सीमेंट कंक्रीट का बना, अप्रत्यक्ष रूप से गरम किया जानेवाला कुंड।
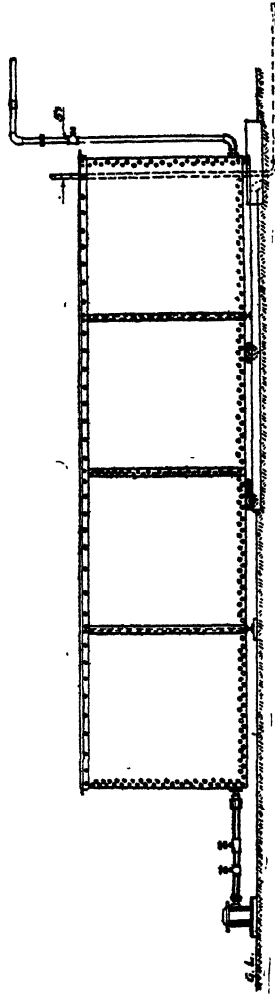
चित्र ५७—वन-अनुसंधान शाला में आयताकार अछादित कुंड।

प्रत्यक्ष अग्नि का प्रयोग किया जा सकता है। सीमेंट-कंक्रीट के भी इस प्रकार के कुंड बनाये जा सकते हैं, परंतु उनको सीधे अग्नि से गरम करने पर फटने का भय

रहता है, अतः इन टंकियों में तापन-क्रिया अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है। इसके लिए टंकी के नीचे से निकास-नली बाहर निकाल कर और चक्राकार मोड़कर फिर ऊपर मिला दी जाती है। बाहर चक्राकार नलों द्वारा गरम करने का काम सीधे अग्नि से किया जा सकता है। ठंडा तैल भारी होने पर चक्राकार नलों में आ जाता है और तत्पश्चात् गर्मी से हलका होकर ऊपरी नल से पुनः कुंड में चला जाता है। इस प्रकार वहन-क्रिया से कुंड का संपूर्ण तैल गरम हो जाता है।
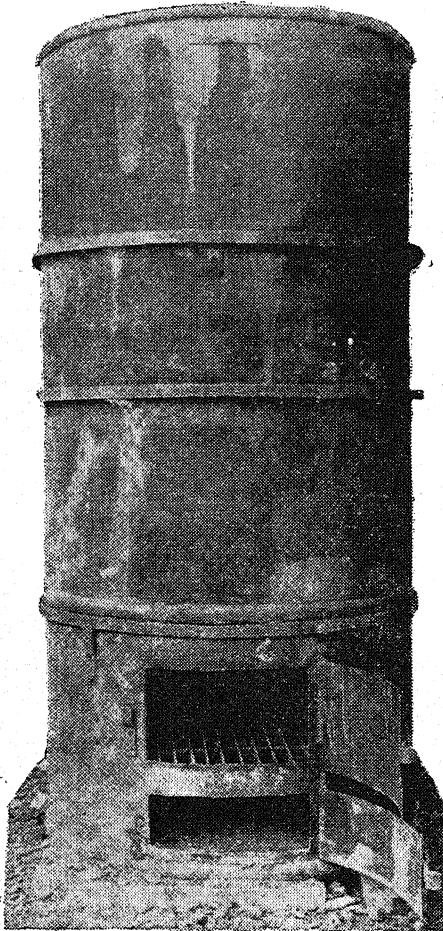
चित्र ५९–खंभ मुण्ड उपचार के लिए ड्रम टंकी।

इसी प्रकार की एक और साधारणविधि खम्भों के मुंड-छोर ('बट') के उपचार के लिए है। इसमें उपचार-कुंड एक बड़े गोल ड्रम के ऊपरी भाग को काटकर बनाया जाता है। खम्भ के मुंड-छोर भाग का, जो भूमि में गाड़ा जाता है, उष्ण-शीत विधा से शोधन किया जाता है और अन्य ऊपरी भाग उदार गरम तैल के लेपन से गरम किये जाते हैं। चित्र ५९ में ऐसी टंकी का प्रदर्शन किया गया है।

तापन और शीतन की उपचार गति, इन अछादित कुंडों में कुछ संशोधन करके बढ़ायी जा सकती है। वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून ने एक खुली टंकी में लोहे की

एक चादर का ढक्कन अलग से बनाकर टंकी को दृढ़ता से बन्द करने का उपाय किया है। इस रीति से टंकी को छादित करने के पश्चात्, उस पर मन्द शून्यक (५०.८ सेन्टीमीटर या २० इंच) और वातिक दबाव (१.४ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर या २० पौंड प्रति वर्ग इंच) पम्प द्वारा दिया जा सकता है। उपचार के लिए काष्ठ-प्रभार को तैल में गरम कर और उस पर मन्द शून्यक और फिर वातिक दबाव दिया जाता है। इस क्रिया से उपचार-अवधि कम की जा सकती है और परिरक्षी भी काष्ठ के अन्दर समान रूप से व्याप्त हो सकता है। आयताकार होने पर ऐसा संयन्त्र स्तरकाष्ठ ('प्लाइवुड') और चौड़े तख्तों के उपचार के लिए उपयुक्त होता है। इसका प्रदर्शन चित्र ६० में किया गया है।
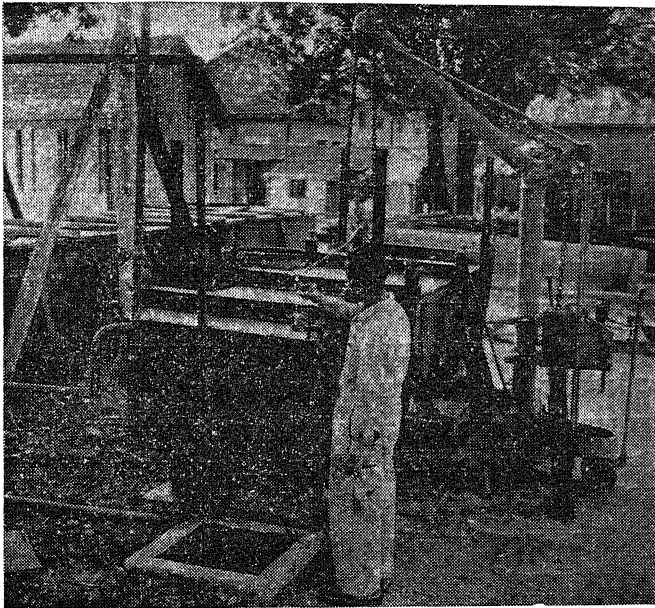
चित्र ६०—मन्द शून्यक और निपीड तापन-शीतन कुंड।

देहरादून स्थित वन-अनुसन्धान शाला के परीक्षण-क्षेत्रों में क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०) मिश्रण से तापन और शीतन प्रक्रिया द्वारा उपचारित कई जाति के काष्ठ-खम्भ लगभग १८ वर्ष सेवा-काल के बाद अब भी अच्छी दशा में हैं।

लगभग ३० वर्ष पूर्व लगाये हुए उपचारित बाड़-खम्भ तो अब भी सेवा-कार्य में लगे हुए हैं।

२ निपीड विधियाँ (प्रशर प्रोसेसेज[1])

निपीड विधियाँ काष्ठ-उपचार की सर्वोत्तम विधाएँ हैं। निपीड-विधा में बन्द लोहरम्भ में काष्ठ का उपचार किया जाता है। निपीड द्वारा उपचारित काष्ठ का यही मतलब है कि परिरक्षी द्वारा काष्ठ का उपचार लोह-रम्भों में निपीड क्रिया से किया गया है। लोह-रम्भ में उपचार करने से कई लाभ हैं। सर्वप्रथम लाभ तो यह है कि काष्ठ में परिरक्षी का प्रचूषण अधिक मात्रा में और प्रवेशन समानता से तथा अधिक गहराई तक हो सकता है, जिसके फलस्वरूप काष्ठ में अत्यन्त प्रभाव-कारी आक्रमण-रोधी गुण आ जाते हैं। संयन्त्रों की सहायता से परिरक्षी-प्रचूषण का आवश्यकतानुसार नियन्त्रण किया जा सकता है। विभिन्न सेवा-कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न मात्रा में परिरक्षी की आवश्यकता होती है और उसी के अनुसार काष्ठ में प्रचूषण कराने से परिरक्षी का मितोपयोग किया जा सकता है। यद्यपि निपीड क्रिया से सामान्यतः संशोधित काष्ठ का ही उपचार किया जाता है, पर विशेष रीतियों से हरे काष्ठ का भी उपचार कर सकते हैं, और बन्द रम्भ में वाष्पीकरण अथवा क्रियोजोटीकरण से काष्ठ के आन्तरिक भाग में काष्ठ-नाशक जीवाणु प्रवेश कर जाने पर उनका भी हनन हो जाता है, जिससे बाद में अन्दर ही अन्दर काष्ठ-अपक्षय की आशंका नहीं रहती। निपीड-क्रिया से उपचार-काल में बहुत बचत हो जाती है और अधिक बड़ी मात्रा में काष्ठ का उपचार किया जा सकता है। अतः वाणिज्य की दृष्टि से निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ-उपचार का बड़ा महत्त्व है। जितने भी काष्ठ के स्लीपर उपचारित किये जाते हैं उनका शोधन प्रायः निपीड-क्रिया से ही होता है। बिजली व तार के काष्ठ-खम्भों का भी इसी प्रकार उपचार किया जाता है। निपीड-क्रिया में केवल यही असुविधा है कि काष्ठों को विशेष केन्द्रों में स्थित निपीड संयन्त्रों तक लाने और उपचार-पश्चात् प्रयोग किये जाने वाले स्थानों तक ले जाने में, उपचार-व्यय के अतिरिक्त भाड़ा भी लगता है। उपचार-क्रिया के लिए निपुण कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता पड़ती है।

निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ का उपचार, पक्के लोह-रम्भों[2] में किया जाता है। ये रम्भ इस्पात की मोटी चादरों से बनाये जाते हैं। इनका व्यास ९ फुट (२.७

1 Pressure Processes. 2 Cylinders.

मीटर) तक भी होता है और लम्बाई १५० फुट (४५·७ मीटर) तक होती है। ये रम्भ २५० पौंड प्रति वर्ग इंच अर्थात् १७·६ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टी-मीटर तक का दबाव सहन कर सकते हैं। इनके अन्दर रेल-पटरियाँ भी लगी
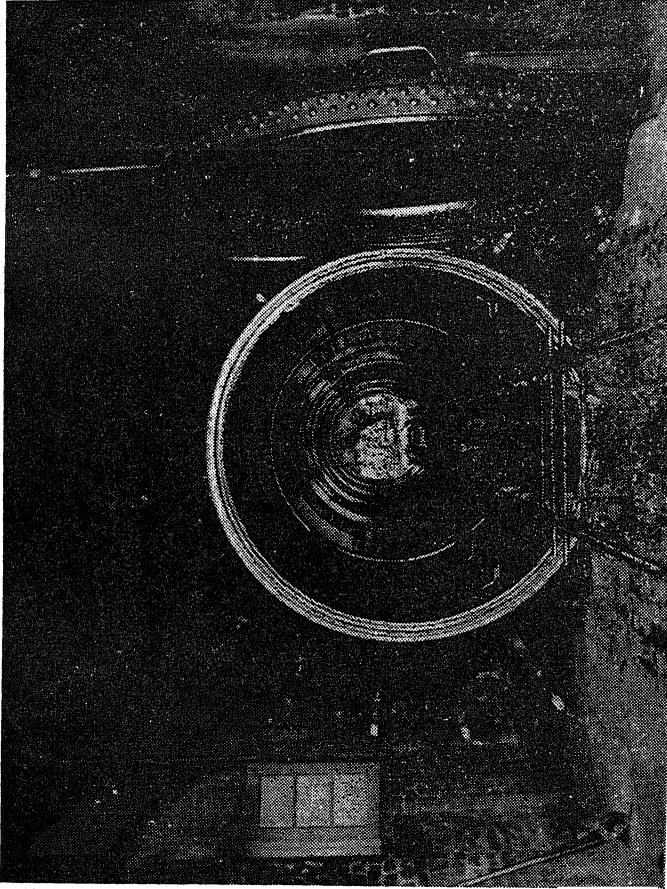
चित्र ६१—धिल्वाँ में स्थापित निपीड-उपचार-यन्त्र।

रहती हैं जिनके द्वारा रम्भ के बाहर और भीतर काष्ठ-प्रभार आसानी से ले जाया व लाया जा सके। पटरियों के नीचे तैलीय परिरक्षी को गरम करने के लिए, वाष्प-नल ('स्टीम पाइप्स्') भी लगे रहते हैं। रम्भ के एक या दोनों सिरों पर उसे दृढ़ता

से बन्द करने और खोलने के लिए द्वार लगे रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य मशीनें, पम्प, कुंड, नल इत्यादि होती हैं, जिनके द्वारा निपीड-क्रिया की जाती है। इनकी विशिष्टियों का सविस्तर वर्णन आगे दिया गया है।

रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए भारत की उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान में स्थित एक निपीड संयन्त्र और उत्तर-पूर्वीय रेलवे के क्लटरबकगंज (बरेली) में स्थापित दूसरा संयन्त्र क्रमशः चित्र ६१, और ६२ में दर्शाये गये हैं।

यद्यपि काष्ठ-उपचार की निपीड-क्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं, तथापि काष्ठ-प्रभार को ट्रौलियों में भर कर रम्भ के अन्दर डालना एवं रम्भ-द्वार को दृढ़ता से
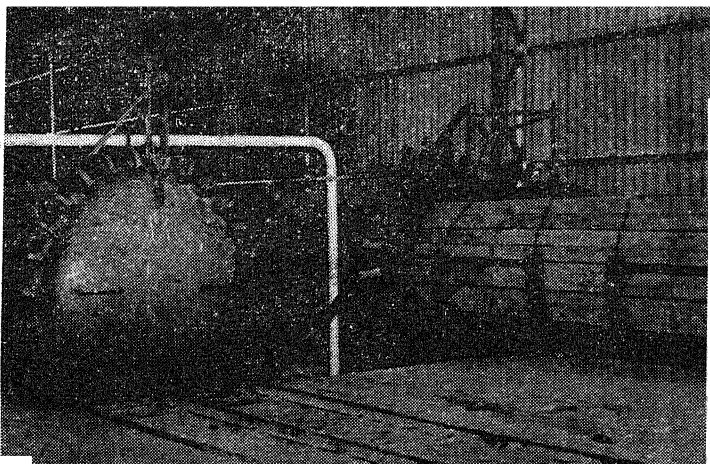
चित्र ६२—**क्लटरबक गंज (बरेली) में स्थापित निपीड उपचार यन्त्र।**

बन्द करना और उपचार पश्चात् द्वार खोल कर बाहर निकालना, इत्यादि कार्य-प्रणाली प्रायः सभी में एक सी होती है। चित्र ६३, ६४, ६५, ६६ में स्लीपरों को उपचारार्थ ले जाया जाना, रम्भ में प्रवेशन, रम्भ का बन्द करना और उपचार पश्चात् खोला जाना दर्शाया गया है।

निपीड-उपचार विधाएँ मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त हैं। इनमें एक तो पूर्णकोशा ('फुल सेल') विधा, और दूसरी रिक्त-कोशा ('एम्टी सेल') विधा है। समु-

चित्र ६६—उपचार के पश्चात् रंभ खोलना, पृ० २१२।
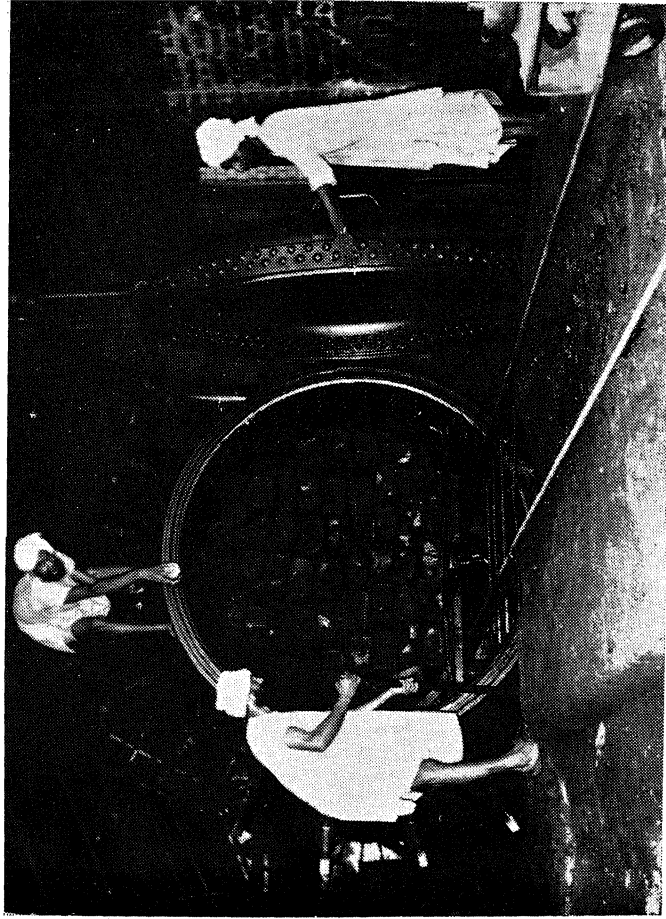
चितोपचार प्रक्रिया ('कन्डीशनिंग प्रोसेस्')[1], निपीड विधा से पूर्व की जाती है, यह संयुक्त वाष्पीकरण एवं बोल्टन नाम से प्रसिद्ध है। पूर्ण और रिक्त कोशा के
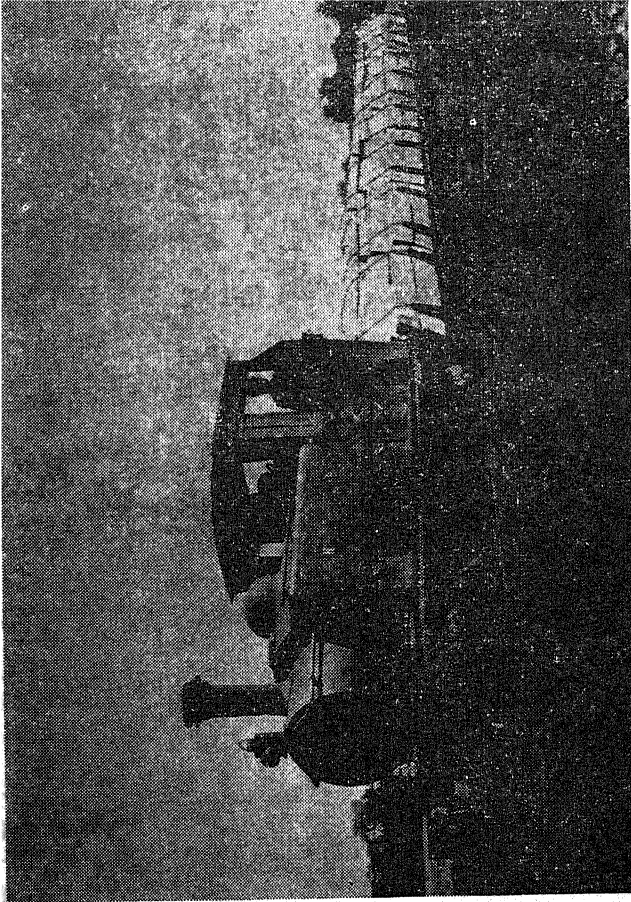
चित्र ६३—उपचारार्थ स्लीपरों का ले जाया जाना।

अन्तर्गत इसका वर्गीकरण किया जा सकता है। इन विधियों की कार्य-प्रणाली का सविस्तर वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है।

1 Conditioning Process.

(क) पूर्ण-कोशा ('फुलसेल')[1] विधा

पूर्ण-कोशा नाम से ही सूचित होता है कि इस विधि में काष्ठ की कोशाएँ परिरक्षी से संपूर्णतया भरी रहती हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यही है कि निपीड-क्रिया
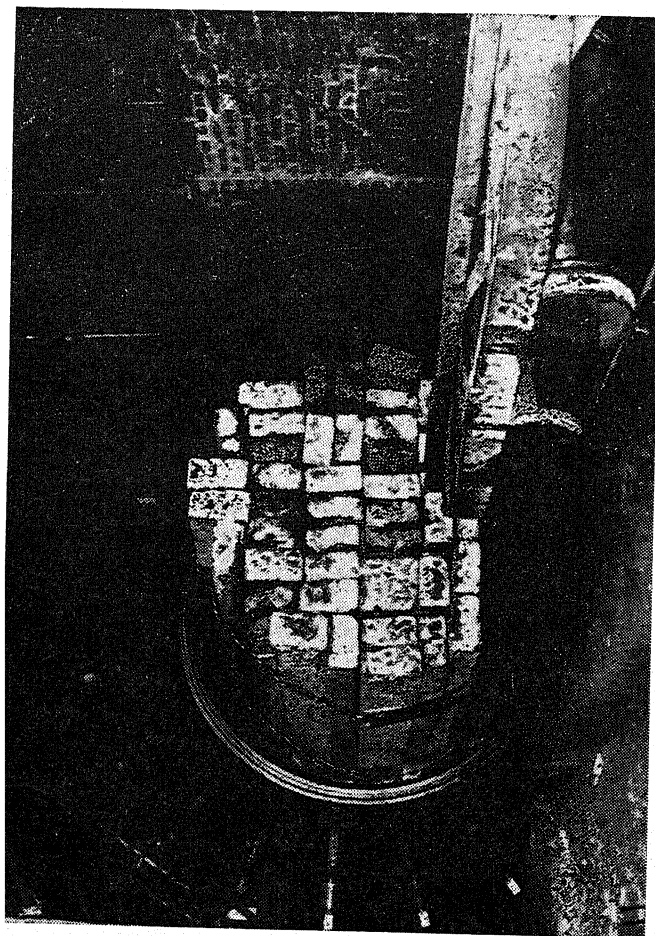
चित्र ६४—रंभ के अंदर प्रवेशन।

द्वारा परिरक्षी का काष्ठ के अन्दर अधिकतम मात्रा में प्रवेश कराया जाय। इसके

1 Full Cell.

फलस्वरूप काष्ठ का जितना भी भाग परिरक्षी से व्याप्त होगा, उसमें उतना ही अधिक परिरक्षी संकेन्द्रण रहेगा।
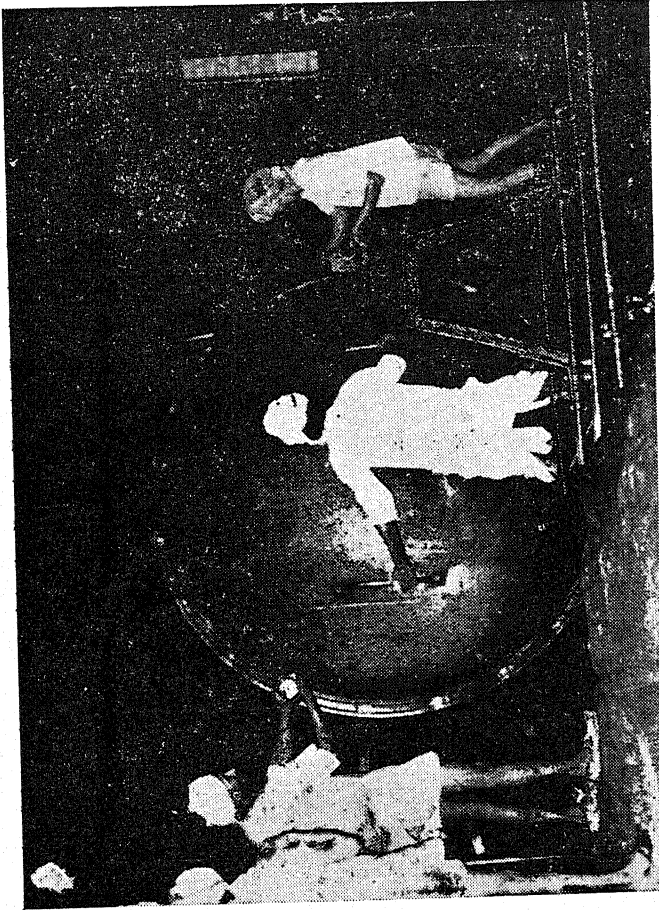
चित्र ६५—रंभ का बंद करना।

पूर्णकोशा विधि का एकस्वीकरण जौन बैथल ने इंग्लैंड में सन् १८३८ में कराया। इस विधा का मुख्य उद्देश्य बन्द रम्भ में निपीड-क्रिया द्वारा काष्ठ को टार-तैल पिलाना था। तभी से क्रियोजोट तैल रूपी परिरक्षी के पूर्णकोशा विधि से उपचार करने की प्रक्रिया को बैथल विधि भी कहते हैं। वहाँ उसी वर्ष विलियम

बैनैट ने भी जिंक क्लोराइड विलयन का इसी विधि से काष्ठ-उपचार करने की विधि का एकस्वीकरण किया और तभी से यह बर्नेट-विधा अथवा बर्नेटाइजिंग नाम से प्रख्यात है। परिरक्षियों के अनुसार इन विधियों का जो भी नाम रखा जाय, पूर्णकोशा विधा की प्रणाली निम्न प्रकार है।

काष्ठ-प्रभार को उपचार-रम्भ में बन्द करने के उपरान्त, यन्त्र (पम्प) द्वारा प्रारम्भिक शून्यक दिया जाता है। जितना भी अधिक माप का शून्यक यथासम्भव हो सके उतना बनाये रखते हैं। शून्यक का अधिकतम माप उस स्थान की समुद्रतल से ऊंचाई पर निर्भर होता है। यह अधिकतम शून्यक माप, पर्याप्त समय अर्थात् आधा घंटे से लेकर १ या २ घंटे तक धारण किया जाता है। शून्यक का प्रयोजन काष्ठ की कोशाओं से यथासंभव वायु को निकाल देना है। तब शीघ्र ही, शून्यक को बिना समाप्त किये ही, रंभ में परिरक्षी-प्रवेश कराया जाता है। इस अवसर पर शून्यक पम्प को चलते ही रहने देते हैं। जब रम्भ परिरक्षी से पूर्णतया भर जाता है तो फिर एक निपीड पम्प द्वारा, जो परिरक्षी को पात्र से खींच कर अनावर्तीकपाट ('नौनरिटर्न वाल्व') द्वारा रम्भ में फैंकता है। रंभ में १८० पौंड प्रति वर्ग इंच (अथवा १२.७ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक परिरक्षी-दबाव दिया जाता है। इस दबाव-माप को उपयुक्त समय (१ या २ घंटे) तक धारण करते हैं। उसके पश्चात् जब यथार्थ मात्रा में माप-यन्त्रों से सूचित होने पर परिरक्षी प्रचूषण हो जाय, तो पम्प बन्द कर दिया जाता है। तब रम्भ को रिक्त कर देते हैं और तत्पश्चात् १५ या २० मिनट तक रम्भ में मन्द शून्यक कर देने पर उपचार-अवधि समाप्त कर दी जाती है। अन्तिम शून्यक क्रिया का उद्देश्य काष्ठ की सतह से शेष परिरक्षी को निरर्थक होने से बचाना है। रम्भ तब खोला जाता है और उपचारित काष्ठ को बाहर निकाल लेते हैं।

क्रियोजोट-इन्धन तैल के मिश्रण का प्रयोग करते समय आदि से अन्त तक तैल को ९०° सेन्टीग्रेड से ९८° सेन्टीग्रेड तक गरम रखना चाहिए, पर जल-विलयन रूपी परिरक्षी का प्रयोग वायुमंडलीय ताप पर ठंडे में ही किया जाता है।

(ख) रिक्त-कोशा (एम्पटी सेल) विधा

रिक्त कोशा का उद्देश्य यह है कि काष्ठ-उपचार में न्यूनतम परिरक्षी प्रचूषण से अधिकतम परिरक्षी-प्रवेशन प्राप्त हो। इस विधा में काष्ठ-कोशाओं में समावृत वायु रहने दी जाती है, यहाँ तक कि जब कम प्रचूषण कराना हो तो समावृत्त वायु

के ऊपर प्रारम्भिक वातिक दबाव भी दिया जाता है, जिससे निपीड-क्रिया के उपरान्त कोशा में समावृत्त वायु फैलकर परिरक्षी को अधिक मात्रा में बाहर की ओर निकालने में सहायक हो और साथ ही साथ कोशाभित्ति के ऊपर परिरक्षी का पर्याप्त मात्रा में लेपन भी हो सके। इस विधा में निपीड-क्रिया पर्यन्त सकल ('ग्रौस') प्रचूषण तो अधिक होता है, पर निपीड-क्रिया उपरान्त वास्तविक ('नेट्') प्रचूषण कम रह जाता है। यही कारण है कि न्यूनतम प्रचूषण द्वारा भी अधिक गहराई तक परिरक्षी व्याप्त हो जाता है। यह विधा उन काष्ठों के लिए उपयुक्त है जिनमें खुले व बड़े रन्ध्र हों अथवा जिनमें रसकाष्ठ का परिमाण अधिक हो। अतः इन काष्ठों के कोशा-कोष्ठों में आवश्यकता से अधिक परिरक्षी संचय करना निरर्थक रहता है, पर परिरक्षी उस मात्रा में अवश्यमेव होना चाहिए, जितना कि काष्ठ को सेवा-अवधि तक सुरक्षित रखने के लिए पर्याप्त हो। रिक्त-कोशा विधा में दो मुख्य रीतियाँ हैं, एक तो लौरी विधि और दूसरी रूपिंग विधि। इनकी कार्यप्रणाली निम्न प्रकार से है।

(ख–१) लौरी विधि

इस विधि का एकस्वीकरण सी० बी० लौरी ने अमेरिका में सन् १९०६ में कराया था। लौरी प्रक्रिया के आरम्भ में काष्ठ को रंभ के अन्दर डालकर बन्द कर दिया जाता है। उसके उपरान्त परिरक्षी को रम्भ में भर देते हैं और तब शीघ्र ही उसमें द्रव-निपीड-पम्प द्वारा परिरक्षी-दबाव क्रिया की जाती है। दबाव का माप परिरक्षी-प्रचूषण कराने की मात्रा, काष्ठजाति, आर्द्रता, परिमाण इत्यादि पर निर्भर रहता है, पर सामान्यतया यह दबाव १८० पौंड प्रति वर्ग इंच (१२.७ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक का १ अथवा २ घंटे तक दिया जाता है। दबाव-काल तभी समाप्त किया जाता है जब परिरक्षी-कुंड की संतल-रेखा से यह संकेत मिल जाय कि पर्याप्त मात्रा में परिरक्षी प्रचूषित हो चुका है। तत्पश्चात् रम्भ में से परिरक्षी को बाहर निकाल लेते हैं और काष्ठ-प्रभार में मन्द शून्यक देने के पश्चात् क्रिया समाप्त कर दी जाती है।

जैसा कि पूर्ण कोशा के वर्णन में बताया गया है, तैलीय परिरक्षी को सर्वदा गरम (९० सैन्टीग्रेड से ऊपर) करके प्रयोग में लाया जाता है और जलविलयन परिरक्षी का प्रयोग सामान्य वायुमण्डलिक तापक्रम पर ही होता है।

लौरी विधि को एक ओर तो पूर्ण कोशा विधि तथा दूसरी ओर आगे वर्णन की जानेवाली रूपिंग विधि की मध्यवर्तिनी विधि होने के कारण परिरक्षी-प्रचूषण कराने की दृष्टि से माध्य विधि कहा जा सकता है।

(ख–२) रूपिंग विधि

रूपिंग[1] विधि का एकस्वीकरण जर्मनी के मैक्स् रूपिंग ने सन् १९०२ में कराया था। काष्ठ को रम्भ में बन्द कर देने के पश्चात् उस पर वायु-संपीडक ('एयर कम्प्रेसर') द्वारा वातिक[2] दबाव दिया जाता है। दबाव माप ४० से लेकर ६० पौंड प्रति वर्ग इंच (२.८ से ४.२ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक दिया जाता है और उसको लगभग आधा घंटा धारण करते हैं। इससे काष्ठ-कोशा में हवा बलात् प्रविष्ट होती है। तत्पश्चात् वायु का दबाव बिना कम किये रम्भ में परिरक्षी भरा जाता है। यह भरने का कार्य या तो विशेष शक्तिशाली पम्प द्वारा होता है, जो वातिक दबाव के प्रति परिरक्षी को रम्भ में प्रवेश कराकर रम्भ को भर सके, या ऊँचाई पर स्थित समान आयतन की टंकी में रखे हुए परिरक्षी द्वारा, जिस पर कि उतना ही वातिक दबाव साथ-साथ दिया गया हो जिससे परिरक्षी ऊँचाई पर रहने से शीघ्र ही रम्भ में भर जाय और उसका स्थान रम्भ की हवा ग्रहण कर ले। तब निपीड-पम्प द्वारा द्रव-दबाव १८० पौंड प्रति वर्ग इंच (१२.७ किलोग्राम/वर्ग सैन्टीमीटर) तक बढ़ाया जाता है। इसको उतने काल तक धारण रखते हैं जब तक कि पर्याप्त मात्रा में सकल परिरक्षी प्रचूषण का संकेत मापयन्त्रों द्वारा न मिले। सामान्य प्रकार से यह काल १ या २ घंटे का होता है। अभीष्ट परिरक्षी-प्रचूषण प्राप्त होने पर निपीड-क्रिया समाप्त कर दी जाती है और तब परिरक्षी को निकाल लेने के पश्चात् अन्य क्रियाओं की तरह अन्त में थोड़े समय के लिए मन्द शून्यक दिया जाता है।

इस विधि में निपीड क्रिया के समाप्त होने पर, अन्य क्रियाओं की अपेक्षा परिरक्षी अधिक परिमाण में काष्ठकोशा-कोष्ठों से बाहर निकल आता है, क्योंकि जो हवा बलात् काष्ठ-कोशा में भरी गयी है वह परिरक्षी को ढकेलकर बाहर निकाल देती है। अतः सकल प्रचूषण का भार ५० या ६० प्रतिशत कम हो जाता है, जिसके कारण वास्तविक प्रचूषण कम ही रह जाता है और परिरक्षी की अधिक परिमाण में पुनः प्राप्ति हो जाने के कारण भारी बचत हो जाती है, पर परिरक्षी-प्रवेशन सीमा में कोई कमी नहीं होती। परिरक्षी प्रयोग दृष्टि से यह विधि मितव्ययी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तैलीय परिरक्षी का प्रयोग गरम रूप में और जल-विलयन परिरक्षी का प्रयोग ठंडे रूप में करना चाहिए।

1. Rueping. 2. Pneumatic, वायव्य।

भारत की उत्तरी रेलवे के धिलवाँ नामक स्थान के निपीड-क्रियोजोटीकरण संयन्त्र में चीड़ के स्लीपरों का उपचार रूपिंग विधि से होता है। चीड़ ऐसा काष्ठ है जिसमें सरलता से परिरक्षी-व्यापन किया जा सकता है, पर इसका रसकाष्ठ, सार-काष्ठ की अपेक्षा अधिक परिरक्षी प्रचूषण करता है। चीड़ के स्लीपरों का, जिनमें रसकाष्ठ और सारकाष्ठ दोनों सम्मिलित थे, उपचार रूपिंग विधि अपनाने के पूर्व एक दुष्कर कार्य था, क्योंकि रस-काष्ठ स्वयं ही संपूर्ण परिरक्षी चूस लेता था और सारकाष्ठ में अत्यन्त कम परिरक्षी व्याप्त होता था, अतएव रेलवे अधिकारियों ने चीड़ के स्लीपरों में रसकाष्ठ की विद्यमानता पर नियन्त्रण लगा दिया। पर वन अन-सन्धान शाला की सलाह से इन स्लीपरों का उपचार रूपिंग विधि से किया जाने लगा। इसमें सफलता प्राप्त हुई और चीड़ के स्लीपरों में रसकाष्ठ की विद्यमानता पर से नियन्त्रण हटा लिया गया, जिससे क्रियोजोटीकृत चीड़ स्लीपर कम खर्चीला हो गया है। तभी सन् १९२८ से इसके उपचारार्थ रूपिंग विधि प्रयोग की जाने लगी है। फ़र, देवदार, कैल इत्यादि परिरक्षी-व्यापन-रोधी काष्ठों के लिए पूर्णकोशा विधि प्रयोग करते हैं। चित्र ६७ में पूर्णकोशा और रिक्तकोशा विधियों द्वारा काष्ठ-कोशाओं में परिरक्षी व्यापन का अन्तर रेखाचित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

(ग) संयुक्त वाष्पीकरण एवं बोल्टन विधि

वाष्पीकरण एवं बोल्टन विधि का प्रयोग हरे काष्ठों के उपचार के लिए किया जाता है। यदि हरे काष्ठों को उष्ण और नम स्थानों में वायु-संशोषण काल में कवक
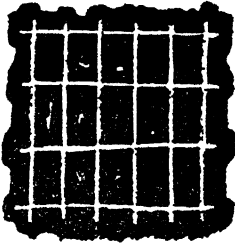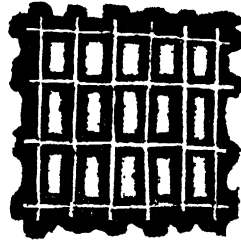
चित्र ६७—पूर्णकोशा और रिक्तकोशा में भेद।

के कारण क्षति पहुँचने की संभावना हो तो उनका शीघ्र ही उपचार करना आवश्यक हो जाता है। जिस सिद्धान्त पर यह विधि आधारित है, वह यह है कि यदि हरा काष्ठ

रम्भ में डालकर वाष्प अथवा तैल माध्यम में गरम किया जाय और उसके उपरान्त शून्यक में रखा जाय, तो हरे काष्ठ की आर्द्रता कम तापक्रम पर भी वाष्प द्वारा उड़ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि २५ इंच (६२.८ सैन्टीमीटर) पारे का शून्यक हो तो पानी १३५° फारनहाइट, अथवा ५७.२° सैन्टीग्रेड तापक्रम पर ही उबलने लगता है। इस विधि की कार्य-प्रणाली इस प्रकार है।

हरे काष्ठ प्रभार को रम्भ में बन्द करने के उपरान्त, कार्यरत वाष्प रम्भ में प्राय: २० पौंड प्रति वर्ग इंच अर्थात् १.४ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर के दबाव पर प्रविष्ट की जाती है, और इसको ३ या ४ घंटे तक चालू रखते हैं। रम्भ में जो कुछ पानी जमने के कारण एकत्रित हो जाता है उसे निकास-नल द्वारा बाहर निकालते रहते हैं। तत्पश्चात् रम्भ में शून्यक प्राय: एक घंटे तक दिया जाता है। ऐसा करने से गरम हरे काष्ठ में से आर्द्रता वाष्प में परिणत होकर निकलने लगती है। यह क्रिया वाष्पीकरण कहलाती है। शून्यक के पश्चात् गरम क्रियोजोट और इन्धन तैल का मिश्रण, रम्भ को पूर्णतया भरते समय कुछ कम मात्रा में लेते हैं, जिससे काष्ठ तैल में तो डूब जाय, पर रम्भ में तैल उबलने के लिए स्थान रहे। फिर उसको लगभग ९५° सैन्टीग्रेड तापक्रम में ४ या ५ घंटे तक लगातार गरम रखते हैं। रम्भ में तैल के ऊपर पम्प द्वारा शून्यक बनाये रखते हैं। इस क्रिया को शून्याकाधीन उबलन ('बौइलिंग अन्डर वैकुअम्') कहते हैं, जो बोल्टन विधि के नाम से प्रख्यात है। इस क्रिया के फलस्वरूप हरे काष्ठ की आर्द्रता वाष्प में परिणत होकर निकल जाती है और इस वाष्प का घनत्व नापने का यन्त्र प्राप्त होने पर काष्ठ की आर्द्रता कितनी कम हुई यह भी नापा जा सकता है। वाष्पीकरण और बोल्टन प्रक्रिया को पृथक्-पृथक् भी कर सकते हैं, और इसके उपरान्त काष्ठ को पूर्णकोशा या रिक्तकोशा विधाओं में से किसी एक के द्वारा निपीडोपचारित कर सकते हैं।

उत्तर-पूर्वीय रेलवे के नहरकटिया (आसाम) में स्थित स्लीपर-क्रियोजोटीकरण संयन्त्र में वाष्पीकरण एवं बोल्टन विधि से स्लीपरों का उपचार होता है। इसके पूर्व वहाँ पर सामान्य निपीड-उपचार विधियों से संतोषजनक परिणाम नहीं निकले थे, क्योंकि उपचार के पूर्व वायुसंशोषण काल में स्लीपर सड़ जाया करते थे। हौलौंग और हौलौक जाति के स्लीपर अस्थायी होने के कारण आसाम के उष्ण और नम स्थानों म शीघ्र ही सड़ने लग जाते हैं और यदि आरम्भ से ही काष्ठ ऐसी सड़ी दशा में हो तो कोई भी उपचार विधि उसे कार्य-योग्य नहीं बना सकती। वन-अनुसन्धान-शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा में परीक्षण करने के उपरान्त रेलवे अधिकारियों को इस

विधि का आश्रय लेने का आदेश दिया गया था। तब से वहाँ यह विधि कार्य में लायी जाती है और उपचारित स्लीपरों से संतोषजनक परिणाम निकले हैं।

(घ) उच्च निपीड ('हाइ प्रेशर') विधा

बहुत सी काष्ठ जातियाँ ऐसी हैं जिनका उपचार पूर्वोक्त निपीड क्रियाओं से होना असम्भव है। काष्ठ-जातियों से अभिप्राय उनके सारकाष्ठ से ही है, क्योंकि सभी जाति के रसकाष्ठों में परिरक्षी व्याप्त कराये जा सकते हैं।

आस्ट्रेलिया में एक ऐसी ही काष्ठ-प्रजाति, यूकेलिप्टस्, है जिसका उपचार साधारण निपीड क्रिया से करना दुष्कर है। वहाँ परीक्षणों से पता चला है कि उच्च-

चित्र ६८—**वन-अनुसंधानशाला में उच्च निपीड-उपचार-संयन्त्र।**
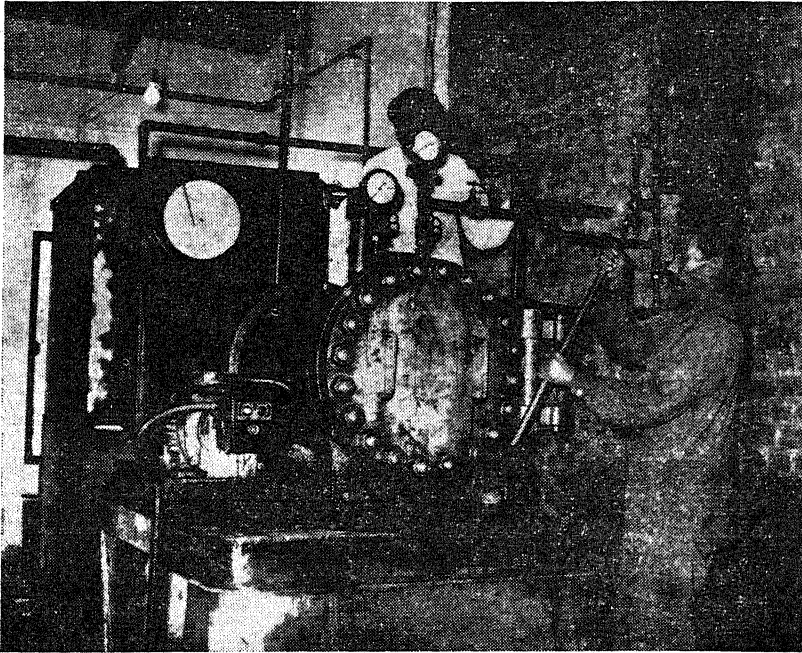
निपीड़ क्रिया द्वारा इस काष्ठ का उपचार करना संभव है। उच्च निपीड, १००० पौंड प्रति वर्ग इंच अर्थात् ७०.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर माप का द्रव-दबाव

है। यह कार्य करने के लिए वहाँ एक विशेष बज्र-लोह रम्भ बनाया गया, और थोड़े ही परिमाण में यूकेलिप्टस् स्लीपरों का उस संयन्त्र में परिरक्षी से उपचार किया गया। स्लीपरों को काटने से पता चला कि परिरक्षी पर्याप्त गहराई तक व्याप्त था जिससे संतोषप्रद परिणाम निकल सकते हैं। उच्च निपीड क्रिया से उपचारित यूकेलिप्टस् काष्ठ के स्लीपर वहाँ सेवा-आयु निश्चयन के लिए रेलवे-मार्गों में लगाये गये हैं।

भारत की वन-अनुसन्धान शाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा में अप्रतिचारी[1] अर्थात् उपचारित न हो सकने वाले काष्ठों पर उच्च-निपीड क्रिया से एक विशेष संयन्त्र में परीक्षण किये गये। कुछ काष्ठों के उपचार में निपीड-क्रिया (७०.३ किलोग्राम/वर्ग सैन्टीमीटर) से सफलता प्राप्त हुई है। अभी यह क्रिया परीक्षणावस्था में ही है, और वास्तविक प्रयोग में आने वाले काष्ठीय आकारों के लिए उचित परिमाण का संयन्त्र न होने के कारण उनका उपचार करना सम्भव नहीं हो सका है। उच्च-निपीड क्रिया में अधिक तापक्रम के संयोग से भी कुछ काष्ठ दब कर विरूप हो गये, पर उचित परिस्थितियों पर नियन्त्रण करने से यही आशा की जाती है कि उच्च-निपीड से बहुत से अप्रतिचारी काष्ठों का उपचार होना सम्भव हो सकता है। चित्र ६८ में उच्च-निपीड-उपचार-संयन्त्र दिखाया गया है।

चित्र ६९ में ऊपर (क), (ख) और (ग) खंडों में वर्णित निपीड-विधियों की कार्य-प्रणाली रेखा-चित्र द्वारा दिखायी गयी है।

३. स्थानीय उपचार 'ट्रीटमेन्ट इन सिट्यू'

कुछ काष्ठ-उपचार विधाएँ ऐसी भी हैं जो वस्तुतः सेवायुक्त काष्ठों के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हुई हैं। यद्यपि इन विधियों से उस सीमा तक संतोषजनक परिणाम नहीं प्राप्त हो सकते जितने सेवाकार्य में लगाने के पूर्व की गयी उन प्रमाप उपचार विधियों से जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है परन्तु स्थानीय उपचार विधियों को कुशलतापूर्वक प्रयोग में लाने से निर्माण-काष्ठ की सेवा-आयु कुछ वर्षों तक बढ़ा दी जा सकती है। इस सेवा-आयु में ५ वर्ष या उससे भी अधिक वृद्धि हो सकती है, और यदि इन्हीं विधियों से पुनः उपचार करते रहें तो कुछ दशाब्दियों तक भी काष्ठ सुरक्षित अवस्था में रखे जा सकते हैं। ये विधियाँ मुख्यतः सेवा-कार्य में लगे हुए बिजली और तार के खड़े काष्ठ-खम्भों के उपचार के लिए विकसित की गयीं हैं। रेलवे-पथ पर लगे हुए काष्ठ-स्लीपरों के उपचार के लिए भी कुछ विधियों का विकास हुआ

1 Refractory.
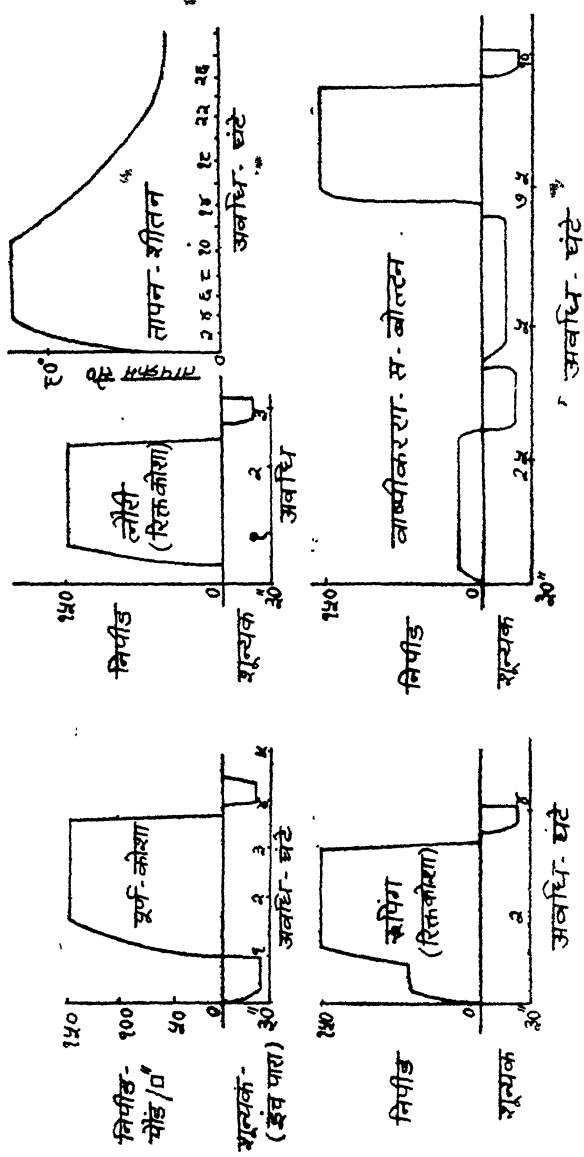
चित्र ६१—रेखाचित्र द्वारा निपीडविधियों का स्पष्टीकरण।

है। इनमें से कई ऐसी विधियाँ भी हैं, जिनका तत्काल प्रयोग करके प्रमाप-विधियों द्वारा उपचारित काष्ठों के सेवाकाल की वृद्धि में असफल रहने पर सेवाआयु में वृद्धि की जा सकती है । ये विधियाँ निम्न लिखित हैं ।

(क) कोब्रा विधि ।

इस विधि से काष्ठ-उपचार करने में एक ऐसे यन्त्र का प्रयोग किया जाता है जिससे परिरक्षी का गाढ़ा लेप काष्ठ के अन्दर, खोखले और छिद्रल लोह दन्त द्वारा
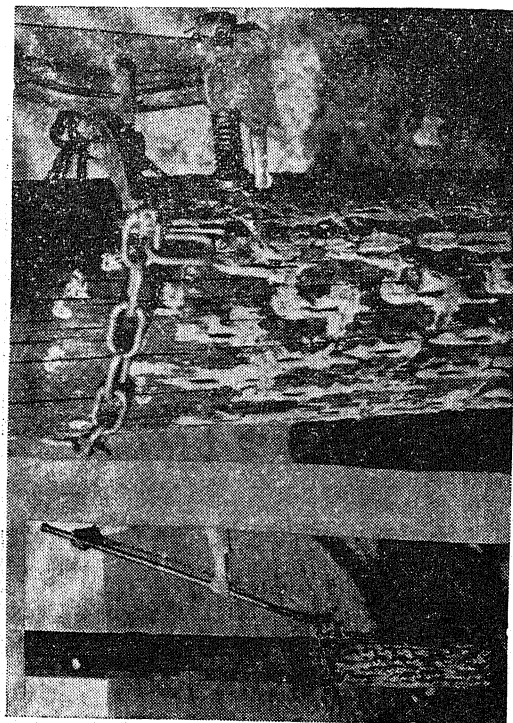
चित्र ७०—कोब्रा विधि से काष्ठ-खंभ का उपचार ।

प्रविष्ट कराया जाता है । अतः इसका नाम कोब्रा (सर्प) विधि पड़ा है । काटने पर सर्पदन्त से जिस प्रकार विष-वमन होता है, उसी प्रकार इस यन्त्र के लोह दन्त से, जिसका सिरा छेनी की तरह होता है, काष्ठ में विष-प्रवेश किया जाता है । यह यन्त्र हथौड़ी

की तरह होता है और इसके मध्य में एक नाल होती है जिसमें परिरक्षी लेप भरा रहता है । जब इसका सिरा काष्ठ में ठोक कर प्रवेश किया जाता है, तो इसके हस्तक पर दबाव देने से परिरक्षी काष्ठ में प्रविष्ट हो जाता है । यदि खड़े काष्ठ-खम्भ का उपचार करना हो तो खम्भ पर भूमितल से लगभग ०.५ मीटर नीचे और ऊपर चारों ओर समीप-समीप स्थानों पर इस यन्त्र द्वारा प्रायः ४ या ५ सैन्टीमीटर गहरे छिद्र किये जाते हैं। कुछ समय पश्चात् छिद्रों में प्रसारण-क्रिया द्वारा जल-विलेय परिरक्षी संपूर्ण पार्श्व भाग में फैल जाता है । बद्ध-जल-विलेय अच्छे प्रकार के परिरक्षी का प्रयोग करने से संतोषप्रद परिणाम निकल सकते हैं। इस प्रकार काष्ठ-खम्भ भूमितल से ऊपर और नीचे परिरक्षी द्वारा परिव्याप्त होकर चिरकाल तक सुरक्षित रह सकते हैं, क्योंकि भूमि के निकट ही काष्ठ-अपक्षय की अनुकूल दशा बनी रहती है, अतः इस स्थान पर परिपूर्ण-उपचार की आवश्यकता रहती है । काष्ठ-खम्भ के बहुत नीचे के तथा ऊपरी भाग में साधारण परिरक्षी-व्याप्ति द्वारा (प्रायः १ सैन्टीमीटर तक गहरी) पर्याप्त अवधि तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है ।

कोब्रा विधि का आविष्कार जर्मनी में सन् १९२० के लगभग हुआ, और ब्रिटेन और जर्मनी में इसका एकस्वीकरण भी हुआ। चित्र ७० में कोब्रा-विधि द्वारा काष्ठ-खम्भ की उपचार-विधि दिखायी गयी है ।

इस विधि का उपयोग पूर्वोपचारित काष्ठ-खम्भों पर भी किया जा सकता है, यदि वे कुछ वर्षों में, निरीक्षण करने पर, अपक्षय की दशा को प्राप्त होते हुए दिखलाई दें । ऐसा करने से उनकी आयु कुछ वर्षों तक और बढ़ा दी जा सकती है ।

(ख) पट्टी बन्धन और मृदा (मिट्टी)—जीवाणुहनन ('बैन्डेजिंग एण्ड सॉइल स्टैरीलाईजेशन') ।

यह क्रिया भी खड़े लगे हुए काष्ठ-खम्भों के, जिनमें कवक और दीमक का आक्रमण आरम्भ हो गया हो, उपचार के लिए उपयुक्त है । काष्ठ-खम्भ के चारों ओर ०.५ मीटर गहराई तक भूमि खोद कर मिट्टी निकाली जाती है। काष्ठ का सड़ा हुआ भाग तब धमदीप ('ब्लोलैम्प') से प्रांगारित किया जाता है । उसके ऊपर भूमि से ०.५ मीटर ऊपर के भाग पर बद्धरूप परिरक्षी का लेप किया जाता है और तत्पश्चात् जल-रोधी कागज की या फैल्ट की पट्टी बाँध दी जाती है। भूमि के रिक्तस्थान में तब मिट्टी भर देते हैं । इस विधि से कुछ समय पश्चात् परिरक्षी प्रसारणक्रिया द्वारा खम्भ के अन्दर तक फैल जाता है और इस प्रकार भूमि के निकट काष्ठखम्भ का आक्राम्य भाग सुरक्षित बन जाता है ।

कभी-कभी काष्ठ-खम्भ के भूमितल से नीचे तथा ऊपर के भाग को प्रांगारित कर के गरम क्रियोज़ोट से उदार मात्रा में लिप्त करने के बाद, मिट्टी में क्रियोज़ोट मिला कर, खोदे हुए गड्ढे को भर देते हैं। कभी-कभी आसपास से खोदी मिट्टी में और भी कई विषैले पदार्थों, पैन्टाक्लोरोफीनौल, सोडियम फ्लोराइड, संखिया, इत्यादि, का मिश्रण किया जाता है और तब वह मिट्टी गढ़े में भर दी जाती है। ऐसा करने से भूमि के निकटवर्ती आक्रमणकर्त्ताओं का नाश हो जाता है और कुछ वर्षों तक काष्ठ सुरक्षित रह सकता है। इस क्रिया का पुनरावर्तन करके काष्ठ-खम्भ से दीर्घकालीन सेवा प्राप्त की जा सकती है।

यूरोप, आस्ट्रेलिया और उत्तरी-अमेरिका में पूर्वोक्त विधियाँ खड़े काष्ठ-खम्भों के उपचार के लिए अधिक प्रचलित हैं। वहाँ कई प्रकार के योग, जो औसमौस् कम्पाउन्ड, 'ऐनैकौन्डा पेस्ट', 'वुलमन पेस्ट', इत्यादि के नाम से प्रसिद्ध ह, प्रयुक्त किये जाते हैं। भारत में एस्क्यू और कुक्रोम का भी जो इसी प्रकार के जल-विलेय बद्ध-रूप परिरक्षी हैं, पट्टी-बन्धन में प्रयोग किया जा सकता है।

यूरोपीय देशों, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में खड़े काष्ठ-खम्भ की अनेकों उपचार विधियों का एकस्वीकरण हुआ है। इन विधियों में से कई प्रख्यात है, जैसे 'फर्नौं स' विधि, औस्मोप्लास्टिक' विधि, 'सैन्डक्रियोजोट-कॉलर' विधि, 'ऐनैकौंन्डा' विधि, 'ऑक्सीएसीटलीन' विधि, 'फिल्टर' विधि, 'सोडियम् फ्लोराइड-क्रियोजोट' विधि, इत्यादि।

(ग) छिद्रण और भरण

जर्मनी में रेलवे-मार्गों पर बिछे रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए छिद्रण और भरण की प्रथा प्रचलित है। काष्ठ-स्लीपरों में रेल-आसन पर सड़न द्वारा अपक्षय होने की दशा बनी रहती है, जिसके कारण रेल को स्लीपरों पर जकड़ कर रखने वाले प्रकील ('स्पाइक्स्') ढीले पड़ जाते हैं। स्लीपरों के इन भागों को सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। इसके लिए स्लीपरों के रेल-आसन के समीपवर्ती भागों के नीचे तिरछे छिद्र बना कर उनमें जल-विलेय परिरक्षी चूर्ण भरने के पश्चात् उनमें डाट लगा कर छिद्र बन्द कर दिया जाता है। आर्द्रता के कारण काष्ठ के निकटवर्ती स्थानों में प्रसारण होकर परिरक्षी फैल जाता है, जिसके फलस्वरूप उन स्थानों पर काष्ठ सुरक्षित रहता है।

स्लीपरों पर बने रेल-प्रकील छिद्रों में पानी भरने के कारण सड़न शुरू हो जाती

है और प्रकील ढीले पड़ जाते हैं । ऐसा होने पर उन छिद्रों का सड़ा हुआ हिस्सा साफ कर दिया जाता है और फिर उसमें दृढ़ता से तीव्र परिरक्षी द्वारा उपचारित काष्ठ का डट्टा ठोक दिया जाता है । डट्टा से प्रसारण द्वारा परिरक्षी फैल कर निकटवर्ती भागों में फैल जाता है । तब उस पर पुनः प्रकील ठोकी जाती है । यूरोप के हॉलैंड देश में इस प्रकार डट्टा विधि से पुनः उपचारित (५ झ) होने पर स्लीपरों की आयु कई वर्षों तक बढ़ गयी है । जर्मनी में इन डट्टों का निर्माण सन् १९३८ में एकस्वित किया गया था ।

छिद्रों के निपीड-क्रिया द्वारा उपचार के लिए एक विशेष प्रकार का साधित्र आविष्कृत हुआ है । यह ग्रीनली अर्गला-छिद्र उपचारक ('ग्रीनली बोल्ट होल ट्रीटर') के नाम से प्रसिद्ध है । इसके दो भाग होते हैं । इसके मुख्य-भाग में पेचवाली शुण्डाकार नली होती है, जिसके सिरे पर निपीड पम्प लगा रहता है और दूसरा भाग बन्द शुण्डाकार पेच होता है । यह साधित्र उन काष्ठों के पुनः उपचारण के लिए उपयोगी है जिनमें सर्वत्र छिद्रण के कारण अनुपचारित काष्ठ प्रगट हो गया हो । इस छिद्र के सिरे पर साधित्र का बन्द भाग कस दिया जाता है, और दूसरे छिद्र पर निपीड-पम्प वाले भाग से परिरक्षी दबाव द्वारा प्रविष्ट कराया जाता है । यदि छिद्र आर-पार न हो, अर्थात् एक ओर बन्द हो, तो पम्प वाले भाग को ही कस कर लगाने से परिरक्षी प्रविष्ट कराया जाता है । ऐसा करने से परिरक्षी काष्ठ-छिद्र के संपूर्ण भाग पर लम्ब दिशा में व्याप्त हो जाता है । चित्र ७१ में निपीड-अर्गला-छिद्र -उपचारक द्वारा काष्ठ-छिद्र का उपचार दिखाया गया है ।
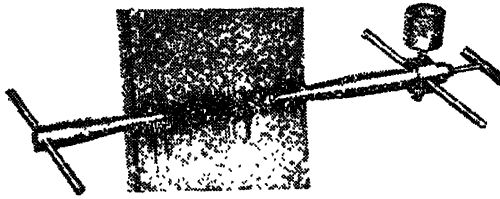
चित्र ७१—**निपीड-अर्गला-छिद्र-उपचारक ।**

इस क्रिया से गृह-निर्माण कार्य में लगे हुए काष्ठ की बल्लियों, स्तम्भ आदि को भी दीमकों के आक्रमण से कुछ सीमा तक सुरक्षित किया जा सकता है । काष्ठ के

उन भागों में जहाँ ऐसी संभावना हो कुछ छोटे छिद्र पास-पास बनाने के उपरान्त क्रियोजोट या अन्य परिरक्षी, इस निपीड-उपचारक द्वारा, इन छिद्रों के मार्ग से काष्ठ में व्याप्त कराया जाता है । इस क्रिया से काष्ठ-तन्तु की लम्ब दिशा में दबाव के अनुपात से परिरक्षी बहुत दूर तक व्याप्त हो सकता है, यहाँ तक कि उचित छिद्र-अन्तरालन द्वारा संपूर्ण काष्ठ-भाग परिरक्षी से शोधित करना संभव हो जाता है ।

अध्याय ४

उपचार-देयता

१. काष्ठ-उपचारिता

यद्यपि परिरक्षोपचार की कार्य-साधकता और अन्तिम मितव्ययता उपचारित काष्ठ की सेवा-आयु पर निर्भर है, परन्तु काष्ठ-उपचार की वर्तमान साधकता को परखने के दो ही साधन हैं। उनमें एक तो काष्ठ में परिरक्षी-प्रचूषण की मात्रा है और दूसरी काष्ठ में परिरक्षी-प्रवेश्यता। इनमें से परिरक्षी-प्रवेश्यता अधिक महत्त्व रखती है, यद्यपि परिरक्षी-व्याप्त भाग में उचित परिरक्षी संकेन्द्रण का होना भी आवश्यक है।

उपचारित काष्ठ से सेवाकार्य में शीघ्र ही असफलता होगी यदि काष्ठ-विपटन के कारण तरेड़े व्यापित भाग को पार कर लें, क्योंकि अनुपचारित काष्ठ के प्रगट हो जाने पर, काष्ठ-नाशक-जीवाणु उन तरेड़ों से प्रविष्ट होकर आन्तरिक भाग को संपूर्णतया नष्ट कर देंगे। संयुक्त-राज्य अमेरिका में बेल टेलीफोन लैबोरेटरीज़ में उपचारित काष्ठ खम्भों के सेवा-आयु के अध्ययन (४अ) से यह परिणाम निकला है कि ९५ प्रतिशत वे काष्ठखम्भ निष्फल रहे हैं जिनमें क्रियोजोट १.८ इंच (४·६ सैन्टीमीटर) से कम प्रविष्ट हुआ था; और उन काष्ठ-खम्भों, में से जिनमें परिरक्षी २·१ इंच (५·३ सैन्टीमीटर) से अधिक प्रविष्ट हुआ था, एक भी निष्फल नहीं रहा। इससे यही परिणाम निकलता है कि परिरक्षी-प्रवेशन का सेवा-कार्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

वैसे तो ऐसे कई कारक हैं जिनका प्रभाव काष्ठ-परिरक्षी-प्रवेशन पर पड़ता है, पर इन प्रतिकारकों को तीन मुख्य वर्गों में विभाजित कर सकते हैं। ये हैं: (१) उपचार से पूर्व काष्ठ की तैयारी (२) उपचार-विधाएँ, और (३) काष्ठ शरीर रचना तथा काष्ठ-जाति। इनमें से पहले तथा दूसरे का वर्णन, भाग ३ के अध्याय २ और ३ में दिया गया है। तीसरे प्रतिकारक के विषय में सविस्तर वर्णन भाग २ के अध्याय १ में दिया है। काष्ठ-शरीर रचना और काष्ठ-जाति का परिरक्षी-प्रवेशन से क्या सम्बन्ध है, यह विषय निम्न प्रकरणों में दिये जाते हैं।

(क) शंकुधारी और उरुपाती काष्ठों की संरचना में भेद

जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, शंकुधारी (कोमल) काष्ठों में वाहिकोशाएँ ('ट्रेकीड्स') होती हैं, जिनके सिरे बन्द होते हैं। एक वाहिकोशा से दूसरी वाहिकोशा में तरल पदार्थ किनारीदार गर्तों से, जो वाहिकोशा के सिरों में ही अधिक संख्या में होते हैं, होकर जाता है । अतः शंकुधारी काष्ठों में परिरक्षी - प्रवेशन अधिकांश में कोशाभित्ति की अतिवेध्यता पर ही निर्भर है। उरुपाती (कठोर) काष्ठों में रस-संवाहन के लिए विशेष प्रकार की कोशाएँ होती हैं । ये कोशाएँ एक दूसरे के ऊपर सिरों से सटी रहती हैं और मिलकर लगातार केश्नाल बनाती हैं जिनको वाहिनी ('वेसल्स्') अथवा रन्ध्र ('पोर्स') कहते हैं। इन वाहिनियों के चारों ओर, तन्तु अथवा रेशे ('फाइबर्स') होते हैं जिनसे काष्ठ को बल मिलता है । अतः इन काष्ठों में परि-रक्षी-प्रवेशन मुख्यतः इन वाहिनियों और रन्ध्रों के खुले अथवा बन्द रहने की दशा पर निर्भर होता है ।

(ख) रसकाष्ठ ('सैपवुड') और सारकाष्ठ ('हार्टवुड')

सामान्यतः हर प्रकार के काष्ठों में, चाहे वे शंकुधारी हों अथवा उरुपाती, रसकाष्ठ और सारकाष्ठ की संरचना में भेद रहने के कारण परिरक्षी-प्रवेशन भिन्न प्रकार से होता है । रस-काष्ठ में, जो वृक्ष की वृद्धि में सक्रिय होता है, परिरक्षी पूर्णतया व्याप्त किया जा सकता है । इसमें केवल फ़र और स्प्रूस जाति के काष्ठ ऐसे हैं जिनके रसकाष्ठ और सारकाष्ठ में कोई प्रत्यक्ष भेद न होने के कारण, रसकाष्ठ में संपूर्ण प्रकार से परिरक्षी व्याप्त होने की पुष्टि नहीं की जा सकती । सारकाष्ठ में परिरक्षी-प्रवेशन उसके कोशा-रन्ध्रों की अवस्था पर निर्भर है । यदि सारकाष्ठ के रन्ध्रों में कठोर पदार्थ, जैसे कि राल, गोंद, गुहारुध, इत्यादि न हों , अर्थात् काष्ठ-रन्ध्र खुले हों, तो परिरक्षी-प्रवेशन में रुकावट नहीं पड़ती । अतः परिरक्षी इनमें सामान्य प्रकार से व्याप्त कराया जा सकता है। इसके विपरीत ऐसे पदार्थों के न्यूनाधिक मात्रा में रन्ध्रों में रहने पर, उसीके अनुसार परिरक्षी-प्रवेशन में बाधा पड़ती है । ऐसे बहुत से उरु-पाती काष्ठ हैं, जैसे कि साल, टीक, इत्यादि, जिनके रन्ध्र गुहारुध से भरे रहते हैं। इनमें किसी भी विधि से परिरक्षी व्याप्त कराना असम्भव है। तरुण-वृक्षों में संपूर्ण रसकाष्ठ ही रहता है, अतः काष्ठ-खम्भ जो छोटे व्यास के होते हैं, पूर्ण प्रकार से परिरक्षी से व्याप्त कराये जा सकते हैं । ऐसे खम्भों का उपचार सरल होता है। अन्य काष्ठों का, जिनमें रसकाष्ठ और सारकाष्ठ सम्मिलित हों, जैसे कि स्लीपर, कड़ियाँ और बड़े

आकार के काष्ठ, सफलतापूर्वक उपचार कराना एक जटिल कार्य होता है। इसमें निपुणता की आवश्यकता पड़ती है।

परिरक्षी के संपूर्ण प्रकार से व्याप्त हो जाने के कारण ही रसकाष्ठ, परिरक्षोपचार के बाद, एक अत्यन्त उपयोगी निर्माण-सामग्री गिना जाता है।

(ग) किनारीदार और साधारण गर्त ('बॉर्डर्ड् एन्ड सिम्पल पिट्स')

कोशाभित्ति का पतला भाग, जिससे एक कोशा से दूसरी कोशा में रस-प्रवाह होता है, गर्त कहलाता है। किनारीदार गर्त में ऊपर और नीचे चाप की तरह छोर लटके रहते हैं। साधारण गर्त में ऐसे किनारे नहीं होते। किनारीदार गर्त वृत्ताकार होते हैं, और उनके मध्य में पतली और सूक्ष्म छिद्रवाली कला ('मैम्ब्रेन')[1] होती है जिसके केन्द्र में मोटी स्थूलक ('टोरस')[2] कला रहती है। **चित्र ७२** (बायीं ओर) में किनारीदार गर्त का रेखाचित्र दिखाया गया है। यह एक तिर्यक्छेद चित्र है जिसमें स्थूलक मध्यवर्ती दशा में स्थित है। इस अवस्था में रसका, एक कोशा से दूसरी कोशा में प्रवाह हो सकता है। चित्र के दाहिने भाग में स्थूलक विस्थापित हो गया है। इसे अंग्रेजी
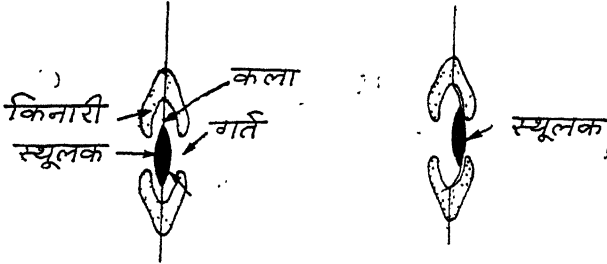
चित्र ७२—**किनारीदार गर्त का रेखाचित्र।**

में 'एस्पिरेटेड्' की दशा कहते हैं। अतः इस दशा में गर्त-छिद्र बन्द हो जाता है। ऐसी अवस्था में रस, एक कोशा से दूसरी कोशा में प्रवेश नहीं कर सकता। स्थूलक का यह विस्थापन सारकाष्ठ की संशोषण-क्रिया में होता है जब उसकी आर्द्रता, तन्तु परिपूर्णक

1 Membrane. 2 Taurus.

नहीं है । सैन, कुसुम इत्यादि भारी काष्ठों का उपचार सरल है, परन्तु फर, स्प्रूस जैसे हल्के काष्ठ अप्रवेश्य हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, परिरक्षी-प्रवेश्यता मुख्यतः काष्ठ-संरचना पर ही निर्भर है ।

तथापि कुछ परिस्थितियों में घनत्व का प्रभाव परिरक्षी-प्रवेशन पर पड़ता ही है । तून-जैसे बलयरन्ध्र ('रिंगपोरस्') काष्ठ में कम घनत्व वाला वसन्तकाष्ठ परिरक्षी से व्याप्त हो जाता है, और अधिक घनत्ववाले ग्रीष्मकाष्ठ में ऐसा नहीं होता ।

यद्यपि घनत्व के आधार पर परिरक्षी-प्रवेशन के बारे में कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती, तो भी इतनी जानकारी तो हो ही जाती है कि संशोधित काष्ठ में अधिक से अधिक कितना परिरक्षी-प्रचूषण कराया जा सकता है। जितना ही घना काष्ठ होगा उतना ही रिक्त स्थान उसमें कम होगा, अतः उतनी ही कम मात्रा में परिरक्षी-प्रचूषण भी होगा ।

(च) परिरक्षी-प्रवेशन की दिशा

काष्ठ में परिरक्षी तीन दिशाओं में प्रविष्ट होता है—(१) लम्ब दिशा में, अर्थात् वृक्ष के तने की लम्बाई की दिशा में, (२) किरण दिशा में, अर्थात् वृक्ष के अर्ध-व्यास की दिशा में, और (३) स्पर्श दिशा में, अर्थात् वृक्ष की परिधि अथवा वार्षिक-वलय दिशा में ।

काष्ठ की लम्ब दिशा में परिरक्षी सरलता से प्रविष्ट हो सकता है, यदि कठोर-काष्ठ में वाहिनियाँ खुली हों तो उसमें, और कोमल काष्ठ में वाहिकोशा की पूरी लम्बाई तक, परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है, परन्तु किरण और स्पर्शीय दिशा में परिरक्षी को थोड़ी ही दूरी तक प्रवेश करने में कई कोशाभित्तियों को पार करना पड़ता है।

शंकुधारी-काष्ठों की चीड़ जाति के काष्ठ में परिरक्षी-प्रवेशन किरण दिशा की ओर अधिक अच्छा रहता है, क्योंकि इस दिशा में किरणों में स्थित लीसा प्रणाली द्वारा परिरक्षी-प्रवेशन में सहायता मिलती है । कहीं-कहीं स्पर्श दिशा में ग्रीष्म-काष्ठ के कुछ भागों में भी परिरक्षी प्रविष्ट हो जाता है, पर अधिकांश शंकुधारी काष्ठ-जातियों में परिरक्षी-प्रवेश अत्यन्त कम रहता है

कठोर अथवा उरुपाती काष्ठों में, जिनकी वाहिनियाँ खुली रहती हैं, अर्थात् गुहा-रुध आदि जैसी कठोर राल से बन्द नहीं रहतीं, परिरक्षी लम्ब दिशा में पार्श्व भाग

1 Vessels.

की अपेक्षा छोर-भाग से ही अधिक प्रविष्ट होता है, और तब इस प्रकार वह संपूर्ण भाग में प्रविष्ट हो जाता है । यदि काष्ठ तिरछा काटा गया हो, तो परिरक्षी पार्श्व भाग में प्रविष्ट हुआ दिखलाई देता है, पर वास्तव में परिरक्षी तिरछे कटी कोशा के लम्ब से ही प्रविष्ट होता है । ऐसी दशा में परिरक्षी समान रूप से व्याप्त नहीं रहता । लम्बाई में छोटे कटे काष्ठ, चाहे उनकी टक्कर कितनी ही चौड़ी हो, पूर्णतया परिरक्षी से व्याप्त हो सकते हैं । इसका कारण परिरक्षी का लम्ब दिशा में प्रविष्ट होना है ।

(छ) काष्ठजाति और बाँसों का परिरक्षी-प्रवेश्यता के अनुसार वर्गीकरण

इस प्रकरण में काष्ठजाति से प्रयोजन उनके सारकाष्ठ से ही है, क्योंकि सभी काष्ठों का रसकाष्ठ पूर्णतया परिरक्षी द्वारा प्रवेश्य हो सकता है । यह वर्गीकरण देहरादून की वन-अनुसन्धान शाला में सामान्य निपीड़ क्रिया द्वारा किये गये उपचार परीक्षणों पर आधारित है । कहीं तो छोटे पैमाने पर परीक्षण किये गये और कहीं बड़े पैमाने पर, किन्तु जितनी भी संख्या में परीक्षण किये गये, प्रत्येक काष्ठ-जाति का परिरक्षी-प्रवेशन सदा समान रहा ।

परिरक्षी-प्रवेशन की दृष्टि से काष्ठ-जातियों का वर्गीकरण (१०क) पाँच मुख्य श्रेणियों में किया गया है । वे इस प्रकार हैं—(१) सरलता से पूर्णतया प्रवेश्य सारकाष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनके सारकाष्ठ का संपूर्ण भाग परिरक्षी-व्याप्य है, (२) असंपूर्ण-प्रवेश्य सारकाष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनको परिरक्षी से व्याप्त कराना तो शक्य है, पर संपूर्ण रूप में नहीं, (३) अंशत: प्रवेश्य सारकाष्ठ, अर्थात् काष्ठ की वे जातियाँ जिनके सारकाष्ठ के कुछ भाग तो परिरक्षी से व्याप्त हो जाते हैं और कुछ नहीं होते, (४) अप्रवेश्य सारकाष्ठ, (पर २ सैन्टीमीटर प्रवेशन के लिए भेदन अनिवार्य है) इनमें काष्ठ की वे जातियाँ हैं जिनके सारकाष्ठ के छोर-भाग से कुछ दूरी तक परिरक्षी-प्रवेश कराना शक्य है, पर पार्श्व भाग से नहीं । अत: भेदन-क्रिया से इनकी अनुप्रस्थ दिशा में चारों ओर लगभग २ सैन्टीमीटर गहराई तक परिरक्षी को समानता से व्याप्त कराया जा सकता है, (५) अति अप्रवेश्य काष्ठ अर्थात् काष्ठ की वे अप्रतिचारी जातियाँ जिनके सारकाष्ठ में भेदन-क्रिया से भी परिरक्षी-प्रवेश असम्भव है । इन काष्ठों में छोर दिशा से भी परिरक्षी-प्रवेश कराना दुष्कर होता है ।

पूर्वोक्त वर्गों के अनुसार भिन्न-भिन्न काष्ठजातियों के पारिभाषिक ('बोटैनिकल') नाम नीचे दिये गये हैं । उनके आगे कोष्ठों में उनके व्यापारिक नाम भी दिये हैं ।

वर्ग १

सरलता से परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ-जातियाँ (सारकाष्ठ)

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
१.	एडाइना कौर्डीफोलिया	हल्दू
२.	एलन्थस् ग्रैन्डिस्	बोरपत
३.	एन्थोसिफेलस कदम्बा	कदम
४.	बील्समीडिया जाति	लेलुक
५.	बौम्बैक्स मैलेबैरिकम	सीमल, सेमर
६.	ब्रूगीरा जाति	
७.	डिलीनिया इन्डीका	डिलीनिया
८.	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	होलौंग
९.	इन्डौस्पर्मम् मैलैसैंस	बकोटा
१०.	इलैक्स जाति	हट्टी केरापा
११.	मैंगीफरा इन्डिका	आम
१२.	टैरौस्पर्मम् जाति	हातीपोइला
१३.	सैपियम् जाति	सिलंग
१४.	सिलीचरा ट्रिजुगा	कुसुम
१५.	स्टर्क्यूलिया एलाटा	पहारी
१६.	टर्मिनेलिया मनी	काला चुगलम
१७.	टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक

वर्ग २

असंपूर्ण परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ जातियाँ (सारकाष्ठ)

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
१.	एकेशिया ऐरेबिका	बबूल
२.	बैम्बूसा जाति	बाँस
३.	बोरैसस् फ्लैबीलीफर	पल्मीरा पाम
४.	कैस्टैनौप्सिस् हिस्ट्रिक्स	इन्डियन चैस्नट्
५.	सिनैमोमम् सैसीडोडैफ्नी	सिनैमौन
६.	क्रटेभा रिलिजियोसा	ब्रुआ
७.	क्रिप्टोकार्या एमिग्डैलीना	

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
८.	कुलूनिया इक्सैल्सा	करानी
९.	साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिंग
१०.	डैन्ड्रोक्लेमस् जाति	बाँस
११.	डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	गुर्जन
१२.	डिप्ट्रोकार्पस टचूबरक्यूलेटस्	इंग
१३.	डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्	गुर्जन
१४.	डिप्ट्रोकार्पस जिलैनिकस्	होरा
१५.	ड्रिपिटस् जाति	जाम
१६.	होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया	कान्जू
१७.	होमैलियम् टोम्यनटोसम्	म्यौकचाउ
१८.	माइकीलिया इक्सैल्सा	चम्प
१९.	मिट्रैजाइना डाइभर्सीफोलिया	बींगा
२०.	मिट्रैजाइना पार्भीफोलिया	कैम
२१.	पाइनस् रौक्सबर्गी	चीड़
२२.	स्टीरियौस्पर्मम् चैलैनौइडीज	
२३.	स्विन्टोनिया फ्लोरीबन्डा	सिभिट
२४.	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन
२५.	टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा
२६.	टर्मिनेलिया प्रोसीरा	सफेद बौम्बवे या बादाम
२७.	टर्मिनेलिया पाइरीफोलिया	लेन
२८.	टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	सैन
२९.	भैटिका लैन्सीफोलिया	मोर्हाल
३०.	वाल्सूरा रोबस्टा	लाली

वर्ग ३

अंशतः परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठजातियाँ (सारकाष्ठ)

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
१.	ऐक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलियस्	मुन्दानी
२.	एल्बीजिया लैबैक्	कोक्को
३.	एल्बीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस्
४.	एनोजाइसस् एक्यूमिनाटा	यौन

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
५.	कैनैरियम् जाति	धूप
६.	कैसुएरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुएरीना
७.	सैड्रीला तूना	तून
८.	सीड्रस देवदारा	देवदार
९.	चुक्रेसिया टेब्यूलैरिस्	चिक्रेसी
१०.	डिप्ट्रोकार्पस ग्रिफिथी	गुर्जन
११.	ड्राबंगा सोनरेटियोइडीज़	लम्पती
१२.	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री
१३.	हैटीरोफ्रेग्मा एडीनोफिलम्	करेन काष्ठ
१४.	फोबी हैनीसियाना	बौन्सम्
१५.	पाइनस् इक्सैल्सा	कैल
१६.	टैरोकार्पस डल्बरजियोइडीज़	अन्डमान पैडोक
१७.	टैरौस्पर्मम् एसरीफोलियम्	मायेंग
१८.	क्वर्कस लैमीलोसा	बक
१९.	क्वर्कस लिनीयाटा	फलट
२०.	शोरिया एसैमिका	मकई
२१.	टर्मिनेलिया चैबुला	माइरोबोलैन काष्ठ
२२.	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल

वर्ग ४

परिरक्षी-अप्रवेश्य काष्ठजातियाँ (सारकाष्ठ), २ सेन्टीमीटर प्रवेशनार्थ भेदन अनिवार्य

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
१.	एबिस पिन्ड्रो	फर
२.	एबिस विबियाना	फर
३.	अर्टोकार्पस चपलासा	चपलाश
४.	क्रिप्टरोनिया पैनीक्यूलाटा	
५.	डिलीनिया पैन्टैजाइना	डिलीनिया
६.	एन्गलहार्डटिया जाति	लीवा
७.	यजीनिया गार्डनरी	जामन
८.	ग्रीविया टिलीफोलिया	धामन

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
९.	लैगस्ट्रोमिया टोम्यनटोसा	लीजा
१०.	पैन्टैस बुर्मैनिका	थिट्का
११.	पीसिया मौरिन्डा	स्प्रूस
१२.	स्कीमा वालीची	चिलौनी

वर्ग ५

अति अप्रवेश्य, पार्श्व और छोर दोनों ओर से ही प्रवेशन-शून्य काष्ठजातियाँ सारकाष्ठ

१.	एग्लैइया इडूलिस्*	मोमालैटकू
२.	एल्बीजिया लूसीडा	
३.	एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस
४.	एल्बीजिया स्टीपुलाटा	
५.	अल्टिजिया इक्सैल्सा	जुटीली
६.	एमूरा जाति	अमारी
७.	एनोजाइसस् लैटीफोलिया	बाक्ली
८.	बसिया लैटीफोलिया	महुआ
९.	बिस्चोफिया जैभैनिका	विशप-काष्ठ
१०.	बौस्वेलिया सिराटा	सलाइ
११.	बुर्सरा सिराटा	इन्डियन रैड पियर
१२.	कैलोफिलम् टोम्यनटोसम्	पून
१३.	कैलोफिलम् वेटियानम्	पून
१४.	क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका	सूजी
१५.	कूप्रसस् टोरूलोसा	साइप्रस
१६.	डाइकौपसि़स् इलिप्टिका	पाली
१७.	डायौस्पीरौस जाति*	केन्डू
१८.	यूकेलिप्टस् ग्लोब्यूलस	
१९.	यूजीनिया जम्बोलाना	जामुन
२०.	यूजीनिया पैरीकौक्स	जामुन
२१.	गैरूगा पिनाटा*	गैरूगा
२२.	हार्डविकिया बिनाटा	अंजन
२३.	होपिया कौर्डीफोलिया	होपिया

क्रमांक	पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम
२४.	होपिया ओडोराटा	थिंगन
२५.	होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया
२६.	कैंइया एसैमिका	सिया नैहारे
२७.	लैंगरस्ट्रोईमिया फ्लोसरैजिनी*	जारूल
२८.	लैंगरस्ट्रोईमिया लैन्सियोलाटा*	बैनटीक
२९.	लैंगरस्ट्रोईमिया पार्वीफ्लोरा	लैन्डी
३०.	लैनिया ग्रेन्डिस	झिंगन
३१.	मैशीलस् गैम्बलाइ	मैशीलस्
३२.	मैन्सोनिया जाति*	
३३.	मैसुवा फैरिया	मैसुवा
३४.	पाराशोरिया स्टीलाटा	थिंगाडू
३५.	फोबी कूपरियाना*	
३६.	प्लैन्चोनिया एन्डेमैनीका	लाल बौम्बवे
३७.	पोइसीलौन्यूरौन इन्डिकम	बलागी
३८.	टैरोकार्पस मैक्रोकार्पस	बर्मा पैडौक
३९.	टैरोकार्पस मार्स्यूपियम*	बीजासाल
४०.	शोरिया औब्टयूचा	थिट्या
४१.	शोरिया रोबस्टा	साल
४२.	शोरिया टैलूरा	
४३.	टैक्टोना ग्रैन्डिस*	टीक
४४.	टर्मिनेलिया बियालाटा	सफेद चुगलम्
४५.	टर्मिनेलिया ओलीभरी	थान
४६.	वैटीरिया इन्डिका	भिलापिनै
४७.	जाइलिया डोलाब्रीफौर्मिस	पिन्काडो
४८.	जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल

* ये काष्ठ-जातियाँ उच्च दबाव पर (५०० से १००० पौंड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् ३५.१ से ७०.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) परिरक्षी-प्रवेश्य हैं (काष्ठ-परिरक्षण शाखा के लघु अनुमाप (Small scale) परीक्षणों के अनुसार)।

(ज) विभिन्न वर्गों के उपचारित काष्ठों के प्रयोग

पूर्वोक्त वर्ग १ के काष्ठों का, जो सरलता से परिरक्षी-प्रवेश्य हैं, परिपूर्ण उपचार के बाद कहीं भी बाहर खुले स्थानों में प्रयोग किया जा सकता है। इस कार्य में यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि इस वर्ग के केवल ऐसे काष्ठों का ही प्रयोग किया जाय, जो बल अथवा शक्ति की दृष्टि से उस कार्य के यान्त्रिक संभार सहन करने में समर्थ हों। परिरक्षी का भी ठीक चुनाव होना चाहिए, तभी संतोषजनक परिणाम निकल सकते हैं।

वर्ग २ के काष्ठों का प्रयोग भी बाहर खुले में रेलवे-स्लीपर, पुल, खम्भ, नाव-निर्माण इत्यादि के कार्यों में परिपूर्ण उपचार पश्चात् कर सकते हैं। खम्भों और भूमि में गाड़े जानेवाले काष्ठों के लिए केवल उन्हीं काष्ठों का प्रयोग किया जाय जो संतोष-जनक रूप से पर्याप्त गहराई तक परिरक्षी से व्याप्त हो सकें, अथवा जिनके चारों ओर उपचारित काष्ठ का मोटा स्तर हो।

वर्ग ३ के काष्ठों को उपचार पश्चात् बाहर खुले में केवल स्लीपरों अथवा छत-पट्ट बनाने के काम में ला सकते हैं। ऐसे काष्ठों का भूमि से सीधा संस्पर्श न होना चाहिए, वे भूमि से उठे हों। ऐसे उपचारित काष्ठों का यदि स्लीपरों के रूप में प्रयोग किया जाय, तो रोड़ी ('बैलस्ट') के मोटे स्तर के ऊपर ही उन्हें रखना उचित होगा। गृह-निर्माण के लिए उपचार-पश्चात् ही ये काष्ठ उपयुक्त होंगे, इन्हें भूमि का स्पर्श न होने देना चाहिए। रेल-डब्बों, लॉरी तथा बसों इत्यादि के काय-निर्माण के लिए ऐसे उपचारित काष्ठ समुपयुक्त होते हैं। अन्दर की छत, कड़ी इत्यादि अन्दर के अन्य निर्माण कार्यों के लिए भी ऐसे काष्ठ उपयुक्त होते हैं।

वर्ग ४ के काष्ठ भेदन के पश्चात् उपचार किये जाने पर ही बाहर खुले में केवल रेलवे-स्लीपरों के कार्य में लाये जा सकते हैं। अन्दर के कार्यों में भी ऐसे उपचारित काष्ठों का प्रयोग किया जा सकता है, यदि उन्हें भूमि के संस्पर्श में न आने दिया जाय।

वर्ग ५ के काष्ठों का उपचार के पश्चात् भी बाहर खुले में कहीं प्रयोग नहीं किया जा सकता। केवल उन्हीं काष्ठों का प्रयोग किया जा सकता है जो स्वभावतः ही स्थायी हों, जैसे साल, टीक, पिनकाडो, इरूल, होपिया इत्यादि। अस्थायी काष्ठों, जैसे संलाइ, विलापिने, मेशीलस्, पून इत्यादि का पेटी और साधारण कार्यों के लिए ही प्रयोग कर सकते हैं। यदि इनको अपेक्षित आकार में ही काटकर उपचारित किया जाय तो अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

प्रत्येक काष्ठ के लिए अनुकूलतम विधि व परिरक्षी-प्रचूषण का विवरण यहाँ विस्तार से देना असम्भव है। काष्ठ-परिरक्षण का मुख्य सिद्धान्त यही है कि परिरक्षी न केवल रसकाष्ठ और अस्थायी सारकाष्ठ में पूर्णतया प्रविष्ट हो, बरन् उपचारित काष्ठ में उसका सम्यक् संकेन्द्रण भी हो। यह परिरक्षी-प्रकार, काष्ठ-जाति, प्रयोग-स्थान, अपेक्षित आयु, जलवायु, कवक और दीमकों की प्रचण्डता तथा अन्य सेवा-परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। सारणी १५ में विविध उपयोगों के लिए विभिन्न काष्ठों की उपयुक्त उपचार विधियाँ, परिरक्षी-प्रकार, परिरक्षी-संकेन्द्रण, परिरक्षी-प्रवेशन और प्रचूषण-मात्रा का विवरण दिया गया है।

२. उपचार कार्य प्रणाली

जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, परिरक्षोपचार की सफलता काष्ठ-शारीर-रचना, काष्ठ-आर्द्रता, काष्ठ-आकार, परिरक्षी-प्रकार और उपचार-विधाओं पर निर्भर रहती है। यद्यपि इन सबकी अनुकूलतम दशाओं को व्यवहार में लाने से सफलता हो सकती है, फिर भी कुछ पृथक् उपचार की परवर्ती दशाएँ ऐसी हैं जिनका विशेष महत्त्व है। ये हैं—(क) विधा-प्रारूप, (ख) परिरक्षी-आचरण, (ग) परिरक्षी-आलगत्व और तापक्रम, तथा (घ) निपीड-प्रचण्डता और अवधि। इन सबका, परिरक्षोपचार अर्थात् परिरक्षी-प्रचूषण और प्रवेशन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह संक्षेप में नीचे दिया गया है।

(क) विधा-प्रारूप

उपचार-विधा का परिरक्षोपचार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। अधिकांश दशाओं में निपीड-विधाएँ सेवा-काल में न केवल काष्ठ को अधिक सुरक्षित रखती हैं, अपितु अन्त में आयु-वृद्धि की दृष्टि से कम खर्चीली भी होती हैं। यदि संकेन्द्रित परिरक्षी का प्रयोग किया जाय तो अनिपीड क्रिया में प्रसारण और बूशरी प्रक्रियाएँ हरे काष्ठ के उपचार के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, परन्तु फिर भी वे उन काष्ठों के उपचार के लिए अपर्याप्त होती हैं, जिन्हें प्रबल आक्रमणकारी अभिकर्त्ताओं का सामना करना पड़ता है, जैसे कि सामुद्रिक खम्भ में, अथवा जहाँ यान्त्रिक विघर्षण अधिक हो, जैसे कि रेलवे-स्लीपरों में। साधारण उपचार के लिए, जहाँ रस-काष्ठ अधिक हो, तापन-शीतन विधि भी उपयुक्त होती है, पर इसमें परिरक्षी-प्रचूषण का नियन्त्रण करना कठिन होता है, और इस कार्य में केवल तैलरूपी परिरक्षी का प्रयोग किया जाना आवश्यक होता है।

सारणी-१५
विविध उपयोगों के लिए विभिन्न काष्ठों की उपचार-प्रणाली

वर्ग-संख्या	उपयोग-स्थान और विविध उपयोग	काष्ठ-प्रकार	अभिस्तावित उपचार-विधियाँ	अभिस्तावित परिरक्षी	प्रचूषण किलोग्राम प्रति घन-मीटर	प्रचूषण पौंड प्रति घनफुट
१	बाहर खुले में, भूमि में, पानी में और समुद्र में लगे अथवा गड़े ।	सभी वर्गों के परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ, अथवा अति-स्थायी काष्ठ (वर्ग* १ और २ के), यदि बाहरी स्तर रसकाष्ठ से ढका हो ।	निपीड विधा; प्रसारण और बशरी प्रक्रिया; तापन-शीतन विधि (प्रवेश्य काष्ठों के लिए) ।			
	(क) रेलवे-स्लीपर			(क) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	८०से१२८	५ से ८
				२. एस्क्यू	८·०	०·५
				३. सैल्क्यूयर या कुक्रोम	८·०	०·५
	(ख) खम्भ			(ख) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०)	१६०	१०
				२. एस्क्यू	१६	१
				३. सैल्क्यूयर या कुक्रोम	१६	१
	(ग) सामुद्रिक खम्भ			(ग) १. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०)	३२०	२०
				२. एस्क्यू	३२	२
				३. कुक्रोम	३२	२

२	बाहर खुले में, पर भूमि के संस्पर्श में नहीं। पुल, छतपट्ट, बुर्ज इत्यादि।	सभी वर्गों के परिरक्षी-प्रवेश्य काष्ठ अथवा स्थायी (वर्ग‡ १, २ और ३ के) काष्ठ।	निपीड, अथवा तापन-शीतन (परिरक्षी-प्रवेशनीय काष्ठों के लिए)।	१. क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०) २. एस्क्यू ३. सैल्क्यूयर या कुक्रोम	४८ से ८० ८·० ८·०	३ से ५ ०·५ ०·५
३	बाहर खुले में, पर भूमि के संस्पर्श में नहीं। उपचार पश्चात् रंग लेप देना अनिवार्य है। बाड़, रेल, ऋतु-पट्ट, कृषि क्षेत्र, गृह, उप-गृह इत्यादि।	तत्रैव	तत्रैव	१. एस्क्यू, सैल्क्यूयर और कुक्रोम। २. पैन्टाक्लोरोफीनौल ३. कौपरनैफ्थीनेट	६·४ ४·८ ४·८ से ६·४	०·४ ०·३ ०·३–०·४
४	अन्दर कार्य के लिए। उपष्कर, छत, दरवाजे, रेलडब्बे, लौरी और बस-काय इत्यादि।	तत्रैव	निपीड और तापन-शीतन विधि अस्थायी काष्ठों के लिए; डूबन, शीकन और लेपन स्थायी काष्ठों के लिए।	१. एस्क्यू, सैल्क्यूयर, कुक्रोम २. क्रोमेटैड जिंक-क्लोराइड ३. जिंक-क्लोराइड ४. कौपरनैफ्थीनेट ५. पैन्टाक्लोरोफीनौल ६. क्रियोजन्ट, सोलिगनम् (गरम) लेपन के लिए ही।	४·८–६·४ १६·०–३२·० १२·०–१६·० ४·० ४·० —	०·३–०·४ १·०–२·० ०·७५–१·० ०·२५ ०·२५ —

वर्ग-संख्या	उपयोग-स्थान और विविध उपयोग	काष्ठ-प्रकार	अभिस्तावित उपचार-विधियाँ	अभिस्तावित परिरक्षी	प्रचूषण किलोग्राम प्रति घन-मीटर	प्रचूषण पौंड प्रति घनफुट
५	बक्सों और पेटियों के लिए।	अल्प-स्थायी काष्ठ (वर्ग* ४ से लेकर ६ तक), विशेषतः प्रवेशनीय काष्ठ।	मन्द-निपीड (२५–५० पौंड / व. इं.), या तापन-शीतन, या डूबन, शीकन और लेपन, अपेक्षित आयु के अनुसार।	१. एस्क्यू ६ प्रतिशत ‡	४·८	०·३
				२. सैल्क्यूयर, कुक्रोम ६ प्रतिशत।	४·८	०·३
				३. क्रोमेटेड जिंकक्लोराइड १२, प्रतिशत।	१६·०	१·०
				४. जिंकक्लोराइड ८ प्रतिशत।	१२·०	०·७५
				५. पैन्टाक्लोरोफीनोल ५ प्रतिशत।	४·०	०·२५
				६. कौपरनैफ्थीनेट १० प्रतिशत।	४·०	०·२५
				७. बोरिक एसिड-बौरेक्स २·५ प्रतिशत (केवल लिक्टस् छिद्रक के प्रति)	—	—

६	नये कटान के छाल-रहित लठ्ठों, तख्तों, बल्लियों के अस्थायी उपचार के लिए।	सभी प्रकार के काष्ठ जिनमें रस-काष्ठ भी सम्मिलित हैं।	डूबन, शीकन और लेपन।	१. एस्क्यू ६ प्रतिशत ‡	—	—
				२. सल्क्यूयर, कुक्रोम ६ प्रतिशत।	—	—
				३. सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट—१ ·० प्रतिशत नील-वर्णक कवक के प्रति।	—	—
					—	—
				४. गैमैक्सेन—१ ·० प्रतिशत छिद्रक कीटों के प्रति।	—	—
				५. डीलिड्रन—पी. सी. पी. १ ·० प्रतिशत—कीट-कवक के प्रति।	—	—

टिप्पणी—

* प्राकृतिक-स्थायित्व के वर्गीकरण के अनुसार (भाग २, अध्याय ३ ·३ देखिए)।

‡ प्रतिशत घोल पानी में, केवल पैन्टाक्लोरोफीनौल और कौपरनैफ्थीनेट, जिनका घोल मृत्तैल में तैयार किया जाता है।

निपीड-विधा में भी विशिष्ट प्रक्रिया का चुनाव, काष्ठ-उपचारिता और उसकी आर्द्रता पर निर्भर है। सरल-प्रवेश्य और शुष्क काष्ठ में रिक्त-कोशा विधि उपयुक्त होती है, क्योंकि इसमें परिरक्षी का प्रतिधारण, निपीड काल में सकल प्रचूषण का ४० प्रतिशत तक होता है, जिसके कारण न्यून परिरक्षी-मात्रा से अधिकाधिक काष्ठ-भाग का उपचारण हो जाता है। यदि काष्ठ अंशतः शुष्क और दुष्प्रवेश्य हो, तो यह विधा उतनी अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। उस दशा में पूर्णकोशा विधा का प्रयोग करना पड़ता है। रूपिंग विधा का प्रयोग अधिक रसकाष्ठ वाले काष्ठों के लिए किया जाता है।

साधन-संयन्त्र के काष्ठ-प्रभार में मिले-जुले अर्थात् प्रवेश्य और दुष्प्रवेश्य काष्ठों को उपचारण के लिए सम्मिलित करना उचित नहीं है। उसी प्रकार विभिन्न आर्द्रता के काष्ठों का भी मिश्रण एक ही उपचार-प्रभार के लिए ठीक नहीं है। संयन्त्र-चालक को भी इसमें निपुण होना चाहिए कि वह निश्चय कर सके कि कौन से काष्ठ एक ही उपचार-प्रभार में सम्मिलित किये जा सकते हैं, जिससे एक ही विधा के प्रयोग करने पर काष्ठ में परिरक्षी-प्रचूषण और प्रवेशन एक समान हो सके। इसके लिए उपचार-विधियों का और काष्ठ के विशेष लक्षणों का पूर्ण तथा पूर्व ज्ञान होना चाहिए।

(ख) परिरक्षी आचरण

परिरक्षी-प्रकार का काष्ठ-उपचारण पर अतिस्पष्ट प्रभाव पड़ता है। बहुधा यह पाया गया है कि तैल-रूपी परिरक्षी की अपेक्षा जल-विलयन परिरक्षी का काष्ठ में अधिक प्रचूषण और प्रवेशन होता है। इसी प्रकार सीधे क्रियोजोट का प्रवेश भी क्रियोजोट-इन्धन-तैल मिश्रण की अपेक्षा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त इन्धन-तैल की जैसे-जैसे इस मिश्रण में अधिकता होती है, वैसे ही वैसे प्रचूषण और प्रवेशन में भी कमी हो जाती है। यद्यपि यह बात सदा सत्य नहीं होती, क्योंकि अन्य बहुत सी परवर्ती दशाओं का भी प्रभाव पड़ता है, तथापि यह भिन्नता प्रथम तो आलगत्व अथवा गाढ़ेपन पर निर्भर होती है और दूसरे, जल-विलयन कोशभित्ति के अवशोषण पर। पर तैल के विषय में ऐसा नहीं हो सकता, विलायक-रूपी परि-रक्षी यदि पतले मृत्तैल में घोल लिये जायँ, तो ये अधिक गहराई तक प्रविष्ट हो जाते हैं।

बहुधा आर्द्रक पदार्थों (वॅटिंग एजेन्ट्स्) का भी उपयोग परिरक्षी-प्रवेशन को बढ़ाने के लिए किया जाता है, पर वाणिज्य सम्बन्धी उपचार के लिए यह उपयुक्त नहीं समझा गया है।
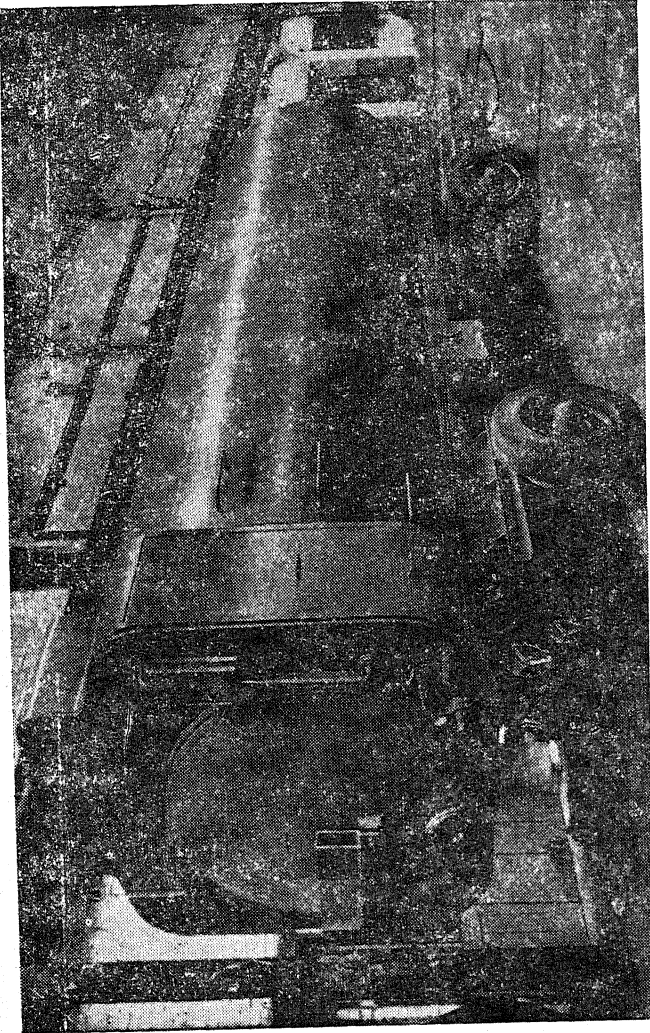
चित्र—७३ बाह्य निपीड उपचार संयन्त्र (कलकत्ते का बना)
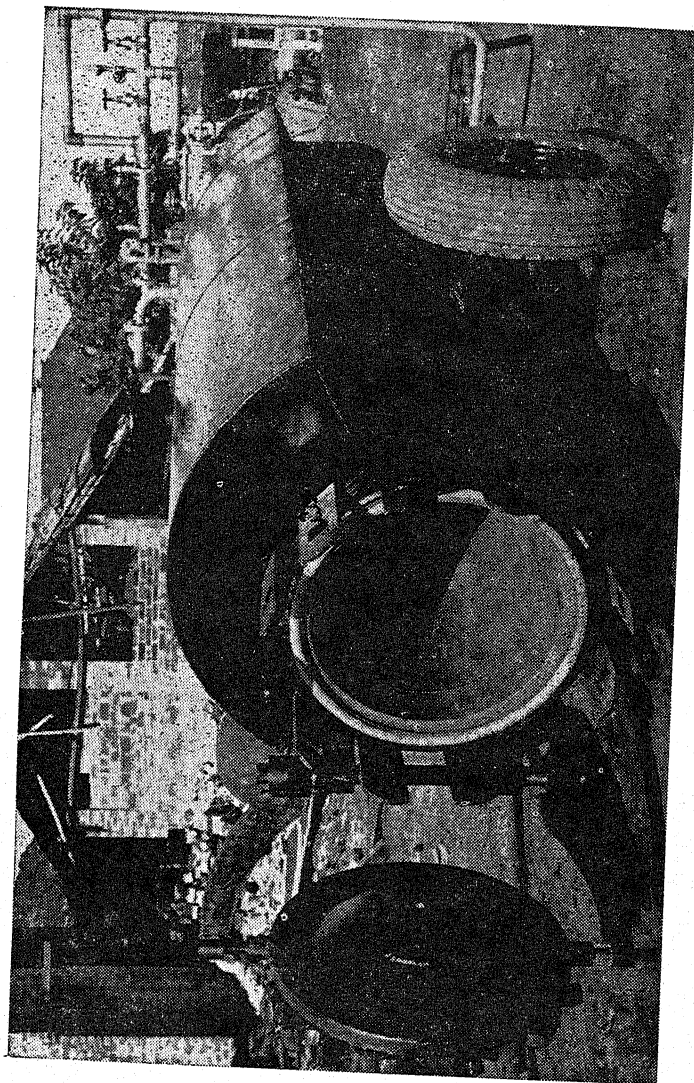
चित्र—७४ बाह्य निपीड उपचार संयन्त्र (जर्मनी का बना)।

(ग) आलगत्व और ताप

ताप का परिरक्षी-विलयन के आलगत्व[1] पर प्रभाव पड़ता है। ज्यों-ज्यों परिरक्षी गरम किया जाता है, उसका आलगत्व कम होता जाता है, जिसके फल-स्वरूप वह काष्ठ में अधिक दूरी तक अन्तःप्रविष्ट हो सकता है। ताप का प्रभाव जल-विलयन की अपेक्षा तैल के आलगत्व पर अधिक पड़ता है। चित्र ७५ में जिंक-क्लोराइड-विलयन, क्रियोजोट, क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०), क्रियोजोट-इन्धन (१०:९०) और केवल इन्धन तैल के आलगत्व पर ताप के प्रभाव के सम्बन्ध में वक्र (४ ट) दिये गये हैं।
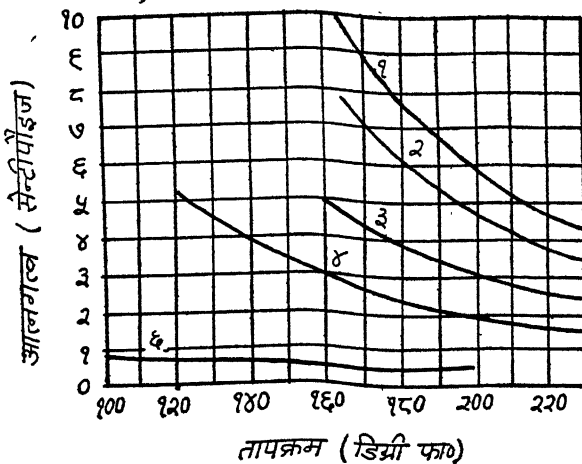
चित्र ७५—**परिरक्षी विलयन, आलगत्व और ताप के सम्बन्ध में वक्र।**

इससे यही सिद्ध होता है कि जिंक-क्लोराइड विलयन के आलगत्व में ताप के बढ़ने से उतना सुस्पष्ट भेद नहीं आता, जितना कि तैलों के आलगत्व में और विशेष कर इन्धन तैल में, जिसके आलगत्व में भारी कमी हो जाती है। यही कारण है कि तैल से उपचार करने में तैल को लगभग ९५° सैन्टीग्रेड तक गरम करना पड़ता है।

1 Viscosity श्यानता।

जल-विलयनरूपी परिरक्षी को इतने उच्च तापक्रम तक गरम नहीं कर सकते, क्योंकि बहुत-से बद्धरूपी परिरक्षी संगठन में इस तापक्रम पर रासायनिक परिवर्तन से तलछट रहने लगती है। केवल जिंक क्लोराइड विलयन में ऐसा नहीं होता और संपरीक्षणों से यही पता चला है कि जिंक-क्लोराइड विलयन से उच्च ताप पर काष्ठ में प्रवेशन, ठंडे विलयन की अपेक्षा अच्छा रहा है।

क्रियोजोट और इन्धन-तैल के मिश्रण के उपचार-परीक्षणों से भी यही सूचना मिलती है कि यह तैल-मिश्रण जितना ही अधिक गरम प्रयोग किया जाय उतना ही प्रचूषण और प्रवेशन अच्छा रहता है, परन्तु गरम करने की भी सीमा है। १००° सेन्टीग्रेड से अधिक गरम तैल प्रयोग करने से लकड़ी में विपटन हो जाती है और उच्च-ताप-निपीड में दबन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, जिसके कारण लकड़ी के आकार में परिवर्तन हो जाता है। गरम तैल से काष्ठ-उपचार-अवधि भी उतनी होनी चाहिए कि काष्ठ का आन्तरिक भाग भी गरम हो जाय और परिरक्षी वहाँ उष्ण अवस्था में ही रहे, तभी प्रवेशन अच्छा रहेगा। काष्ठ में परिरक्षी द्वारा निपीड क्रिया में ऊष्मीकरण अवधि बहुधा दो घंटे से लेकर चार घंटे तक भी होती है। यह सब काष्ठ की जाति, उसकी आर्द्रता, आकार और काष्ठ-ऊष्म-संवाहिता पर निर्भर रहता है।

चीड़ और कैल जैसे लीसा वाले काष्ठ का गरम जल-विलयन से उपचार करने पर लीसा बाह्य सतह पर एकत्रित हो जाता है, जो वाञ्छनीय नहीं है।

(घ) निपीड-प्रचण्डता और अवधि

परिरक्षी-दबाव की प्रचण्डता और उसकी अवधि का भी परिरक्षी प्रचूषण और प्रवेशन पर प्रभाव पड़ता है। काष्ठ-उपचार परीक्षणों से यही पता लगा है कि यदि दबाव या उसकी अवधि में से किसी एक या दोनों की बुद्धि की जाय तो प्रचूषण और प्रवेशन की मात्रा अधिक हो जाती है। दबाव या उसकी अवधि के लिए कोई विशेष नियम निश्चित नहीं किये गये हैं, क्योंकि ये कई प्रतिकारकों पर आश्रित हैं, जैसे कि अभीष्ट प्रचूषण, काष्ठ-उपचारिता, आर्द्रता, ताप इत्यादि। काष्ठ-उपचार प्रक्रिया के प्राप्त अनुभव से ही यह निश्चित किया जाता है। सामान्य नियम यही है कि निपीड-अवधि उतने काल तक रखी जाय जितने में अभीष्ट प्रचूषण प्राप्त हो सके। वाणिज्य-उपचार क्रिया से यही अनुभव प्राप्त हुआ है कि उच्च दबाव पर थोड़ी अवधि तक उपचार करने की अपेक्षा सामान्य दबाव

पर लम्बे काल तक उपचार करने से अधिक सफल परिणाम निकलते हैं, क्योंकि उसमें परिरक्षी को अधिक समय तक ताप में रहने के कारण समानता पूर्वक व्याप्त होने का अवकाश मिल जाता है। यह भी सूचना मिली है कि ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीतकाल में उपचार करने पर अधिक समय की आवश्यकता पड़ती है। उच्च दबाव और न्यून उपचार अवधि में समान प्रवेशन नहीं होता। परिरक्षी दबाव भी इतना प्रचण्ड नहीं होना चाहिए कि उससे काष्ठ को क्षति पहुँचे। काष्ठ की बल-धारण शक्ति के अनुसार ही काष्ठ पर परिरक्षी-दबाव देना उचित है।

वाणिज्य काष्ठ-उपचारण में पूर्णकोशा और लौरी विधा में परिरक्षी-दबाव १५० से १७५ पौंड प्रति वर्ग इंच (१०.५ से १२.३ किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टी-मीटर) पर दिया जाता है, और रूपिंग विधा में, जिसमें पूर्व वातिक-दबाव देते हैं, कभी-कभी २०० पौंड प्रति वर्ग इंच (१४.१ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक भी परिरक्षी-दबाव दिया जाता है।

३. प्रचूषण और प्रवेशन का निर्धारण

(क) प्रचूषण

प्रचूषण[1] तीन प्रकार का होता है। एक तो आदि-प्रचूषण ('इनीशियल एब्सौर्पशन), दूसरा सकल-प्रचूषण ('ग्रौस एब्सौर्पशन') और तीसरा वास्तविक-प्रचूषण ('नेट एब्सौर्पशन')। निपीड-क्रिया के पूर्व जो प्रारम्भिक शून्यक अथवा रम्भ में परिरक्षी-भरण-काल में प्रचूषण होता है, वह आदि-प्रचूषण कहलाता है। तत्पश्चात् निपीड अवधिकाल में जो प्रचूषण होता है वह सकल-प्रचूषण है, अर्थात् अधिकाधिक मात्रा का प्रचूषण सकल-प्रचूषण है। निपीड-क्रिया के उपरान्त दबाव समाप्त होने पर काष्ठ में से परिरक्षी कुछ मात्रा में बाहर निकल आता है, इसे पादप्रहार ('किक्बैक्') कहते हैं। तब अन्तिम शून्यक के पश्चात् जो प्रचूषण रहता है वही वास्तविक प्रचूषण है। सकल-प्रचूषण से पादप्रहार द्वारा निकले परिरक्षी को घटाने से वास्तविक प्रचूषण निकलता है।

आदि-प्रचूषण इतने महत्त्व का नहीं होता जितना कि अन्य दो प्रचूषण। सकल-प्रचूषण से यह संकेत मिलता है कि काष्ठ में परिरक्षी का कितनी गहराई तक प्रवेश हुआ है। रिक्त कोशा-विधा में, विशेष कर रूपिंग विधा में, सकल-प्रचूषण पूर्ण-कोशा

1 Absorption, अवशोषण।

की अपेक्षा अधिक होता है और पाद-प्रहार से भी अधिक मात्रा में परिरक्षी बाहर निकल आता है, जिससे वास्तविक प्रचूषण कम रह जाता है। यही कारण है कि रिक्त-कोशा विधा में थोड़े परिरक्षी-प्रचूषण से अधिकाधिक काष्ठ-भाग परिरक्षी से व्याप्त हो जाता है।

प्रयोगशालाओं के परीक्षणों में परिरक्षी की काष्ठ-व्याप्त मात्रा और प्रवेशन-सीमा ज्ञात करना सरल होता है। प्रचूषण के लिए काष्ठ को आरम्भ में और उपचार पश्चात् तौल लिया जाता है, इस तरह तौल का जो अन्तर है वही वास्तविक प्रचूषण होता है। इस प्रचूषण को काष्ठ के आयतन से भाग देने पर, प्रचूषण प्रति इकाई आयतन पर निश्चित किया जाता है। इसका प्रमाप किलोग्राम प्रति घनमीटर अथवा पौंड प्रति घनफुट होता है। उपचारित काष्ठ में रासायनिक विश्लेषण द्वारा भी परिरक्षी-प्रचूषण ज्ञात कर सकते हैं।

वाणिज्य-काष्ठ-उपचार में साधन-संयन्त्रों से काष्ठ-प्रचूषण विदित किया जा सकता है। इसको सेवा-कुण्ड में उपचार-आरम्भ और अन्तिम काल परिरक्षी-तलमान के अन्तर द्वारा आसानी से निकाला जा सकता है। यह वास्तविक प्रचूषण है, पर निपीड-क्रिया-काल में सेवा-कुण्ड का परिरक्षी-तलमान लेते रहने से सकल प्रचूषण भी ज्ञात कर सकते हैं। यद्यपि परिरक्षी-कुण्ड के ताप की भिन्नता के कारण शुद्ध प्रचूषण का ज्ञात होना कठिन है, पर इसके लिए एक ही ताप पर अंक-परिवर्तन के लिए सूचियाँ बनी रहती हैं, जिससे कि यथार्थ प्रचूषण प्राप्त हो सके। बहुधा वास्तविक प्रचूषण जानने के लिए काष्ठ-प्रभार को ट्रालियों में भरकर उपचार-आरम्भ और उपरान्त एक महातुला में तौल लेते हैं। इसके अन्तर द्वारा वास्तविक प्रचूषण विदित हो जाता है।

(ख) प्रवेशन

प्रयोगशाला में तो प्रवेशन, उपचार-पश्चात् काष्ठ को काटकर या फाड़कर देखने मात्र से ही विदित हो जाता है। काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद अथवा तिर्यक् छेद से पार्श्वभाग प्रवेशन ('साइड पैनीट्रेशन') विदित होता है, और रेशे की दिशा में फाड़ने से छोर-भाग प्रवेशन ('एन्ड पैनीट्रेशन') ज्ञात हो जाता है।

वाणिज्य-काष्ठ-उपचार में ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि काष्ठ को काटने या फाड़ने से काष्ठ निरर्थक हो जाता है। इसके लिए एक विशेष यन्त्र, जिसे संवृद्धि-छिद्रामान ('इन्क्रीमेन्ट बोरर') कहते हैं, प्रयोग किया जाता है। इससे काष्ठ का

एक छोटा-सा डट्टा निकल आता है, जिसके निरीक्षण से काष्ठभाग का परिरक्षी-प्रवेशन ज्ञात हो सकता है। इस प्रकार छिद्रित काष्ठ का उपचारित काष्ठ के डट्टे से फिर भरण किया जाता है। चित्र ७६–७७ में संवृद्धि छिद्रामान दिखाया गया है।

चित्र ७६—**संवृद्धि छिद्रामान (इंक्रीमेंट बोरर)।**

तैलीय परिरक्षी का, जैसे कि क्रियोजोट इत्यादि हैं, प्रवेशन देखने में स्पष्ट होता है, पर जल-विलयन रूपी परिरक्षी को काष्ठ के अन्दर देखना इतना सुस्पष्ट नहीं होता। इसके लिए प्रतिकर्त्ता-रसायन होते हैं, जो परिरक्षी के साथ रासायनिक क्रिया से काष्ठ को अभिरञ्जित कर देते हैं, जिससे कि परिरक्षी की व्यापन-सीमा

सुस्पष्ट हो जाती है। ऐसे रसायनों की सूची सारणी ११ (परिशिष्ट १) में दी गयी है।
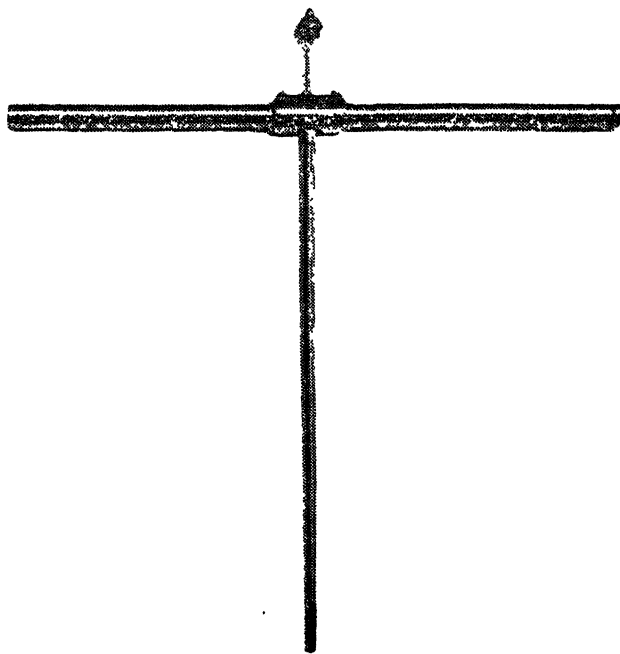
चित्र ७७—संवृद्धि छिद्रामान (इंक्रीमेंट बोरर)

अध्याय ५

काष्ठ-अग्निरोधन

१. काष्ठ का प्राकृतिक अग्निरोधन

काष्ठनाशक जीवाणु के अतिरिक्त काष्ठ को अग्नि से भी पर्याप्त क्षति पहुँचती है। इसका कारण यह है कि काष्ठ में अधिकांश भाग कोषाधु[1] का होता है, और कोषाधु प्रज्ज्वलनशील है। प्राकृतिक दशा में काष्ठ जलने की गति काष्ठ-जाति के अनुसार विभिन्न होती है। यह उसकी संरचना, घनत्व, आर्द्रता, सरन्ध्रता और उसमें प्रवेश्य पदार्थों पर निर्भर है। सारणी १६ (१ ङ) (परिशिष्ट ३) में काष्ठों के प्राकृतिक दशा में उतरते हुए अर्थात् अवरोही क्रमानुसार अग्निरोधी गुणों की सूची दी गयी है। यह निसन्देह सत्य है कि जलने से पहले लकड़ी शुष्क होनी चाहिए; सड़ी हुई लकड़ी, अच्छी लकड़ी की अपेक्षा शीघ्र जल जाती है।

२००° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ को, यदि शुष्क भी हो, जलने में पर्याप्त समय चाहिए। २७५° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ धीरे-धीरे प्रांगारित होने लगता है और तब अंत में जलने लगता है। ४००° सेन्टीग्रेड पर काष्ठ शीघ्रता से जलने लगता है। बहुधा अग्नि में तापक्रम १०००° सेन्टीग्रेड से भी ऊपर पहुँच जाता है। उस तापक्रम पर काष्ठ का प्राकृतिक अग्निरोधी गुण का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और सभी जाति के निर्माण-काष्ठ समान रूप से जलने लगते हैं। इस अवस्था में काष्ठों की मोटाई ही अग्नि का नियन्त्रण-कारक होती है, न कि काष्ठ-जाति। भारी अथवा मोटे काष्ठ, जो निर्माण-रचिति ('मिल कन्सट्रकशन') के नाम से प्रसिद्ध है, अग्नि के प्रति सुरक्षित काष्ठ माने गये हैं। कोई भी काष्ठ जिसकी मोटाई १५ सेन्टीमीटर × १५ सेन्टी-मीटर से अधिक होती है अग्नि के प्रति लोहे से भी अधिक सुरक्षित माना गया है। लोहा या इस्पात अग्नि के तापक्रम पर आसानी से मुड़ जाता है और तब भार के कारण मुड़ जाता है। इसके विपरीत अधिक मोटाई की काष्ठ की बल्लियाँ और खम्भे, जिनका प्रयोग किया जाता है, आग लगने पर शीघ्र ही प्रांगारित हो

1 Cellulose.

जाते हैं। इस प्रकार बाह्य तल पर कोयले का स्तर बनने के कारण काष्ठ की अभि-ज्वाल्यता कम हो जाती है। साथ-साथ गर्मी के कारण काष्ठ की आर्द्रता भी कम हो जाती है। वास्तव में काष्ठ की शक्ति आर्द्रता के कम होने पर बढ़ जाती है। इस प्रकार प्रांगारित होने पर काष्ठ की शक्ति यदि कुछ कम भी हो गयी हो तो उसकी धारण-शक्ति में आर्द्रता की न्यूनता के कारण कोई कमी नहीं पड़ती और काष्ठ-संरचना ज्यों की त्यों बनी रहती है।

२. अग्निरोधन सिद्धान्त व अग्निरोधी रसायन

रासायनिक पदार्थों को, जो अग्नि से काष्ठ की रक्षा करते हैं, तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। वे इस प्रकार हैं—

(क) वे रसायन (रसद्रव्य) जो अत्यन्त जल-चूष हैं, अर्थात् वायु से अधिक मात्रा में आर्द्रता प्रचूषण करनेवाले हैं। ऐसे रसायन अग्निरोधी होते हैं, क्योंकि वे अग्नि से गरम होने पर जल-वाष्प देते हैं, जिसके कारण स्वतः अग्नि बुझ जाती है। इस वर्ग में जिंक क्लोराइड, सोडियम क्लो-राइड इत्यादि लवण हैं।

(ख) वे रसायन जो अग्नि के संस्पर्श में आकर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, नाइट्रोजन, अमोनिया इत्यादि गैसें देते हैं, जो अग्नि को सहारा न देकर बुझाने में समर्थ होती हैं। ऐसे पदार्थ अमोनियम नाइट्रेट, कैलसियम कार्बोनेट, सोडियम बाइकार्बोनेट इत्यादि हैं।

(ग) वे रसायन जो काष्ठ में स्फट् ('किस्टल्') का स्तर बना दें या अग्नि से फूलकर, काष्ठ-रन्ध्रों को बन्द करके उनमें वायु-प्रवेश न होने दें। वायु में ऑक्सिजन रहता है और उसकी अनुपस्थिति में अग्नि प्रज्वलित नहीं हो सकती। ऐसे रसायन सोडियम टैट्राबोरेट, बोरिक अम्ल, सुहागा, मैग्नीशियम फॉस्फेट इत्यादि हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कुछ रसायन हैं जिनके प्रयोग से काष्ठ को अग्निरोधी बनने में सफलता प्राप्त हुई है। ये हैं अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, एलीम्यूनियम सल्फेट, अमोनियम ब्रोमाइड और मौनोमैग्नीशियम फौस्फेट।

यद्यपि पूर्वोक्त रसायन अकेले या मिलकर अग्नि से काष्ठ की रक्षा कर सकते हैं, पर इनका उपयोग केवल भीतर प्रयोग किये जाने वाले काष्ठों के उपचार के लिए ही किया जा सकता है, क्योंकि बाहर ये रसायन वर्षा से धुल जाने के कारण

काष्ठ से अलग हो जाते हैं। जैसे कि जल-विलयन परिरक्षी को बद्ध करने के लिए सोडियम डाइक्रोमेट काम में लाते हैं, उसी प्रकार इन अग्निरोधी रसायनों को भी बद्ध करने के लिए सोडियम डाइक्रोमेट काम में लाया जा सकता है। इन रसायनों की अग्निरोधी कार्य-साधकता के लिए काष्ठ में ३ पौंड से लेकर १० पौंड (शुष्क लवण) प्रति घनफुट, अर्थात् ४८ किलोग्राम से लेकर १६० किलोग्राम (शुष्क लवण) प्रति घनमीटर का प्रचूषण कराना अनिवार्य होता है। यह प्रचूषण काष्ठ-जाति, रसकाष्ठ-मात्रा और अग्निसह राशि पर निर्भर होता है। यदि अग्नि-रोधन के साथ-साथ काष्ठ कीं जैविक नाशकारकों से प्रतिरक्षा करानी हो, तो इन अग्निरोधी संगठनों में उपयुक्त जल-विलयन रूपी परिरक्षी का मिश्रण किया जा सकता है। ऐसा मिश्र[1] अग्नि-रोधी एवं सड़नरोधी अथवा अग्निरोधी-स-परिरक्षी संगठन कहा जाता है।

काष्ठपरिरक्षण-संयुक्त अग्निरोधन कार्य को कम खर्चीला बनाने के लिए काष्ठ को पहले परिरक्षी से १ पौंड प्रति घनफुट, अथवा १६ किलोग्राम प्रति घनमीटर पर प्रचूषण कराने के पश्चात् एक उच्च संकेन्द्रित अग्निरोधी मिश्र से बाह्य स्तर पर प्रचूषण कराना पर्याप्त होगा। अग्नि की क्रिया बाह्य स्तर से ही शुरू होती है और इस प्रकार संपूर्ण काष्ठ अग्नि और जैविक कारकों से सुरक्षित रखा जा सकता है।

देहरादून की वन-अनुसन्धान-शाला ने एक अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र का आविष्कार किया है। यह विशेष कर काष्ठ, बाँस, घास, ताड़ के पत्तों और वस्त्र को जैविक नाश-कर्त्ताओं और अग्नि से सुरक्षित करने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका सूत्र निम्न प्रकार से है।

बोरिक अम्ल	.. ३ भाग तौल में	सोडियम डाइक्रोमेट	.. ६ से ७ भाग तौल में
कॉपर सल्फेट	.. १ ,,	जल ..	.. १०० भाग ,,
जिंक क्लोराइड	.. ५ ,,		

इसमें बोरिक अम्ल और जिंक क्लोराइड कीटों और कवकों से प्रतिरक्षा के सिवा, अग्नि से भी मुख्यतः रक्षा करते हैं। कॉपर सल्फेट केवल कवक और दीमक से ही रक्षा के लिए और सोडियम डाइक्रोमेट इन सब परिरक्षियों को बद्ध करने के लिए डाले गये हैं। इस उपरिलिखित मिश्र से ६०० चीड़ और सैन काष्ठ के स्लीपरों का उपचार उनको अग्निसह एवं परिरक्षित कराने के उद्देश्य से वन-अनुसन्धान-शाला में रेलवे मंत्रालय के अन्तर्गत किया गया है। ऐसे उपचारित स्लीपर पुलों में और रेलवे-इन्जन टिकाने के स्थानों पर लगाये गये हैं। इनके परीक्षण अभी चालू हैं।

1 Composition.

३. अग्निरोधी गुणों को परखने के साधन

रसायनों के अग्निरोधी गुणों के परीक्षण की विधियाँ इस सिद्धान्त पर आधारित हैं कि यदि अनुपचारित काष्ठ को साधारण प्रकार से जलाया जाय तो उसमें क्रमानुसार पहले ज्वाला उठने लगती है, फिर उसका तापक्रम बढ़ जाता है और अन्त में उसका भार कम हो जाता है; यहाँ तक कि कुछ दशाओं में केवल राख ही बनकर रह जाती है। यदि वही काष्ठ उपयुक्त अग्निरोधी रसायनों द्वारा उपचारित किया जाय, तो वह पहले प्रांगारित ही होगा, और यदि उच्च तापक्रम होने पर न्यूनाधिक ज्वाला प्रकट भी होगी, तो वह तत्स्थानीय ही रहेगी तथा अग्नि का स्रोत हटाने पर दहन समाप्त हो जायगा।

पूर्वोक्त तीन लक्षणों पर ही अनुसन्धान-शालाओं ने विभिन्न साधित्रों की अग्निसह गुणों के परीक्षणार्थ कल्पना की है। इनमें से एक अग्नि-नलिका साधित्र अमेरिका और अन्य देशों में प्रचलित है। इसमें कोई १ मीटर लम्बा और २×१ सेन्टीमीटर मोटा काष्ठ-खण्ड, एक तुला के बाहु से लटकी छेद वाली धातु की चादर से बनी नलिका के मध्य में बाँधा जाता है। तब एक प्रमापित गैस द्वारा ज्वलित अग्नि उसके नीचे के छोर भाग से ४ मिनट तक लगायी जाती है। यदि साधारण (अनुपचारित) काष्ठ होगा तो तुरन्त अग्नि संपूर्ण काष्ठ में फैल जायगी। उसके साथ ही साथ ताप भी बढ़ता जायगा और शीघ्र ही काष्ठ, कोयला और राख में परिवर्तित हो जायगा। यदि काष्ठ-खंड का अग्निरोधी उपचार किया गया हो तो अग्निस्रोत को हटाने के पश्चात् काष्ठ-खण्ड प्रज्वलित नहीं होगा, जिसके फलस्वरूप ताप भी अपेक्षाकृत कम ही रहेगा, और अन्त में काष्ठ के भार में कमी, अग्निसह गुण का प्रमाप होगी। इसके मापन के लिए तुला के दूसरे बाहु में एक निर्देशक डंडी होती है जो एक अंकश्रेणी में लगी रहने से भार में कमी सूचित कर देती है। इससे पूर्व-भार से प्रतिशत कमी तुरन्त ज्ञात हो सकती है। वन-अनुसन्धान-शाला देहरादून में इसी सिद्धान्त पर आधारित एक सूक्ष्म साधित्र बनाया गया है, जिसमें छोटे नाप के १०×०.८×०.८ सेन्टीमीटर काष्ठ-खण्ड प्रयुक्त किये गये हैं। तुला के दूसरे बाहु में, भार में प्रतिशत कमी ज्ञात करने के लिए, एक दर्पण का टुकड़ा लगा रहता है, जिससे एक चाप-रूपी अंकश्रेणी पर प्रकाश-किरण का प्रतिबिम्ब पड़ता है। इसके निर्देशन से भार में कमी का निश्चयन किया जा सकता है। यन्त्र में एक छोटा वाति-दाहक अग्नि-स्रोत का कार्य करता है। इस विधि से किये गये परीक्षणों से अग्निसह रसायनों की दक्षता, सारणी १७ में दी गयी है।

अग्निरोधी-क्षमता के मापन के परीक्षणार्थ और भी कई भिन्न-भिन्न प्रकार के साधित्रों की रचना की गयी है। कहीं-कहीं तो पूर्ण अनुपचारित और उपचारित काष्ठ की संरचना को अग्नि से प्रज्वलित करते हैं। चित्र ७८ में ऐसे साधित्र देखिए।

चित्र ७८—अग्निरोधी गुणों के परीक्षणार्थ साधित्र।

४. काष्ठ, बाँस और छादन-घास का उपचार

जैसा कि ऊपर प्रकरण २ में बतलाया गया है, अग्निरोधन कार्य की सफलता के लिए काष्ठ में अग्निरोधी रसायनों की प्रचूषण-मात्रा ४८ किलोग्राम से १६० किलोग्राम प्रति घनमीटर (३ पौंड से १० पौंड प्रति घनफुट) तक होनी चाहिए।

सारणी—१७

वन-अनुसन्धान-शाला में किये गये परीक्षणों में अग्निरोधी रसायनों की दक्षता।

क्रमांक	प्रयुक्त किया गया काष्ठ (जाति)	प्रयुक्त रासायनिक संगठन	प्रचूषण (शुष्क लवण)		उपचार पूर्व अग्निरोधन (अ)	उपचार पश्चात् अग्नि-रोधन (ब)	अग्निरोधी उपचार दक्षता (ब)/(अ)	विशेष-कथन
			पौंड प्रति घ० फु०	किलोग्राम प्रति घ० मी०				
१	चीड़	एमोनियम फौस्फेट (डाइ-बेसिक)	१·२	१९·२	११·०३	८९·२	८·०	अग्निरोधन अर्हा, (अ) और (ब) में यह सूचित करती है कि अग्नि-नालिका विधि से काष्ठ प्रादर्शों का अग्निपरीक्षण के
२	आम	”	०·८५	१३·६	२९·०४	८२·९	३·०	
३	चीड़	सुहागा ('बौरैक्स')	१·१	१७·६	११·०३	७९·९	७·०	
४	आम	”	०·५१	८·२	२९·०४	६९·०	२·५	
५	चीड़	जिंक फौस्फेट (मौनोबेसिक)	१·४१	२२·६	११·०३	८१·२	७·५	
६	सीमल	”	१·५३	२४·५	१३·६५	७५·३	५·५	
७	आम	”	१·२	१९·२	२९·०४	६२·१	२·०	

८	सीमल	अग्निरोधी-स-परिरक्षी संगठन (वन अनुसन्धान-शाला में आविष्कृत)	६ ·२४	९९ ·८	१३ ·६५	७४ ·४	५ ·५	उपरान्त कितना प्रतिशत भार था यह अर्हा प्रत्येक दशा में ६ प्रादर्शोंका माध्य है।
९	सीमल	”	२ ·७८	४४ ·५	१३ ·६५	५६ ·६	४ ·०	
१०	चीड़	”	७ ·९६	१२७ ·४	११ ·०३	८० ·८	७ ·०	
११	चीड़	”	२ ·७९	४४ ·६	११ ·०३	६७ ·५	६ ·०	
			ग्राम प्रति वर्ग इंच					
१२	सीमल	अग्निरोधी लेप (वन अनुसन्धान शाला में आविष्कृत)	० ·०	३१	११ ·६५	४९ ·६	४ ·०	
१३	चीड़	”	० ·०	३७	११ ·०३	४८ ·५	४ ·५	
१४	चीड़	एक एकस्वीकृत अग्निरोधी लेप	—		११ ·०३	५७ ·०	५ ·०	
१५	आम	”	—		१३ ·६५	५८ ·३	४ ·०	

इसी प्रकार बाँसों और छादन-घासों में भी पर्याप्त प्रचूषण की आवश्यकता पड़ती है। वन-अनुसन्धान-शाला के परीक्षणों से पता चला है कि प्रति दस पौंड (४.५३ किलोग्राम) नानल घास और प्रति चार ताड़ के पत्तों के लिए १ पौंड (०.४५ किलोग्राम), वन-अनुसन्धान-शाला में आविष्कृत अग्निरोधी-स-परिरक्षी शुष्क रसायन की आवश्यकता पड़ती है। इस मात्रा में काष्ठ अथवा बाँसों में प्रचूषण कराने के लिए वही निपीड संयन्त्र उपयुक्त हैं जो काष्ठ-परिरक्षण निपीड़ क्रिया में प्रयुक्त किये जाते हैं। छादन घास व ताड़ की पत्तियों के लिए मन्द-निपीड संयन्त्र का प्रयोग किया जा सकता है। इनके रेखाचित्र विभिन्न काष्ठ-उपचार संयन्त्रों के अध्याय में दिये गये हैं। अग्निरोधी एवं परिरक्षी द्वारा उपचारित की गयी छादन घास इत्यादि की संरचना, जो वन-अनुसन्धान-शाला में सेवा-परीक्षणार्थ लगायी गयी हैं, चित्र ७९ में दिखायी गयी है।
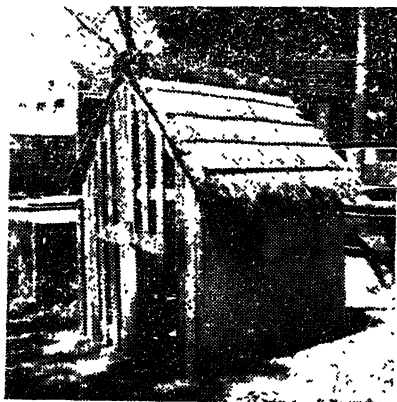
चित्र ७९—सेवापरीक्षणार्थ लगायी गयी उपचारित छादन-घास।

उपचार क्रिया के लिए पूर्ण-कोशा विधा का ही प्रयोग करना उचित होगा, क्योंकि रिक्तकोशा विधा से पर्याप्त प्रचूषण कराना सम्भव नहीं हो सकता। उपचार-पूर्व काष्ठ, बाँस और छादन घास को १२–१५ प्रतिशत आर्द्रता तक सुखा लेना चाहिए और उपचार पश्चात् भी इनको छतों के अन्दर ही कुछ समय तक सुखा लेना अनिवार्य है। इससे रसायनों को काष्ठ-पदार्थ (या कोषाधु) में बद्ध होने का अवकाश मिल जाता है।

निपीड-क्रिया द्वारा प्रयोग किये जानेवाले अग्निरोधी रसायनों के नाम नीचे दिये गये हैं। इनका अभीष्ट प्रचूषण कराने के अनुसार ही जल-विलयन में संकेन्द्रण किया जाता है।

(क) **अन्दर प्रयोग के लिए**

(अ) जिंक क्लोराइड

(आ) अमोनियम फॉस्फेट (मोनोबेसिक)

(इ) अमोनियम बोरेट और

(ई) अमोनियम सल्फेट

(ख) बाहर खुले में प्रयोग के लिए

(अ) जिंक क्लोराइड ५४ भाग और अमोनियम फॉस्फेट ४६ भाग

(आ) क्रोमेटेड जिंक क्लोराइड

(इ) मैग्नीशियम आर्सिनेट

(ई) मैग्नीशियम पाइरोफॉस्फेट

(उ) वन-अनुसन्धान-शाला का आविष्कृत अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र

वन-अनुसन्धान-शाला में कुछ अग्निरोधी लेपों का भी आविष्कार हुआ है। इनमें कुछ निरर्थक खनिज पदार्थों को, जैसे कि माइका और एसबस्टौस क्षोद पदार्थ हैं, सम्मिलित किया गया है। ये सिनेमा और गृहों की छतों में, जहाँ आग लगने का भय रहता है, लेपन के लिए उपयुक्त हैं। इसका सूत्र इस प्रकार है—

राख	..	२५	भाग तौल में
माइका पाउडर	..	२५	"
सुहागा	..	१५	"
एसबस्टौस पाउडर	..	१०	"
जिंक ऑक्साइड	..	१०	"
इमली गुठली का क्षोद	..	१०	"
गोंद (गम एरेबिक)	..	५	"

दीवारों में लेप करने के लिए इसमें चूना और सीमेंट बन्धन के हेतु मिलाया जा सकता है।

यदि बाहर प्रयोग करना हो तो बन्धक के रूप में कोलतार, डामर या संश्लिष्ट लीसा मिलाकर लेप करना उपयुक्त होगा।

निर्देश सूची

(१घ) पुरुषोत्तम, ए० ; पांडे, जे० एन० ; यादव, वाई० सी० ; भारत में काष्ठ-परिरक्षण, इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन १६८, १९५३, पृष्ठ १९

(१ङ) तत्रैव, पृष्ठ .. ३३

(३क)–काष्ठ प्रचूषक, और परिरक्षक संस्था की पत्रिका ('जर्नल औफ दी टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजरवर्स एसोसियेशन् ऑफ इन्डिया'), जनवरी १९५८, पृष्ठ .. ३०

(४ङ) हन्ट जी० एम० ; गैरेट, जी० ए० ; काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीज़रवेशन') मैकग्रौहिल बुक कम्पनी, इंक, न्यूयौर्क (यू० एस० ए०), १९५३, पृष्ठ ४३

(४च) तत्रैव .. १७२

(४छ) तत्रैव .. १९१

(४ज) तत्रैव .. १७७

(४झ) तत्रैव .. १८६

(४ञ) तत्रैव .. २१५

(४ट) तत्रैव .. २४२

(५झ) ब्रोजी भान ग्रोईनऊ, एच० ; रीशन, एच०, डब्ल्यू०, एल० ; भान डन् वर्ग, जे० ; पिछले ५० वर्षों में काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीज़र्वेशन ड्युरिंग दी लास्ट फिफ्टी इयर्स'), ए० डब्ल्यू०, सीथौप्स् यूइटगीभर्समाशापिज, एन० भी०, लीडन (हौलैन्ड), १९५२, पृष्ठ ४१

(८क) कामेशम, एस०, 'भारतीय रेलवे में सन् १९११ से १९१६ तक परीक्षणार्थ लगाये गये उपचारित स्लीपरों के परिणाम', इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन ८५, १९३४, पृष्ठ .. १४से१९

(८ख) तत्रैव .. २४–२५

(९) पुरुषोत्तम, ए० ; तेवाड़ी, एम० सी० ; 'एक साधारण विधि, कॉपर और जिंक परिरक्षियों का चीड़ लीसा से बनाने पर प्रारम्भिक टिप्पण', 'इन्डियन फौरेस्टर' (सितम्बर १९५४), पृष्ठ ५६०–५६८

(१०क) नारायणमूर्ति, डी०, 'भारत में प्रयोग करनेवालों के लिए काष्ठ परिरक्षण पर एक सूक्ष्म टिप्पण', इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन ११०, १९५१, पृष्ठ १८–२१

भाग ४

अध्याय १

उपचार अथवा साधन संयन्त्र

काष्ठ के परिरक्षोपचार के लिए विभिन्न प्रकार के संयन्त्रों की आवश्यकता होती है। एक ओर तो साधारण कम व्ययवाले संयन्त्र, कूँची, पिचकारी, इत्यादि हैं, जो क्रमशः लेपन और शीकरन के काम आते हैं, तथा दूसरी ओर विस्तृत और जटिल संयन्त्र हैं, जैसे कि विशाल निपीड-रम्भ जिनके साथ निपीड-क्रिया के लिए, दाब और शून्यक पम्प और अन्य श्रम बचाने की मशीनें हैं जिन्हें स्थापित करने में लाखों रुपयों की आवश्यकता पड़ती है। कुछ ऐसे भी हैं जो इन दोनों तरह के संयन्त्रों के मध्यवर्ती हैं, अर्थात् न तो अति साधारण और न अत्यन्त जटिल। इनके लिए साधारण व्यय और कुशलता की आवश्यकता होती है। यह सब उपचार्य काष्ठ की मात्रा और उपयोग पर आधारित हैं।

१. लेपन और शीकरन उपचार-संयन्त्र

जहाँ पर थोड़ी मात्रा में काष्ठ का उपचार करना है, वहाँ साधारण कूँची का प्रयोग किया जा सकता है। यह साधारण छोटे या लम्बे बेंन्ट ('हैन्डल') की, जो सुविधाजनक हो, बनायी जा सकती है। इसके लिए एक छोटे या बड़े पात्र की भी आवश्यकता होती है जिसमें परिरक्षी रख सकें। तैलीय परिरक्षी को गरम करने के लिए स्टोव आदि भी आवश्यक हैं। आग लगने के भय से बचाने के लिए बिजली के तापक का भी प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ बॉयलर हो, वहाँ जलवाष्प की नलिका से भी गरम कर सकते हैं। कूँची के बाल तार से बंधे होने चाहिए न कि रबड़ से, क्योंकि क्रियोजोट से रबड़ गल जाता है।

शीकरन के लिए हल्की और इधर-उधर ले जाने योग्य पिचकारी उपयुक्त है। इसको हाथ से या पम्प से चला सकते हैं। यदि इसकी डंडी लम्बी हो तो अति उत्तम होगा, क्योंकि कार्यकर्त्ता को किसी प्रकार की हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं रहेगी। इससे कार्य करने में कार्यकर्त्ता को गैसमास्क का प्रयोग करना चाहिए।

२. डूबन और चूषण उपचार-संयन्त्र ।

डूबन और चूषण उपचार के लिए कुण्ड इतने सबल हों कि वे काष्ठ-भार संभालने के लिए समर्थ हो सकें। कुण्ड के जोड़ भी ऐसे दृढ़ हों कि परिरक्षी के चूने की सम्भावना न हो। ये कुण्ड उन पदार्थों के बने हों जिन पर परिरक्षी की संक्षरण क्रिया न हो सके। तैलीय परिरक्षी के लिए इस्पात-चादर के बने कुण्ड उपयुक्त हैं, पर कॉपर सल्फेट (नीला थोथा), या मरक्यूरिक क्लोराइड के लिए धातु के, विशेष कर लोहे के, कुण्ड का उपयोग नहीं किया जा सकता। इसके लिए काष्ठ या सीमेंट-कंक्रीट की टंकियों का ही प्रयोग उचित है। बोरिक अम्ल के विलयन को ताँबे के पात्रों में ही संग्रह किया जा सकता है, और इससे उपचार के लिए यदि लोह-कुण्ड का प्रयोग किया जाय तो उसके ऊपर ताम्र-चादर का अस्तर देना आवश्यक होगा।

काष्ठ की उपचार-क्रिया में उसे पूर्णतया परिरक्षी-विलयन में डुबो कर रखने के साधन होने चाहिए; यदि थोड़ी मात्रा में काष्ठ-उपचार कराना हो तो इसका प्रबन्ध सरलता से काष्ठ के ऊपर भारी वस्तु रख कर अथवा नीचे बाँध कर हो सकता है, परन्तु व्यावसायिक काष्ठ-उपचार के लिए, विशेष संयन्त्रों की आवश्यकता होती है। काष्ठ-बोझ को भरने और उतारने के लिए हॉइस्ट या क्रेन होते हैं। कहीं-कहीं एक और कुण्ड भी रखते हैं,जिसमें उपचार पश्चात् परिरक्षी को प्रभार-कुण्ड से पम्प द्वारा वापस लिया जाता है, और दूसरा काष्ठ-प्रभार भरने पर पुनः उपचार कुंड में डाल देते हैं। इससे बड़ी सुविधा रहती है। कुण्ड में एक ढलवाँ मञ्च भी होना चाहिए जिसपर उपचार-पश्चात् काष्ठ को थोड़ी देर तक रखने से काष्ठ से टपका हुआ परिरक्षी एकत्रित किया जा सके। यदि गरम परिरक्षी का चूषण कराना हो, तो परिरक्षी को गरम करने के साधन भी होने चाहिए। यह अगले प्रकरण में दिये गये हैं।

३. तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र (खुला कुण्ड)

इस क्रिया से उपचार करने में वही संयन्त्र काम में लाते हैं जो डूबन और चूषण क्रिया में प्रयुक्त किये जाते हैं। इनमें केवल इतना ही भेद है कि यहाँ परिरक्षी को गरम और ठंडा करने के साधन हों। बाड़ खम्भ के मुंडछोर उपचार के लिए एक ड्रमनुमा सरलतम कुंड बनाया जा सकता है, जो ५० गैलन ड्रम के एक छोर भाग को काटने से बनाया गया हो। इसको एक चूल्हे के ऊपर रख कर गरम कर सकते हैं। यदि यह ड्रम छोटा हो तो उसी के ऊपर एक दूसरा ड्रम दोनों छोरों से काट कर जोड़ दिया जा सकता है। तापन-क्रिया में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे कि

तैल के उबलने पर आग लगने का भय न रहे। उपयुक्त समय तक तापन और शीतन क्रिया के पश्चात् शेष काष्ठ खम्भ भाग को गरम क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) मिश्र से लेपन किया जाता है। इससे खम्भ का भाग जो जमीन में गड़ा हुआ होता है, प्रचूषण से भली प्रकार सुरक्षित हो जाता है और अन्य भाग जो भूमि के ऊपर है वहाँ तैल से लेपन करना ही पर्याप्त होगा। यदि यह कुण्ड दृढ़-इस्पात-चादरों के तथा बड़े आकार के बने हों, तो बड़े खम्भों का उपचार भी सरलता से किया जा सकता है। इस संयन्त्र में क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) का प्रयोग उपयुक्त होता है। शीतन करने में या तो उसी कुण्ड के नीचे से अग्नि हटा दी जाती है या खम्भ को गरम करने के पश्चात् तुरन्त ही एक दूसरे ड्रम में रखे हुए ठंडे तैल में डाल देते हैं। जहाँ बॉयलर से जल-वाष्प आने की सुविधा हो, वहाँ वाष्प-नलिकाओं से भी तापन किया जा सकता है। बिजली के तापन-यन्त्र भी सुविधाजनक होते हैं, पर ये साधन सभी स्थानों में प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे बिजली के उपलब्ध होने पर ही निर्भर रहते हैं। चित्र ८० में यह उपचार-विधि दिखलायी गयी है।
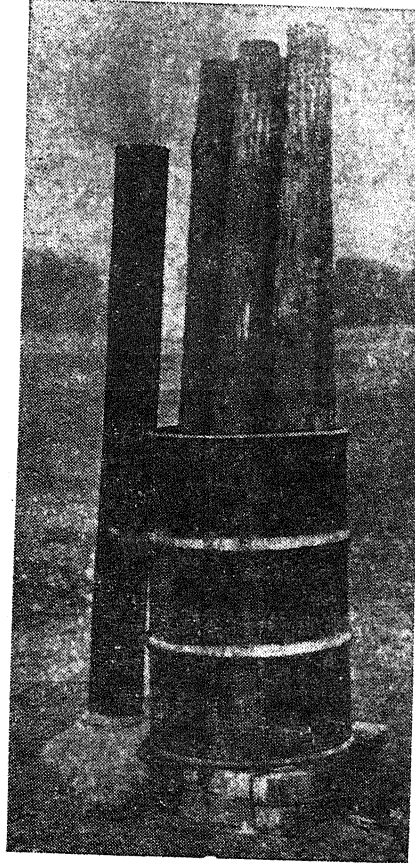
चित्र ८०––**खंभ मुंडछोर उपचार-संयन्त्र।**

संग्रह कुण्ड रहता है, जिसमें उपचार-कुण्ड से तैल खाली कर संग्रह किया जाता है, और फिर से पम्पों द्वारा उपचार-कुण्ड में लिया जाता है। यदि उपचार-कुण्ड एक ही हो तो तापन और शीतन में एक संपूर्ण दिन लगेगा। यदि शीतन के लिए एक और कुण्ड शीत परिरक्षी से भरा हो तो इस क्रिया में कम समय लगेगा, अतः १ दिन में २ या ३ काष्ठप्रभारों का उपचार किया जा सकता है। उपचार-कुण्ड के ऊपर ढकना लगाना हितकारी होगा, क्योंकि इससे तैल का वाष्प द्वारा उड़ना कुछ सीमा तक बचाया जा सकता है। चित्र ८१ में आयताकार टंकियाँ दिखायी गयी हैं।

एक सुसज्जित तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र में और भी कई नाना प्रकार की मशीनें, उपकरण और साधन होते हैं। काष्ठ के संग्रह और वायु-संशोषण के लिए एक छोटा या बड़ा प्रांगण होता है जिसमें वल्क-छीलन या भार उठाने के यन्त्र, संग्रहालय, छादक, आरे, इत्यादि स्थापित रहते हैं। परिरक्षी को खींचने के पम्प और तापक्रम ज्ञात करने के लिए तापमान-अभिलेखक भी होते हैं। इसके अतिरिक्त काष्ठ-प्रभार तोलने के लिए एक पट्टरूपी महातुला और सामान ढोने के लिए ट्रैक्टर, क्रेन, और काँटों ('हुक') की भी आवश्यकता पड़ती है। चित्र ८२ में खंम्भों को क्रेन द्वारा उठाने के हुक का रेखाचित्र दिया है। एक साधारण तापन और शीतन उपचार-संयन्त्र की विशिष्ट सारणी १८ (परिशिष्ट ४) में दी गयी है।

चित्र ८२—**काष्ठ खंभ उठाने का हुक।**
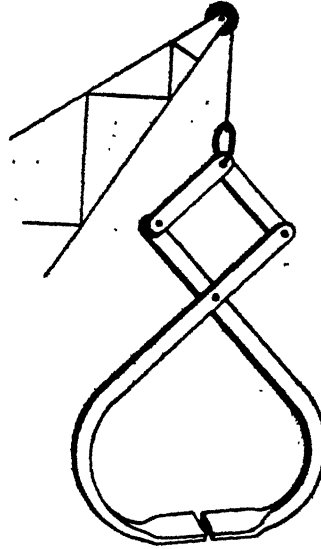
४. निपीड-उपचार-संयन्त्र

निपीड-उपचार-संयन्त्र में मुख्य भाग रम्भ होता है, जिसमें निपीड-क्रिया द्वारा परिरक्षी से काष्ठ-उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त और भी सहायक यन्त्र होते हैं, जैसे कि दाब और शून्यक पम्प; सेवा और संग्रह कुण्ड; दाब, शून्यक और तापमान लेखक; नलिकाएँ; वाल्व (कपाट); वाष्पित्र ('बॉयलर'); छीलन,

छिद्रण, काटन, भेदन, और महातुला मशीनें; ट्रौलीलाइन और ठेले; काष्ठ-संशोषण और संग्रह-प्रांगण; कार्यालय और संग्रहालय; प्रयोगशाला; इत्यादि-इत्यादि। निपीड-क्रिया में उपचार-रम्भ ही इस संयन्त्र का केन्द्रीभूत भाग है और इसी पर बल दिया जाता है। निपीड उपचार-संयन्त्र का माप रम्भ के परिमाण पर ही आश्रित है। इसका और अन्य सहायक यन्त्रों का पृथक्-पृथक् वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) उपचार-रम्भ

उपचार-रम्भ, पीडित इस्पात चादरों (३ सेन्टीमीटर से लेकर ४.५ सेन्टीमीटर तक मोटी) को मोड़ने और धातु पिघला कर या रिवट ठुकाई द्वारा जोड़ कर बनाये जाते हैं। छोटे से छोटा रम्भ ०.५ मीटर व्यास का और ६ मीटर तक लम्बा होता है, यद्यपि भारत में इस समय वाणिज्य उपचार के लिए २.५ मीटर व्यास के और २५ मीटर लम्बे रम्भ भी हैं। अमेरिका में सबसे बड़ा उपचार-रम्भ ३.५ मीटर व्यास का और ५० मीटर लम्बा है। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून में परीक्षणार्थ, छोटे ०.५ मीटर व्यास और ९ मीटर लम्बाई से लेकर ०.९ मीटर व्यास और १२ मीटर लम्बाई तक के हैं।

बड़े व्यास का उपचार रम्भ होने से कई लाभ हैं। प्रथम तो यह है कि बड़े व्यास वाले रम्भ में मापक रेल या ट्राम लाइन को बिछा देना सम्भव है, जिससे कि उपचार्य काष्ठ-प्रभार को बड़े ट्रौली अथवा रेल-ठेलों में रम्भ को अन्दर ले जाने और खाली करने की सुविधा हो। अमेरिका में यह मत है कि रम्भ में प्रमाप रेल-लाइन को लगाने के लिए न्यूनतम व्यास २.२८ मीटर (७.५ फुट) होना चाहिए। २.४४ मीटर (८ फुट) व्यास का वाणिज्य रम्भ, काष्ठ-उपचार के लिए एक कम खर्चीला आकार गिना जाता है, यद्यपि अन्त में सकल उपचार्य काष्ठ-मात्रा, उसकी लम्बाई पर निर्भर रहती है। सारणी १९ में भिन्न-भिन्न व्यास के रम्भ की काष्ठ-उपचार्यधारिता अथवा समाई का विवरण दिया गया है।

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि जितना ही रम्भ का व्यास कम होता है उतनी ही उसकी प्रतिशत धारण-क्षमता कम हो जाती है, और व्यास की कमी के अनुपात के तदनुरूप उसकी लम्बाई भी अधिक रखनी पड़ती है। अतः बाणिज्योपचार के लिए बड़े व्यास के ही रम्भ सुविधाजनक होते हैं। जहाँ थोड़ी ही मात्रा में काष्ठ-उपचार करना हो वहाँ छोटे ही व्यास के रम्भ उपयुक्त होते हैं। इसलिए वार्षिक उपचार्य काष्ठ मात्रा ज्ञात होने पर ही रम्भ के व्यास का निर्धारण किया जाता है।

रम्भ की उपचार्य क्षमता इतनी भी अधिक न हो कि इस व्यवसाय में लगे कार्य-कर्त्ताओं को निरर्थक बैठना पड़े।

सारणी—१९

विभिन्न व्यास के रम्भों की काष्ठ-उपचार्य धारिता।

रम्भ का व्यास	२.९४ मीटर (९ फुट)	२.४४ मीटर (८ फुट)	२.२८ मीटर (७.५ फुट)	२.१३ मीटर (७ फुट)	१.८६ मीटर (६.२ फुट)	१.५२ मीटर (५ फुट)	१.२२ मीटर (४ फुट)
स्लीपर—रम्भ के क्षेत्रफल के प्रतिशत भाग में।	५७.४५	५४.९२	५२.८०	५३.५५	५०.६५	४१.६६	३४.०५
कड़ियाँ और तख्ते—रम्भ के क्षेत्रफल के प्रति शत भाग में।	५१.३४	४६.४२	४५.७७	४८.५०	४५.३२	३९.६७	३०.९५
खम्भ—रम्भ के क्षेत्रफल के प्रति शत भाग में।	४६.९१	४५.३१	४२.६७	४४.९०	४५.७७	३६.०६	३१.२६

रम्भ का निर्माण ऐसा हो कि वह अधिकतम २५० पौंड प्रति वर्ग इंच (१७.५८ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) तक दबाव ग्रहण कर सके, और २०० पौंड प्रति वर्ग इंच (१४.०६ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) कर्म-योज्य निपीड सहन कर सके। निपीड-उपचार में परिरक्षी के दबाव की सीमा बहुधा १५०–१८० पौंड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् १०.५५–१२.६५ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर तक होती है, अतः रम्भ में इससे कुछ अधिक दबाव सहन करने की शक्ति होनी चाहिए।

गरम और ठंडे परिरक्षी का प्रयोग होने के कारण, रम्भ इस प्रकार स्थित किया जाता है कि उसके प्रसार और संकुचन में रुकावट न पड़े। इसके लिए विशेष प्रकार के चाप-आधार बने रहते हैं।

रम्भ के एक या दोनों सिरों पर द्वार होते हैं। इनको रम्भ पर दृढ़ता से बन्द करने के लिए, इनकी परिधि पर जिह्वा ('टंग') और रम्भ की परिधि पर नाली ('ग्रूव्') होती है जिससे कि नाली में जिह्वा बैठा कर दृढ़ता से बोल्टों द्वारा द्वार को बन्द करने का प्रबन्ध हो सके। ऐसा करने पर उच्च दबाव में परिरक्षी के रम्भ में से चूने की सम्भावना नहीं रहती। रम्भ के सिरे पर द्वार प्रबल कब्जों या डंडों से लटके रहते हैं। बोल्टों की संख्या भी रम्भ के व्यास के अनुसार होती है। आधुनिक रम्भों में द्वार बन्द करने का प्रबन्ध मशीनों द्वारा होता है। ऐसे द्वारों को शीघ्र बन्द होने वाले द्वार कहते हैं। पर अधिकतर बन्द करने की प्रथा रैन्च द्वारा हाथ से ही करने की है। (चित्र संख्या ६५ देखिए)।

रम्भ के अन्दर रक्षक रेल ('गार्ड रेल') होते हैं, जो ट्रौली और रेल-ठेलों को पटरी से नहीं उतरने देते। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो तो निपीड-क्रिया में ठेलों के पटरियों से उतरने की सम्भावना रहती है, क्योंकि परिरक्षी-विलयन में काष्ठ तैरने लगता है। ये रक्षक रेल रम्भ के किनारे लगे रहते हैं। ट्रौलियों में कर्ण-जैसे मोटे इस्पात की पत्तियाँ होती हैं जो रक्षक रेल के नीचे दबी रहती हैं। ऐसा होने पर ठेले ऊपर को नहीं उठ सकते, अतः ठेले सदा पटरी पर ही रहेंगे।

तापन के लिए रम्भ के नीचे भाग में, अर्थात् रेलों के नीचे, वाष्प नलिकाएँ रहती हैं। ये नलिकाएँ 'यू' (U) आकार की होती हैं, और इनकी ४ या ५ पंक्तियाँ रम्भ के व्यास के अनुसार होती हैं। इन नलिकाओं द्वारा तैलीय परिरक्षी को गरम करते हैं। काष्ठ के वाष्पीकरण के लिए भी रम्भ में सजीव-वाष्प की पृथक् नलिकाएँ रहती हैं जिनको खोलने या बन्द करने का प्रबन्ध रहता है। हरे काष्ठ के वाष्प-संशोषण के लिए भी निपीड-रम्भ इस क्रिया के पात्र का काम करता है। कहीं-कहीं रम्भ के ऊपरी भाग के एक सिरे में एक इस्पात का गुम्बज ('डोम') सा बना रहता है जिसका योग संघनक ('कन्डैन्सर') से रहता है। वाष्पीकरण अथवा बोल्टन-जैसी समुचितोपचार विधाओं में यह गुम्बज बहुत उपयोगी होता है। अति गरम होने पर जब तैल का फेन बनने लगता है तो यह इस गुम्बज में समा जाता है और संघनक में भरने नहीं पाता। ऐसा होने पर शून्यक पम्प का भी बचाव हो जाता है। वाष्प-नलिका के अन्त भाग में वाष्पजलस्रावी ('स्टीमट्रैप') का होना भी आवश्यक है।

(ख) सेवा और संग्रह-कुण्ड

उपचार-रम्भ का एक मुख्य अंग सेवाकुण्ड होता है। इस कुण्ड में से परिरक्षी को पम्पों द्वारा रम्भ में भेजा जाता है, और निपीड-क्रिया के अन्तर्गत दाब-पम्प भी इसी कुण्ड से परिरक्षी को खींचकर अनिवर्ती कपाट ('नौन-रिटर्न वाल्व') द्वारा रम्भ में भेजता है। उपचार समाप्त होने पर रम्भ को खाली करने के पश्चात् परिरक्षी को इसी में लौटाया जाता है। इस कुण्ड में एक अंकित नाप होता है, जिसको उपचार-पूर्व और अन्त में पढ़ने पर काष्ठ में परिरक्षी-प्रचूषण की मात्रा ज्ञात हो सकती है। इसी के द्वारा निपीड-काल में भी सकल ('ग्रौस') प्रचूषण का अनुमान लगाया जा सकता है। इसका ज्ञान कराने के लिए तैरनेवाले यन्त्र रहते हैं, जिनसे परिरक्षी का तल-मान किसी काल में भी निकाला जा सकता है।

कभी-कभी निपीड-क्रिया में परिरक्षी को सेवाकुण्ड से न लेकर एक विशेष दाब-कुण्ड द्वारा उसे भेजा जाता है। इस दाबकुण्ड का आयतन उससे कुछ अधिक होता है जितना कि एक काष्ठप्रभार प्रचूषण कर ले और इसी के परिरक्षीतल को पढ़ने से प्रचूषण की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। सेवाकुण्ड में परिरक्षी को गरम करने के लिए वाष्प-नलिकाएँ होती हैं।

सेवाकुण्ड के अतिरिक्त अन्य कई संग्रहकुण्ड भी होते हैं, जिनमें परिरक्षी संचित किया जाता है। जिन संयन्त्रों में तैलरूपी परिरक्षी का प्रयोग किया जाता है, वहाँ ऐसे बड़े कुण्डों की आवश्यकता होती है। इनके तल में गरम करने के साधन भी होते हैं। इनमें से एक दिन के उपचार के लिए जितने परिरक्षी की आवश्यकता हो उतना सेवा-कुण्ड में लिया जाता है। वाणिज्य-उपचार संयन्त्रों में कई महीनों के प्रयोग के लिए परिरक्षी का संग्रह करना आवश्यक होता है। ये कुण्ड परस्पर एक-दूसरे से पम्पों द्वारा संबद्ध रहते हैं।

जहाँ जलविलयन रूपी परिरक्षी, जैसे कि एस्क्यू, जिंक क्लोराइड इत्यादि प्रयोग किये जाते हों, वहाँ इतने बड़े संग्रह-कुण्डों की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसके स्थान पर एक मिश्रण-कुण्ड रहता है, जिसमें परिरक्षी का विलयन बनाया जाता है और तत्पश्चात् पुनः सेवाकुण्ड में उपचार के लिए उसे भेजते रहते हैं।

(ग) पम्प इत्यादि

छोटे परिमाण के काष्ठ-परिरक्षण संयन्त्र में एक वायु-संपीडक ('एयर कम्प्रेसर') और एक जल-निपीडक ('हाइड्रौलिक पम्प') पर्याप्त होता है। वायु-संपीडक से

वायु-दाब दिया जाता है और उसके उलटे संयोजन से शून्यक भी किया जा सकता है। जलनिपीडक से परिरक्षी-दबाव देते हैं। ये पम्प बिजली की मोटर द्वारा, जलवाष्प, या मृत्तैल-इन्जन से, जैसी सुविधा हो उसी के अनुसार चलाये जा सकते हैं।

बड़े परिमाण के संयन्त्र में इन दोनों पम्पों के अतिरिक्त केन्द्रापग उदञ्च ('सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प') भी होते हैं, जिनसे परिरक्षी को एक कुंड से दूसरे कुंड में, अथवा कुंड से रंभ में भरने का कार्य किया जाता है। केन्द्रापग उदञ्च से कभी-कभी मंद परिरक्षी-दबाव भी दिया जाता है।

यदि उपचार-रम्भ की संख्या एक से अधिक हो तो प्रत्येक रम्भ के साथ एक-एक जल-निपीडक भी होना चाहिए, जिससे उपचार-कार्य स्वतंत्र और सुचारु रूप से चलता रहे।

प्रत्येक संयन्त्र में अग्नि बुझाने के लिए जल-उदञ्च भी हो, जिससे कि आग लगने पर शीघ्रता से जल-धारा प्राप्य हो सके।

(घ) संघनक ('कन्डेन्सर')

शून्यक के नल की दिशा में वायु-संपीडक से पहले संघनक का स्थापित होना आवश्यक है। इसके होने से, ताप द्वारा जो कुछ भी जल या तल की वाष्प बनती है, सीधे वायुसंपीडक अथवा शून्यक पम्प में प्रवेश नहीं कर सकती; वह मध्य में ही संघनक में ठंडी होने से द्रव-रूप में परिवर्तित होने पर एकत्रित की जा सकती है। संघनक उस दशा में अति उपयोगी होता है जहाँ तैल में उबलन ('बोल्टन') विधा, हरे काष्ठ के उपचार के लिए, प्रयुक्त की गयी हो। इससे हरे काष्ठ के संशोषण द्वारा निकली हुई जलमात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। संघनक भी इस्पातचादर का बना हुआ एक प्रकार का छोटा रम्भ होता है, जिसमें मुड़ी हुई वृत्ताकार नलिकाएँ रम्भ में भरे ठंडे जल में डूबी रहती हैं। इस रम्भ में निरन्तर ठंडे जल का परिवहन होता रहता है। मुड़ी नलिका के अन्त में एक पात्र रहता है, जिससे एकत्र परिवर्तित जल टोंटी से निकाला जा सकता है।

(ङ) नल, कपाट, अभिलेखक तापमान और मापक यन्त्र

उपचार संयन्त्र के पूर्वोक्त भाग नलों और कपाटों ('वाल्वों') द्वारा एक-दूसरे से संयोजित रहते हैं। इनका सुविधा के अनुसार संयोजन किया जाता है। इसको जितना सरल बनाया जाय उतना ही अच्छा है। यदि यह जटिल बनाया गया हो तो संयन्त्र-चालक कभी भूल कर सकता है, जिसके कारण दुर्घटना हो सकती है। संयोजन
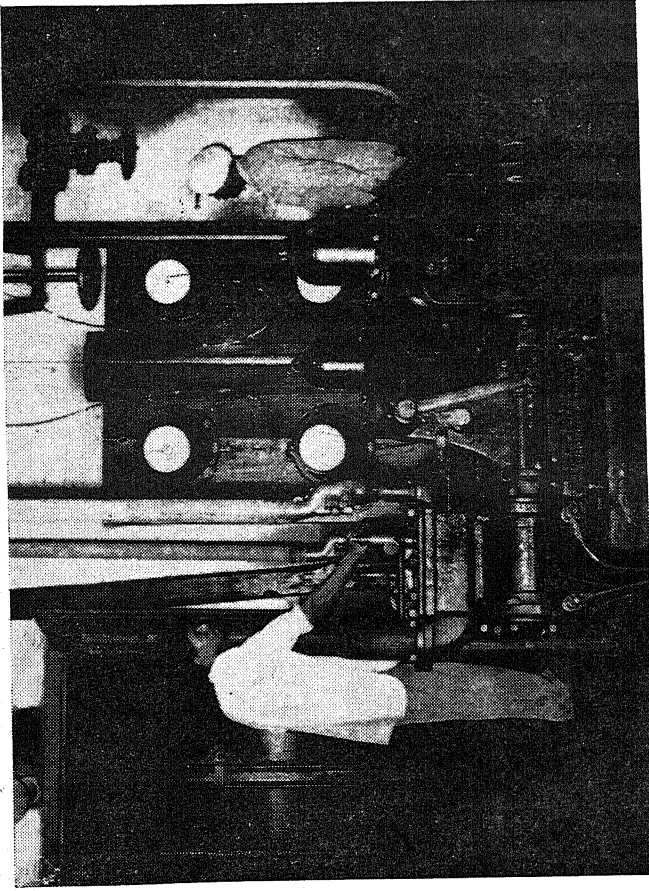
चित्र ८३—उपचार संयन्त्र के निपीड-चालक का कमरा।

में निपुणता की आवश्यकता है, यद्यपि यथोचित स्थानों में कपाटों का स्थिरीकरण किया जाता है।

तापमान और निपीड-शून्यक-निर्देशक यन्त्र रम्भ से संयोजित रहते हैं। यदि ये अभिलेखक रूप के हों, तो संपूर्ण उपचार-काल की दशाओं के अंक प्राप्त हो सकते हैं। ये निरीक्षण के लिए सुविधाजनक हैं। ये सब घड़ी-यन्त्रनुमा होते हैं जिनको चाबी लगाकर बन्द किया जाता है। बड़े परिमाण के संयन्त्रों में इस साधन-सामग्री का अतिरिक्त मात्रा में रखना वांछनीय है; जिससे टूट-फूट के समय उसका तत्काल ही पुनः स्थापन सम्भव हो सके। चित्र ८३-८४ में निपीड और अभिलेखन यन्त्रों का कमरा दिखाया गया है। चित्र ८५ में एक निपीड-संयन्त्र का रेखाचित्र है।
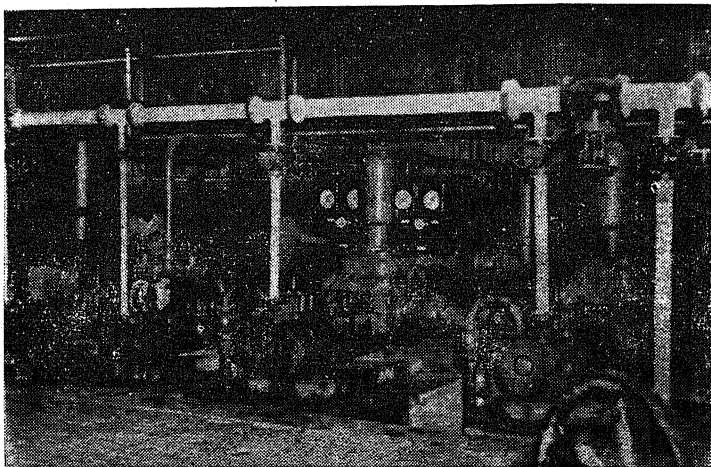
चित्र ८४—**उपचार संयन्त्र के निपीड-चालक का कमरा**

(च) प्रांगण ('यार्ड')।

काष्ठ-उपचार सरलतापूर्वक चले और उसमें अधिक खर्च न बैठे, इस दृष्टि से प्रांगण का निर्धारण विशेष महत्त्व रखता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रांगण एक ऐसी भूमि में होना चाहिए जिसमें पानी एकत्रित न हो और उसमें स्वच्छता के लिए उचित प्रकार की नालियाँ इत्यादि हों।

प्रांगण में छोटे या बड़े पैमाने की रेल-लाइन संपूर्ण क्षेत्र में बिछी रहे, जिससे सामान, परिरक्षी, काष्ठ और अन्य मशीनें, जहाँ भी उनकी आवश्यकता हो, सरलता
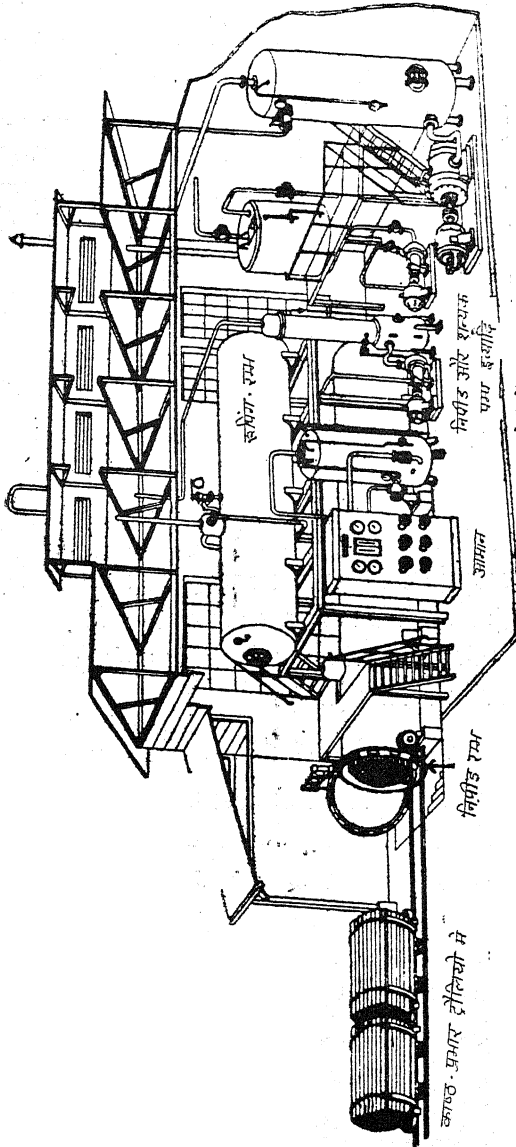
चित्र ८५—निपीड संयन्त्र का रेखाचित्र।

से ले जायी जा सकें। बहुधा प्रांगण के एक ओर वायु-संशोषण के लिए अशोधित काष्ठ का संग्रह किया जाता है। दूसरी ओर उपचारित काष्ठ के चट्टे लगे रहते हैं, जहाँ से फिर वह प्रयोग स्थानों को भेजा जाता है। मध्य में उपचार-रम्भ स्थित रहता है, रेल और ट्राम लाइनों का यहीं अधिक मिलान रहता है और यहीं से वे अन्य दिशाओं में भी फैली रहती हैं। प्रांगण में उचित प्रकार से लाइनों का लगाना, संग्रह और कार्यालय-स्थान, रम्भ की स्थिति, परिरक्षी-संचयकुंड की दूरी, अग्निरक्षा के जलोत्सर्ग, इत्यादि-इत्यादि के प्रबन्ध करने में निपुण और अनुभवी अभियन्ता की आवश्यकता पड़ती है।

काष्ठ को संशोषण-स्थान से एकत्रित कर उपचार के लिए रम्भ में ले जाने और उपचार-पश्चात् रम्भ से निकालने के लिए छोटी रेल के वाष्प अथवा मृत्तैल से चलने-वाले इन्जन होते हैं। कहीं-कहीं काष्ठ-प्रभार को ले जाने में चरखी का भी प्रयोग किया जाता है। अमेरिका में काष्ठ के स्लीपरों और खम्भों के चट्टे मशीनों द्वारा लगाये जाते हैं। इनके चट्टों को एक स्थान से दूसरे स्थान में उठाकर ले जान के लिए क्रेन अथवा हॉइस्ट का भी प्रयोग होता है।

काष्ठ-प्रभार को ले जाने के लिए ट्रौलियाँ होती हैं जिनके पहियों की दूरी का वही प्रमाप होता है जो रम्भ के अन्दर रेल-पटरियों का होता है। ये ट्रौलियाँ पृथक्-पृथक् प्रकार की होती हैं; स्लीपरों के लिए अलग और खम्भों के लिए दूसरे प्रकार की होती हैं। काष्ठ-भूमि गुटकों के लिए भी टोकरीनुमा ट्रौली होती है, जो छिद्रण की हुई इस्पात-चादरों की बनी रहती है।

(छ) अन्य संभार ('इक्विपमैन्ट')

उपचार-संयन्त्र में अन्य साधित्रों की भी आवश्यकता होती है। इनमें से एक तो वाष्पित्र ('बॉयलर') होता है। जहाँ तैलरूपी परिरक्षी प्रयोग किये जाते हैं, वहाँ परिरक्षी को गरम करने के लिए यह आवश्यक है। वाष्पीकरण और तैलीय उबलन विधा में वाष्प का प्रयोग होता है। जहाँ बिजली प्राप्य न हो, वहाँ निपीडक पम्प इत्यादि भी इसी से चलाये जाते हैं।

काष्ठ-प्रभार तोलने और तदनन्तर प्रचूषण ज्ञात करने के लिए महातुला का होना भी आवश्यक है। छीलन, छिद्रण और भेदन के लिए भी विशेष प्रकार की मशीनें अथवा यन्त्र होते हैं। काष्ठ के छोर भाग को समान रूप से काटने के लिए आरे भी स्थापित किये जाते हैं। लकड़ी को विशेष आकार में बनाने के लिए भी विशेष प्रकार के यन्त्र होते हैं।

(ज) गृह-कार्य

उपचार-प्रांगण में कार्यालय, कर्मशाला और गृहों का निर्माण भी आवश्यक है। रम्भ को छादित स्थानों में रखा जाता है। अधिक वर्षावाले स्थानों में काष्ठ का वायु-संशोषण भी छादकों के अन्दर होना आवश्यक है। जल-विलयन परिरक्षी द्वारा उपचार के पश्चात् कुछ समय तक काष्ठों का छादित स्थानों में संशोषण करना पड़ता है। संशोषण-कार्य की शीघ्र समाप्ति के लिए कहीं-कहीं भट्ठे ('किल्न') भी स्थापित किये जाते हैं। परिरक्षी-विश्लेषण और काष्ठ-आर्द्रता निश्चयन के लिए रासायनिक प्रयोगशाला का होना भी अनिवार्य है। अतः उपचार-संयन्त्र की रचना कुशलतापूर्वक होनी चाहिए। विशेष प्रशिक्षित निर्माता ही इस कार्य को सँभाल सकने में समर्थ होता है। एक आदर्श निपीड-उपचार-संयन्त्र की विशिष्टि सारणी २० (परिशिष्ट ५) में दी गयी है।

अध्याय २

उपचारित काष्ठों का प्रयोग

यह वाञ्छनीय है कि उपचारित काष्ठों का प्रयोग वहाँ किया जाय जहाँ काष्ठनाशक अभिकर्त्ताओं का भय हो। भाग २, अध्याय २ में इन काष्ठविनाश-प्रतिकारकों का वर्णन किया जा चुका है। आधुनिक काल में उपचारित काष्ठों के प्रयोग में वृद्धि होती जा रही है और यह आशा की जाती है कि पञ्च-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत, विभिन्न विकास कार्यों के लिए उपचारित काष्ठों का प्रयोग बढ़ता ही जायगा। उपचारित काष्ठों के कुछ मुख्य प्रयोग निम्न लिखित हैं।

१. रेलवे-स्लीपर

विश्व के प्रायः सभी देशों ने काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों के उपचार के लिए काष्ठ-परिरक्षण-विधियों को अपनाया है। भारत ने भी ऐसा ही किया है। केवल साल, टीक और कुछ थोड़ी ही मात्रा में अन्य अति स्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ से बने स्लीपरों को छोड़, प्रायः सभी प्रकार के काष्ठ-स्लीपरों का उपचार किया जाता है। इस समय भारतीय रेलवे-पथ की लम्बाई लगभग ५० (१च) हजार मील (८०४६७ किलोमीटर) है। अतः संपूर्ण रेल-पथ के लिए, २००० स्लीपर प्रति मील के हिसाब से, १० करोड़ स्लीपरों की आवश्यकता है। इन स्लीपरों की संख्या का लगभग आधा भाग काष्ठ-स्लीपरों का है। काष्ठ में आघात-प्रचूषण गुण होने के कारण, यात्रियों के लिए काष्ठ-स्लीपर धातु-स्लीपरों की अपेक्षा अधिक आरामदेह होते हैं, और इसी कारण रेलडिब्बों की आयु को बढ़ाने में भी सहायक होते हैं। परन्तु धातु-स्लीपरों की आयु अधिक होती है और श्रमिकों को इन स्लीपरों पर काष्ठ-स्लीपरों की अपेक्षा कम ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। काष्ठ-स्लीपरों का यदि उचित प्रकार से उपचार किया गया हो तो इनकी औसत आयु प्रायः २० वर्ष से २५ वर्ष तक की होती है। आर्थिक दृष्टि से यह संतोषजनक है। इसके पश्चात् कुछ वर्षों तक इनको मुख्य-रेलपथ ('मेन लाइन') से निकालकर किनारे के पथों ('साइड लाइन्स्') में लगाया जा सकता है, और अन्त में ये अस्थायी बाड़ लगाने के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उपचारित काष्ठ-स्लीपरों की अयोग्यता

मुख्यतः यान्त्रिक क्षति के कारण ही होती है, यद्यपि इनकी जैविक आयु परिरक्षण द्वारा कई वर्षों तक बढ़ायी जा सकती है।
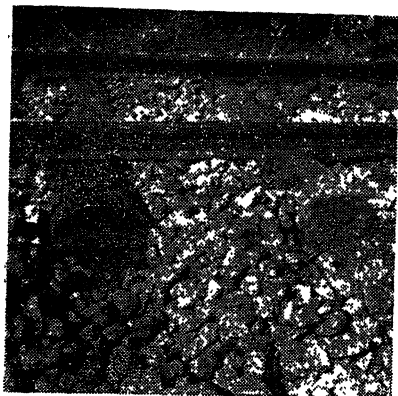
चित्र ८६—उपचारित साल के अर्धगोल स्लीपरों की १६ वर्ष सेवा-आयु के बाद की दशा।

सभी काष्ठ-जातियों के रस-काष्ठ का, उपचार करने के पश्चात्, स्लीपरों के प्रयोग में विशेष महत्त्व होता है। सामान्यतः साल के अनुपचारित स्लीपरों के प्रयोग में रसकाष्ठ की स्वीकृति नहीं होती, इसी कारण साल के लठ्ठों का अधिकांश भाग, जिसमें रसकाष्ठ होता है, सार-काष्ठ-स्लीपरों के परिवर्तन में रद्द कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ; १६ इंच (४०.६ सेन्टी-मीटर) व्यासवाले साल-लठ्ठे के सारकाष्ठ से एक ही बी० जी० (१०" ५" अथवा २५.४×१२.७ सेन्टीमीटर टक्कर का) स्लीपर प्राप्त हो सकता है, जब कि उसी लठ्ठे से दो और भी अर्ध-गोलाई ('हाफ-राउन्ड') के बी० जी० स्लीपर, जिनमें रसकाष्ठ भी सम्मिलित होता है, निकल सकते हैं। उपचार करने के पश्चात् इन अर्ध-गोल स्लीपरों का भी प्रयोग हो सकता है। ऐसे अर्ध-गोल स्लीपरों से उपचार (क्रियोजोट और एस्क्यू करण) के पश्चात् अच्छी सेवाआयु प्राप्त हुई है। चित्र ८६ में एस्क्यू से उपचारित अर्धगोल साल स्लीपर का १६ वर्ष सेवा आयु के बाद का दृश्य दिखाया गया है। वन-अनुसन्धानशाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षणों में ऐसे उपचारित स्लीपर उत्तरपूर्वीय रेलवे के मथुरा कैन्ट और मैलानी नामक स्थानों पर सन् १९४० में लगाये गये थे।

यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में नवीकरण और नयी लाइनों के बिछाने में प्रति वर्ष ६० लाख स्लीपरों की आवश्यकता होती है। यदि इसमें अन्य उद्योगों और बनों में ट्राम लाइनें बनाने के लिए स्लीपरों की माँग भी सम्मिलित की जाय तो कुल मिलाकर एक करोड़ स्लीपरों की आवश्यकता होगी। इन स्लीपरों के उप-चारार्थ कई वाणिज्य उपचार-संयन्त्रों की आवश्यकता है, जब कि वर्तमान भारत

में एक पारी काम करके केवल २३ लाख बी० जी० स्लीपरों का उपचार करने के ही साधन प्राप्त हैं।

संसार के विभिन्न देशों में, जहाँ आयताकार स्लीपरों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के स्लीपर प्रयुक्त किये जाते हैं, उन स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ-छेद) के रेखा-

जर्मनी
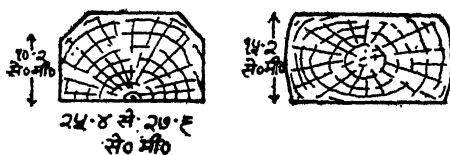
से० मी० = सन्टीमीटर

चित्र ८७—विभिन्न देशों में काष्ठ-रेलवे-स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ छेद)

चित्र, चित्र ८७, ८८ में दिये गये हैं। वहाँ हर प्रकार के अर्ध-गोल ('हाफ-राउन्ड') और गोलाश्री ('वेन') स्लीपरों का प्रयोग होता है।

स्लीपरों के उपचार के लिए प्रायः ५ पौंड प्रति घन फुट (८० किलोग्राम प्रति घन मीटर) क्रियोजोट इन्धन तैल (५० : ५०) मिश्रण का प्रचूषण चाहिए। वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून ने परीक्षणार्थ पैन्टाक्लोरोफीनौल (४ प्रतिशत मृत्तैल में विलयित) से स्लीपरों का निपीड-उपचार करके रेलवे लाइनों में बिछा दिया है। एस्क्यू से भी ०.५ से ०.७५ पौंड प्रति घन फुट (८.० से १२.० किलोग्राम प्रति घन

मीटर) के हिसाब से शंकुधारी काष्ठों के स्लीपर बड़ी संख्या में उत्तरी रेलवे में लगाये। पर इन स्लीपरों को एस्क्यू के उपचार-पश्चात्, १० प्रतिशत गरम एस्फाल्ट के इन्धनतैल-विलयन में डुबोना, उन्हें फटने से बचाने के लिए अनिवार्य है। सारणी
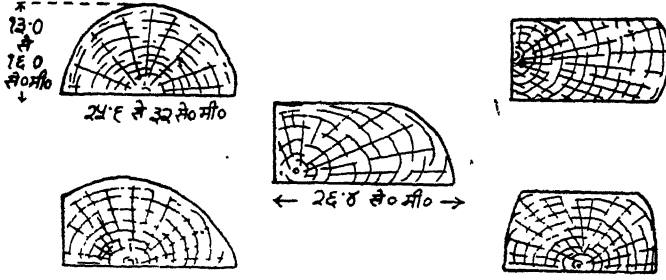
चित्र ८८—फ्रांस में काष्ठरेलवे-स्लीपरों के आकार (अनुप्रस्थ छेद)

२१ (परिशिष्ट ६) में वन-अनुसन्धान शाला में परीक्षणार्थ उपचारित कुछ काष्ठ-स्लीपरों की सेवा-आयु का विवरण दिया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में उपचारित काष्ठ, धातु और सीमेंट के स्लीपरों पर कई परीक्षण हुए हैं, अन्त में वहाँ यह परिणाम निकला कि उपचारित काष्ठ के स्लीपर कम व्ययवाले और सुविधाजनक होते हैं, और वहाँ की रेलवे लाइनों में बहुधा इन्हीं का प्रयोग होता है। वहाँ प्रतिवर्षीय सांख्यिक विवरण के अनुसार यह स्पष्ट हुआ है कि ज्यों-ज्यों उपचारित काष्ठ-स्लीपरों का प्रयोग सन् १९१५ से बढ़ता गया, त्यों-त्यों स्लीपरों के प्रति मील रेल-पथ के नवीकरण अथवा पुनः स्थापन में भारी कमी हुई है। इसके फलस्वरूप रेलवे-लाइनों के रख-रखाव में पर्याप्त बचत रही है। सारणी (४ड) २२ में एक ऐसा सांख्यिक विवरण दिया गया है। वहाँ प्रति मील रेल-मार्ग में औसतन ३००० स्लीपरों का प्रयोग किया जाता है।

वहाँ सांख्यिकी में इतनी प्रगति हुई है कि रेखाचित्र द्वारा स्लीपरों की आयु की भी पूर्व-सूचना ज्ञात हो सकती है। स्लीपरों की आयु का सम्बन्ध उनके लाइनों पर लगे रहने के एक निश्चित समय पश्चात् प्रतिशत नवीकरण पर होता है। यदि किसी सेवाकाल के पश्चात् स्लीपरों का प्रतिशत नवीकरण अथवा पुनः स्थापन ज्ञात हो, तो उनकी सेवाआयु का अनुमान लगाया जा सकता है। चित्र ८९ में एक
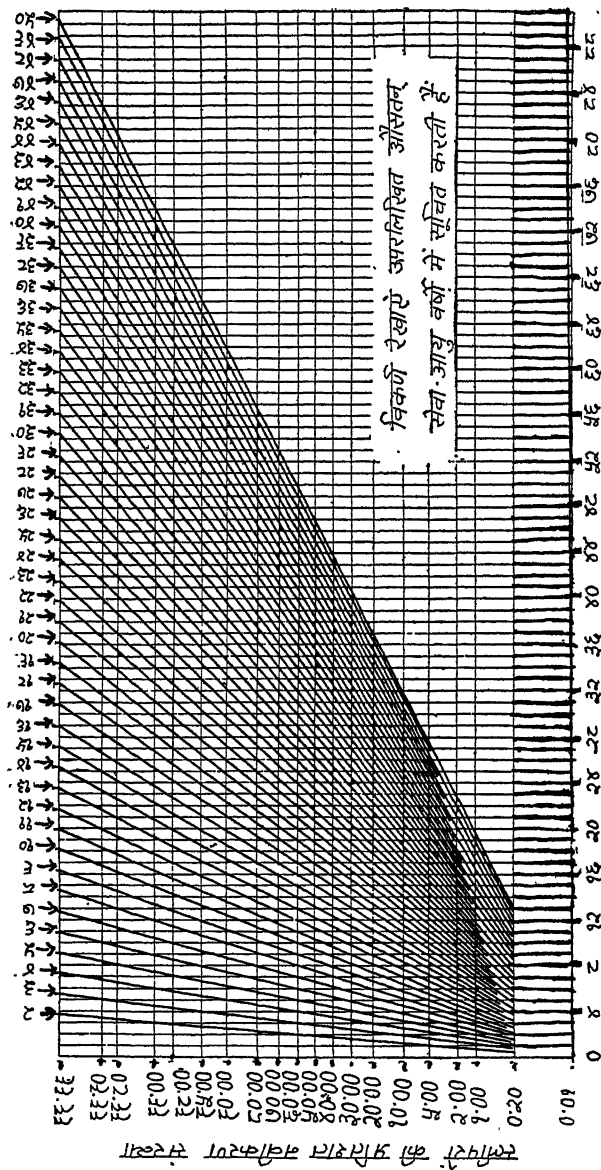
चित्र ८९—प्रतिशत नवीकरण संख्या द्वारा स्लीपरों की संभाव्य सेवा-आयु का निश्चयन।

ऐसा रेखाचित्र दिया गया है, जिससे स्लीपरों की सेवा-आयु का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी–२२ (४ ड)

प्रति मील रेल-मार्ग में स्लीपरों का नवीकरण

वर्ष (सन्)	प्रतिवेदन करनेवाले रेलवेवालों की संख्या	प्रतिवेदित रेलमार्ग की सकल लम्बाई मीलों में	प्रति मील पुनः स्थापन किये गये स्लीपरों की औसत संख्या	
			उस वर्ष में	पिछले ५ वर्षों में
१९११	२२	१३६१२९	२६२	२४९
१९१३	२५	१६३४२७	२५९	२५१
१९१५	२६	१८१२७४	२६५	२५६
१९१७	२७	१९०४८६	२०६	२४७
१९१९	२७	१९३८०७	२०३	२२३
१९२१	२७	१९६७२०	२११	२०५
१९२३	२७	१९८८८२	१९८	२०५
१९२५	२७	२०३३३०	१८८	१९६
१९२७	२७	१९८३१२	१८५	१८७
१९२९	२७	२००२६०	१७६	१८३
१९३१	२७	२०००१७	११७	१६३
१९३३	२७	२०१०३०	७३	१२०
१९३५	२७	१९८८०४	९५	९३
१९३७	२७	१९६१७७	११२	९८
१९३९	२७	१९३५९४	११५	१०८
१९४१	१३२	३३५६५९	१४०	१३१
१९४३	१३२	३३१२४७	१३६	१३६
१९४५	१३१	३३१२०१	१३२	१३९
१९४७	१२६	३३०३५०	११२	१२७
१९४९	१२७	३३०६१२	९१	११२
१९५१	१२६	३२९७०५	८७	९९

स्लीपरों की रेल मार्ग के लिए अयोग्यता, सिरों के फटने, रेलों के नीचे कटान, और प्रकीलों (स्पाइक्स्) के ढीले पड़ जाने से भी होती है। अमेरिका में फटन को

रोकने के लिए जलरोधी स्तर, मार्ग में बिछे हुए स्लीपरों पर शीकरन द्वारा उत्पन्न किया जाता है। इस क्रिया में एक प्रकार के गरम एस्फौल्ट में बजरी के मिश्रण की स्लीपरों पर ७ मिलीमीटर मोटी तह दी जाती है। प्रकीलों के ढीले छिद्रों पर एक प्रकार का प्रकील-भरण-संगठन भरा जाता है, जिसके कारण प्रकील पुनः दृढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार स्लीपरों को यान्त्रिक क्षति से बचाया जा सकता है।

भारत में रेलवे विभाग के अन्तर्गत वाणिज्य-उपचार संयन्त्रों में काष्ठ-स्लीपरों के उपचार-मूल्य का विवरण सारणी २३ (परिशिष्ट ७) में दिया गया है। इसमें पृथक्-पृथक् पदों के लिए व्यय के आँकड़े हैं। इससे यह पता लग सकता है कि उपचार व्यय किन बातों पर निर्भर रहता है और उसका मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है।

अनुपचारित काष्ठ की अपेक्षा, उपचारित काष्ठ-स्लीपर अंत में कम खर्चीले होते हैं। यह लघु-व्ययिता उनकी सेवा-आयु के अनुसार वार्षिक मूल्य पर निर्भर रहती है। वार्षिक मूल्य निकालने का सूत्र भाग १ के अध्याय ३ (५) में दिया है। उसी के आधार पर सारणी ६ में ३, ४ और ५ प्रतिशत ब्याज की दर से पृथक्-पृथक् वार्षिक मूल्य दिया गया है। इस सारणी के अनुसार स्लीपरों का वार्षिक मूल्य निकालने का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

जाति	मूल्य रुपयों में	सेवा-आयु, वर्षों में	ब्याजदर प्रतिशत	वार्षिक मूल्य (रु०)
अनुपचारित चीड़ स्लीपर ..	१२	२	४	१२×०.५३०१९६१ =६.३६२३५३२
उपचारित चीड़ स्लीपर	१८	२०	४	१८×०.०७३५८१७ =१.३२४४७०६

पूर्वोक्त उदाहरण से उपचारित काष्ठ के कम खर्चीलेपन का अनुमान लगाया जा सकता है।

सारणी २४ (क) (परिशिष्ट ८) में उन काष्ठजातियों की, जो उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए उपयुक्त हैं, एक सूची दी गयी है।

सारणी २४ (ख) (परिशिष्ट ९) में भारत में अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की प्राप्यता और मूल्य का विवरण दिया गया है।

सारणी २४ (ग) (परिशिष्ट १०) में भारत के विभिन्न साधन-संयन्त्रों के आँकड़ों के अनुसार, काष्ठ-स्लीपरों का उपचार मूल्य दिया गया है।

एक साधारण गणना (११) के अनुसार भारतीय रेलवे में काष्ठ-स्लीपरों की अनुपचारित और उपचारित दशाओं की औसत सेवा-आयु स्थूल प्रकार से नीचे दी जाती है।

सारणी—२५

काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	व्यापारिक नाम	अनुपचारित आयु, वर्षों में	उपचारित आयु, वर्षों में
अल्टिंजिया इक्सैल्सा ..	जुटीली	५	१७ से २०
अर्टोकार्पस् चपलाशा ..	चपलाश	८	२२
सीड्रस देवदारा ..	देवदार	—	१५ से २७
डिप्टोकार्पस इन्डीकस् ..	धूमा	३	१७
मैसुवा फैरीया ..	नैहौर	१०	—
पाइनस् इक्सैल्सा ..	कैल	—	१० से २१
पाइनस् रौक्सबर्घी ..	चीड़	२ से ३	११ से २३
पाइसीलोन्यूरौन इन्डीकम् ..	बलाघी	—	२४
शोरियारोबस्टा ..	साल	१६ से १८	—
टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा ..	होलौक	६	१७ से १८

२. बिजली व तार-खम्भ और आधार-स्तम्भ

संयुक्त राज्य अमेरिका में, जो भारत से लगभग तीन गुना बड़ा है, प्रति वर्ष ६० (१छ) लाख हर प्रकार के काष्ठ-खम्भों और ४० लाख काष्ठ-स्तम्भों का उपचार कर प्रयोग किया जाता है। जर्मनी में ३० लाख उपचारित काष्ठ-खम्भ और स्तम्भ प्रयुक्त किये जाते हैं। स्वीडन में राजकीय तार-विभाग द्वारा प्रति वर्ष २ लाख काष्ठ-खम्भों का उपचार कर प्रयोग किया जाता है। भारत में मुश्किल से १० हजार काष्ठ-खम्भों का प्रति वर्ष उपचार किया जाता है। इनका प्रयोग मुख्यतः मैसूर, केरल और बिहार में होता आया है। हाल में ही हिमांचल प्रदेश में काष्ठ-खम्भों का उपचार आरम्भ हुआ है।

काष्ठ-खम्भों के प्रयोग से लाभ-प्राप्ति के बारे में पहले ही लिखा जा चुका है, अब इस पर अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है। संसार के सभी देशों का यह अनुभव है कि सेवा और मितव्ययिता की दृष्टि से बिजली और तार के लिए उपचारित काष्ठ-खम्भ सबसे अधिक उपयोगी वस्तु हैं। इसके अतिरिक्त काष्ठ में उच्च पार-द्युतिक ('डाइ-इलैक्ट्रिक') गुण होने के कारण, वह विद्युत-संचार के लिए एक आदर्श सामग्री है। सामुद्रिक स्तम्भों के लिए भी धातु की अपेक्षा काष्ठ-खम्भ उपयुक्त हैं, क्योंकि धातु में शीघ्र ही समुद्र-जल से संक्षारण हो जाता है।

काष्ठ-खम्भों को भूमि में गाड़ने के कारण, उन्हें काष्ठ-नाशक प्रतिकारकों का अधिकतम सामना करना पड़ता है, विशेष कर भारत में, जहाँ का जलवायु नाश-कारकों के लिए अनुकूल है। अतः इनके उपचार के लिए उपयुक्त परिरक्षी और उग्र विधाओं का प्रयोग करना आवश्यक है।

काष्ठ-खम्भों को गोलाकार रूप में ही काम में लाते हैं, अतः इनमें रसकाष्ठ का एक मोटा बाह्य स्तर होता है, जो अति अल्पस्थायी है। संतोषजनक सेवा-आयु की प्राप्ति के लिए इस रसकाष्ठ का उपचार अत्यावश्यक है। खम्भ के लिए चाहे किसी भी जाति का काष्ठ छाँटा जाय, उसका उचित प्रकार से उपचार करने पर ही सफल परिणाम निकल सकते हैं। अधिक रसकाष्ठ होने के कारण काष्ठ-खम्भ के उपचार में उतनी कठिनाई नहीं पड़ती, जितनी रेलवे-स्लीपर के उपचार में, क्योंकि रेलवे-स्लीपर में रसकाष्ठ की मात्रा बहुधा कम रहती है और सारकाष्ठ की मात्रा अधिक। सारकाष्ठ के उपचार में अति उग्र विधाओं का प्रयोग करना पड़ता है।

भारत में उपचारित काष्ठ-खम्भों की सेवा-आयु के बारे में प्रगतिशील विदेशी राज्यों की तरह अधिक सामग्री प्राप्त नहीं है। अतः यहाँ उपचार के पश्चात् उन्हीं काष्ठों का प्रयोग करना हितकारी होगा, जिनका सारकाष्ठ दीर्घ-स्थायी या सरल-उपचारणीय हो। वन-अनुसन्धान-शाला में सेवा-आयु प्राप्ति के उद्देश्य से किये गये परीक्षणों के अनुसार परीक्षण-प्रांगण में लगाये हुए उपचारित काष्ठ-खम्भों से अच्छे परिणाम निकले हैं। लगभग २० वर्ष पश्चात् चीड़, साल और सैन के उपचारित काष्ठ-खम्भे अब भी अच्छी दशा में हैं और आशा की जाती है कि वे और भी कई वर्षों तक अच्छी दशा में रहेंगे। इनका संक्षिप्त विवरण सारणी २६ (क) में दिया गया है।

सारणी—२६ (क)

वन-अनुसन्धानशाला में उपचारित काष्ठ-खम्भों की सेवा-आयु के निश्चयनार्थ हुए प्रांगण-परीक्षणों का परिणाम

खम्भों की लम्बाई—२० फुट (६ ·१ मीटर) उपचार विधि—निपीड (लौरी प्रक्रिया)

क्रमांक	खम्भ की काष्ठ-जाति	प्रयुक्त परिरक्षी	प्रचूषण		खम्भ की दशा	
			पौंड प्रति घन फुट	किलोग्राम प्रति घन मीटर	सेवा-काल निकटतम	दशा
					वर्ष	
१	**पाइनस लौंगीफोलिया** (चीड़)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	१ ·२५४	२० ·०६	२२	स्वस्थ
२	,,	,,	० ·८१०	१२ ·९६	२२	स्वस्थ
३	,,	,,	० ·९१२	१४ ·५९	२२	स्वस्थ
४	,,	,,	० ·९०	१४ ·४०	२२	स्वस्थ
५	,,	,,	० ·९१८	१४ ·६९	२२	स्वस्थ
६	,,	,,	० ·७८०	१२ ·४८	२२	स्वस्थ
७	,,	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४० : ६०)	९ ·०	१४४ ·०	२२	स्वस्थ
८	,,	,,	१५ ·०	२४० ·०	२२	न्यून कवक
९	,,	,,	५ ·०	८० ·०	२२	न्यून दीमक-कवक

क्रमांक	खम्भ की काष्ठ-जाति	प्रयुक्त परिरक्षी	प्रचूषण		खम्भ की दशा	
			पौंड प्रति घन फुट	किलोग्राम प्रति घन मीटर	सेवा-काल निकटतम	दशा
१०	"	"	११ ·०	१७६ ·०	२२	न्यून कवक
११	"	"	९ ·०	१४४ ·०	२२	स्वस्थ
१२	"	"	९ ·०	१४४ ·०	२२	स्वस्थ
१	**शोरिया रोबस्टा** (साल)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	० ·३१२	४ ·९९	२१	स्वस्थ
२	"	"	० ·४२६	६ ·८२	२१	अति न्यून कवक
३	"	"	० ·४८६	७ ·७८	२१	स्वस्थ
४	"	"	० ·४९२	७ ·८७	२१	न्यून कवक
५	"		० ·४७४	७ ·५८	२१	अति न्यून कवक
६	"		० ·४२०	६ ·७२	२१	अति न्यून कवक
७	"	क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	४ ·७	७५ ·२	२१	न्यून कवक
८	"	"	५ ·४	८६ ·४	२१	मध्यम कवक
९	"	"	४ ·६	७३ ·६	२१	न्यून कवक
१०	"	"	३ ·८	६० ·८	२१	अति न्यून कवक
११	"	"	४ ·१	६५ ·६	२१	न्यून कवक
१२	"		३ ·८	६० ·८	२१	न्यून कवक

१	टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा (सैन)	एस्क्यू (६ प्रतिशत जल विलयन)	० ·३६	५ ·७६	२१	स्वस्थ
२	”	”	० ·४७४	७ ·५८	२१	न्यून कवक
३	”	”	० ·३३	५ ·२८	२१	न्यून कवक
४	”	”	० ·४२	६ ·७२	२१	स्वस्थ
५	”	”	० ·३७२	५ ·९५	२१	स्वस्थ
६	”	”	० ·३४२	५ ·४७	२१	स्वस्थ
७	”	क्रियोजोट-इन्धन तैल (५०:५०)	२ ·४	३८ ·४	२१	न्यून कवक
८	”	”	२ ·९	४६ ·४	२१	न्यून दीमक मध्यम कवक
९	”	”	३ ·७	५९ ·२	२१	अति न्यून कवक
१०	”	”	२ ·०	३२ ·०	२१	स्वस्थ
११	”	”	१ ·८	२८ ·८	२१	मध्यम दीमक कवक
१२	”	”	१ ·५	२४ ·४	२१	स्वस्थ

भारत में कितने काष्ठ-खम्भों और स्तम्भों की आवश्यकता होगी, इसका अनुमान लगाना कठिन है, परन्तु जल-विद्युत योजनाओं के विकास-कार्य और समुद्रतटीय नौ-परिवहण के सुधार-कार्य के लिए एक बहुत बड़ी संख्या में काष्ठ-खम्भों और आधार काष्ठ-स्तम्भों की माँग रहेगी। कम से कम अगले पाँच-वर्षों में नगरों और ग्रामों में बिजली लगाने के लिए प्रति वर्ष ५ लाख (१छ) खम्भों की आवश्यकता होगी। हमारे देश के लगभग २७०३ नगरों और ६५५८९२ ग्रामों को बिजली पहुँचाने के लिए प्रायः ३० लाख खम्भ चाहिए। प्रायः एक लाख आधार-स्तम्भ प्रति वर्ष हमारे बन्दरगाहों के सुधार और नये निर्माण के लिए चाहिए। एक लाख अन्य आधार-स्तम्भ नहरों, नदियों और नालों पर पुल बनाने के लिए आवश्यक होंगे, यदि नगरों और ग्रामों में यातायात का संबन्ध स्थापित कराना हो। ग्रामीण सुधार के लिए बिजली भेजने और उचित सड़कों के बनाने का प्रबन्ध अति उपयोगी है। इस कार्य के लिए शीघ्र बढ़नेवाले पेड़ों का, जिनसे काष्ठ-खम्भ प्राप्त हो सकें, उगाना श्रेयस्कर होगा। ऐसे पेड़ जंगलों में, बंजर भूमि में, विशेष कर समुद्रतट के स्थानों में लगाये जा सकते हैं। ऐसी एक काष्ठजाति **कैसुएरीना** है जो शीघ्र बढ़ती है, पर इस काष्ठ को इन्धन के काम में ही लाया जाता है। यदि घरेलू कार्य के लिए बिजली का प्रयोग होने लगे तो **कैसुएरीना** काष्ठ को खम्भों के कार्य में लाया जा सकता है। कुछ अंश तक खम्भों की पूर्ति **कैसुएरीना** से हो सकती है। सारणी २६ (ख) में खम्भों के लिए उपयुक्त काष्ठजातियों की सूची दी गयी है।

सारणी २६(ग) में भारत के विभिन्न राज्यों के विद्युत्-विभागों की खम्भों की माँग और वन-विभागों द्वारा काष्ठ-खम्भों की प्राप्यता और उनके मूल्य तथा उपचार की सुविधाओं के सम्बन्ध में विवरण दिया गया है। ये आँकड़े इस सम्बन्ध में निर्गत प्रश्नावली के उत्तर में प्राप्त हुए हैं।

भारतीय मानक संस्था ('इन्डियन स्टैन्डर्ड्स इन्स्टीटयूशन्'), आइ० एस० ८७६–१९५७, के अनुसार खम्भ के योग्य काष्ठों को तीन समूहों ('ग्रूप्स्') में विभाजित किया गया है। ये उनके विदारण के मापांक ('मौडयूलस् औफ रप्चर') की अर्हा पर आधारित हैं, जिनका निर्धारण काष्ठ की हरी अवस्था अर्थात् २५ प्रतिशत आर्द्रता से ऊपर की अवस्था में किया गया है। ये निम्न प्रकार से हैं—

समूह (अ)—इसमें साल ('शोरिया रोबस्टा') जैसे अति बलिष्ठ काष्ठ हैं। इनकी मुड़न में विदारण का मापांक १२००० पौंड प्रति वर्ग इंच (८५०

सारणी—२६ (ख)

खम्भों के लिए उपयुक्त काष्ठ-जातियों की सूची (अन्वीक्षात्मक 'टैन्टेटिव')

क्रमांक	काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	काष्ठ-जाति व्यापारी नाम	प्राप्ति-स्थान, भारत में (दिशा या राज्य)	पौंड में भार प्रति घन फुट (वायु-शुष्क अवस्था में)	लगभग विदारण का मापांक ('मौडयूलस् औफ रपचर) पौंड प्रति वर्ग इंच
१	एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम	४३	११५००
२	एनोजाइसस् लैटीफोलिया	धौदी या बकली	प्रायः सभी भागों में	५८	११५००
३	बोरेसस् फ्लैबीलीफर	पलमाइरा	पूर्व और दक्षिण	—	—
४	ब्रूगीरा जाति	मैन्ग्रूव्	अन्डमान	५६	१५६००
५	कैलोफिलम् जाति	पून	दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम	४०	९५००
६	कैसुएरीना इक्वीजैटीफोलिया	कैसुएरीना	तत्रैव	५२	१०५००
७	चुक्रैसिया टैब्यूलैरिस	चुक्रैसी	पूर्व	४३	८५००
८	क्यूलीनिया इक्सैल्सा	करानी	दक्षिण	४०	१०५००
९	डाइकौप्सिस् इलिप्टिका	पाली	दक्षिण	३९	१००००
१०	डिप्टोकार्पस इन्डीकस्	काला डामर या धूमा	दक्षिण और अन्डमान	४८	१००००
११	गैरूगा पिनाटा	गरूगा	उत्तर-पश्चिम छोड़ प्रायः सभी भागों में	३७	६५००

क्रमांक	काष्ठ-जाति, पारिभाषिक नाम	काष्ठ-जाति व्यापारी नाम	प्राप्ति-स्थान, भारत में (दिशा या राज्य)	पौंड में भार प्रति घन फुट (वायु-शुष्क अवस्था में)	लगभग विदारण का मापांक ('मौडयूलम् औफ रपचर) पौंड प्रति वर्ग इंच
१२	हैरीटीरा माइनर	सुन्द्री	पूर्व	६७	११५००
१३	होपिया पार्वीफ्लोरा	होपिया	दक्षिण-पश्चिम	६०	१३०००
१४	लैगर्स्टोमिया लैन्सियोलाटा	बैन्टीक	दक्षिण-पश्चिम	४७	१००००
१५	मैसुवा फैरिया	मैसुवा या नैहोर	उत्तर-पूर्व और दक्षिण	६२	१६५००
१६	पाइनम् इक्सैल्सा	कैल	पंजाब	३३	६०००
१७	पाइनस् रौक्सबर्गी	चीड़	उत्तरप्रदेश और पंजाब	३४	७५००
१८	पौसीलौन्यूरौन इन्डीकम्	बलागी	दक्षिण-पश्चिम	६०	१६५००
१९	पौलीऐन्थिया फ्रैगैन्स	—	दक्षिण-पश्चिम	३३	७५००
२०	टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	बीजासाल	मध्य और दक्षिण	५२	१०५००
२१	शोरिया एसेमिका	मकई	उत्तर-पूर्व	३५	८०००
२२	शोरिया रोबस्टा	साल	मध्य,उत्तर और उत्तर-पूर्व	५७	१४०००
२३	टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक	दक्षिण और मध्य	४४	११०००
२४	टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	मध्य और दक्षिण	५२	८५००
२५	टर्मिनेलिया मन्नी	काला चुगलम	अन्डमान	५४	१२०००
२६	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	दक्षिण और पश्चिम	५०	१२०००
२७	टर्मिनेलिया टोमैन्टोसा	अस्ना	उत्तर और पश्चिम छोड़, प्रायः सभी भागों में	५५	११५००
२८	जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	दक्षिण।	५४	११५००

सारणी–२६ (ग)

राज्य	राज्य विद्युत विभागों की बिजली-खम्भों की माँग (१९५६ से १९६१ तक)	राज्य वन विभागों द्वारा काष्ठ-खम्भों की प्राप्यता और मूल्य		उपचार-सुविधाएँ तथा मूल्य	
		वार्षिक प्राप्यता	मूल्य प्रति खम्भ रुपया	उपचार-संयन्त्र	उपचार-मूल्य (रुपया) प्रति घन फुट
१	२	३	४	५	६
अण्डमान	—	३६०००	३५ से १२० रु० (लम्बाई और मोटाई के अनुसार)	एक तापन-शीतन, खला कुंड	१ '०० रु.
आन्ध्र	२१००००	कुछ नहीं	—	एक निपीड (पी० डब्ल्यू० डी० का)	—
आसाम	३६००	१००० (उपचारित)	—	तीन क्रियोजोटी-करण (निपीड)	१·३८ से ७ '०० रु०
बिहार	२०००००	४७७५०	५ से १९ रु०	तीन निपीड, (एस्क्यू कृत)	१ '५० रु०
बम्बई	—	५००००	—	कुछ नहीं	—
कुर्ग	—	१००० से १५००	—	कुछ नहीं	—
हिमांचल प्रदेश	१०५००	—	—	घाटियों में भूमि उपचार	—
हैदराबाद	२४०००	कुछ नहीं	—	कुछ नहीं	—

१	२	३	४	५	६
जम्मू और कश्मीर	३६००	बड़ी संख्या में प्राप्त	—	एक निपीड	—
मध्य भारत	८००	—	—	—	—
मध्य प्रदेश	५००००	८००० से १००००	—	कुछ नहीं	—
मद्रास	२०००००	३५००	१५ से ३० रु०	एक क्रियोजोटीकरण एक निपीड (एस्क्यू)	—
मैसूर	१५००००	लगभग ५०,०००	२५ से ४१ रु०	एक निपीड (क्रियोजोटीकरण)	८·० से २०·० रु० (प्रति खम्भ)
उड़ीसा	१५०००	कुछ नहीं	—	एक क्रियोजोटीकरण एक निपीड (एस्क्यू)	—
मनीपुर	—	१०००	—	—	—
पैप्सू	५०००	बहुत थोड़ी संख्या में	—	कुछ नहीं	—
पंजाब	२६५९०	३०००	—	एक क्रियोजोटीकरण (निपीड)	—
सौराष्ट्र	६०००	कुछ नहीं	—	—	—
ट्रावन्कोर-कोचीन	१५००००	संपूर्ण माँग	३१ से ७१ रु०	कई निपीड	२·०० से ३·०० रु० (प्रति खम्भ)
उत्तर प्रदेश	—	५००० से १००००तक	—	कुछ नहीं	—
विन्ध्य प्रदेश	—	२००००	—	एक निपीड	—
देहली	१०००	कुछ नहीं	—	—	—
राजस्थान	३००	कुछ नहीं	—	—	—
भोपाल	—	३००० से ५०००	६ से ७ रु०	—	—

किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) या उससे अधिक है। इसमें पल्माइरा ताड़, ब्रुगीरा, होपिया, मैसुवा और बलागी जैसे काष्ठ हैं।

समूह (ब)—इसमें टीक ('टैक्टोना ग्रेन्डिस्') जैसे बलिष्ठ काष्ठ हैं। इनके मुड़न में विदारण का मापांक ९००० से १२००० पौंड प्रतिवर्ग इंच (६३० से ८५० किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक है। इसमें मुन्दानी, पून, कैसुएरीना, शीशम, गुर्जन, हौलौंग, पिनै, सुन्द्री, नाना, बीजासाल, सफेद और काला चुगलम, किन्डल, सैन और इरूल जैसे काष्ठ हैं।

समूह (स)—इसमें चीड़ ('पाइनस् रौक्सबर्गी') जैसे साधारण बलिष्ठ काष्ठ हैं। इनके मुड़न में विदारण का मापांक ६५०० से ९००० पौंड प्रति वर्ग इंच (४५५ से ६३० किलोग्राम प्रति वर्ग सैन्टीमीटर) तक है। इसमें देवदार, गरूगा, जारूल, पिनमा, मकई, अर्जुन, हौलौक और सफेद बौम्बवे जैसे काष्ठ हैं।

इसी संस्था के अनुसार ऊपर के तीनों समूह के काष्ठ खम्भों के सिरे से २ फुट (६० सैन्टीमीटर) नीचे के भार पर टूटने पर पाँच वर्गों में वर्गीकरण किया है। ये इस प्रकार हैं।

वर्ग १—अन्तिम त्रोटन भार ३००० पौंड (१३६५ किलोग्राम) से कम नहीं।
वर्ग २—अन्तिम त्रोटन भार २४०० पौंड (११०० किलोग्राम) से कम नहीं।
वर्ग ३—अन्तिम त्रोटन भार १९०० पौंड (८६० किलोग्राम) से कम नहीं।
वर्ग ४—अन्तिम त्रोटन भार १६०० पौंड (७२८ किलोग्राम) से कम नहीं।
वर्ग ५—अन्तिम त्रोटन भार १२०० पौंड (५४५ किलोग्राम) से कम नहीं।

काष्ठ-खम्भ के उपचार करने में क्रियोजोट-इन्धन तैल परिरक्षी का प्रयोग कर सकते हैं; विशेषकर तापन-शीतन उपचार-क्रिया में तैलीय परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाता है। पर इस परिरक्षी को काम में लाने से खम्भ की सतह पर तैल फैलकर निकलने के कारण मनुष्यों को ऐसे खम्भों पर चढ़ने में असुविधा रहती है। इन खम्भों का रंगों से भी लेपन नहीं किया जा सकता। अतः खम्भों के उपचार में बद्ध-रूपी जल विलयन परिरक्षी, जैसे एस्क्यू, कुक्रोम (सैल्क्यूयर) इत्यादि को ही मान्यता दी जाती है। इनसे उपचार करने के पश्चात् काष्ठ-खम्भों के बाहर किसी भी प्रकार का रंग-लेप किया जा सकता है। जैसा कि सारणी १५ में बताया गया है, क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) का प्रचूषण १० पौंड प्रति घन फुट (१६० किलोग्राम प्रति

सारणी—२७

काष्ठ-खम्भों के मापक परिमाण । (भारतीय मानक संस्था के आइ० एस्० ८७६—१९५७ के अनुसार)

संपूर्ण ऊँचाई फुट में	भूमितल से ऊँचाई फुट में	मुण्ड-छोर से ६ फुट पर न्यूनतम गोलाई इंच में ।														
		वर्ग १			वर्ग २			वर्ग ३			वर्ग ४			वर्ग ५		
		समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)	समूह (अ)	समूह (ब)	समूह (स)
२०	१६	२४	२६	२८	२२	२४	२६	२०	२२	२५	१९	२०	२२	१९	२०	२२
२५	२०	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६	२०	२२	२४	१९	२०	२२
३०	२५	२७	२९	३३	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६	२०	२२	२४
३५	२९	२९	३१	३५	२६	२८	३२	२५	२७	३०	२३	२५	२८	२१	२३	२६
४०	३४	३०	३२	३७	२८	३०	३४	२६	२८	३२	२४	२६	२९	२२	२४	२७
४५	३८	३२	३५	३८	३०	३२	३५	२८	३०	३४	२६	२९	३०	२५	२७	३०
सब ऊँचाई के लिए सिरे पर न्यूनतम गोलाई (इंच में)		१९	२०	२३	१७	१८	२१	१६	१७	१९	१४	१५	१७	१२	१३	१५

फुट और इंचों के क्रमशः मीटर और सैन्टीमीटरों में परिवर्तन के लिए ०.३०५ और २.५४ से गुणा करना होगा ।

घन मीटर) तथा एस्क्यू और कुक्रोम (सैल्क्यूयर) का १.० पौंड (शुष्क लवण) प्रति घन फुट (१६ किलोग्राम प्रति घन मीटर) होना चाहिए।

काष्ठ-खम्भ के उपचार के लिए जहाँ तक सम्भव हो निपीड क्रिया ही उत्तम है। यह क्रिया संशोषित काष्ठ पर ही की जाती है। यदि ऐसा सम्भव न हो और जहाँ नये कटान के हरे खम्भ प्राप्य हों वहाँ रसकाष्ठ के उपचार के लिए बूशरी विधा उपयुक्त है, परन्तु ऐसे खम्भों के सारकाष्ठ प्राकृतिक दशा में होने चाहिए, अन्यथा सार-काष्ठ अस्थायी होने से संतोषजनक परिणाम नहीं निकल सकते, क्योंकि बूशरी विधा से सारकाष्ठ का उपचार होना सम्भव नहीं है। बूशरी विधा से अन्य लाभ यह है कि इसके लिए एक साधारण यन्त्र पर्याप्त है जो सरलता से पर्वतों या वनों में ले जाया जा सकता है। इससे हरे बाँसों का भी संपूर्ण गोल आकार में उपचार हो सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी विधि से संपूर्ण गोल बाँस का सफलता से उपचार कराना सम्भव नहीं है। आसारण विधि से भी, जिसका वर्णन भाग २, अध्याय ३ (ङ) में किया गया है, हरे काष्ठ खम्भों का उपचार किया जा सकता है, पर इसमें उचित बद्ध-रूपी जलविलयन परिरक्षी का ही प्रयोग किया जाना अनिवार्य है।

भारत में केरल, मैसूर, बिहार, पश्चिमी बंगाल, अण्डमान द्वीप समूह, हिमांचल प्रदेश में खम्भ-उपचार के लिए निपीड-संयन्त्र स्थापित किये गये हैं। डाक और तार विभाग ने भी टैलीफोन और तार के खम्भों का उपचार आरम्भ कर दिया है। मध्य प्रदेश में जबलपुर के निकटवर्त्ती स्थानों में, डाक और तार विभाग के 'टैकनिकल डैवलप्मैन्ट सर्किल' के अन्तर्गत, उपचारित काष्ठ-खम्भों का प्रयोग टैलीफोन और तार की लाइनों के लिए किया है। भारतीय मानक संस्था ने भी बिजली और तार खम्भों के लिए विशिष्टियाँ बनायी हैं। इनमें भिन्न-भिन्न वर्गों के काष्ठ-खम्भों के परिमाण, जाति और उपचार के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना दी है।

डाक्टर पंजाबराव देशमुख ने, जो केन्द्रीय भारत सरकार के कृषि मंत्री थे, वनोपयोग केन्द्रीय मन्त्रणा मण्डल की चौथी बैठक ('फोर्थ मीटिंग ऑफ दी सैन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑन फॉरेस्ट यूटीलाइज़ेशन') में, जो १० जुलाई १९५८ को देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला में हुई थी, उद्घाटन-भाषण में कहा था—

"संसार में सबसे सस्ता इस्पात का उत्पादन बेलजियम में होता है, पर फिर भी बेलजियम टैलीफोन और तार के खंभों के उपयोग के लिए उपचारित काष्ठ को इस्पात से कम खर्चीला पाता है। युनाइटेड किंगडम में भी ९० प्रतिशत से ऊपर टैलीफोन और तार के खम्भे काष्ठ के हैं जो आयात किये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में

प्रमुख रेलों में अभी तक ८० प्रतिशत पुल उपचारित काष्ठ से बनाये जाते हैं, न कि इस्पात से। वहाँ रेलों में भारत की अपेक्षा कहीं अधिक भारी इंजनों का प्रयोग करते हैं। जब कि ऐसे उच्चतम उद्योगवान देश उपचारित काष्ठ को इस प्रकार के प्रयोगों में लगा सकते हैं, तो भारत भी ऐसा करने का प्रयत्न क्यों न करे जबकि उसकी औद्योगिक प्रगति मुख्यतः इस्पात पर ही निर्भर है।

"वास्तव में, जब मैं नवम्बर १९४८ में संयुक्त राज्य अमेरिका में गया, काष्ठ का टैलीफोन, तार और बिजली के कार्य के लिए इस प्रकार का अति ही विस्तृत प्रयोग देखकर चकित रह गया, जबकि भारत में सभी जगह इन सब कार्यों के लिए इस्पात ही प्रयुक्त होता है। ढाई साल हुए जब मैं आस्ट्रिया और पूर्वीय यूरोप के देशों में गया था, वहाँ भी मैंने इस्पात के खम्भे कहीं नहीं देखे। मैंने इस तथ्य का अभिलेखन अपने सहकारी शिष्टमण्डल की रूस-यात्रा की रिपोर्ट में किया है। यह कोई अचम्भे की बात नहीं है कि मार्शल बुलगानिन और मिस्टर खुश्चेव अपनी भारत-यात्रा में यहाँ इस्पात का ऐसा दुरुपयोग देखकर अपने भावों को प्रकट करने से न रुक सके। मैंने भी कई अवसरों पर यही बात कही है, किन्तु मुझे आश्चर्य है कि इस पर बहुत कम लोगों ने ही ध्यान दिया है। निःसन्देह इस स्थिति में थोड़ा बहुत परिवर्तन हुआ है, पर अब भी हमको बहुत कुछ करना है।

"अपनी राष्ट्रीय वन-सम्पत्ति के विकास के लिए, हम केवल इस कथन को ही बारम्बार नहीं दोहरा सकते कि अधिक से अधिक भूमि वनों के अधीन लानी चाहिए। यद्यपि स्वभावतः ही हमें पिछले कई वर्षों के विवेकहीन वन-समुपयोजन के कारण खोई हुई वन संपत्ति को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए, तथापि हमें एक नूतन वन-अर्हापण की प्रथा की भी रचना करनी चाहिए। वह यह है कि काष्ठ-उपयोजन की विचारयुक्त और सावधान विधियों का आविष्कार किया जाय और उन्हें जन-समुदाय के लिए लोकप्रिय बनाया जाय। अधः जाति अथवा निम्न श्रेणी के काष्ठों को, जिनका कोई इस समय उपयुक्त प्रयोग नहीं है, वैज्ञानिक संशोषण और उपचार द्वारा, गुणों और स्थायित्व में उन काष्ठों के तुल्य बनाया जाय जो व्यापार और उद्योग में माननीय हैं। हमारे वनों का अधिकांश भाग इन अस्थायी जाति के काष्ठों से ही बना है और यदि इन काष्ठों को साधनों द्वारा सुधार किये गये प्रयोगों में, जैसे कि आपट्टित काष्ठ, स्तर-काष्ठ, संपीडित पट्ट, इत्यादि-इत्यादि के काम में लाया जाय तो हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में विशाल वृद्धि हो सकती है।"

उपचारित काष्ठ-स्लीपरों की भाँति उपचारित काष्ठ-खम्भ भी कम खर्चीले
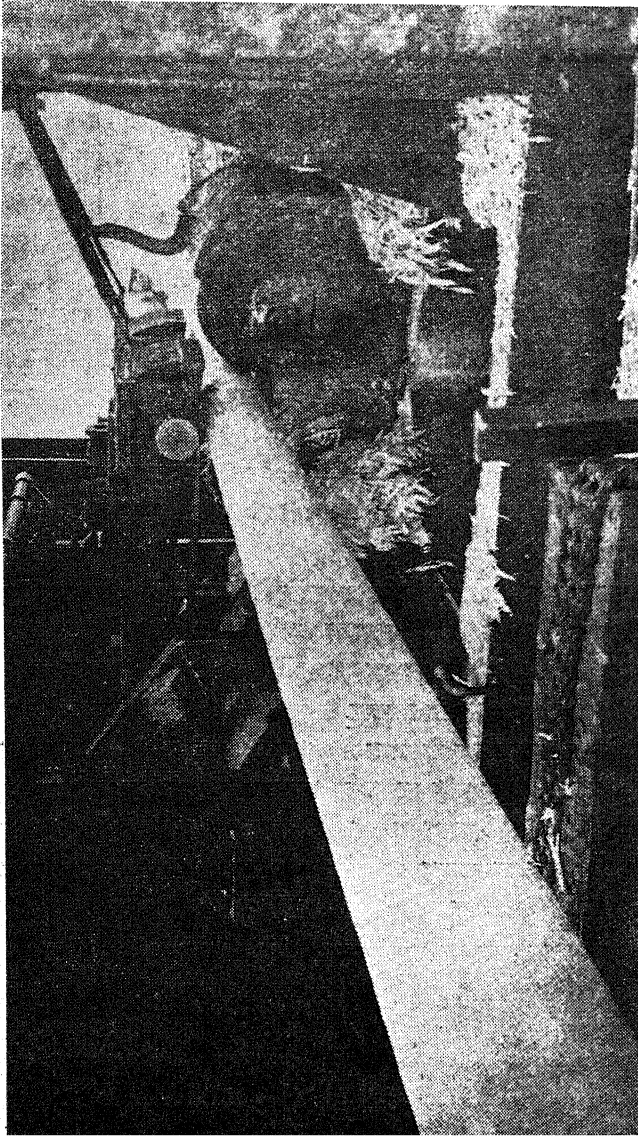
चित्र ९०—काष्ठ-खम्भ को स्वच्छ, सीधा और उचित ढाल में बनाने की मशीन।

होते हैं। वार्षिक मूल्य की दृष्टि से उपचारित काष्ठ-खम्भ अन्य प्रकार के खंभों से, जैसे कि लोहे, सीमेंट इत्यादि के खम्भों से, अल्पव्यय साध्य होते हैं। अमेरिका-जैसे प्रगतिशील देशों में काष्ठ-खम्भ कई हजार वोल्ट्स की विद्युत लाइनों और नगरों की रोशनी के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। वहाँ खम्भों को मशीनों द्वारा उचित प्रकार का ढाल दिया जाता है जिससे वे सीधे और स्वच्छ दिखाई दें। ऐसी एक मशीन चित्र ९० में दिखलायी गयी है।

वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून, में कुछ विशेष प्रकार के काष्ठ-खम्भों के जोड़ों का आयोजन किया जा रहा है और कुछ उचित प्रकार के जोड़ बनाये गये हैं। ऐसा होने पर पर्वतों से छोटी लम्बाई के खम्भों के परिवाहन में सरलता हो सकती है, और तत्पश्चात् प्रयोग-स्थानों में ले जाकर ये जोड़ दिये जा सकते हैं। ऐसा करने से अधिक संख्या में काष्ठ-खम्भ प्राप्त हो सकते हैं, और इनके मूल्य में भी भारी कमी हो सकती है। चित्र ९१, ९२ में एक ऐसा जोड़ दिखलाया गया है।

काष्ठ-खम्भ के आड़े-बत्तों ('क्रौस-आर्मस्') के लिए भी काष्ठ का उपयोग किया जाता है। यथार्थ आकार में काटने और छिद्रण करने के पश्चात् ही इनका उपचार कराना उचित है।

काष्ठ-खम्भ को भूमि पर किसी विशेष प्रकार से स्थापन की आवश्यकता नहीं होती जैसे कि लोह-खम्भों के लिए आवश्यकता पड़ती है। भूमि पर यदि काष्ठ-खम्भ सड़ जाय, तो उतने ही भाग को निकाल कर एक नये उपचारित काष्ठ-खम्भ की स्थापना की जा सकती है। चित्र ९३ में इस प्रकार से पुनः स्थापन की रीति दिखलायी गयी है। यदि भूमि पर सड़न थोड़ी ही मात्रा में हो तो पट्टी-बन्धन से उसकी सेवा-आयु बढ़ा दी जा सकती है। यदि भूमि पर सड़ने के कारण खम्भ गिर गया हो तो उसका शेष भाग, सड़े हिस्से को पूर्णतया अलग कर, छोटे-मोटे उद्योग-कार्यों में, जैसे बाड़-खम्भ इत्यादि में लगाया जा सकता है। अतः काष्ठ-खम्भ का नाशरक्षण मूल्य अन्य प्रकार के धातु-खम्भों से अधिक होता है।

खानों के आधार-स्तम्भों के लिए भी उपचारित काष्ठ उपयुक्त हैं। खानों में सड़न अवस्था अत्यधिक रहती है और यहाँ अग्नि का भी भय रहता है। अतः यहाँ के काष्ठ-आधार स्तम्भ के उपचार के लिए अग्निरोधक-परिरक्षी का प्रयोग हितकर है। खानों में तैलीय परिरक्षी का प्रयोग अग्निभय के कारण कम करते हैं, यद्यपि यह भय भ्रममूलक है कि तैलीय परिरक्षी से काष्ठ अधिक प्रज्ज्वलनशील हो जाता है।

बाड़-खम्भ के लिए उपचारित काष्ठ अति उपयुक्त है। बाड़-खम्भों का बहुत

बड़ी संख्या में प्रयोग किया जाता है। गृह, उद्यान, रेल-लाइन, कृषिक्षेत्र, इत्यादि की सीमा-निर्धारण के लिए बाड़-खम्भ अति ही उपयोगी हैं। इनके उपचारण की
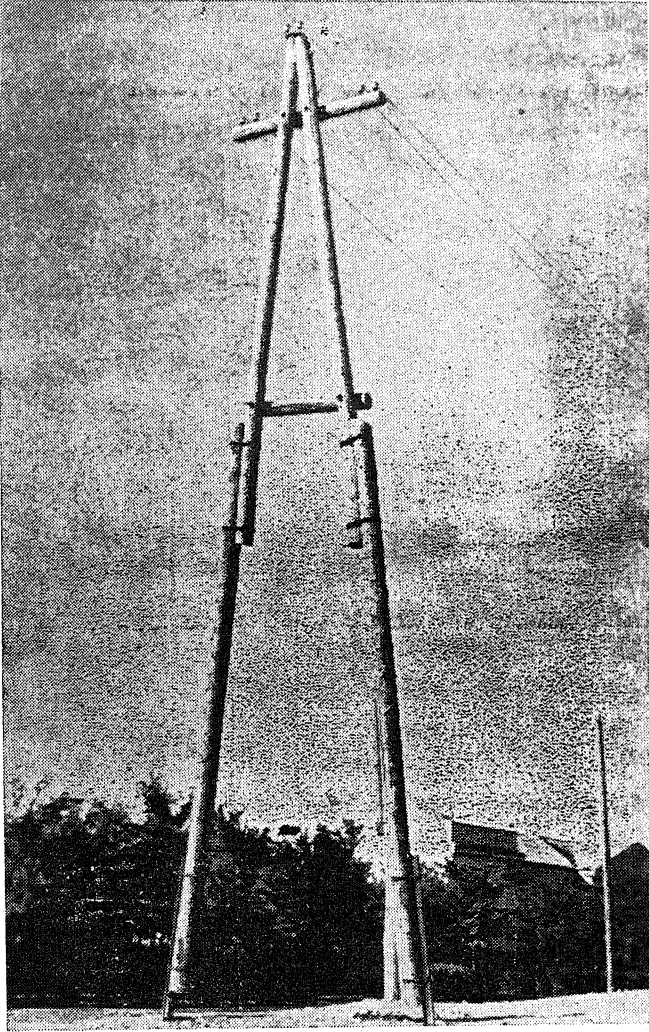
चित्र ९१—काष्ठ खम्भों का एक प्रकार का जोड़। (क)
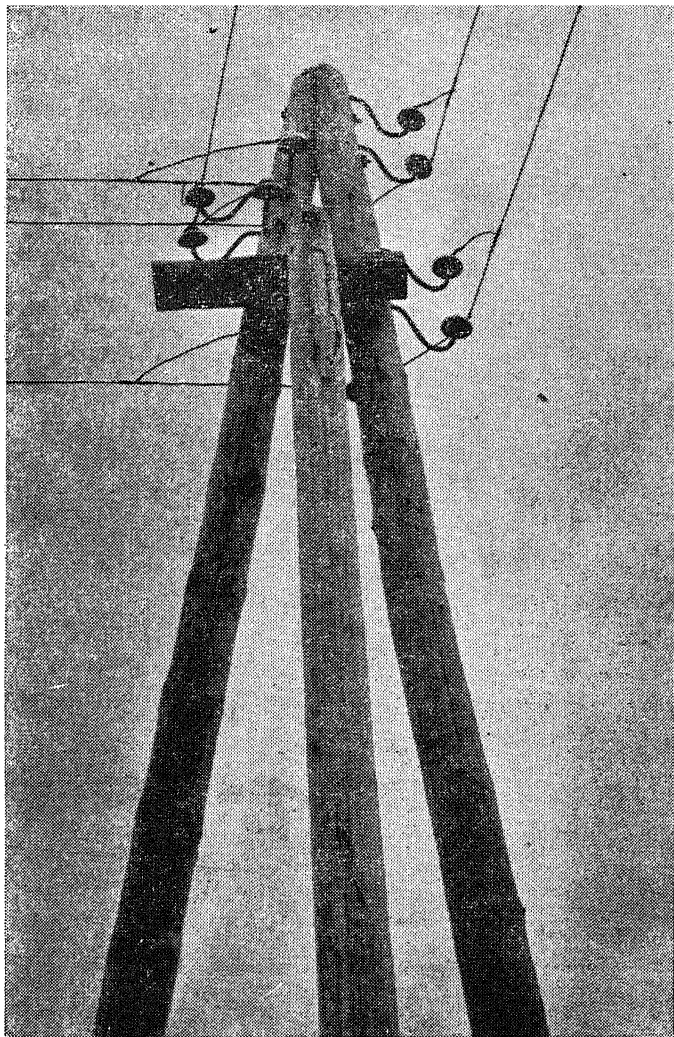
चित्र ९२—काष्ठ-खम्भों का एक प्रकार का जोड़। (ख)

विधियाँ भी सरल हैं। वन-अनुसन्धानशाला के वनवर्धकीय खंडों में साधारण तापन और शीतन क्रिया से क्रियोजोट-इन्धन तैल द्वारा उपचारित किये कुछ बाड़-खम्भ ३० वर्ष से ऊपर के सेवाकार्य के पश्चात् अब भी अच्छी दशा में हैं। अनुपचारित काष्ठ-खम्भ यहाँ एक या दो वर्ष के अन्दर ही नष्ट हो जाते हैं।
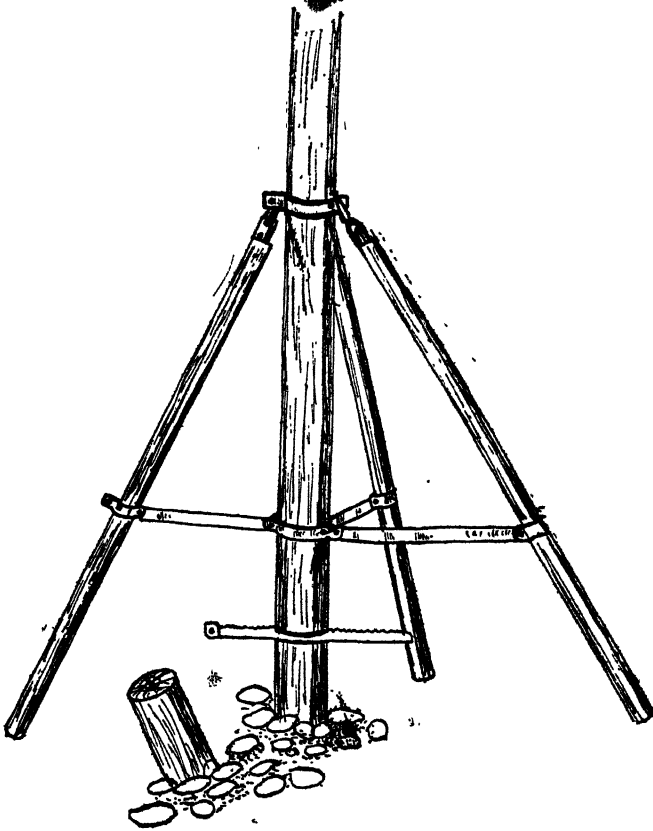
चित्र ९३—काष्ठ-खम्भ का सड़ा भाग निकाल कर पुनः स्थापन की रीति।

३. अन्य संरचनात्मक कार्य—(क) कम खर्चवाले गृह

काष्ठ, बाँस और छादन-घास का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में गृह-निर्माण के लिए किया जाता है। पूर्वकाल में जब काष्ठ-बाहुल्य था, टीक, साल और देवदार-जैसे प्रसिद्ध

और स्थायी काष्ठ विभिन्न रचनात्मक कार्यों के लिए उपलब्ध थे। इनकी माँग बढ़ने और पुराने वनों के कट जाने के कारण, ये उत्तम-काष्ठ अब अपेक्षित मात्रा में प्राप्य नहीं हैं। यदि हैं भी तो इनकी कीमतें अत्यधिक हैं। अतः द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठों को परिरक्षोपचार से उन्नत कराने की ओर अब ध्यान आकृष्ट किया जा रहा
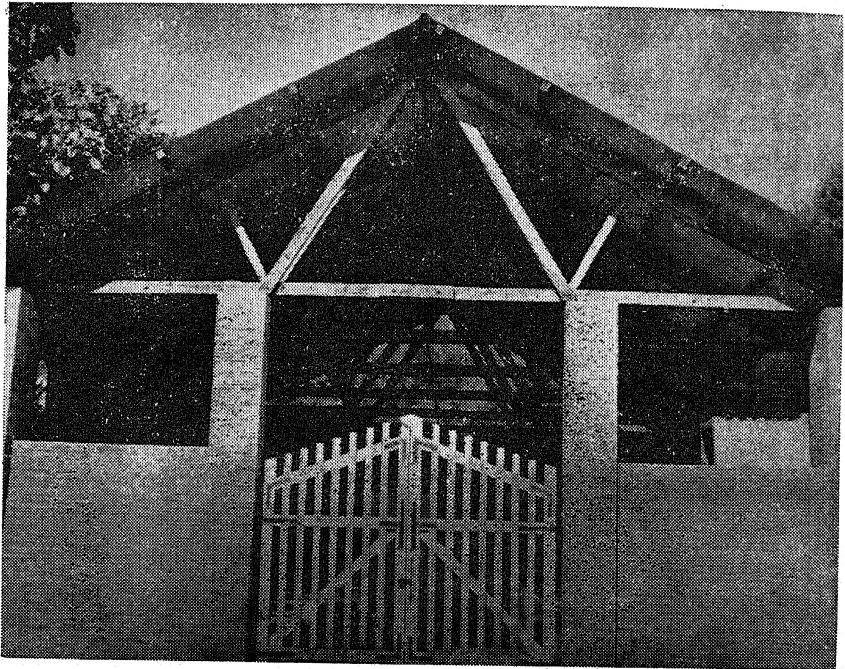
चित्र ९४—**छत के ट्रसों में छोटे आकार के उपचारित काष्ठ-बत्तों का डबल डिस्क जोड़ से निर्माण।**

है, (सारणी ३०, परिशिष्ट ११ में देखिए)। जल-विलयन परिरक्षी, विशेषकर बाहर खुले में प्रयोग के लिए बद्धरूपी-जल-विलयन परिरक्षी, इन अस्थायी काष्ठों के उपचार के लिए उपयुक्त हैं। उपचार करने के पश्चात् इन काष्ठों से संतोषजनक परिणाम निकले हैं। अब बड़े परिमाण के काष्ठों का यथोचित आकार के निपीड-रम्भ में उपचार कराना सम्भव है। चौखट, द्वारपट्ट, बल्ली इत्यादि का उपचार करके अनुकूल दशाओं में ६०–७० वर्ष या उससे अधिक सेवा-आयु की प्राप्ति हो सकती है।

विपरीत दशाओं में ४०–५० वर्ष तक भी ये काष्ठ टिकाऊ बना दिये जा सकते हैं। काष्ठ-अभियान्त्रिकी ('टिम्बर इन्जिनियरिंग') ने इतनी प्रगति कर ली है कि उचित प्रकार से रचना करके छोटे परिमाण के काष्ठ-खम्भों से छत और पुलों के लिए ट्रसों का निर्माण किया जा सकता है। इसमें अल्पस्थायी काष्ठ, जैसे कि चीड़, आम, इत्यादि काम में लाये जा सकते हैं। चित्र ९४ में छोटे आकार के उपचारित (एस्क्यू से) काष्ठों के बत्तों को 'डवलडिस्क' जोड़ के छत के द्वारा ट्रसों का निर्माण किया है। चित्र ९५ में, बाँसों द्वारा बनाये गये ट्रसों का एक दृश्य है जिसका जमिया मिलिया (जमिया नगर, न्यू देहली) के स्कूल के एक भवन के लिए निर्माण में किया गया था। इसका उपचार क्रियोजोट परिरक्षी से किया गया।
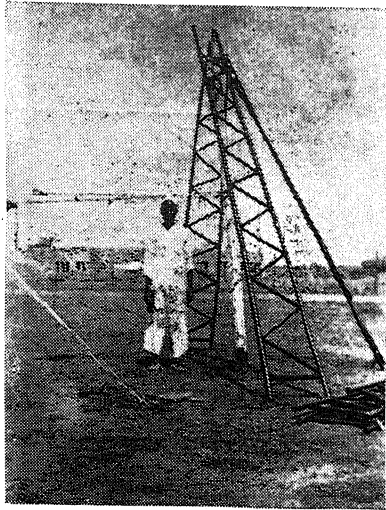
चित्र ९५--**जमिया मिलिया स्कूल (दिल्ली) के एक भवन के लिए निर्मित बाँसों का ट्रस।**

वन-अनुसन्धानशाला, देहरादून ने कम लागत के गृहों को बनाने के लिए परीक्षण किये हैं। इसमें काष्ठ, बाँस और छादन-घास का उपचार करने के पश्चात् प्रयोग किया है। उपचारित काष्ठों के चौखट बनाकर उनमें शोधित बाँस के बत्तों की जाली जड़ कर बाहर से मिट्टी-लेपन किया है जो दीवार का काम दे सकती है। छतें या तो शोधित घास की बनायी हैं या अर्ध-गोल बाँसों को जोड़कर मिलाने से नालीदार छतें बनायी हैं। धुरी के लिए उपचारित पलमाइरा-ताड़ के खम्भ को अर्ध-गोलाकार रूप में अन्दर के कोमल भाग को अलग करके और तब उपचार करने पर प्रयोग किया है। भूमि के लिए उपचारित काष्ठ-गुटकों को बिछाया है। इस प्रकार के भवन अल्प खर्चवाले और सुविधाजनक होते हैं। चित्र ९६ में ऐसी कम खर्चीली गृह-संरचनाएँ दर्शायी गयी हैं। यहाँ इनके अनुविक्षेप ('प्लान') दिये गये हैं। सारणी २८ (१४ ख) में ऐसी कम लागत की संरचनाओं (गृहों) के मूल्य दिये गये हैं।
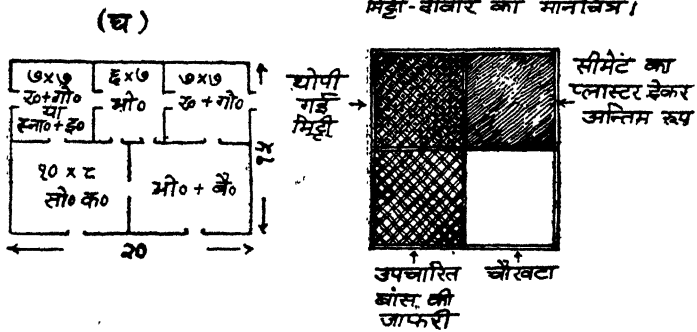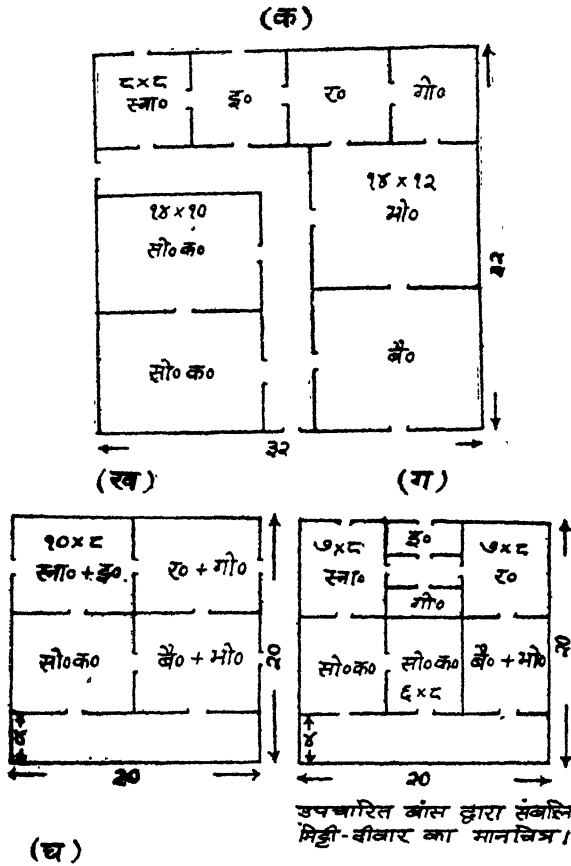
चित्र ९६—कम लागतवाली गृह-संरचनाओं के अनुविक्षेप (प्लैन)

सारणी—२८

अल्पव्ययी गृह-संरचनाओं में काष्ठ, बाँस और छादन-घास के मूल्य का विवरण, जिसमें उपचार मूल्य भी सम्मिलित हैं।

गृह-प्रकार (चित्र९६ देखिए)	काष्ठ की अपेक्षित मात्रा (घनफुट)		बाँसों की अपेक्षित मात्रा (संख्या)		छादन घास की अपेक्षित मात्रा	सकल अपेक्षित मात्रा			उपचार के लिए परिरक्षी (एस्क्यू) की मात्रा (पौंड में)			
	दीवारें	ट्रस	दीवारें	छत	पौंड में	काष्ठ (घनफुट) और मूल्य	बाँस (घनफुट) और मूल्य	छादनघास (पौंड में) और मूल्य	काष्ठ के लिए और मूल्य	बाँसों के लिए और मूल्य	छादन घास के लिए और मूल्य	कुल मूल्य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
१. (क)	७०	९०	२००	१००	१००००	१६० ६४०रु०	३०० ९०रु०	१०००० ३१५रु०	४८ ४८रु०	९० ९०रु०	३३४ ३३४रु०	— १५१७रु०
२—(ख)	३०	४५	१००	५०	४०००	७५ ३००रु०	१५० ४५रु०	४००० १२६रु०	२२.५ २२.५०रु०	४५ ४५रु०	१३४ १३४रु०	— ६७२रु०
३—(ग)	४५	४५	१००	५०	४०००	९० ३६०रु०	१५० ४५रु०	४००० १२६रु०	२७ २७रु०	४५ ४५रु०	१३४ १३४रु०	— ३३७रु०
४—(घ)	३५	४५	१००	५०	३०००	८० ३२०रु०	१५० ४५रु०	३००० ९५रु०	२४ २४रु०	४५ ४५रु०	१०० १००रु०	— ६२९रु०

ऊपर लिखित मूल्यांकन, निम्नलिखित दरों के आधार पर किये गये हैं।

(१) काष्ठ—चीड़ जाति का ४ रु० प्रति घन फुट के भाव से।

(२) बाँस—६ रु० प्रति २० बाँसों के हिसाब से (१ बाँस, १ घन फुट के बराबर है)।

(३) छादन घास—५० रु० प्रति १००० पूला या १६०० पौंड तौल के भाव से।

(४) एस्क्यू परिरक्षी—१ रु० प्रति पौंड, जिसमें भाड़ा और उपचार मूल्य भी सम्मिलित है।

(५) परिरक्षी-प्रचूषण (प्रति घन फुट)—बाँसों के लिए ०.३ पौंड, प्रति १० पौंड छादन घास के लिए ०.३ पौंड।

(६) अनुमानित आयु—१५ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक।

नयी दिल्ली में कम-लागत के गृहों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी (सन् १९५४) में वन-अनुसन्धानशाला ने एक अल्पव्ययी गृह बनाया था। इसका मुख्य उद्देश्य निम्न श्रेणी के काष्ठों, बाँसों और छादन-घास की उपयोगिता का उपचार-पश्चात् गृह-निर्माण कार्य के लिए प्रदर्शन करना था। अत: यह गृह काष्ठ-नाशक कीट और कवकों से सुरक्षित हो गया था। इस गृह के बारे में क्षेत्र, व्यय इत्यादि के सविस्तर वर्णन की जो सूचना (भारत सरकार की १९५४ की प्रदर्शिनी-स्मारक पुस्तिका—पृष्ठ १३४ के अनुसार) प्राप्त है वह निम्न प्रकार से है—

१. भूमितल-क्षेत्रफल ('फ्लोर-एरिया')		३८६ वर्गफुट
२. न्याधार-क्षेत्रफल ('प्लिन्थ-एरिया')		४२१ वर्गफुट
३. देहरादून में लागत (व्यय)*		२२०० रुपया
दिल्ली में लागत (व्यय)		२६८० रुपया
	देहरादून	दिल्ली
४. न्याधार-क्षेत्र की दर	५.२५ रु०	६.०० रु०
५. भूमितल-क्षेत्र की दर	५.६३ रु०	६.९४ रु०

*इसमें सेवाओं का व्यय सम्मिलित नहीं है।

विशिष्टियाँ—

नीव—एक फुट गहरी भूमि के नीचे ईंटों की नींव और ९ इंच वर्ग भूमि के ऊपर १ फुट तक ९ इंच मोटी ईंटों की चिनाई।

ऊपरी रचना—उपचारित चीड़ काष्ठ, छादन-घास और बाँस से बनाया गया। लम्बाई में किनारे की दीवारें मिट्टी की बनायी गयीं जो उपचारित बाँस से

सम्बलित थी। आगे और पीछे की दीवारें काष्ठ और बाँस से बनायी गयीं। हाते की दीवार चारों तरफ़ काष्ठ-पट्टियों ('टिम्बर पेल फ़ैन्सिग') की थी।

दरवाजे और खिड़की—उपचारित काष्ठ के दरवाजे और कांचित खिड़कियाँ।

छत—मुख्य-गृह की छत उपचारित घास की थी जो बाँसों के ट्रसों और बत्तों पर अवलम्बित थी। ट्रसों का संभार काष्ठ-खम्भों पर था। अन्दर की छत काष्ठ-तख़्तों की थी। द्वारमण्डप, काष्ठ-छत-पट्टों से छादित था और पिछला बरामदा नालीदार बाँसों से।

परिरूपण—बाँस से सम्बलित मिट्टी की दीवारों के बाहर की ओर चूना-सीमेंट का लेप था।

फ़र्श—चौड़ी ईंटों की सीमेंट-पॉइन्टिग की हुई थी। चित्र (९७) में यह गृह दिखाया गया है।

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ अभियान्त्रिकी शाखा ने कुछ काष्ठ-शालिकाओं[1] की रचना की है, जो त्रिकोण-नुमा, कीलों से जड़ित चाप-रूपी है। ऐसी एक शालिका का, कोयले की ईंट बनाने की मशीन रखने के लिए निर्माण किया है। इसको बनाने का मूल्य ३.५० रु० प्रति वर्ग फुट न्याधार-क्षेत्रफल की दर से है। इसके सम्बन्ध में सविस्तर सूचना निम्नांकित है।

(अ) ट्रस—चाप विस्तार २४ फुट, छदितट (किनारे) की ऊँचाई १३ फुट, धुरी की ऊँचाई १९ फुट, ट्रसों में परस्पर अन्तर १२ फुट।

(आ) भार—(अनुमानित) मृत्तिका-भार १० पौंड प्रति वर्गफुट भूमि अनुविक्षेप ('प्लान') का; वायु-दबाव २ पौंड प्रति वर्गफुट छततल का; वायु-चूषण ४ पौंड प्रति वर्गफुट छततल का; किनारे में (छदितट) क्षैतिज दिशा में ३ फुट बाहर की ओर लिया है। चूंकि ३ फुट ऊँची मेंड़ के अतिरिक्त कोई दीवारें नहीं हैं, अतः ट्रसों पर हवा का क्षैतिज दिशा में भार नहीं लिया गया है।

(इ) प्रति ट्रस का घनफल—२७ घनफुट, जिसमें आड़े बत्ते और स्थिरक-पट्ट सम्मिलित हैं। इसका १५ प्रतिशत रूपान्तरण से निरर्थक हो जाने के कारण ज़ोड़ देना चाहिए।

इस शालिका का प्रदर्शन चित्र ९८ में किया गया है।

1 Sheds.
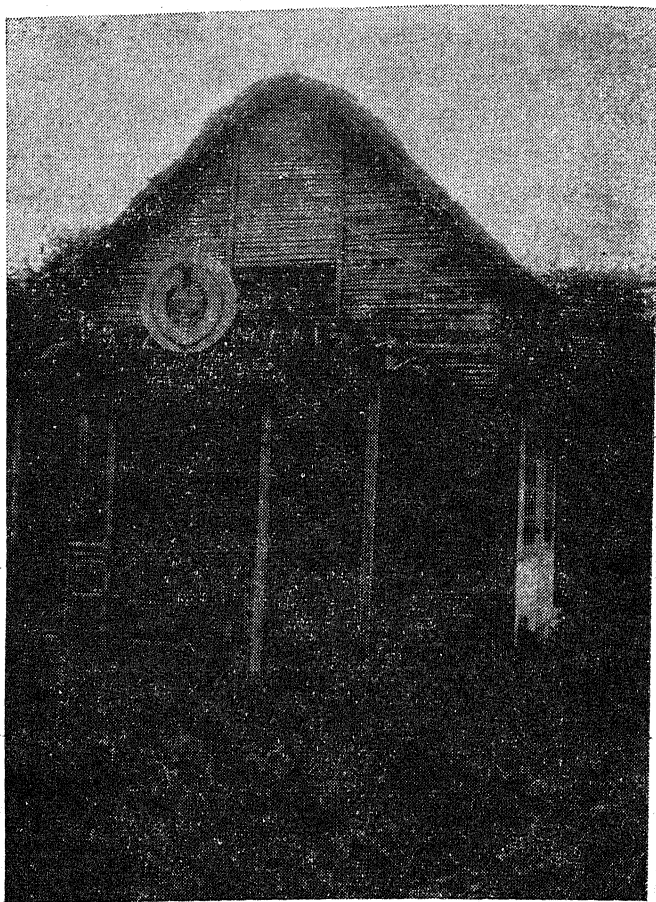
चित्र ९७—१९५४ की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में प्रदर्शित कम लागत के गृह का नमूना।

वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण शाखा ने एक बाँस-गृह बनाया है, जिसमें उपचारित बाँस की अर्धगोल पट्टियों को उपचारित काष्ठ के खम्भों में जोड़-

चित्र ९८—वन-अनुसंधानशाला की काष्ठ अभियान्त्रिकी शाखा द्वारा निर्मित काष्ठशालिका।

कर और अन्दर से मिट्टी की एक मोटी तह देकर दीवारें बनायी हैं। इसको उपचारित काष्ठ-छत-पट्ट से छादित किया गया है। अन्दर की छत,उपचारित फर-काष्ठ के विशेष प्रकार से बनाये गये टुकड़ों को जोड़कर कश्मीर-नुमा, शोभायुक्त बनायी गयी है। इसको बनाने का व्यय ३.५० रुपया प्रति वर्गफुट के हिसाब से है। चित्र ९९ तथा १०० में यह
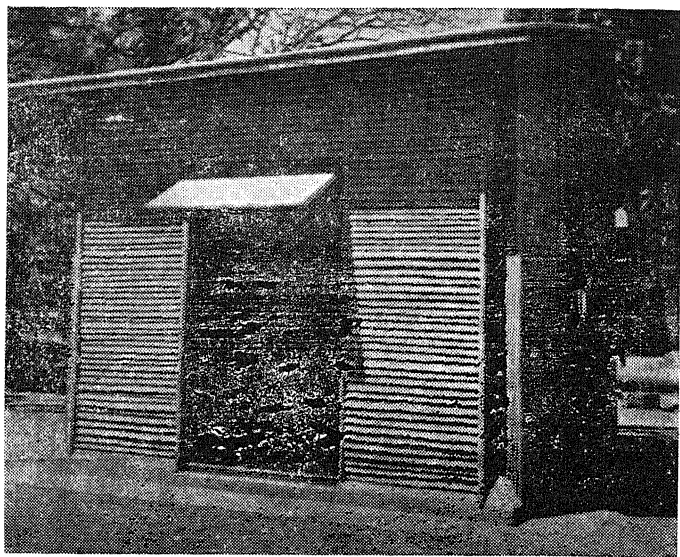
चित्र ९९—वन-अनुसंधानशाला में उपचारित बाँसगृह ।
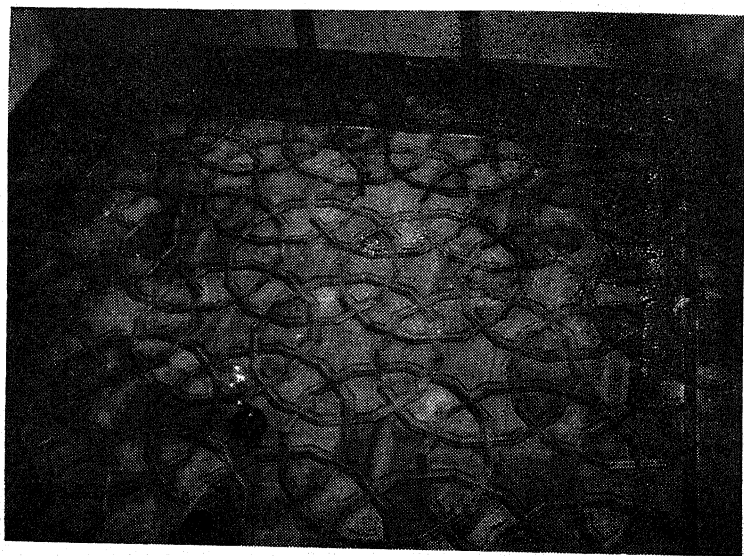
चित्र १००—उपचारित फरकाष्ठ की छत का भीतरी भाग ।

गृह दिखलाया गया है । चित्र १०१ में संपूर्ण उपचारित काष्ठ की एक शालिका दर्शायी गयी है, जिसका निर्माण किया जा रहा है । इसके भूमितल का क्षेत्रफल लगभग

चित्र १०१—वन-अनुसंधानशाला में सम्पूर्ण उपचारित काष्ठ की बड़ी शालिका ।

१२०० वर्गफुट है । इसमें विशेषता यह है कि इसके लिए कोई नींव बनाने की आवश्यकता नहीं है और यह केवल उपचारित काष्ठ-खम्भों पर ही आधारित है । चित्र १०२-१०३ में संपूर्ण उपचारित काष्ठ के बने बस-स्टैंड और आराम-गृह दर्शाये गये हैं ।

(ख) काष्ठ-नाड ("वुड पाइप") और काष्ठ-कुण्ड ("वुड टैंक्स्")

काष्ठ-नाड

जलगति-संघर्ष की दृष्टि से धातुओं की अपेक्षा काष्ठ अधिक श्रेष्ठ माना गया है। एक लोह-नाड की अपेक्षा काष्ठ-नाड में से २० प्रतिशत पानी अधिक (१२ क) बहता है। इसके अतिरिक्त पपड़ी इत्यादि का, जो लोह में सामान्य प्रकार से जम जाती हैं, काष्ठ में से जलवाहन-क्षमता के लिए कोई प्रभाव नहीं होता। काष्ठ-नाड के ऊपर चूर्णीय

चित्र १०२—सम्पूर्ण उपचारित काष्ठ का बस स्टैंड।

और फॉस्फेट रसायनों के मिट्टी में रहने से भी कोई संक्षारण नहीं होता, और पानी में कार्बनिक अम्ल रहने पर भी काष्ठ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लोह-नाडों में १५ वर्ष सेवाकाल के पश्चात् अपनी प्रारम्भिक क्षमता की केवल ४० से ५० प्रतिशत क्षमता रह जाती है, जब कि काष्ठ-नाडों में, एक १० साल पुराने लोह-नाड से १५ प्रतिशत

अधिक और २० साल पुराने से २५ प्रतिशत अधिक जल-वाहन-क्षमता (१२ क) रहती है।

चित्र १०३—उपचारित काष्ठ और उपचारित छादन-घास का बना आराम-गृह।

काष्ठ की लघु ऊष्म-संवाहिता के कारण, काष्ठ-नाडों को ठंड में पाले से बचाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, और यदि उनमें से ऊष्म तरल पदार्थ या वाष्प ले जायी जाय तो उन पदार्थों की ऊष्मा की हानि भी नहीं होती। अतः काष्ठ-नाडों को बिना किसी भय के शीत प्रदेशों में भूमि के ऊपर लगाया जा सकता है।

काष्ठ-नाड बहुधा दो प्रकार की विधियों से (१२ख) बनाये जाते हैं, जो तार-बन्धित ('वायर वून्ड') और संतत-पट्टिका ('कन्टीन्यूअस् स्टेभ') कहलाते हैं।

तारबन्धित नाड में २ इंच × ४ इंच (५ सेन्टीमीटर × १० सेन्टीमीटर) से ६ इंच × ६ इंच (७.५ सेन्टीमीटर × ७.५ सेन्टीमीटर) तक काष्ठ-पट्टिका का प्रयोग करते

हैं। इन पट्टिकाओं में, जिस व्यास का नाड बनाना हो उसके अर्धव्यास के बाहर और भीतर की गोलाई के अनुसार मशीनों द्वारा छीलना और किनारों में जिह्वा और नाली बनानी पड़ती हैं। पट्टिकाओं को जोड़कर, तदनन्तर यन्त्र से तार को कसकर लपेटा जाता है। इनको जोड़ने की कई विधियों में से द्वि-इस्पात विधि सर्वोत्तम है। इनके सिरे काटकर, एक भारी बाह्य इस्पात-चक्र और पतले आन्तर इस्पात चक्र के मध्य में सटकर मिलाये जाते हैं। इस प्रकार से नाड सुविधा के साथ जोड़ दिये जाते हैं, जो पानी में फूलने के कारण दृढ़ता से जुड़ डाते हैं। (चित्र १०४,१०५ देखिए)।
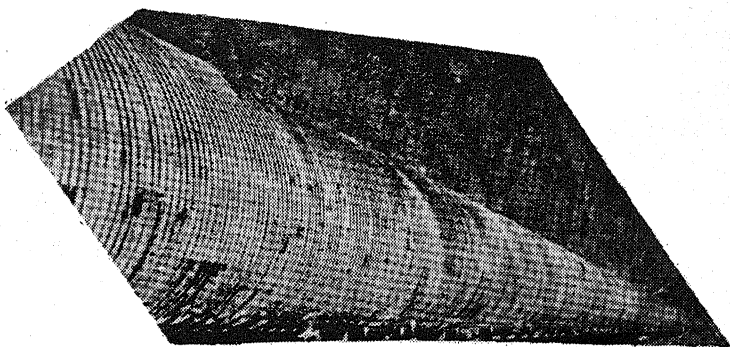
चित्र १०४—तार-बन्धित काष्ठनाड (वुडन पाइप)

चित्र—१०५ अमेरिका में काष्ठनाड का एक दृश्य।

संतत-पट्टिका-नाड में (चित्र १०६) पट्टिकाएँ इस प्रकार काटकर तैयार की जाती हैं कि जब वे मिलायी जायँ तो उनसे अभीष्ट आकार व परिमाण का नाड बन सके। नाड बनाने में पट्टिकाएँ लम्बाई में पास-पास मिला दी जाती हैं। पट्टिकाओं के सिरे के टक्कर भी एक-दूसरे से मिला दिये जाते हैं और टक्करों के मध्य में

पतली दरारें काटकर, उनमें एक पतली धातु की जिह्वा बैठा दी जाती है, जिसके कारण नाड बिना जोड़ के संतत बनी रहती है, इसी कारण से यह संतत अथवा लगातार-पट्टिका नाड कहलाती है। इस संतत-नाड का आन्तर भाग चौरस और चिकना रहने के कारण, इसमें जल-वाहन-क्षमता अन्य प्रकार के नाडों की अपेक्षा अधिक रहती है। पट्टिकाएँ अपने स्थान पर दृढ़ता से दूर-दूर गोल इस्पात पट्टियों से बंधी रहती हैं। इन इस्पात पट्टियों की चौड़ाई और दूरी, काष्ठ-नाड के व्यास और उसके सेवा-काल में आन्तरिक दबाव की व्यवस्था पर निर्भर रहती है।

चित्र १०६—संतत-पट्टिका नाड।

काष्ठ-नाड के निर्माण के लिए काष्ठ को गाँठों और लीसा-प्रणाली से रहित एवं सीधे रेशे का होना चाहिए। अमेरिका में इस कार्य के लिए 'वैस्टर्न रेड सीडार' और क्रियोजोटीकृत 'डगलस फर' का प्रयोग किया जाता है। वहाँ इस प्रकार के कई नाड हैं, जो पानी ले जाने अथवा मलप्रवाह के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। भारत में भी जल-प्रवाह के लिए टीक और साइप्रस (सारकाष्ठ) जैसे काष्ठों का प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि ये स्वभावतः ही स्थायी हैं, और नाड का आन्तर भाग पानी से निरन्तर भरा रहने के कारण ये सड़न अवस्था को भी प्राप्त नहीं होते। नाड के बाहर सुरक्षा के लिए, उच्च उबलन-क्रियोजोट और तत्पश्चात् कोलतार का लेप करना उचित होता है। मल-प्रवाह नाड के लिए उपचारित (क्रियोजोटीकृत) फर, स्प्रूस और देवदार उपयुक्त है।

यह कहा गया है कि अमेरिका का एक निपुण कार्यकर्त्ता १३०० फुट लम्बा नाड काष्ठ-पट्टियों को चढ़ाकर बना सकता है। सबसे बड़ा काष्ठ-नाड उत्तरी अमेरिका में है, जो क्यूबेक में बनाया गया और एक कागज की फैक्टरी के ७०,००० 'हौर्स पावर' शक्ति-गृह के लिए पानी (१२ ग) भेजता है। यह १७९५ मीटर लम्बा और ५.३ मीटर व्यास का है। इसको बनाने में १२ सेन्टीमीटर मोटी क्रियोजोटीकृत काष्ठ-पट्टियाँ प्रयुक्त की गयी हैं।

काष्ठ-नाड़ का मूल्य लोहे के नाड से सस्ता है। 'अमेरिकन सोसाइटी ऑफ़ सिविल इन्जीनियर्स' की कार्यवाही के ग्रन्थ ३१ में शूलर् का कथन है—"एक साधारण गणना के आधार पर, 'सिटिज़न वाटर कम्पनी' को उसकी मुख्य नाली के लिए काष्ठ-नाड प्रयोग में लाने से ११ लाख डालर से कम बचत नहीं रही। इस पूँजी

पर ५ प्रतिशत व्याज की दर से, प्रत्येक ५ या ६ वर्ष में मुख्य नाड का नवीकरण हो सकता है अथवा द्विगुणन हो सकता है ।"

काष्ठ-नाड को जिन मुख्य उपयोगों में लाया जा सकता है, वे हैं—जल-विद्युत्-विकास, सिंचाई, जलशक्ति-कार्य, जलद्वार, मलवाहन, जलोत्सारण, कागज के कारखाने, और रासायनिक उद्योग ।

काष्ठ-कुण्ड

रासायनिक उद्योग में काष्ठ को निर्माण-सामग्री के लिए इसी कारण महत्त्व दिया जाता है कि वह संक्षारणरोधी होता है । काष्ठ की शारीर रचना से ही उसमें संक्षारणरोधी गुण आ जाते हैं । अन्य निर्माण-पदार्थ संक्षारण से आक्रान्त हो जाते हैं । आर्द्रता, समुद्री हवा और रासायनिक शालाओं में लोह में मोर्चा लग जाता है या संक्षारण हो जाता है । काष्ठ में ऐसा नहीं होता । संक्षारण के कारण अत्यन्त हानि होती है । अनुमान (१२ घ) लगाया गया है कि संसार के लोह-उत्पादन का ४० प्रतिशत भाग संक्षारण द्वारा नष्ट हो जाता है । सन् १९२१ में जर्मनी में जब ३ करोड़ ५० लाख टन लोहा तैयार किया गया था, यह अनुमान था कि १ करोड़ १० लाख टन मोर्चा लगने से नष्ट हो गया होगा । धातुओं की संरचना में एक प्रकार का कच्चा माल या जारेय तत्त्व ('ऑक्साइड') होता है, अतः उनमें जारेय आकार में परिवर्तित हो जाने की प्रवृत्ति होती है । इसके विपरीत काष्ठ हवा में स्थायी रहता है । अतः काष्ठ, संक्षारण-रोधी होने के कारण, वातिशाला, कोष्ठ, कुण्ड और रासायनिक-पात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है । काष्ठ-साधित्र, कृषि और दुग्ध सम्बन्धी पदार्थों के उत्पादन और संचय के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं ।

काष्ठ विशेष प्रकार से अम्ल-रोधी होता है । कार्बनिक अम्लों का—जसे कि गैलिक, थैलिक, सैलीसिलिक, स्टियरिक और इसी प्रकार के अन्य अम्ल—काष्ठ पर व्यवहारतः कोई प्रभाव नहीं पड़ता । काष्ठ का प्रयोग नियमित रूप से एसीटिक अम्ल और सिरके के उत्पादन के पात्र के लिए होता है ।

एक कथन के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका में १ लाख १७ हजार से भी अधिक काष्ठ-कुण्ड विभिन्न प्रयोगों के लिए विद्यमान हैं । वहाँ काष्ठ-पात्र ३.५ गुने वातिक-दबाव और ७१० मिलीमीटर पारे के शून्यक को सहन करने के योग्य बनाये जा सकते हैं । यह भी कहा गया है कि वहाँ १५ मीटर व्यास और १९ लाख लीटर धारिता के कुण्ड विद्यमान हैं । यूरोप में सबसे बड़ा काष्ठ-कुण्ड कौपनहैगन की एक एसीटिक अम्ल निर्माणशाला में बना है । यह 'औरीगोन पाइन' का बना है । इसके तल का व्यास ८.५ मीटर है, ऊँचाई ७.५६ मीटर, सिरे का व्यास ७.८ मीटर और

आयतन ३ लाख ७० हजार लीटर है। इसका भार ४० टन है, जिसमें से ४.५ टन भार लोहपट्टियों के कारण है। कैनेडा में भी ५० फुट व्यास के और २ लाख ७५ हजार इम्पीरियल गैलन के कुण्ड हैं।

काष्ठ-कुण्ड का निर्माण काष्ठ-नाड के सदृश ही किया जाता है। नाड-पट्टियों की तरह ही इसकी पट्टियाँ सही बना दी जाती हैं, किन्तु इसके नीचे के सिरों में नतोदर की दिशा की ओर गोलाकार खाँचा रहता है, जिसमें तल का भाग समा सके। तल के
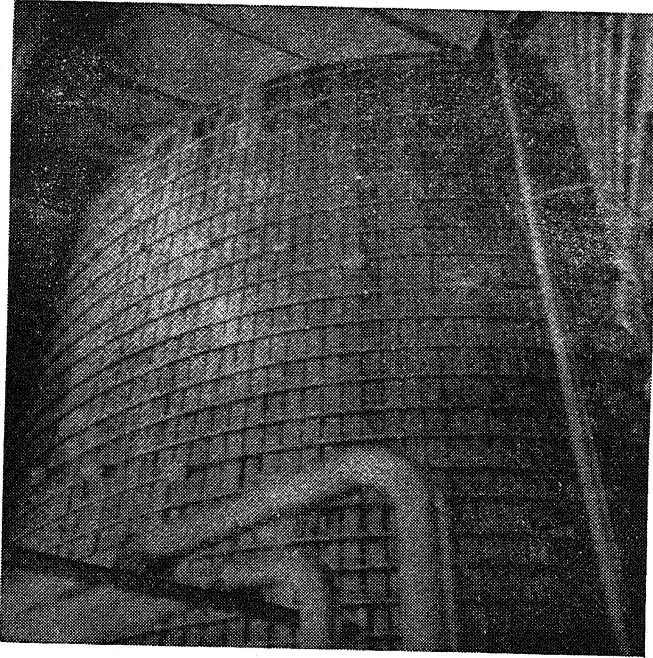
चित्र १०७—**अमेरिका की पत्रनिर्माणशाला में प्रयुक्त काष्ठ की टंकी।**

पट्ट २ इंच (५ सैन्टीमीटर) से ४ इंच (१० सैन्टीमीटर) तक या उससे अधिक मोटाई के होते हैं। ये ठीक नाप के काटकर उचित प्रकार से बैठा दिये जाते हैं, जिससे कि खड़ी पट्टियों के गोल खाँचों में भी बैठ जायँ। कुण्ड को इस्पात के डंडे बाँधे रहते हैं। अम्ल और रसायनों के लिए पट्टियाँ ८ इंच (२० सैन्टीमीटर) और तल १२ इंच (३० सैन्टीमीटर) तक मोटे होते हैं। न भिगानेवाले, अक्लेद्य तैल-जैसे पदार्थ के कुण्ड

के लिए, पट्टियों में छोटी-छोटी कुल्याएँ होती हैं जो पानी के नल से संबद्ध रहती हैं। इसके फलस्वरूप काष्ठ भीगा रहता है। साधारणतः यह पाया गया है कि शंकुधारी काष्ठ, कुछ उरुपाती काष्ठों की अपेक्षा, रसायनों के प्रभाव को सहन करने में अधिक समर्थ होते हैं। क्योंकि उरुपाती काष्ठ सरन्ध्र होने के कारण सरलता से तरल पदार्थ और हवा को ग्रहण कर लेते हैं, जिसके फलस्वरूप ये आक्रमण का पात्र बन जाते हैं। अतः यह उचित होगा कि कुण्डों के लिए अप्रतिचारी काष्ठों का ही प्रयोग किया जाय। इन काष्ठों के ऊपर जहाँ उचित हो, विशेष प्रकार से उपचार करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है। बहुधा अम्लों के और अन्य रसायनों के कुण्ड के लिए एस्फौल्ट, मोम, लाख, संश्लिष्ट उद्यास ('सिन्थैटिक रेजिन्स्'), रबड़ इत्यादि का लेप हितकर होता है। चित्र १०७ में काष्ठ-कुण्ड का प्रदर्शन किया गया है।

रासायनिक उद्योगों में कुण्ड, नाड और पात्रों के लिए निम्नलिखित काष्ठ परीक्षणार्थ उपयुक्त समझे गये हैं।

क्रमांक	पारिभाषिक नाम		व्यापारिक नाम
१.	एबिस पिन्ड्रो	...	फर
२.	एलबीजिया प्रोसीरा	...	सफेद सिरिस
३.	अर्टोकार्पस जाति	...	—
४.	करापा मौल्यूसेन्सिस्	...	पुसुर
५.	सीड्रस देवदारा	...	देवदार
६.	कुप्रूसस् टौरूलोसा	...	साईप्रस्
७.	डलबर्जिया सिसू	...	शीशम्
८.	डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम	...	सफेद सीडार
९.	ग्रीविया टिलीफोलिया	...	धामन
१०.	लैगरस्ट्रोमिया फ्लौसरैजीनो	...	जारूल
११.	लैगरस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	...	लैन्डी
१२.	लैगरस्ट्रोमिया टोमैन्टोसा	...	लीजा
१३.	मैशीलस् मैक्रैन्था	...	मैशीलस्
१४.	पाइनस् इक्सैल्सा	...	कैल
१५.	पाइनस् रौक्सबर्गी	...	चीड़
१६.	टैक्टोना ग्रैन्डिस्	...	टीक
१७.	टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	...	किन्डल

(ग) शीतन–स्तम्भ ('कूलिंग टवर्स') पुल, नाव, रेलडिब्बे, मोटर या बस-काय, कृषि और उद्यान कार्य, उपस्कर, और आपट्टित काष्ठ इत्यादि

शीतन-स्तम्भ

आधुनिक काल में जल-शीतन-स्तम्भ के लिए काष्ठ का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, जहाँ जल की मात्रा औद्योगिक कार्य के लिए सीमित हो, शीतन-स्तम्भ का कार्य पानी को बिजलीघर, बड़े इंजन और संघनक के लिए ठंडा करने का होता है, और तत्पश्चात् यह ठंडा पानी पुनः मशीनों को ठंडा करने के लिए परिवाहित किया जाता है। पानी की यह शीतन अवस्था, अंशतः जल की ऊष्मा वायु में भेज देने और मुख्यतः जल के वाष्पीकरण से प्राप्त हो जाती है। अतः इस शीतन अवस्था की पूर्ति के लिए पानी और वायु का दक्षतापूर्वक मिलन होना चाहिए। यह व्यवस्था तभी हो सकती है जब कि पानी को स्तम्भ के ऊपर से झरने की तरह गिरने दिया जाय। इस पानी के बहाव का वेग रोकने के लिए स्तम्भ में पट्टियों के कई स्तर क्षैतिज दिशा में लगे रहते हैं, जिससे कि पानी का वितरण समानता से हो, और वाष्पीकरण में सहायता मिले। ये पट्टियाँ कई पदार्थों जैसे कि कंक्रीट, सीमेंट, संवलित कंच, इस्पात, इत्यादि से बना दी जा सकती हैं। परन्तु इनके लिए काष्ठ को ही महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि यह सस्ता है और इसका शक्ति/भार की दृष्टि से उच्च अनुपात होता है। काष्ठ को किसी भी आकार में परिवर्तित करने में सरलता रहती है। निरन्तर जल-परिवहन होने के कारण काष्ठ में एक प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसे कोमल अपक्षय ('सौफ्ट् रौट') कहते हैं। यद्यपि यह काष्ठनाशक अपक्षय नहीं है, तथापि काष्ठ की शक्ति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और कुछ काल में काष्ठ-नाशक कवकों के आक्रमण की सम्भावना हो जाती है। अतः काष्ठ को कोमल अपक्षय से सुरक्षित रखने के लिए परिरक्षी द्वारा उसका उपचार करना आवश्यक है। विदेशों में इस प्रकार से काष्ठ-उपचार के लिए विशिष्टियाँ बनायी गयी हैं। ब्रिटिश राज्य के केन्द्रीय विद्युत प्राधिकारी ने बद्धरूपी जलविलेय परिरक्षी को इस कार्य के काष्ठ-उपचार के लिए उपयुक्त बताया है। इसका काष्ठ में न्यूनतम १.२५ पौंड (शुष्क-लवण) प्रति घन-फुट, अर्थात् २० किलोग्राम प्रति घनमीटर, प्रचूषण होना अनिवार्य है।

जैसे कि काष्ठ-नाड और कुण्ड के लिए शंकुधारी काष्ठ उपयुक्त हैं, उसी प्रकार शीतन-स्तम्भ के लिए भी शंकुधारी काष्ठ ठीक हैं। भारत में इस कार्य के लिए

विदेशों से आयात किये गये उपचारित काष्ठ ही बहुधा प्रयुक्त किये गये हैं। कहीं-कहीं टीक (सारकाष्ठ) के प्रयोग से भी सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु यदि शंकुधारी काष्ठ बद्धरूपी जलविलेय परिरक्षी से उपचारित किये जाने के बाद प्रयोग में लाये जायँ तो अत्यन्त सफलता प्राप्त हो सकती है। चित्र १०८ में उपचारित काष्ठ का बना एक शीतन-स्तम्भ दर्शाया गया है।
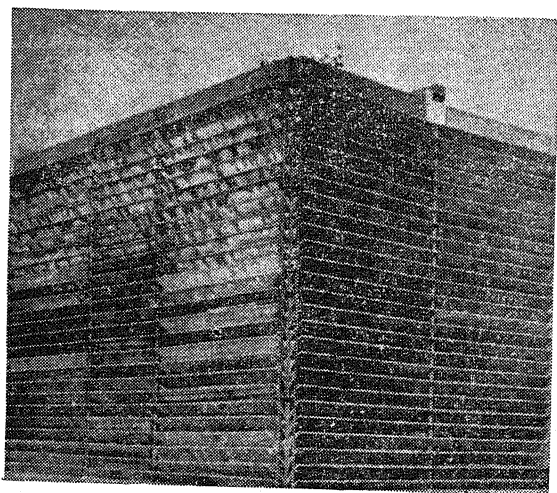
चित्र १०८—**उपचारित काष्ठ का बना शीतन-स्तंभ।**

पुल

इस कार्य के लिए उपचारित काष्ठ के महत्त्व के सम्बन्ध में पिछले प्रकरणों में उल्लेख किया गया है। यहाँ इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में जानपद अभियन्ताओं ('सिविल इन्जीनियर्स) में उपचारित-काष्ठ के पुलों की प्ररचना करने की प्रथा प्रचलित है। चूँकि ये पुल उस देश के ऐसे दूरवर्त्ती भागों में जगह-जगह बनाये जाते हैं जहाँ निपुण कारीगरों का अभाव होता है, अतः इनकी पूर्व-विरचना की जाती है, जिसके लिए उपचारित काष्ठ एक आदर्श निर्माण-पदार्थ गिना जाता है, क्योंकि उपचारित काष्ठ शक्ति/भार के अनुपात के विचार से अति उपयोगी वस्तु है। वहाँ संसार में सबसे लम्बा और पुराना उपचारित (क्रियोजोटीकृत) काष्ठ का बना पुल ('ट्रसल') पौन्टचार्टेन झील पर बनाया गया था। यह पुल ५.८२ मील लम्बा है जिसमें रेल की लाइन दक्षिण से न्यू और-

लियन्ज को आती है। यह विद्यमान काष्ठ-रचनाओं में एक अत्यन्त ही प्रशंसनीय संरचना है। इस पुल का निर्माण फरवरी १८८२ में आरम्भ हुआ था और सितम्बर १८८३ में समाप्त हुआ। पुल का मुख्य भाग जो झील को पार करता है, ५४ वर्ष पश्चात् (सन् १९३७ में) भी सेवाकार्य के लिए समर्थ है। उसमें क्रियोजोटीकृत 'यलो पाइन' काष्ठ का प्रयोग किया गया था। उसमें काष्ठ-स्तम्भ ५० से ६८ फुट तक नीचे गाड़ दिये गये, जो भूमितल में ४० से ४८ फुट तक घुसाये गये थे और पानी की गहराई ८ से १० फुट तक थी। ये काष्ठ-स्तम्भ सिरे में चौकोर काट दिये गये थे जिनके ऊपर क्षैतिज दिशा में १२×१४ इंच की टोपियाँ स्थिर की गयीं। इसके ऊपर पट्टतल और तत्पश्चात् रेलवे-स्लीपर बिछा दिये गये थे। चित्र १०९ में यह पुल दिखलाया गया है।
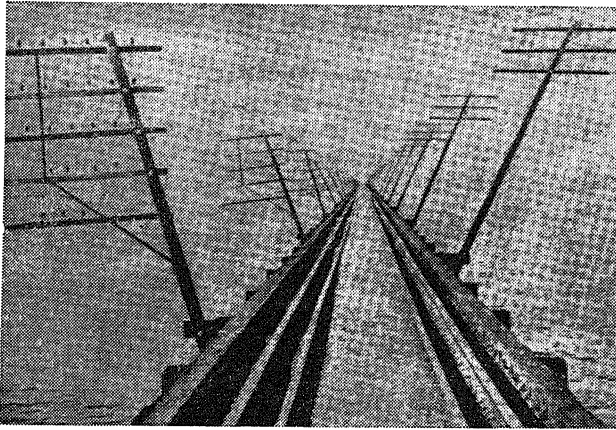
चित्र १०९—**अमेरिका की एक झील पर बना संसार का सबसे बड़ा उपचारित काष्ठ का पुल, जिसके ८० प्रतिशत से अधिक अंग ५४ वर्ष की सेवा के बाद भी सुरक्षित हैं।**

भारत में भी ग्राम-विकास-योजना के लिए सड़कें बनाने में नदी-नालों के ऊपर उपचारित काष्ठ के पुल आरम्भ में और अन्त में कम खर्चवाले सिद्ध हो सकते हैं। इन पुलों पर अन्य निर्माण-पदार्थों (सीमेंट, लोहा इत्यादि) की अपेक्षा संधारण व्यय भी कम रहता है, क्योंकि निपीड-उपचार करने के पश्चात् काष्ठ को किसी भी प्रकार से लेपित करने अथवा देख-रेख की कम आवश्यकता पड़ती है।

जहाज और नाव

आधुनिक काल में उपचारित काष्ठ का प्रयोग नौ-निर्माण के लिए अधिकाधिक होता जा रहा है। जहाजों के नीचे के कमरों में अधिक आर्द्रता रहती है और वायु-संवहन का अभाव रहता है, जिसके कारण कवकों के आक्रमण की अनुकूल दशा बनी रहती है। बाह्य दिशा में भी सामुद्रिक कीटों के आक्रमण की निरन्तर आशंका रहती है। अतः यह अनिवार्य है कि ऐसे स्थानों में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों का उचित प्रकार से उपचार किया जाय। इस कार्य के लिए बद्धरूपी जलविलेय या प्रांगारिक विलायकरूपी परिरक्षी का प्रयोग उपयुक्त है, क्योंकि इन परिरक्षियों से उपचार करने के पश्चात् काष्ठ पर रंगलेप किया जा सकता है।

भारत में समुद्रतटीय स्थानों में हजारों की संख्या में मछलीमार नावों ('कैटै-मैरोन') का निर्माण किया जाता है। ये नावें अस्थायी और हलके काष्ठों की बनायी जाती हैं, अतः कवक और समुद्री कीटों के आक्रमण के कारण इनकी आयु अत्यन्त कम होती है। इन काष्ठों का यदि बद्ध-रूपी जल-विलेय या प्रांगारिक विलायकरूपी परिरक्षी से उपचार किया जाय तो इनकी आयु कई गुना बढ़ा दी जा सकती है।

रेलडब्बे, मोटर या बस-काय

ठोस या आपट्टित काष्ठ रेल-डब्बे, मोटर या बसकाय के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ है। पूर्वकाल में टीक-जैसे स्थायी काष्ठों का प्रयोग इनके निर्माण के लिए किया जाता था। यद्यपि टीक काष्ठ एक गुणसम्पन्न स्थायी काष्ठ है, तथापि इसमें भी रेलडब्बों के स्नानागार आदि नम-स्थानों में कवकों के कारण क्षति होती पायी गयी है। अतः इसका भी योग्य परिरक्षी से उपचार करना अत्यावश्यक है। उप-चारिता की दृष्टि से यह काष्ठ परिरक्षी से अप्रवेशनीय है, परन्तु तीव्र परिरक्षी के गहरे लेपन से इसकी आयु बढ़ा दी जा सकती है। वर्त्तमान समय में टीक काष्ठ का मूल्य अधिक बढ़ गया है। यह अपेक्षित मात्रा में प्राप्त भी नहीं है और दक्षिण-पूर्व एशिया के बर्मा जैसे देशों से इसका आयात किया जा रहा है, जिसके लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है।

काष्ठ-परिरक्षण के अन्वेषण-कार्य से यह सिद्ध हो चुका है कि आयु-वृद्धि की दृष्टि से अस्थायी काष्ठ, उपचार करने के पश्चात्, टीक का स्थान ले सकते हैं और तदनन्तर उनसे टीक से भी अधिक सेवा-आयु प्राप्त हो सकती है। अतः द्वितीय श्रेणी अर्थात् अस्थायी काष्ठों का उपचार किये जाने पर वे रेलडब्बे, बस इत्यादि के ढाँचे

के लिए लाभप्रद होंगे। इनके लिए भी बद्धरूपी जल-विलेय और प्रांगारिक विलायकरूपी परिरक्षी उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं।

कृषि और उद्यान-कार्य

किसान काष्ठों को अनेक प्रकार के उपयोग में लाता है। वह केवल गृहनिर्माण, बाड़-खम्भ इत्यादि के लिए ही नहीं, किन्तु क्षेत्र-फाटक, गोशाला, कृषि-यन्त्र और अन्य कार्यों के लिए भी काष्ठ का प्रयोग करता है। काष्ठ के अतिरिक्त बाँस, छादन-घास और ताड़ के पत्तों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया जाता है। अनुपचारित दशा में इन सबकी सेवाआयु अत्यन्त कम रहती है। परिरक्षी से इनका उपचार किया जाय तो इनकी आयु बढ़ जाने पर किसानों की आर्थिक व्यवस्था सुधर सकती है। इसी प्रकार उद्यानविज्ञ द्वारा भी बीज-बक्सों, हरित-गृहों, और विविध उद्यान-कार्यों में प्रयोग किये जानेवाले काष्ठों का उपचार कराने पर उनकी सेवाआयु कई गुनी बढ़ सकती है। अतः काष्ठ-उपचार विधियों को अपनाने से आर्थिक दशा में उचित लाभ प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार सुअर-गृह, मुर्गी-खाने इत्यादि के निर्माण के लिए भी काष्ठ का उपचार किया जाना लाभप्रद है।

उपस्कर

यह सुज्ञात है कि उपस्कर के लिए नामी काष्ठ टीक, शीशम, रोजवुड इत्यादि हैं। पर ये काष्ठ अधिक मात्रा में प्राप्य नहीं हैं और इनका मूल्य भी बढ़ता जा रहा है। वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-संशोषण शाखाओं ने निम्न जाति के काष्ठों का उपचार और भट्ठी में संशोषण कराने के पश्चात् उपस्कर बनाये हैं, जिनकी सेवा-आयु नामी काष्ठों से अधिक बना दी जा सकती है। ये उपस्कर अल्प व्यय में बन जाने वाले हैं। उदाहरण के लिए सारणी २९ में निम्नजाति के काष्ठों के उपचार और संशोषण-पश्चात् बनाये गये उपस्करों और नामी काष्ठों के बने उपस्करों के मूल्य में तुलना की गयी है। चित्र ११० में उपाचार किये गये निम्न जाति के काष्ठ का उपस्कर दर्शाया गया है।

स्तर और आपट्टित काष्ठ

वर्तमान समय में स्तरकाष्ठ ('प्लाइवुड') और आपट्टित काष्ठ ('लैमीनेटेड वुड') का प्रयोग अधिकाधिक होता जा रहा है। गाँठदार होने से काष्ठ निर्बल हो जाता है, जिस स्थान पर गाँठ हो वहाँ से उसके टूटने का भय रहता है। काष्ठ को पतली पट्टियों या स्तरों में खंडित कर और उसको पुनः श्लेष ('ग्लू') से जोड़कर यह दोष मिटा

दिया जा सकता है। इसे आपट्टित काष्ठ कहते हैं। इसका अन्वेषण-काय वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून की संयुक्त काष्ठशाला ('कम्पोजिट वुड ब्रांच') में हो रहा है। बड़े-बड़े कारखानों और शालाओं के लिए आपट्टित काष्ठ को लम्बे चाप-विस्तार
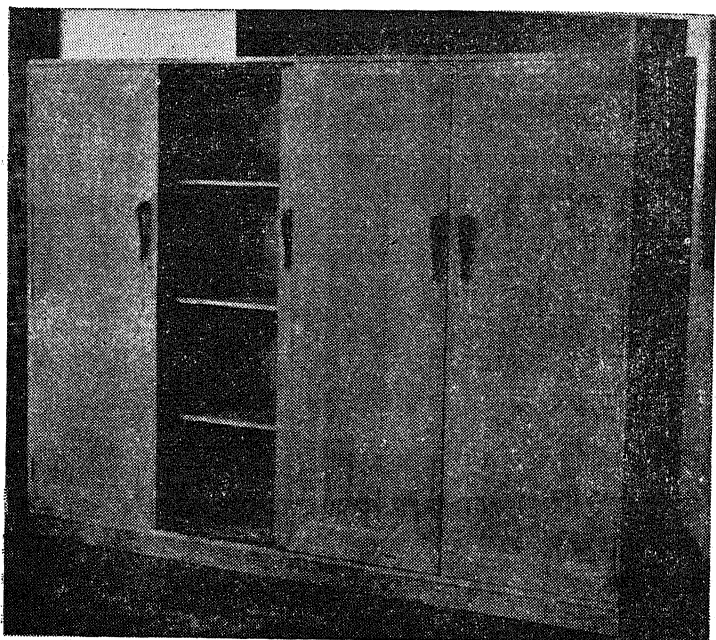
चित्र ११०—**आम की उपचारित लकड़ी की बनी आलमारी।**

के आकार में प्रयोग करते हैं। इनकी आयु बढ़ाने के लिए परिरक्षोपचार करना आवश्यक है। नावों के लिए जल-रोधी श्लेष से जुड़े स्तरकाष्ठ का उचित परिरक्षी से उपचार कराने से लम्बी सेवा-आयु प्राप्त हो सकती है। आपट्टित काष्ठ श्लेष से जोड़ने के पूर्व जल-विलयन परिरक्षी से उपचारित किया जाता है। यदि जल-रोधी श्लेष का प्रयोग किया गया हो, तो आपट्टित काष्ठ बनाने के पश्चात् निपीड़-क्रिया द्वारा भी उपचार किया जाता है।

काष्ठ-पेटियों के लिए भी काष्ठ का उपचार करना आवश्यक है। ऐसा करने से उनकी आयु अधिक समय तक बढ़ा दी जा सकती है। इसके उपचार के लिए मन्द-निपीड़-संयन्त्र पर्याप्त हैं।

उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश में विभिन्न जाति के काष्ठों के स्थायित्व, उपचारिता, प्राप्यता, मूल्य और विविध प्रयोगों के सम्बन्ध में सूचना, सारणी ३२ (परिशिष्ट १२) में दी गयी है।

सारणी–२९

टीक, शीशम, उपचारित चीड़ और उपचारित आम के बने उपस्कर के मूल्यों की परस्पर तुलना

उपस्कर-प्रकार	अनुपचारित टीक (सारकाष्ठ) का बना	अनुपचारित शीशम (सार काष्ठ) का बना	उपचारित (एस्क्यू से) चीड़ का बना	उपचारित (एस्क्यू से) आम का बना
	रुपयों में	रुपयों में	रुपयों में	रुपयों में
१	२	३	४	५
आलमारी–८×५.५ फुट× १३ इंच चौड़ी, उदग्र दिशा में खानों के ३ भाग, किनारों में दरवाजों, कब्जों पर और मध्य में रेलों पर खिसकने वाले दरवाजे।	२९०	२४०	१६१.८८	१८१.८८
मेज—	६५	४५	३०	३०
कुर्सी—	१८	१२.५०	९.३७	९.३७
कार्यालय मेज–(६×३× २.५ फुट)	—	—	१२१	—

टिप्पण—चीड़ और आम के उपस्कर के मूल्यांकन में, अनुपचारित काष्ठ व्यय के अतिरिक्त, उपचारण व्यय ०.५६ रु० प्रति घनफुट और उपचार-पश्चात् संशोषण व्यय ०.२५ रु० प्रति घनफुट की दर से सम्मिलित किया गया है।

अध्याय ३

काष्ठ-उपचार के अतिरिक्त भी काष्ठ को सुरक्षित रखने के साधन

१. कवकों से बचाव

जैसे कि भाग २ के अध्याय २ में वर्णन किया जा चुका है, कवकों के विकास के लिए चार मुख्य शर्तें हैं। ये हैं —(१) प्रचुर खाद्य (अस्थायी काष्ठ), (२) पर्याप्त आर्द्रता, (३) पर्याप्त वायु (ऑक्सिजन) और (४) अनुकूल ताप।

इन चारों में आर्द्रता का नियंत्रण करना सबसे सरल और व्यवहार्य है। काष्ठ-विनाशक कवकों के आक्रमण के लिए कम से कम २० प्रतिशत आर्द्रता (भट्ठी में सुखाये हुए भार के आधार पर) की आवश्यकता है। भली प्रकार संशोषित काष्ठ की आर्द्रता २० प्रतिशत से बहुत कम होती है, अत: ऐसा काष्ठ कवक द्वारा अपक्षय से तब तक सुरक्षित रहता है जब तक कि और अधिक आर्द्रता ग्रहण न कर ले। बहुधा अपक्षय तभी आरम्भ होता है जब काष्ठ प्रयोग में लाने के उपरान्त आर्द्रता ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार आर्द्रता का प्रचूषण दोषपूर्ण रचनात्मक विधियों से होता है। अत: अपक्षय का नियन्त्रण करने के लिए यह मूल नियम है कि काष्ठ को सदा शुष्क रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

गृह या अन्य संरचनाओं में काष्ठ-अपक्षय रोकने के लिए आधारभूत १० नियम संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं।

(१) भली प्रकार जलोत्सारित भूमि पर गृह-निर्माण होना चाहिए (चित्र १११ देखिए);

(२) काष्ठ सदा शुष्क अवस्था में रहे;

(३) अनुपचारित काष्ठ को भूमि, कंक्रीट और चिनाई के संस्पर्श में न लाया जाय;

(४) नम स्थानों में वायु के संवहन की व्यवस्था रखी जाय;

(५) अनुपचारित काष्ठ को सड़े काष्ठ के संस्पर्श में न लाया जाय;

(६) कंक्रीट या चिनाई के ऊपर काष्ठ को रखने के पूर्व गरम टार या एस्फौल्ट

का गाढ़ा लेप लगाना आवश्यक है। यह लेप वाष्प-अवरोधक ('वेपर बैरियर') कहलाता है।
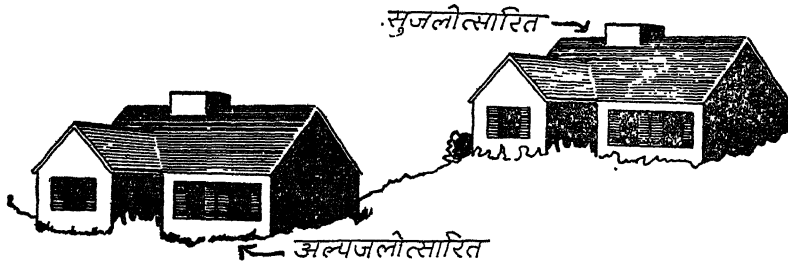
चित्र १११—**सुजलोत्सारित तथा अल्पजलोत्सारित भूमि पर गृह निर्माण।**

(७) जिन स्थानों पर अपक्षय का भय हो वहाँ केवल उपचारित काष्ठ या स्थायी काष्ठ (सारकाष्ठ) का ही प्रयोग किया जाय;

(८) गृहों के नीचे रिक्त स्थानों में कंक्रीट या सीमेंट भरा जाय;

(९) छतों और बाहर की दीवारों के परनाले सदा स्वच्छ रहें;

(१०) छिद्र या दरारों से जल चूनेवाले स्थानों की तुरन्त मरम्मत कर दी जाय।

२. दीमकों से बचाव

सामान्यतः जो कवकों से सुरक्षा करने के नियम हैं, वे दीमकों के प्रति भी लागू हैं। वे मुख्य सिद्धांत, जिन पर दीमकों (विशेषतः भूमिनिवासक दीमकों) के नियन्त्रण के नियम आधारित हैं, ये हैं—

(१) वह पदार्थ या संरचना जिसको सुरक्षित रखना है, दीमकों से अनभिगम्य बनायी जाय, अर्थात् दीमकों की पहुँच से बाहर हो।

(२) केवल स्थायी या उपचारित काष्ठ का ही प्रयोग किया जाय।

(३) उस स्थान पर दीमकों की अभिजनन-क्रिया न होने दी जाय।

काष्ठ-जैसा कोषाधु[1] पदार्थ दीमकों के लिए भोजन है। इसके अतिरिक्त दीमकों को अपने जीवन के लिए आर्द्रता की आवश्यकता होती है। भूमि ही दीमकों का निवासस्थान है, जहाँ पर आर्द्रता सदा बनी रहती है। अतः दीमकों की आवश्यकता के लिए आर्द्रता का स्रोत भूमि ही है। दीमकें, जो गृहों में आक्रमण करती

1 Cellulose.

हैं, अपना सम्पर्क भूमि से बनाये रखती हैं, यदि यह सम्पर्क तोड़ दिया जाय तो गृहों की सब दीमकें मर जायँगी। सबसे उत्तम दीमकों का निवारक अथवा रोकने का उपाय यही है कि गृहों में इस प्रकार की रचना की जाय कि दीमकों को भूमि से, जो उनका मूल पैत्रिक स्थान है, चढ़ने का अवकाश न मिले। ऐसा करने का एक साधारण उपाय, धातु (कुप्यातु, अथवा 'गैल्वेनाइज्ड'—लोहा या पीतल की चादर) की ढालों ('शील्ड्स') का प्रयोग है। ये ढालें कम-से-कम ३ इंच (७.५ सेन्टीमीटर) तक दीवारों के बाहर निकली रहती हैं, जो ४५° के कोण पर नीचे को ५ सेन्टीमीटर तक झुकी रहती हैं। चित्र ११२ में दीमक-ढालों का स्थिरीकरण स्थान दिखाया गया है।

दीमकों के चरित्र के सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि वे दीवारों और खम्भों के ऊपर चढ़ती हैं और जहाँ पर मार्ग में ढाल हो, उसके ४५° कोण के निचले भाग के किनारे तक पहुँचकर रुक जाती हैं। वे उस किनारे के ऊपर नहीं चढ़ सकतीं, अतः उनका आवागमन वहीं तक सीमित रहता है, जिसके कारण ढाल से ऊपर की संरचना सुरक्षित रह सकती है। दीमकों का इस प्रकार भूमि से संपर्क टूट जाने के कारण उनके आक्रमण का भय नहीं रहता। यहाँ पर विशेष ध्यान धातु-ढालों पर ही दिया जाता है कि कहीं उनका किनारा टूटकर गिर न जाय अथवा किसी और पदार्थ को छूने की व्यवस्था न हो, जिसके द्वारा दीमकों को चढ़ने का अवसर मिल जाय। इस पर निरन्तर निरीक्षण की आवश्यकता है। भूमि के नीचे ऐसे पदार्थ भी एकत्रित न हो जायँ जो उनके लिए खाद्य की सामग्री हों। भूमि पर कहीं भी दरारें या छिद्र हों तो उनको सीमेंट से भरकर बन्द कर देना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं दरारों या छिद्रों से दीमक भूमि से अपना सम्पर्क बनाये रखती हैं।

भूमि या दीवार के संस्पर्श में जहाँ कहीं भी काष्ठ प्रयुक्त किया गया हो वह या तो भली प्रकार से उपचारित किया गया हो, अथवा टीक या साल जैसे स्थायी काष्ठ का सारकाष्ठ हो। दीमकों की सुरंगा दिखाई देने पर उनके उद्गम-स्थान का निरीक्षण करना चाहिए और जहाँ से वे आरम्भ हों वहाँ पर गाढ़े परिरक्षी का लेप कर देना चाहिए। दीमकों को भी नमी की आवश्यकता होती है, अतः जहाँ तक सम्भव हो सके नमी की व्यवस्था छतों और नलों से पानी चूने के कारण न होने दी जाय।

जहाँ दीमकें बहुतायत से हों, वहाँ गृहों की नींव के आस-पास और नीचे की मिट्टी को विषैली बना देना लाभप्रद होता है। इसके लिए नींव के चारों ओर एक, कम-से-कम आधे मीटर गहरी संकीर्ण खाई खोद देनी चाहिए। इस खाई में उचित रसायन को प्रचुर मात्रा में डालकर और मिट्टी से आधा भरकर पुनः थोड़ी मात्रा में रसायन डालते
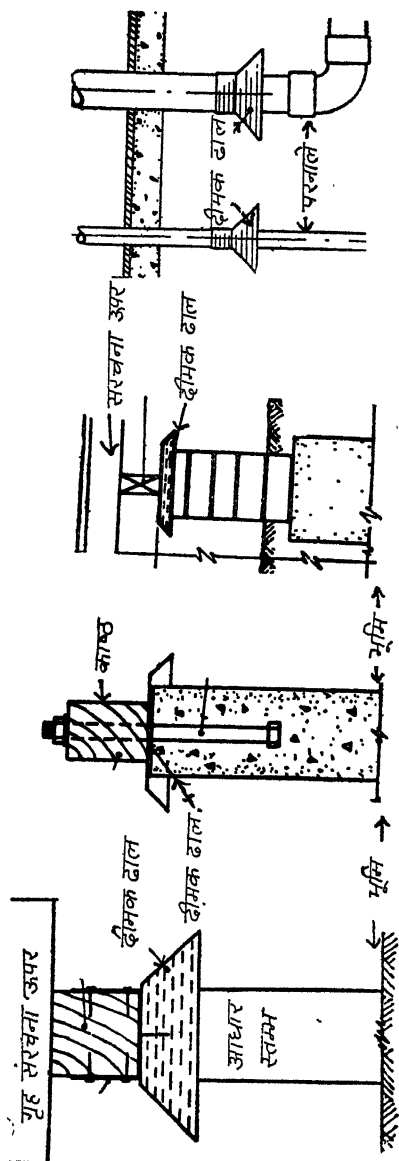
चित्र ११२—धातु की बनी दीमक-ढालों का स्थिरीकरण स्थान।

रहना चाहिए। जो रसायन इसके लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, वे हैं—सोडियम आर्सिनाइट, कोलतार-क्रियोजोट, ट्राइक्लोरोबैन्जीन, और्थोडाइक्लोरोबैन्जीन, पैन्टाक्लोरोफीनौल और क्लोर्डेन। पानी में सोडियम आर्सिनाइट का १० प्रतिशत विलयन, क्लोरोबैन्जीन के १ भाग में ३ भाग मृत्तैल का मिश्रण, पैन्टाक्लोरोफीनौल का मृत्तैल में ५ प्रतिशत विलयन और क्लार्डेन का १ से २ प्रतिशत जल में पायस ('इमल्शन') प्रयुक्त किया जाता है। खाई में इनकी मात्रा दीमकों की प्रचुरता के अनुसार ०.२५ गैलन से लेकर ०.५ गैलन तक प्रति फुट खाई, अर्थात् ३.७५ किलोग्राम से लेकर ७.५ किलोग्राम प्रति मीटर खाई के हिसाब से है। ये सब रसायन विषैले हैं अतः इनके प्रयोग करने में सावधानी की आवश्यकता है।

दीमकों के मण्डल को नाश करने की एक विधि है जिसे 'कौवन्स्' विधि या विष-धूलि विधि भी कहते हैं। इसमें विष के चूर्ण को दीमकों की सुरंगा में छोटे छिद्रों द्वारा एक विशेष धूलिप्रसारण-पिचकारी से फूँककर पहुँचाया जाता है। ऐसी एक फूँकनी चित्र ११३ में दिखलायी गयी है। इस फूँकनी से विष धूलि के रूप में सुरंगा में प्रविष्ट कराया
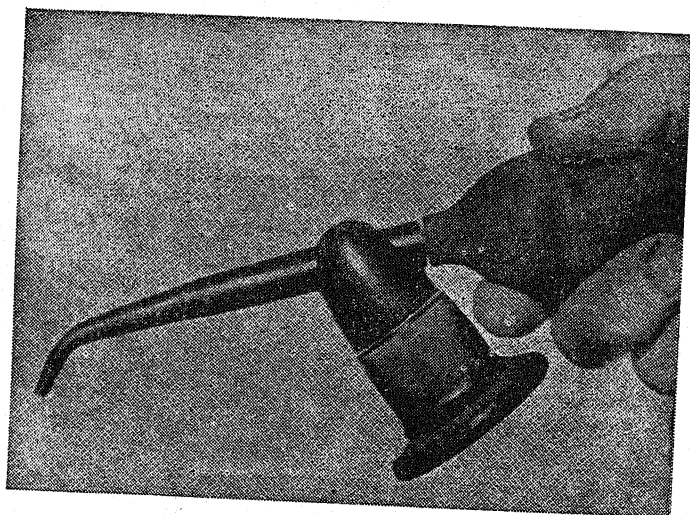
चित्र ११३—**दीमक-समूह को विष-धूलि से मारने की फुँकनी।**

जाता है। दीमकों की आदत एक-दूसरी को स्पर्श करके चलने की होती है, जिसके कारण वे संपूर्ण मंडल में विष-धूलि का प्रसारण कर देती हैं और तदनन्तर मण्डल का नाश हो

जाता है। इस विधि में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि सुरंगा को छेड़ान जाय और उस स्थान पर ही दूर-दूर छिद्र बनाये जायँ जहाँ पर फूँकनी से विष-धूलि पहुँचाना हो। यदि सुरंगा अधिक छेड़ी गयी तो दीमक उस स्थान से हट जाने का प्रयत्न करती हैं, जिससे विष-धूलि का यथोचित प्रकार से प्रसारण नहीं हो सकता। विषधूलि में पैरिस-ग्रीन, संखिया, सोडियम फ्लोसिलिकेट इत्यादि रसायनों का चूर्ण प्रयुक्त किया जाता है। गृहों में सोडियम फ्लोसिलिकेट का प्रयोग अन्य तीव्र विष-रसायनों की अपेक्षा अधिक हितकारी होगा। विषधूलि विधि से शुष्ककाष्ठ-दीमकों के मण्डल को भी मारने में सफलता होती है। जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, शुष्क-काष्ठ-दीमकें भूमि से संपर्क नहीं बनातीं, वे काष्ठ के ही अन्दर प्रवेश कर अपना मंडल वहाँ स्थापित करती हैं। अतः शुष्ककाष्ठ-दीमकों के मण्डल के नाश के लिए सुरंगा के स्थान पर आक्रान्त काष्ठ पर ही छिद्र बनाने पड़ते हैं और उन्हीं छिद्रों से विषधूलि का प्रवेश कराया जाता है। यद्यपि शुष्ककाष्ठ-दीमकों के लिए यह विधि प्रभावशाली है, तथापि गृहों के लिए जाली का प्रयोग हितकारी होगा, विशेष कर दीमकों की उड़ान की ऋतु में, जिससे उनको गृहों के अन्दर प्रवेश करने का अवकाश न मिले।

३. छिद्रक कीटों से बचाव

लिक्टस् प्रजाति के छिद्रक कीटों के डिम्भ द्वारा क्षति, संशोषित काष्ठ के रस-काष्ठ तक ही सीमित रहती है। बहुधा अस्थायी अथवा अरोधी काष्ठों के बने उपस्कर, हथियारों के बेंटों, कृषि-सम्बन्धी यन्त्रों इत्यादि को भी इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा में हानि पहुँचती है। ये कीट निरन्तर कार्य में लाये जानेवाले काष्ठ-पदार्थों पर बिरले ही आक्रमण करते हैं, परन्तु जो काष्ठ लम्बे अवसर तक निरंतर संचित किये जाते हैं, उन्हीं पर मुख्यतः ये आक्रमण करते हैं।

लिक्टस् के आक्रमण से सुरक्षा के लिए उचित प्रकार से स्वच्छता-प्रबन्ध, समया-नुसार निरीक्षण और लम्बे अवसर तक संचय न किये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए। अरोधी काष्ठों के बने पदार्थों का ऐसे स्थानों में संग्रह नहीं करना चाहिए जहाँ कोई कीट-संक्रांत काष्ठ विद्यमान हो। सुरक्षा के लिए काष्ठों का चट्टा इस प्रकार से लगाना चाहिए कि समय-समय पर उसका भली प्रकार से निरीक्षण किया जाना सम्भव हो सके। चूंकि ये कीट धीरे-धीरे आक्रमण करते हैं, अतः जहाँ कहीं भी इनके आक्रमण का पता लगे, वहाँ तुरन्त ही संक्रान्त काष्ठ को अलग करने का प्रबन्ध कर देना चाहिए, जिससे कि और काष्ठों में आक्रमण फैलने की संभावना न रहे। पुराने संचित काष्ठों का प्रयोग

पहले किया जाय और अनावश्यक काष्ठों को अधिक मात्रा में संचित न किया जाय। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय कि काष्ठ-संचय करना अनिवार्य हो, तो क्षतिरोधक उपायों का, जो सारणी १४ (परिशिष्ट २) में दिये गये हैं, उपाश्रय लेना चाहिए।

यदि काष्ठ को संग्रहालय में कीट संक्रान्त होने के बाद सेवाकार्य में लगाया जाय तो आक्रमण की दशा बनी रहती है। अतः कार्य में लगाने के पूर्व ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि काष्ठ के अन्दर जीवित कीट न हों। यदि काष्ठ पर गम्भीर आक्रमण हुआ हो तो उसे जलाकर नष्ट कर देना ही उचित होगा। अंशतः हानि पहुँचे हुए काष्ठों का कम से कम ६०° सेन्टीग्रेड पर वाष्पीकरण अथवा ८५° सेन्टीग्रेड पर भट्ठी में पूर्णतया संशोषण कर लेना चाहिए। यह तापनकाल काष्ठ के आकार, आर्द्रता और तापन-माध्य के ऊपर निर्भर रहता है। वाष्पीकरण का प्रभाव उसी तापक्रम पर शुष्क ताप की अपेक्षा अधिक रहता है।

यद्यपि ताप से काष्ठ में विद्यमान कीटों का जीवाणु-हनन हो जाता है, तथापि वह सदा के लिए काष्ठ को आक्रमणरोधी नहीं बना सकता। स्थायी सुरक्षा के लिए असंक्रान्त काष्ठ के बनाये पदार्थों पर रंगलेप, वार्निश, अलसी-तैल या किसी और उचित लेप से संपूर्ण भाग में पूर्णतया आवरण या लेपन किया जाय, जिससे काष्ठ-रन्ध्र या काष्ठ की तरेड़ें भर जायँ और उनमें प्रौढ़ छिद्रक कीटों को अंडे देने का अवकाश न मिले। यह पहले ही वर्णन किया गया है कि ५ प्रतिशत बोरिक अम्ल या सुहागा या इन दोनों के मिश्रण के जलविलयन से निपीड-उपचार करने पर पूर्णतया सफलता मिल सकती है। इसके अतिरिक्त और भी परिरक्षी हैं जिनसे सफलता प्राप्त हो सकती है, पर ये विषैले हैं। इन्हीं साधनों से अन्य प्रकार के छिद्रक कीटों से भी काष्ठ को सुरक्षित रख सकते हैं, पर लिक्टस् जाति का छिद्रक अन्य जाति के छिद्रक कीटों से अधिक महत्त्व रखता है।

४. सामुद्रिक कीटों से बचाव

यद्यपि तीव्र परिरक्षियों से काष्ठ में उच्च प्रचूषण कराये जाने पर काष्ठ-आधार-स्तम्भों को सामुद्रिक कीटों से सुरक्षित करने में अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई है, तथापि समय-समय पर इन कीटों से काष्ठ की सुरक्षा के लिए अन्य विधियों का भी प्रयोग किया गया है। इनमें काष्ठ के बाहर से विभिन्न प्रकार के आवरणों का, जिनको कीट पार करने में असमर्थ रहें, प्रयोग किया जाता है।

ऐसी सबसे पुरानी विधि, काष्ठ-स्तम्भ को सवल्क (बिना छाल निकाले) समुद्र में सेवाकार्य में लगाने की है। सामुद्रिक कीटों के लिए यह स्वाभाविक आवरण (वल्क)

रुचिकर नहीं होता। अतएव वल्क में कीट उतनी सरलता से प्रविष्ट नहीं हो सकते जितने कि वल्करहित काष्ठ में, अतः ये कीट वल्कसहित काष्ठ को कम क्षति पहुँचाते हैं। पर इस प्रकार के वल्क को काष्ठ के संपूर्ण भाग में दृढ़ता से रहने दिया जाना कभी-कभी असम्भव-सा हो जाता है। काष्ठस्तम्भ में जहाँ पर शाखाएँ काटे जाने के कारण गाँठें होती हैं और जहाँ स्तम्भ के परिवहन में वल्क टूटकर गिर जाता है, वे स्थान नंगे रहने से कीटों के आक्रमण-पात्र बन जाते हैं। अतः ऐसे स्थान से आक्रमण फैलकर संपूर्ण स्तम्भ को क्षति पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त यदि स्तम्भ पूर्ण प्रकार से वल्क-छादित भी हो, तो सदा वल्क का काष्ठ से चिपटा रहना जल के मृदूकरण और लहरों के कारण सम्भव नहीं हो सकता। इस प्रकार काष्ठ-स्तम्भ का वल्क सहित प्रयोग अस्थायी रचना के लिए ही किया जाता है।

प्राचीन समय में कीलों का प्रयोग काष्ठ-स्तम्भों की रक्षा के लिए किया जाता था, अब तक भी यह प्रथा डेनमार्क और जर्मनी में थोड़ी-बहुत प्रयुक्त की जाती है। इसमें चौड़े सिरे वाली कीलों को काष्ठ-स्तम्भ के उस भाग में पूर्ण प्रकार से ढककर ठोका जाता है जो कीटों के आक्रमण के संमुख हो। यद्यपि कील एक-दूसरी से मिलाकर पास-पास लगायी जाती हैं, तथापि ये सामुद्रिक कीटों के प्रति संपूर्ण प्रकार से कवच का कार्य नहीं कर सकतीं, क्योंकि इन कीटों के डिम्भ इतने छोटे होते हैं कि कहीं थोड़ा सा भी खुला मार्ग रह जाय तो वे उसी में वास कर लेते हैं। यह भी कहा गया है कि कीलों के मोर्चा से भी थोड़ा बचाव हो जाता है, पर यह सदा सत्य नहीं सिद्ध हुआ है। इस बात का भी उल्लेख (४ण) है कि अमेरिका के चार्ल्स ड्राइ डौक और मशीन कम्पनी ने सन् १९१८ में ६०० चौड़े सिर वाली कीलों को 'यलोपाइन' काष्ठ-स्तम्भों में गाड़ा था। ये कीलें १ इंच लम्बे और ०.५ इंच व्यास वाले सिर की थीं और इनको ०.५ इंच की दूरी पर लगाया गया था। यद्यपि इनके परिणामों के विषय पर कोई सविस्तर उल्लेख नहीं है, फिर भी यह स्पष्ट था कि इस प्रकार से लगाये गये काष्ठ-स्तम्भों से साधारण असुरक्षित काष्ठ-स्तम्भों की अपेक्षा अधिक सेवा-आयु प्राप्त हुई थी। इस प्रकार की रक्षाविधि में यह दोष था कि कीलों को गाड़ने में अधिक श्रम-व्यय लगता था, और दूसरी आपत्ति यह थी कि उष्ण-नम स्थानों में ये कीलें काष्ठ के उस भाग को, जो जल से ऊपर रहता था, अपक्षय से बचाने में असमर्थ थीं, जिसके कारण स्तम्भ सड़कर नष्ट हो जाता था।

प्राचीन समय में काष्ठ-नौकाओं को सुरक्षित रखने के लिए उनके बाहरी तल में धातु की चादर का आवरण लगाया जाता था। इसी प्रकार काष्ठस्तम्भों की

रक्षा के लिए भी उन्नीसवीं शताब्दी में धातु-चादर के आवरण का विकास हुआ। इंग्लैंड में सन् १८३३ में इस प्रकार से आवरण किये गये काष्ठ-स्तम्भों का प्रयोग किया गया। इसके लिए ताँबा-धातु को मान्यता दी गयी थी क्योंकि इसमें मोर्चा नहीं लगता था। इसके विपरीत लोह-चादरें शीघ्र ही मोर्चा लगने के कारण नष्ट हो जाती थीं।

काष्ठ-स्तम्भों के ऊपर धातु-चादर चढ़ाने से पहले उनका भली प्रकार गोल और चौरस किया जाना आवश्यक है, और तब उनके ऊपर टार में भिगोई फैल्ट लपेटने के पश्चात् धातु-चादर का दृढ़ता से कीलों द्वारा स्थिरीकरण किया जाता है। स्तम्भ का संपूर्ण भाग समुद्रतल तक लपेटा जाना आवश्यक है। इस प्रकार धातु-चादर से आवृत किये गये काष्ठ-स्तम्भों से अमेरिका में अच्छी सेवा-आयु प्राप्त हुई है, और ४० वर्ष के उपरान्त भी इनमें से कुछ सुरक्षित अवस्था में थे। इस विधि में कई त्रुटियाँ और अधिक व्यय लगने के कारण इसका प्रयोग कम होता गया।

काष्ठ-स्तम्भों की रक्षा के लिए ढलवाँ लोहे ('कास्ट-आइरन') के नाडों के प्रयोग के बारे में भी उल्लेख हुआ है। ढलवाँ-लोहे में मोर्चा शनैः-शनैः लगता है। इस विधि में काष्ठ-स्तम्भों के बाहर अर्ध-नाडों को जोड़कर लगाया जाता है, और नाड तथा काष्ठ के बीच में जो रिक्त-स्थान रहता है उसमें सीमेंट का मसाला भर दिया जाता है। इस प्रकार संपूर्ण काष्ठ-स्तम्भ के बाहर नाड का आवरण किया जाता है। इससे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है, पर इसमें अधिक व्यय लगता है। इसी प्रकार ढलवाँ-लोहे के स्थान पर संवलित कंक्रीट ('रीइन्फोर्स्ड कंक्रीट') से काष्ठ-स्तम्भों की रक्षा करने में सफलता मिली है। कहीं-कहीं कठोर 'एस्फौल्ट' या 'बिटयूमन' का भी गाढ़ा लेप काष्ठ-स्तम्भों की रक्षा के लिए किया जाता है। यह लेप या तो काष्ठ-स्तम्भ के बाहर अकेले, अथवा तार की जाली और कपड़ा लपेटने के पश्चात् लगाया जाता है। इन विधियों में यही त्रुटि है कि काष्ठ-स्तम्भ का ऊपरी भाग जल से अपक्षय द्वारा नष्ट हो जाता है और इसका बार-बार नवीकरण करना पड़ता है।

नौकाओं के बाह्य तल के लिए भी आक्रमण-रोधी लेप उनकी सुरक्षा के लिए अनिवार्य है, विशेष कर उन नौकाओं के लिए, जिनका निरन्तर समुद्र में प्रयोग किया जाता हो। इस लेप का समयानुसार पुनः स्थापन किया जाना आवश्यक होता है। बहुधा नौकाओं के तल पर तीव्र बद्ध-रूपी जलविलयन परिरक्षी से उपचारित स्तर-काष्ठ के पश्चात् इस आक्रमण-रोधी लेप के प्रयोग से नौकाओं की सेवा-आयु की वृद्धि में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है।

५. आर्द्रता और यान्त्रिक क्षति-रोधन

सेवा-कार्य में लगे हुए काष्ठ की आर्द्रता में वायुमण्डलीय दशाओं के अनुसार परिवर्त्तन होता रहता है, जिसके कारण उसके आकार में भी परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् काष्ठ में सिकुड़न, फुल्लन, विकुञ्चन, विपटन इत्यादि दशाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अभी तक किसी ऐसे संगठन का आविष्कार नहीं हुआ है जो पूर्ण प्रकार से काष्ठ-आकार-दशा के परिवर्तन को रोक सके। यद्यपि इस प्रकार के कई आर्द्रता-रोधी स्वामिक पदार्थ विक्रेय रूप में निकले हैं, तथापि वे काष्ठ के आकार में होनेवाले परिवर्तन को रोकने में अंशतः ही सफल हुए हैं। ये पदार्थ वार्निस, तैल-लेप इत्यादि हैं और इनका मूल आधार मोम, अलसी-तैल, लीसा इत्यादि रहता है। आकार-परिवर्तन को रोकने के लिए काष्ठ का प्रयोग करने के पूर्व, उचित आर्द्रता पर संशोषण करने के पश्चात् योग्य आर्द्रता-रोधी लेप लगाने पर पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इन बातों के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। इसमें एक निपुण कार्यकर्ता को इस विषय का ध्यान रखना पड़ता है कि काष्ठ को प्रयोग करने के उपरान्त किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा, और उसीके अनुसार काष्ठ का संशोषण किये जाने पर उसका प्रयोग करते हैं। जहाँ आवश्यक हो, उसके ऊपर आर्द्रतारोधी संगठनों का निपीड या लेपन से उपचार किया जाता है। निपीड-उपचार के लिए कई प्रकार के 'फीनोल', 'यूरिया', 'डाइ-मिथाइलौल-यूरिया' इत्यादि के संश्लिष्ट लीसा[1] हैं, जिनका काष्ठ में प्रचूषण कराने के उपरान्त अभिसाधन ('क्योरिंग') किया जाता है। इनमें बहुधा बहुत व्यय पड़ता है। लेपन के लिए जैसा पहले लिखा जा चुका है, मौम, लीसा, अलसी-तैल, एस्फौल्ट, बिटचूमन इत्यादि के आधार पर गाढ़ा लेप होता है। वर्तमान समय में कई उपयुक्त संश्लिष्ट लीसाओं का आविष्कार होता जा रहा है। इनका मूल सिद्धान्त यही है कि इस प्रकार के लेप से काष्ठ के ऊपर एक पट्टी-बन्धन सा हो जाता है, जिसके माध्य से आर्द्रता का प्रवेश नहीं ही सकता। यह पट्टी जब तक नहीं टूटती तभी तक प्रभाव-युक्त रहती है और इसके न रह जाने पर तुरन्त ही पुनः लेपन करना आवश्यक हो जाता है।

लट्ठों और स्लीपरों का विपटन रोकने के लिए एक कार्यक्षम लेप का संगठन यह है-कठोर ग्लौस तैल १०० भाग, बैराइटीज़ २५ भाग, एसबस्टीन २५ भाग और क्रिस-लिक अम्ल १५ भाग को मिलाने से बनता है। वैसे एसफौल्ट या बिटचूमन के २५

1 Synthetic resins.

प्रतिशत भाग और इन्धन तैल के ७५ प्रतिशत भाग के मिश्रण का काष्ठ-स्लीपरों और लट्ठों के टक्करों में लेपन करने से भी पर्याप्त मात्रा में विपटन कम हो जाता है।

यान्त्रिक क्षति और ऋतुक्षरण के लिए भी आर्द्रता-रोधी लेप प्रभावकारी होते हैं। परन्तु इनके लिए लेपन-पट्टी का स्तर मोटा होना चाहिए, और यह मोटी पट्टी तभी बन सकती है जब गाढ़े लेप का प्रयोग हो और लेपन दुबारा किया गया हो। संश्लिष्ट लीसा के विलायक तैलों वाले विलयन का काष्ठ में प्रचूषण कराने के बाद अभिसाधन क्रिया से काष्ठ की कठोरता में वृद्धि हो सकती है, जिसके कारण वे यान्त्रिक क्षति रोकने में समर्थ हो सकते हैं।

काष्ठों के ऊपर यान्त्रिक क्षति रोकने में बहुधा पतले धातु-चद्दर का भी प्रयोग किया जाता है, जो उनके ऊपर उचित श्लेष ('सरेस') से चिपकाया जाता है। काष्ठ के रेलवे-स्लीपरों के ऊपर पटरी-आसन में रेल-कटाव को रोकने के लिए आसन पर भारसह पट्ट ('बियरिंग प्लेट') प्रयुक्त किये जाते हैं।

अध्याय ४

भारत में उपचार-संयन्त्रों की योजना और परिरक्षी रसायनों की प्राप्ति

१. उपचार-संयन्त्र स्थापना सम्बन्धी योजना

टीक-जैसे मजबूत और मुख्य काष्ठों की प्राप्ति की कमी तथा मूल्य बढ़ने के कारण अब यह आवश्यक हो गया है कि द्वितीय श्रेणी के काष्ठों को उचित प्रकार से उपचार और संशोषण करने के उपरान्त विभिन्न कार्यों के लिए प्रयोग में लाया जाय। इसके लिए देहरादून की वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-संशोषण शाखाओं ने मिलकर भारत के मुख्य-मुख्य स्थानों में उपचार व संशोषण-संयन्त्रों की स्थापना की योजना बनायी है। इस योजना का यही उद्देश्य है कि काष्ठ के उपभोक्ता शासन विभाग और आम जनता को उपचारित और संशोषित द्वितीय श्रेणी के काष्ठ उपलब्ध हो सकें। इस योजना में यह भी उचित समझा गया है कि काष्ठ-परिरक्षण और संशोषण संयन्त्रों के अतिरिक्त काष्ठ-लट्ठों को प्रमाप परिमाण के आकार में काटने अथवा खण्डन करने की सुविधा भी हो, क्योंकि यह वांछनीय है कि काष्ठ को उपचार के पूर्व ही उचित प्रकार के आकारों में परिवर्तित किया जाना चाहिए, ताकि उपचार के पश्चात् काष्ठ का पुनः कर्तन न हो। इस योजना में सात प्रकार के संयन्त्र अभिस्तावित किये गये हैं, जिनका सूक्ष्म वर्णन निम्न प्रकार से है।

क्रमांक	संयन्त्र-प्रकार	संयन्त्र-वर्णन	काष्ठ की वार्षिक उत्पाद-राशि, लाख घनफुट में	संपूर्ण व्यय, लाख रुपयों में
१	(क)	आरा-धर, उपचारण और संशोषण संयन्त्र	१.०	१२.२
२	(ख)	,, ,, ,, ,,	०.५	६.०
३	(ग)	उपचारण और संशोषण संयन्त्र	१.५	७.५
४	(घ)	,, ,, ,, ,,	०.५	४.२
५	(ङ)	संशोषण संयन्त्र	१.०	५.०
६	(च)	उपचार संयन्त्र	१.५	२.०
७	(छ)	संशोषण संयन्त्र	०.५	२.५

उपरिलिखित संयन्त्र, केवल आरे और बड़े वाष्पित्र को छोड़कर स्वदेश में प्राप्त हो सकते हैं, यदि संयन्त्र-निर्माताओं को आवश्यक इस्पात उपलब्ध कराया जाय। आवश्यक हो तो इन संयन्त्रों का निर्माणकार्य बढ़ाया भी जा सकता है।

उदाहरणार्थ, इनमें से एक संयन्त्र की विभिन्न मशीनों, उनके मूल्य और कार्य-व्यय के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन नीचे दिया गया है।

(क) योजना (काष्ठ की एक लाख घनफुट वार्षिक उत्पादन-राशि)

		अनुमानित मूल्य रुपयों में
१. (अ) आरे		
एक उदग्र-पट्टा आरा, काष्ठलट्ठों का खण्डन करने के लिए		३००००
दो वृत्ताकार आरे	...	१५०००
एक आड़ा आरा	...	५०००
एक आरा तेज करने की मशीन	...	५०००
अतिरिक्त भाग	...	५०००
	कुल	६००००
इसमें २५ प्रतिशत आयात करने पर आशुल्क, भाड़ा और अधिष्ठापन व्यय जोड़िए	...	१५०००
एक बाड़-खम्भ छीलन मशीन	...	३०००
	कुल	७८०००
(आ) संशोषण-भट्ठी ('किल्न')		
चार छोटी भट्ठियाँ, अभिलेखक यन्त्रों सहित (२०×११×१५ फुट)	...	५८०००
एक भट्ठी (२७×११×१५ फुट)	...	१८५००
एक भट्ठी (४२×११×१५ फुट)	...	२८५००
एक वाष्पित्र, १.७५ टन वाष्प प्रति घंटा	...	७५०००
प्रयोगशाला संभार	...	५०००
		१८५०००
इसका १।६ भाग परिवहन और अधिष्ठापन प्रभार के लिए जोड़िए	...	३००००
	कुल	२१५०००

		(रुपयों में)
(उ) बाड़ और फाटक	...	१५०००
(ऊ) विद्युत और जल योजन	...	१५०००
	कुल	३००००
(ए) भूमि और संचार		
दो एकड़ भूमि	...	१०००००
सड़कें और ट्राम-लाइनें	...	२००००
उपस्कर, टेलीफोन इत्यादि	...	१००००
एक लॉरी	...	२५०००
एक क्रेन और ट्रौलियाँ	...	२००००
	कुल	१७५०००

२. काय पूंजी (प्रति वर्ष)

(अ) काष्ठ, एक लाख घनफुट, ६ रु० प्रति घन-फुट की दर से	...	६०००००
इसका १० प्रतिशत बरबाद हो जाने पर जोड़िए		६००००
इसका १।३० वाँ भाग मृत-भट्ठी प्रभार जोड़िए	...	२००००
	कुल	६८००००
(आ) इन्धन	...	३००००
(इ) बिजली	...	१००००
(ई) जल	...	२०००
(उ) कार्यालय व्यय	...	२०००
(ऊ) मिला-जुला व्यय	...	१०००
(ए) अवकाश वेतन	...	६०००
(ऐ) भवन, यन्त्र इत्यादि का संधारण व्यय	...	५०००
(ओ) परिरक्षी-रसायन	...	१०००००
		८३६०००
(औ) इसका १।३ भाग अर्थात् ४ महीने की पूंजी	...	२७८६६६
	अर्थात् ...	२७९०००

३. कर्मचारी और श्रमिक-वेतन व्यय (रुपयों में)

	वेतन		
(अ) आराघर			
तीन आरा-चालक	(६०–१५०)	...	३६००
(आ) वाष्पित्र			
दो वाष्पित्र-चालक	(८०–२२०)	...	३६००
एक उप-वाष्पित्र-चालक	(६०–१५०)	...	१२६०
तीन अग्नि-ज्वालक	(३०–३५)	...	१२००
			९६६०
(इ) संशोषण-भट्ठी			
एक ज्येष्ठ भट्ठी-चालक	(१६०–३३०)	...	२९४०
तीन भट्ठी-चालक	(६०–१५०)	...	३६००
दो भट्ठी-स्थापक	(४०–६०)	...	१२००
			७७४०
(ई) काष्ठ-परिरक्षण संयन्त्र			
एक ज्येष्ठ संयन्त्र-चालक	(१६०–३३०)	...	२९४०
एक संयन्त्र-चालक	(८०–२२०)	...	१८००
दो रम्भ-स्थापक	(४०–६०)		१२००
			५९४०
(उ) यान्त्रिक कर्मशाला			
दो यान्त्रिक (१ यान्त्रिक और १ विद्युत)	(६०–१५०)	...	२०००
एक लोहार	(६०–१५०)	...	१०००
			३०००
(ऊ) कार्यालय-कर्मचारी			
एक अध्यक्ष	(६००–११५०)	...	१०५००
एक लिपिक ('क्लार्क')	(५५–१३०)	...	११००
एक मुद्रलेखक ('टाइपिस्ट')	(५५–१३०)		११००

		(रुपयों में)
एक संग्रहागारिक ('स्टोरकीपर')	(६०–१५०) ...	१२६०
दो चपरासी	(३०–३५) ...	८००
एक मेहतर	(३०–३५) ...	४००
तीन चौकीदार	(३०–३५) ...	१२००
एक ड्राइवर	(८०–२२०) ...	१८००
एक क्लीनर	(३०–३५) ...	४००
अठारह खलासी	(३०–३५) ...	७३००
		५२२००
इसमें मँहगाई (५० प्रतिशत अध्यक्ष के और १०० प्रतिशत अन्य कर्मचारियों के वेतन पर)	...	४६८५०
		९९०५०
इसका १।३ अर्थात् चार महीने का चालू व्यय	...	३३०१७
	अर्थात् ...	३३०००

४. सकल व्यय

पूँजीगत

(अ) आरा	...	७८०००
(आ) संशोषण भट्ठी	...	२१५०००
(इ) उपचार संयन्त्र	...	२०४५००
(ई) भवन	...	२०६०००
(उ) बाड़ और फाटक	...	१५०००
(ऊ) विद्युत और जलयोजन	...	१५०००
(ए) भूमि और संचार	...	१७५०००
	कुल	९०८५००
	अर्थात् ...	९.१० लाख

५. चालू व्यय

		(रुपयों में)
चार महीने की कार्य-पूंजी, पूर्वोक्त २ (अ) से (ओ)	...	२७९०००
चार महीने का कर्मचारी और श्रमिक व्यय, २(औ)	...	३३०००
	कुल	३१२०००
	महायोग	१२२०५००
	अर्थात्	१२.२० लाख

६. वार्षिक व्यय

पूँजी पर ६ प्रतिशत की दर से अवमूल्यन	...	४८५१०
पूँजी पर ४ प्रतिशत की दर से ब्याज	...	३६३४०
कार्य-व्यय पर ४.५ प्रतिशत की दर से ब्याज	...	१४०४०
एक वर्ष का सकल चालू व्यय	...	९३४९५०
	कुल	१०३३८४०

७. आमदनी अथवा प्राप्ति

काष्ठ-विक्रय	...	६८००००
काष्ठ-संशोषण मूल्य १.७५ रु० प्रति घनफुट की दर से	...	१७५०००
काष्ठ-उपचार मूल्य १.०० रु० प्रति घनफुट की दर से	...	१०००००
चिरान मूल्य ०.५० रु० प्रति घनफुट की दर से	...	५००००
काष्ठ मूल्य पर १० प्रतिशत की दर से लाभ	...	६८०००
	कुल	१०७३०००

८. लाभ

पूर्वोक्त पद (७—६)	...	३९१६०
अनपेक्षित हानि	...	६१६०
वास्तविक लाभ	...	३३०००

जो लगभग २.७५ प्रतिशत है।

पूर्वोक्त योजना में उपभोक्ताओं के आवश्यकतानुसार काष्ठों को लट्ठे, बिजली व बाड़-खम्भ के रूप में मोल लेने और तब उचित निर्माण आकार में आरा व वल्क-छीलन मशीन द्वारा परिवर्तन करने का निर्देश है। इसमें परिवर्तन करने के उपरान्त काष्ठ को भट्ठी या वायु में संशोषण करने के भी साधन बतलाये गये हैं। काष्ठ के आवश्यकतानुसार उचित परिरक्षी (तैल, जल-विलयन या प्रांगारिक विलायक रूपी) से उपचार भी कराया जा सकता है। अतः संशोषण और उपचार-व्यय, जिसका उपरिलिखित पद ७ (आमदनी अथवा प्राप्ति) में उल्लेख है, घट-बढ़ सकता है। यह काष्ठ के अन्तिम प्रयोगों के ऊपर निर्भर है। संशोषण व उपचार संयन्त्रों का उत्पादन दो या तीन पारी काम करने से बढ़ाया जा सकता है। उचित मूल्य पर परिवर्तित काष्ठों का संशोषण और उपचार किये जाने की व्यवस्था भी इस योजना में है।

उपरिलिखित योजना के (क) से लेकर (छ) तक के किसी भी संयन्त्र-प्रकार की स्थापना करनी हो तो उसी के काष्ठ की वार्षिक उत्पादराशि के अनुसार विभिन्न संयन्त्रों को, इस उदाहरण में विस्तारपूर्वक दिये गये विवरण से, चुनना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में वन-अनुसन्धानशाला की काष्ठ-परिरक्षण और काष्ठ-संशोषण शाखाओं से मन्त्रणा लेना उचित होगा।

२. सामुदायिक विकास के लिए तापन-शीतन विधि द्वारा काष्ठ-उपचार की योजना (३ ग)

(क) प्रस्थापना

तापन-शीतन विधि, काष्ठ-उपचार की विधियों में सब से सरल विधि है। इसमें क्रियोजोट-इन्धन तैल के (५० : ५०) मिश्रण से खुले कुण्ड में काष्ठ-उपचार किया जाता है।

भारत में, विशेष कर सामुदायिक योजना-प्रशासन के अन्तर्गत ग्रामों में, बड़ी मात्रा में काष्ठ और फाड़े हुए बाँसों का प्रयोग गृह और पुल निर्माण, बाड़-खम्भों इत्यादि के लिए होता है। इस निर्माण-सामग्री का यदि क्रियोजोट-इन्धन तैल (५० : ५०) मिश्रण से तापन-शीतन विधि द्वारा उपचार कराया जाय तो इससे बनायी गयी संरचनाएँ कई वर्षों तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं, जिसके फलस्वरूप भवन अथवा भूमि के स्वामी को पर्याप्त मात्रा में बचत हो सकती है, और साथ-साथ काष्ठ-प्रदाय का संरक्षण भी किया जा सकता है। इस योजना का सविस्तर वर्णन नीचे किया गया है। इस योजना में १०००० रु० की पूंजी लगाने से, २५० रु० का मासिक वास्त-

विक लाभ प्राप्त हो सकता है, जिससे एक पढ़ा-लिखा ('इन्टर साइन्स' पास) व्यक्ति शिष्ट जीवन व्यतीत कर सकता है। यद्यपि इसके लिए उपचार-कुण्ड ईंट और सीमेंट का बनाया जाता है, जो चित्र ५८ ख में दर्शाया गया है, तथापि इसको इस्पात-चादरों से भी बना सकते हैं, जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सके। यदि आरम्भकाल में इस्पात-कुण्ड बना सकने के लिए पूँजी प्राप्त हो सके, तो इसे इस्पात का ही बनाना अधिक व्यवहार्य होगा।

देहरादून में साल-बल्लियों का मूल्य इस प्रकार है—

२५ फुट से ३० फुट तक के बिजली-खम्भ, जिनका मुण्ड-छोर व्यास ६ इंच और शीर्ष ३ इंच है	...	३० रु० प्रति खम्भ
१२ फुट लम्बी बल्ली	...	३.७५ रु० प्रति बल्ली
१५ फुट लम्बी बल्ली	...	५ रु० प्रति बल्ली
१५ फुट लम्बी बल्ली (५ इंच मुण्ड छोर व्यास की)	...	४ रु० प्रति बल्ली

(ख) उपचारित काष्ठ की अनुमानित माँग

इस गणना के लिए यह अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक गृह के लिए ५० बल्लियों की आवश्यकता होगी, और प्रत्येक गाँव में ५० ऐसे गृह सम्मिलित होंगे। ऐसे ५ गाँवों के लिए १२५०० बल्लियों की आवश्यकता होगी। १५ मील अर्धव्यास के घेरे में ऐसे २५ गाँव आसानी से हो सकते हैं। अतः उस स्थान पर ५ वर्ष तक इस संयन्त्र में पूर्ण क्षमता से कार्य हो सकता है।

(ग) संयन्त्र-क्षमता

इस गणना के लिए २५ फुट लम्बे और ६ इंच माध्य व्यास के साल-खम्भ, जिनका मूल्य ५ रु० प्रति खम्भ है, लिये गये हैं। १२००० खम्भों, अर्थात् लगभग ५०००० घनफुट काष्ठ प्रति वर्ष के उपचार के लिए, ३०० दिन प्रति वर्ष काम करने पर २० फुट लम्बे, ४ फुट चौड़े और ५ फुट गहरे परिमाण वाले कुण्ड की आवश्यकता होगी।

(घ) परिरक्षी प्रचूषण

काष्ठ में ५ पौंड प्रति घनफुट, अर्थात् ८० किलोग्राम प्रति घनमीटर क्रियोजोट-इन्धनतैल (५०:५०) मिश्रण के प्रचूषण की व्यवस्था की गयी है। इससे यह आशा की जाती है कि उपचारित खम्भ से लगभग ३० वर्ष की सेवा-आयु प्राप्त हो सकती

है, जब कि अनुपचारित खम्भ की लगभग ५ वर्ष की ही सेवा-आयु रहती है। काष्ठ-खम्भों में ५० से ७० प्रतिशत तक रसकाष्ठ रहता है जो अत्यन्त अल्पस्थायी होता है।

(ङ) योजना की आर्थिक व्यवस्था

(अ) भूमि और बाड़ लगाने पर पूंजी नियोजन	३०० रु०
(आ) भवन-निर्माण—	४०० रु०
(इ) कुण्ड और नाल—	६०० रु०
(ई) एक मास के लिए परिरक्षी-सामग्री	३००० रु०
(उ) दो श्रमिकों का २ रु० प्रति दिन के हिसाब से एक मास का वेतन, और तापन के लिए इन्धन—	५०० रु०
कुल	४८०० रु०
अर्थात्	५००० रु०

(च) उपचार-व्यय

उपचार-व्यय जिसमें श्रम और इन्धन सम्मिलित है	०.१२ रु० प्रति घनफुट
संभाव्यता व्यय	०.०६५ रु० ,, ,,
लाभ	०.०६५ रु० ,, ,,
कुल	०.२५ रु० प्रति घनफुट
परिरक्षी का मूल्य—	०.७५ रु० प्रति घनफुट
सकल उपचारव्यय	१.०० रु० प्रति घनफुट

(छ) वार्षिक मूल्य

अनुपचारित काष्ठ-खम्भ का मूल्य	५.०० रु०
उपचारित काष्ठ-खम्भ का मूल्य	९.०० रु०
अनुपचारित काष्ठ-खम्भ की सेवा-आयु	५ वर्ष
उपचारित काष्ठ-खम्भ की सेवा-आयु	३० वर्ष
अनुपचारित काष्ठ-खम्भ का वार्षिक मूल्य	१.५५ रु० } (सारणी ६ के अनुसार)
उपचारित काष्ठ-खम्भ का वार्षिक मूल्य	०.५८५ रु० }

अतः उपचार किये जाने पर प्रति खम्भ पर प्रति वर्ष ०.९६५ रु० की बचत रही।

(ज) वास्तविक लाभ

प्रति घनफुट पर ०.०६५ रु० लाभ की दर से और ५०००० घनफुट उपचारित काष्ठ की अनुमानित माँग के अनुसार प्रति वर्ष ३२२५ रु० का वास्तविक लाभ प्राप्त

हो सकता है, अर्थात् प्रति मास २६९ रु० का वास्तविक लाभ प्राप्त हुआ। यदि कुछ अचानक हानि भी हो जाय, तो इस वास्तविक लाभ की गणना २५० रु० प्रति मास तक की जा सकती है। यह अच्छा होगा यदि ५००० रु० की पूँजी आवश्यक पदार्थों के खरीदने के लिए प्राप्त रहे,क्योंकि ग्राहकों से मूल्य इकट्ठा करने में विलम्ब हो सकता है।

३· उपचार-संयन्त्र निर्माताओं के पते और मूल्यकथन

काष्ठ-उपचार-साधक संयन्त्रों की धारिता और मूल्य में अत्यन्त विभिन्नता है, जो काष्ठ की उपचार-विधियों और वार्षिक उपचार-मात्रा पर निर्भर रहता है। एक ओर तो तापन-शीतन उपचार के लिए साधारण खुले कुण्ड के संयन्त्र हैं, जिनका मूल्य अपेक्षाकृत कम है, और दूसरी ओर जटिल एवं विस्तृत निपीड संयन्त्र हैं, जिनका मूल्य कई गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के श्रम बचाने की मशीनें भी होती हैं, जिनका मूल्य कई हजार रुपयों तक होता है। अतः काष्ठ-उपचार संयन्त्रों की स्थापना के लिए इस सम्बन्ध में विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। कम खर्च की दृष्टि से काष्ठ-उपचार संयन्त्र इतना बड़ा भी नहीं होना चाहिए कि उसमें पूर्ण-क्षमता से कार्य करने के लिए उचित मात्रा में काष्ठ उपलब्ध न हो, और न संयन्त्र इतना छोटा ही हो कि उससे बड़ी मात्रा में सामर्थ्य से अधिक काष्ठ-उपचार कराने के लिए बाध्य होना पड़े। इसके अतिरिक्त इस पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि काष्ठ का कितनी अवधि तक की रक्षा के लिए उपचार करना अनिवार्य है।

निम्नलिखित प्रकरणों में विभिन्न क्षमता के काष्ठ-उपचार संयन्त्रों की प्राप्ति के सम्बन्ध में निर्माताओं के पते और लगभग मूल्य कथन की सूचना दी गयी है। जब से (सन् १९५२ से) इस विषय पर सूचना प्राप्त हुई है, इस्पात-चादरों की, जो उपचार संयन्त्रों के निर्माण के लिए आवश्यक और मुख्य पदार्थ हैं, उपलब्धि में परिवर्तन होते जा रहे हैं और संयन्त्रों के मूल्य में भी वृद्धि होती जा रही है। अतः इन मूल्यों की स्वीकृति के लिए सावधानी की आवश्यकता है। यह उचित होगा कि संयन्त्रों के मूल्य निम्नांकित निर्माताओं से नये प्रकार से मँगाये जायँ।

(क) निपीड संयन्त्र

वर्तमान समय में भारत में बड़े व्यास वाले निपीड-रम्भ के, जो इन संयन्त्रों का मुख्य भाग है, निर्माता नहीं हैं। इस्पात की मोटी चादरों को मोड़ने के साधन यहाँ नहीं हैं, और न उचित प्रकार की पीड़ित-इस्पात चादरें ही उपयुक्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यद्यपि छोटे व्यास वाले (५ फुट अर्थात् १.५२ मीटर से कम) रम्भ के कुछ

निर्माता भारत में विद्यमान हैं, यदि उनको आवश्यक इस्पात उपलब्ध कराया जाय, तथापि बड़े व्यासवाले रम्भों का आयात विदेशों से किया जाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त पम्प, नाड, अभिलेख यन्त्र इत्यादि-इत्यादि भी विदेशों से ही प्राप्त हो सकते हैं। वाष्पित्र भी, जो क्रियोजोटीकरण संयन्त्र के लिए आवश्यक अंग हैं, भारत में छोटे परिमाण के, थोड़ी ही संख्या में निर्माण किये जाते हैं और इनकी माँग भी बहुत है, जिसके कारण ये समय पर उपलब्ध नहीं हो सकते। अतः इनका भी आयात किया जाना आवश्यक है। निर्माताओं के पते और मूल्यकथन निम्न लिखित हैं।

(अ) **विदेशी निर्माता (१ ज)**—

(१) महोदय प्रैट्चिट ब्रदर्स लिमिटेड, डैन्टन् आइरन वर्क्स, कार्लिस्ली (यूनाइटेड किंग्डम्)

(भारत में इनके प्रतिनिधि, महोदय ग्रीव्स् कौटन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १ फौरबैस स्ट्रीट, पोस्टबौक्स् ५१, बम्बई १, हैं)

संयन्त्र-परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रों, वाष्पित्र द्वारा चलित पम्प, इंजन सहित)	(सन् १९५२ में) मूल्य
निपीड रम्भ, व्यास ८ फुट (२.४४ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१९३३३३.३ रु०
„ व्यास ७ फुट (२.१३ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१७३३३३.३ रु०
„ व्यास ६ फुट (१.८३ मीटर) और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर)	१६००००.० रु०
„ व्यास ६ फुट (१.८३ मीटर) और लम्बाई ८५ फुट (२५.९१ मीटर)	२१३३३३.३ रु०
वाष्पित्र अनेक नाड वाला, उदग्र, व्यास ७ फुट (२.१३ मीटर) और ऊँचाई १५ फुट (४.५७ मीटर)	३६००० रु०
तैल-संचय कुण्ड, ३ लाख गैलन का	१६०००० रु०
तैल-संचय कुण्ड, १ लाख ५० हजार गैलन का	८०००० रु०

(२) महोदय जे० एन्ड जे० हॉर्सफील्ड लिमिटेड, वलकन आइरन वर्क्स, ड्यूसबर्ग, यॉर्कशायर, (यूनाइटेड किंग्डम्)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रों, वाष्पित्र द्वारा चालित पम्प, इंजन सहित) (सन् १९५२ में) मूल्य

निपीड रम्भ (वाष्पित्र सहित), व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर) और लम्बाई ६२ फुट (१८.९० मीटर) २२१८०० रु०

" " व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर) और लम्बाई ८२ फुट (२४.९९ मीटर) २५५६६६.७ रु०

" " व्यास ६.५ फुट (१.९८ मीटर), और लम्बाई ४५ फुट (१३.७२ मीटर) २०१७६० रु०

(३) महोदय बोर्सिग, एक्टींगिसैलसैफ्ट्–टेगल (वेस्ट जर्मनी)

(भारत में प्रतिनिधि—महोदय के० जी० खोसला एन्ड कम्पनी, प्राइवेट लिमिटेड, १ देशबन्धु गुप्त रोड, नयी दिल्ली १)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार अन्य यन्त्रों सहित वल्क छीलन मशीन, क्रेन इत्यादि)

निपीड रम्भ, व्यास २.२ मीटर (७.२ फुट) और लम्बाई २५ मीटर (८२.१ फुट) ६,९१,४०० रु० (सन् १९५२ में)

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार केवल पम्प, ट्रालियाँ, तुला, तैल-तापन यन्त्र इत्यादि सहित)

निपीड रम्भ, व्यास १.३ मीटर (४.३ फुट) और लम्बाई ११.७ मीटर (३८.४ फुट) १७५६०० रु० (सन् १९५६ में)

(४) महोदय बस लिमिटेड, बैसिल २, स्विटजरलैंड

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार यन्त्र, वाष्पित्र द्वारा चालित पम्प इत्यादि) (सन् १९५२ में) मूल्य कथन स्विस फ्रैन्क

निपीड रम्भ, व्यास २.४४ मीटर (८ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २६०००० रु०

" " व्यास १.८३ मीटर (६ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २१०००० रु०

" " व्यास २.१३ मीटर (७ फुट) और लम्बाई १३.७५ मीटर (४५ फुट) २३४००० रु०

निपीड रम्भ	व्यास २.४४ मीटर (८ फुट) और लम्बाई २५ मीटर (८२ फुट)	३०९००० रु०
,, ,,	व्यास १.८३ मीटर (६ फुट) और लम्बाई १९ मीटर (६२.४ फुट)	२२७००० रु०
	२४ ट्रालियाँ	२६०० रु०
	मिश्रणकुण्ड (२५ घनमीटर)	५८०० रु०
	अभिलेखक; तापमान और निपीडक (प्रत्येक दो)	३१०० रु०
	तुला	११३०० रु०
	वाष्पित्र (१०.५ वायुमण्डल सेवा दबाव)	५५००० रु०
	दो वर्ष के लिए अतिरिक्त भाग	३५००० रु०

(५) महोदय बौलीडौन्स् ग्रभाक्टीबोलाग, स्टौकहोम, स्वीडन

(भारत में प्रतिनिधि—महोदय भल्कन ट्रेडिंग कम्पनी, प्राइवेट लिमिटेड, इन्ड-स्ट्रियल प्लान्ट डिवीजन, ८।९ थाम्बू चेट्टी स्ट्रीट, मद्रास १)

संयन्त्र परिमाण (अन्य यन्त्र सहित) (सन् १९५७)

रम्भ व्यास		रम्भ लम्बाई		मूल्य, स्वीडिश क्राउन में (स्वीडिश बन्दरगाह पर)
मीटर	इंच	मीटर	फुट	
१.०	४०	५	१७	२१०००
१.२	४८	६	२०	३३०००
१.२	४८	८	२७	३७५००
१.५	६०	१०	३३	४७०००
१.५	६०	१५	५०	५६०००
१.५	६०	२२	७३	६७०००

पूर्वोक्त रम्भों में एक ही द्वार होगा। यदि दो द्वारों के रम्भ की आवश्यकता हो तो उसका मूल्य १.५ मीटर व्यास के रम्भ के लिए ५००० स्वीडिश क्राउन अधिक होगा। इसमें तापन के साधन सम्मिलित नहीं हैं।

(६) महोदय हिक्सन टिम्बर इम्प्रेग्नेटिंग कम्पनी लिमिटेड, लंडन (यू० के०)

(भारत में प्रतिनिधि—श्री जी० एल० हन्डा, पो० बोक्स १५६, नयी दिल्ली)

निपीड रम्भ व्यास ४.५ फुट (१.३५ मी०) (सन् १९५७) मूल्य

लम्बाई ३६ (फुट (११.० मीटर) ७९३७० रु० (बम्बई में)

(आ) स्वदेशी निर्माता

(१) महोदया वेस्टर्न मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी, पोस्ट बौक्स् १२३०, बम्बई १

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर, अन्य यन्त्र सहित विशिष्टि-अनुसार) — (सन् १९५८) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ५ फुट (१.५२ मीटर), लम्बाई ४५ फुट (१३.७ मीटर) — ११०००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ४ फुट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४५ फुट (१३.७ मीटर) — ८५००० रु०

(२) महोदय एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, २६ चौरंगी रोड, कलकत्ता १३ (प्रतिनिधि—महोदय विलियम् जैक्स् एन्ड कम्पनी, पोस्ट बौक्स् ३६९, कलकत्ता १)

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर अन्य यन्त्र सहित, विशिष्टि-अनुसार) — (सन् १९५७) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ४ फूट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४० फुट (१२.२ मीटर) — ७३००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ३ फुट (०.९१ मीटर) और लम्बाई ३५ फुट (१०.७ मीटर) — २२७५० रु०

(३) महोदय किन्लैब (प्राइवेट) लिमिटेड, १५१ कार्नानी मैनीशन, पार्कस्ट्रीट, कलकत्ता १६

संयन्त्र परिमाण (वाष्पित्र छोड़कर अन्य यन्त्र सहित विशिष्टि-अनुसार) — (सन् १९५७) मूल्य

निपीड रम्भ, व्यास ४ फुट (१.२२ मीटर), लम्बाई ४० फुट (१२.२ मीटर) — ६०००० रु०

निपीड रम्भ, व्यास ३ फुट (०.९१ मीटर), लम्बाई ३६ फुट (११.० मीटर) — ४०००० रु०

(ख) अनिपीड संयन्त्र—तापन-शीतन खुला कुण्ड

(१) महोदय किन्लैब (प्राइवेट) लिमिटेड, १५७ कार्नानी मैनीशन्, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता १६

संयन्त्र परिमाण (विशिष्टि-अनुसार, पम्प, सेवाकुण्ड इत्यादि सहित)

आयताकार, मृदु-इस्पात-चादर (३।१६ इंच अथवा ४.७६ मिलीमीटर) का बना कुण्ड— (सन् १९५७) मूल्य

लम्बाई—३१ फुट (९.४५ मीटर)

चौड़ाई—४ फुट (१.२२ मीटर)

गहराई—४ फुट (१.२२ मीटर) १८००० रु०

(२) निम्नलिखित निर्माताओं से पूछताछ करने और उनको यथोचित मात्रा में मृदु-इस्पात चादरें उपलब्ध कराने पर, तापन-शीतन उपचार के लिए खुले कुण्ड बनाये जा सकते हैं। यह उचित होगा कि इस सम्बन्ध में उनसे मूल्याकलन मँगाये जायँ।

सर्वश्री विलियम जैक्स एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १६, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता १; सर्वश्री वैस्टर्न मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी, हसन चैम्बर्स, पार्सी बाजार स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई १

—कॉर्पोरेटैड इन्जीनियर (इन्डिया) लिमिटेड, ७ चित्तरञ्जन एवेन्यू, चौरंगी स्क्वायर, कलकत्ता १३

—टी० ई० टौम्पसन् एन्ड कम्पनी, ९ ए इस्प्लैनेड ईस्ट, कलकत्ता १

—ग्रीव्स् कौटन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, १ फोरबेस स्ट्रीट, पोस्ट बौक्स ९१, बम्बई १

—एलकौक, एशडउन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, डिफैन्स् वर्कस्, मझगांव, बम्बई १०

इसके अतिरिक्त और भी यान्त्रिक अभियान्त्रिकी-फर्मों ('मिकैनिकल इन्जीनियरिंग फर्म्स') से इस सम्बन्ध में पत्रव्यवहार करने और संयन्त्रों की उचित विशिष्टि देने पर, अनिपीड साधारण काष्ठ-उपचार संयन्त्रों का निर्माण कराया जा सकता है।

(३) मन्द निपीड (० से लेकर ५० पौंड प्रति वर्ग इंच, अर्थात् ० से लेकर ३.५१ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) के रम्भ, जो पेटियों के बक्स और गृह-छत-निर्माण तख्तों और तनु-बाड़-खम्भों के उपचार के लिए उपयुक्त होते हैं, और जो इधर-उधर ले जाने के लिए भी सुविधाजनक हैं, अपेक्षाकृत कम मूल्य पर निर्माण कराये जा सकते हैं। उपर्युक्त खंड (२) में दिये गये निर्माता इस प्रकार के संयन्त्र बनाने में समर्थ हो सकते हैं। इसके लिए हाथ से चलाये जानेवाले निपीड-पम्प कार्य कर सकते हैं। ऐसे एक ३ फुट (०.९१ मीटर) व्यास और

१२ फुट (३.६६ मीटर) लम्बाई के रम्भ उपचार-संयन्त्र की मेसर्स एस्क्यू वुड प्रौडक्टस् ने विरचना की है। इसका मूल्य (सन् १९५३ में) लगभग ५००० रु० था।

यदि ये छोटे परिमाण के रम्भ पहियों के ऊपर धारण कराये जायँ तो ये सुवाह्य बन सकते हैं और इनसे पृथक्-पृथक् स्थानों में शीघ्र ही काष्ठ-उपचार किया जा सकता है। चित्र ७४ में ऐसे वाह्य-निपीड-संयन्त्र दर्शाये गये हैं।

(४) बूशरी प्रक्रिया से हरे काष्ठ-खम्भ और गोल बाँसों के उपचार के लिए मन्द-निपीडक कुण्ड (जो चित्र ५५ में दिखाये गये हैं) किसी भी यान्त्रिकी शाला में पतली इस्पात चादरों से बनाये जा सकते हैं। देहरादून में एक १ घनफुट (लगभग २८ लीटर) का कुण्ड (कपाट इत्यादि सहित), प्रायः १०० रु० में बनाया गया गया था।

(ग) उपसाधित्र

(क) वाष्पित्र

(स्वदेशी निर्माता)

सर्वश्री बैबकॉक एन्ड विलकॉक्ष औफ इन्डिया लिमिटेड, ४, बैंकशौल स्ट्रीट, कलकत्ता।

—गैनन्, डन्कर्ले एन्ड कम्पनी लिमिटेड, ४ लायन्स् रेन्ज, कलकत्ता।

—टैक्सटाइल मैशीनरी कॉर्पोरेशन लिमिटेड, पो० ओ० बेलघरिया, २४ परगना, कलकत्ता।

—जौन टॉम्पसन् (इन्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, ४ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता।

—स्टैन्डर्ड इन्जीनियर्स एन्ड को०, ११६ जी० टी० रोड कानपुर।

—टैक्समैको, ८ इन्डिया इक्सचेन्ज प्लेस, कलकत्ता १।

(ख) खम्भ-छीलन मशीन (विदेशी निर्माता)

सर्वश्री एल्बर्ट बैजनर, रेभन्सबर्ग (वुर्थ), फर्नरूफ नर २१०६ (वेस्ट जर्मनी), मूल्य लगभग ५८०३ डालर।

—जौन पिकल्स् एन्ड सन्स्, हैल्डन ब्रिज, इंग्लैंड, मूल्य लगभग १३०० पौंड।

(ग) चट्टे लगाने की मशीन

मेसर्स बौलीडौन्स ग्रूभाक्टिबोल्गा, ए० बी० स्वीडन, मूल्य लगभग १८०० स्वीडिश क्राउन।

(घ) **पम्प इत्यादि** (स्वदेशी निर्माता)

मेसर्स टी० ई० टॉमसन एन्ड कम्पनी लिमिटेड, ९ ए इस्प्लेनेड ईस्ट, पो० औ० १९३, कलकत्ता १।

मेसर्स के० जी० खोसला एन्ड को०, १ देशबन्धु गुप्त रोड, नयी देहली।

,, वर्थिङटन एन्ड सिम्पसन लिमिटेड, १०४ अपौलो स्ट्रीट, बम्बई १।

,, माथर एन्ड प्लाट लिमिटेड, ७ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता।

,, ब्रिटिश इलैक्ट्रिकल्स् एन्ड पम्पस् लिमिटेड, १–१ बी मिशन रो इक्स-टैन्सन, कलकत्ता।

(ङ) **अभिलेखक तापमान और निपीडक**

मेसर्स लार्सन एन्ड टोब्रू लिमिटेड, १ सी हाउस, दुगल रोड, बलार्ड इस्टेट, बम्बई १।

,, के ओर ब्रदर्स, पी ३६, रोयल इक्सचेन्ज प्लेस इक्सटैन्सन्, कलकत्ता १।

,, टोशनीवाल ब्रदर्स लिमिटेड, १९८ जमशेदजी टाटा रोड, फोर्ट, बम्बई १।

४. परिरक्षी रसायनों के निर्माता, उत्पादन और मूल्य

सारणी—३१

(सन् १९५३ में)

क्रमांक	परिरक्षी रसायन	निर्माता	लगभग प्रति वर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१	२	३	४	५
		तैल-रूपी		
१	कोलटार क्रियोजोट	मेसर्स शालीमार टार प्रौडक्टस् (१९३५) लि०, ६ लियोन्स् रेन्ज, कलकत्ता।	•४००० टन (स्वदेशी)	१२·३७ रु० प्रति हन्डरवेट
२	क्रियोजैन्ट	,, ,,	—	४ रु० प्रति गैलन
३	कोलटार क्रियोजोट	१. — बरारी कोक कम्पनी लि० ४, क्लाइब रो, कलकत्ता। २. — नाग कैमिकल इन्डस्ट्रीज ४ मन्डेभिले गार्डन, बेलीगंज, कलकत्ता।	९० टन (स्वदेशी)	
४	सौलिग्नम्	१. — आर० के० एन्ड जे० के० डौस, वार्डलेहाउस, २५ स्वालो लेन, कलकत्ता १। २. — ग्लैडस्टोन लायल एन्ड को लि०, ४ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता।	(आयातित)	७ रु० प्रति गैलन

क्रमांक	परिरक्षी-रसायन	निर्माता	लगभग प्रति वर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१.	२	३	४	५
५	स्लीपर ऑइल वुड-ऑइल अर्थ ऑइल	मेसर्स बर्मा औइल कम्पनी (इन्डिया-ट्रेडिंग) लि०, दिगबौय, आसाम।	९३८५२ गैलन ४६४२९ गैलन ११५३९ गैलन (स्वदेशी)	इन तैलों में कुछ क्रियोजोट (०·५ प्रतिशत तक) मिला रहता है।
६	अर्थ ऑइल, फ्यूयल औइल और फर्नेस औइल (इन्धन तैल)	१. — स्टेन्डर्ड वैकुअम औइल कम्पनी। २. — बर्मा-शैल कं०	बड़ी मात्रा में प्राप्त (आयातित)	१३१·०६ रु० प्रति टन (टैंक वैगन में)।
		प्रांगारिक-विलायक-रूपी		
१	कॉपर नैप्थीनेट (२००-यस)	— स्टेन्डर्ड वैकुअम् औइल कम्पनी, क्यूनस्वे, न्यू देहली।	—	८६·९० रु० प्रति हंडरवेट। २ प्रतिशत ताम्र धातु वाला
२	कॉपर नैप्थीनेट	— जैन्सन एन्ड निकल्सन् (इन्डिया) लि०, २ फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता १।	३ टन (आयातित)	८ प्रतिशत ताम्र धातु वाला।
	जिंक नैप्थीनेट	,, ,,	२ टन (आयातित)	१२ प्रतिशत जिंक धातु वाला
३	कॉपर और जिंक नैप्थीनेट (हार्डीप्रूफ)	— एडिसन पेन्टस् एन्ड कैमीकल्स् लि०, सैम्बियाम, मद्रास-११।	स्टेन्डर्ड हार्डीप्रूफ-२३२३ गैलन	१२ रु० प्रतिगैलन

१	२	३	४	५
			कौन्स० हार्डीप्रूफ १५५४ गैलन (स्वदेशी)	
४	कॉपर और जिंक नैप्थीनेट	मेसर्स कलकत्ता इन्डस्ट्रियल कैमीकल्स् एन्ड मिनरल्स को० लि०, ४३ धरमतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-१३।	—	—
५	पैन्टाक्लोरोफीनौल	१. — मौन्सेन्टो कैमिकल्स् ऑफ इन्डिया लि० पो० बॉक्स ३४४-ए, बम्बई १।	२७३०० पौंड (आयातित)	२२७ ·६० रु० प्रति हन्डरवेट
		२. — अल्टा लेबोरेटरीज़, बम्बई	(स्वदेशी)	
		जल-विलयन रूपी		
१	आर्सनिक पैन्टोक्साइड	१. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०।	(आयातित)	
		२. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।	(आयातित)	
२	आर्सनिक ट्राइऔक्साइड	१. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०।	(आयातित)	
		२. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।	(आयातित)	
३	कॉपर सल्फेट	१. — शंभूनाथ एन्ड सन्स् लि०, जी० टी० रोड, अमृतसर।	१९४९ टन (स्वदेशी)	
		२. — मैसूर कैमीकल्स एन्ड फर्टीलाइजर लि०, भानीभिलास रोड, मैसूर।		

क्रमांक	परिरक्षी-रसायन	निर्माता	लगभग प्रतिवर्ष उत्पादन (स्वदेशी या आयातित)	मूल्य
१	२	३	४	५
		३. मेसर्स इक्सल इन्डस्ट्रीज, जोगेस्वरी, बम्बई। ४. — मैसूर कैमिकल मैन्यूफेक्चरर्स चिक-बनाभर (मैसूर)। ५. — केसर सुगर वर्क्स, ४५–४७ अपोलो स्ट्रीट, फोर्ट, बम्बई। ६. — पिटलाड टर्की रैड डाइ वर्कस् को० लि०, पिटलाड। ७. — शंभूनाथ कैमिकल वर्कस्, एच० ब्लाक, कैनॉट सर्कस, न्यू देहली। ८. — इन्डिया एल्कैलीज़, ४ गार्स्टनी प्लेस, कलकत्ता। ९. — राम्को कैमिकल वर्कस्, कपासिया बाजार, अहमदाबाद। १०. — इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०। ११. — सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२। १२. — बंगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, कलकत्ता।	८८ रु० प्रति हन्डरवेट।	

१	२	३	४	५
४	सोडियम और पोटासियम् डाइक्रोमेटस्	१. — कैमिकल इन्डस्ट्रीज को० लि०, २९ स्ट्रैन्ड रोड, कलकत्ता। २. — कानपुर कैमिकल वर्कस्, अनवरगंज, कानपुर । ३. — हिन्दुस्तान कैमिकल वर्कस् लि० अदभानी चैम्बर्स, सर पी० एम० रोड, बम्बई। ४. — पाइनियर क्रोमेट वर्कस् लि०, करीमभोय हाउस, ईस्ट औट्राम्-रोड, फोर्ट, बम्बई। ५. — प्रीमियर क्रोमेट एन्ड केमिकल वर्कस्, ४०२ कैंडल रोड, बम्बई। ६. — गवर्मेंट डाइक्रोमेट फैक्टरी, बेलागुला (मैसूर)। ७. — गोल्डन कैमिकल लि०, १५६ घोबन्दर रोड, भिल्लेपार्ले, बम्बई। ८. — बकिंघम एन्ड कर्नाटक को० लि०, पी० बी० ६६, मद्रास-१।	संपूर्ण उत्पादन लगभग १४६० टन।	८५ रु० प्रति हुंडरवेट् (बड़ी मात्रा में)।
५	जिंक क्लोराइड	१. — टाटा कैमिकल लि०, मिटियापुर, सौराष्ट्र। २. — बंगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, ९४ चितरञ्जन एवेन्यू, कलकत्ता।	(स्वदेशी) लगभग ३८४ टन।	
६	जिंक सल्फेट	१. — पिटलाड टर्की रैंड डाइ वर्कस् को० लि०, पिटलाड।		

१	२	३	४	५
		२. मेसर्स फोनिक्स कैमिकल वर्कस्, आगरा रोड, ओल्ड कुरला, बम्बई। ३. —इक्सैल इन्डस्ट्रीज,जोगेश्वरी, बम्बई। ४. —इन्डिया कैमिकल इन्डस्ट्रीज, १०५ कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता। ५. —इन्डिया एल्कैलीज लि०, ५ गार्स्टन प्लेस, कलकत्ता। ६. —बंगाल कैमिकल एन्ड फार्मास्यूटिकल वर्कस् लि०, कलकत्ता।	(स्वदेशी) लगभग ६० टन।	
७	बोरिक एसिड और बोरैक्स (सुहागा)।	१. —शंभुनाथ कैमिकल वर्कस्, कैनाट सर्कस, न्यू देहली। २. —इम्पीरियल कैमिकल इन्डस्ट्रीज (इन्डिया) लि०। ३. —सुरेश एन्ड को० लि०, ५७ लोहार स्ट्रीट, बम्बई-२।	(आयातित)	३६·५० रु० प्रति हन्डरवेट।
८	सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट	—मौनसान्टो कैमिकल्स् ऑफ इन्डिया लि०, बम्बई-१।	(आयातित) ११९६७२ पौंड	२४१·५० रु० प्रति हन्डरवेट।
		जल-विलयन (बद्ध) रूपी—एकस्वीकृत		
१	ऐस्क्यू ..	—एस्क्यू वुड प्रौडक्टस्, २६ चौरंगी कलकत्ता १३।	(स्वदेशी)	
२	कुक्रोम ..	—किन्लब (प्राइवेट) लि०, १५७ कार्नानी मैनीशन,पार्क स्ट्रीट,कलकत्ता १६।	(स्वदेशी)	
३	बौलीडौन सौल्ट (एस० २५)	—लार्सन एन्ड टौब्रू लि०, इन्जीनियर्स, पौ० बौ० ९८, बंगलौर-१।	(आयातित)	१५७·६३ रु० प्रति हन्डरवेट।

निर्देश-सूची

१ (च) पुरुषोत्तम, ए; पांडे, जे० एन०; जादव, वाई० जी०; भारतीय वन विवरणिका ('इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन'), नं० १६८,१९५३, पृष्ठ ९।
१ (छ) तत्रैव पृष्ठ ११।
१ (ज) तत्रैव पृष्ठ ६७–६८।
१ (झ) तत्रैव पृष्ठ ४०–४८।
३ (ख) काष्ठ-प्रचूषक और परिरक्षक संस्था की पत्रिका ('जर्नल् ऑफ दी टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजरवर्स एसोसियेशन् ऑफ इन्डिया) जनवरी १९५४, पृष्ठ ६।
३ (ग) तत्रैव जनवरी १९५५, पृष्ठ १७।
४ (ठ) हन्ट, जी० एम०; गैरेट, जी० ए०; काष्ठ परिरक्षण ('वुड प्रीजरवेशन'), मैकग्रौहिल बुक कम्पनी, इंक, न्यूयार्क, १९५३, पृष्ठ ३१७।
४ (ड) तत्रैव पृष्ठ २७१।
४ (ढ) तत्रैव पृष्ठ ३५३–५४।
४ (ण) तत्रैव पृष्ठ ३५७।
११. नारायणमूर्ति, डी०, भारतीय वन महाविद्यालय, ('इन्डियन फौरेस्ट कॉलेज') के विद्यार्थियों के लिए व्याख्यान टिप्पण।
१२ (क) नारायणमूर्ति, डी०, भारतीय वन विवरणिका, ('इन्डियन फौरेस्ट बुलेटिन') ११९, 'काष्ठ, यान्त्रिक और रासायनिक अभियन्त्रिकी में, १९४८ पृष्ठ ३।
१२ (ख) तत्रैव पृष्ठ ४।
१२ (ग) तत्रैव पृष्ठ ५।
१२ (घ) तत्रैव पृष्ठ ८।
१२ (ङ) तत्रैव पृष्ठ १३।
१३. काष्ठ परिरक्षण समाचार ('वुड प्रीज़र्विंग न्यूज'), अमेरिकन काष्ठ परिरक्षण संस्था द्वारा प्रकाशित, मार्च १९३७, पृष्ठ ३०।
१४ (क) पुरुषोत्तम, ए०; सूदन, एस० के०; और विद्यासागर; भारतीय वन विवरणिका ('इन्डियन फौरेस्ट बुलैटिन'), १७८, १९५४, पृष्ठ ९।
१४ (ख) तत्रैव पृष्ठ १९।

परिशिष्ट १

सारणी ११

परिरक्षी-प्रवेशन के दृश्यता-निश्चायक प्रतिकर्ता रसायन

यदि क्रियोजोट-जैसे तैलीय परिरक्षी से काष्ठ का उपचार किया गया हो तो काष्ठ में इसके प्रवेशन का निश्चयन गहरा रंग होने के कारण सरलता से किया जा सकता है। कॉपर नैफ्थीनेट जैसे प्रांगारिक विलायक रूपी परिरक्षी भी रंगीन होते हैं, अतः इनका प्रवेशन भी काष्ठ के अन्दर स्पष्ट ज्ञात हो जाता है, परन्तु अन्य विलायक और जल-विलेय परिरक्षियों का स्पष्टीकरण, जो हलके रंग के अथवा रंगहीन होते हैं, निम्नलिखित प्रतिकर्ता रसायनों की सहायता से किया जा सकता है।

१. जिंक क्लोराइड अथवा क्रोमेटेड-जिंक क्लोराइड परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

(क) १ ग्राम पोटैसियम् फैरीसाइनाइड, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

(ख) १ ग्राम पोटैसियम् आयोडाइड्, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

(ग) ५ ग्राम घुलनशील स्टार्च, १०० घन सेन्टीमीटर पानी में

स्टार्च को उबलते पानी में डालकर भली प्रकार घोल बना लेना चाहिए। यह घोल अधिक समय तक नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इसके खट्टा हो जाने का भय है।

लगाने की रीति—उपरिलिखित तीनों घोल (क), (ख) और (ग) प्रत्येक की १० घन सेन्टीमीटर मात्रा को भली प्रकार मिला लें और उपचारित काष्ठ के स्वच्छ अनुप्रस्थ छेद अथवा संछिद्रित डट्टा के ऊपर शीकरन या लेपन द्वारा लगा दें। उपचारित भाग तुरन्त नीले रंग का हो जायगा और अनुपचारित भाग कुछ समय उपरान्त तक रंगहीन ही रहेगा।

२. एस्क्यू या सैल्क्यूलर परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

०.५ ग्राम एस० डाइफिनाइल कार्बजाइड को ५० घन सेन्टीमीटर आइसोप्रोपाइल एल्कोहोल और ५० घन सेन्टीमीटर डिस्टिल्ड जल में घोलिए।

लगाने की रीति—उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद अथवा डट्टा के स्वच्छ भाग के ऊपर शीकरन या लेपन द्वारा उपरिलिखित घोल को लगाइए। उपचारित काष्ठ गुलाबी रंग का हो जायगा और अनुपचारित काष्ठ का रंग वैसा ही रहेगा।

३. जिंक मैटाआर्सिनाइट परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

(क) १ ग्राम आयोडीन और ५ ग्राम पोटैसियम् आयोडाइड को १०० घन सेन्टीमीटर पानी में घोलिए।

(ख) ४ ग्राम घुलनशील स्टार्च और ८ ग्राम सोडियम बाइकार्बोनेट को १०० घन सेन्टीमीटर पानी में घोलिए। स्टार्च को उबलते पानी में घोलना चाहिए और तब कमरे के तापक्रम तक ठंडा हो जाने पर सोडियम बाइ-कार्बोनेट डालिए।

लगाने की रीति—उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद या संछिद्रित डट्टा के तल पर उपरिलिखित (क) और (ख) घोल की बराबर मात्रा को मिलाकर शीकरन या लेपन से लगा दिया जाय। उपचारित काष्ठ तुरन्त रंगहीन हो जायगा और अनुपचारित भाग का रंग कुछ समय तक वैसा ही रहेगा।

४. पैन्टाक्लोरोफीनौल परिरक्षी

प्रतिकर्ता रासायनिक घोल

कॉपर एसीटेट के १ प्रतिशत घोल को रैक्टीफाइड स्पिरिट में बनाइए।

लगाने की रीति—कूँची द्वारा उपरिलिखित घोल को स्वच्छ उपचारित काष्ठ के अनुप्रस्थ छेद या संछिद्रित डट्टा के ऊपर लेपन कीजिए। उपचारित काष्ठ भूरे रंग का हो जायगा।

परिशिष्ट २

सारणी १४

क्षतिरोधक उपायों का विवरण

(काष्ठ और बाँसों के कटान के तुरन्त पश्चात्)

प्राचीन काल में जब काष्ठ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था, तब टीक, साल, देवदार-जैसे स्थायी काष्ठों के रसकाष्ठ को निकालकर प्रयोग में लाया जाता था। अब काष्ठ की माँग अत्यन्त बढ़ गयी है, अतः न केवल द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठ को ही, किन्तु सभी काष्ठों के रसकाष्ठ को भी प्रयोग में लाने लगे हैं। यद्यपि इस पर संतोष होता है कि काष्ठ-संपत्ति का उचित प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है, तथापि सभी काष्ठों के रसकाष्ठ और द्वितीय श्रेणी के अस्थायी काष्ठों के सारकाष्ठ भी कवक और कीटों के आक्रमण को रोक नहीं सकते, जिसके कारण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इसके अतिरिक्त अभिरञ्जक कवकों से भी काष्ठ को पर्याप्त मात्रा में क्षति पहुँचती है। बाँस आदि भी इसी प्रकार आक्रमण के ग्रास बन जाते हैं, विशेष कर छिद्रक कीटों (घुन) के। यह आक्रमण-काल वर्षा ऋतु में उग्र रहता है, जब मौसम की दशा उष्ण-नम रहती है। इस प्रकार का आक्रमण कुछ काल तक क्षतिरोधक उपायों से रोका जा सकता है, अर्थात् क्षतिरोधक उपायों के समय-समय पर पुनरावर्तन से काष्ठ को तब तक सुरक्षित रख सकते हैं जब तक कि स्थायी रूप से उसका उपचार न किया जाय। ये उपाय काष्ठ के लट्ठों के कटान के तुरन्त पश्चात् वल्करहित करने पर परिरक्षी से शीकरन या लेपन करने से सफल होते हैं। यहाँ पर यह विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि काष्ठ का प्रत्येक भाग पूर्णतया परिरक्षी से आवृत हो। जिस काष्ठ में अधिक विपटन[1] हो उसको धूप से बचाना चाहिए और उसके टक्कर में परिरक्षी के अतिरिक्त विपटन-रोधी संगठनों का लेप करना भी अनिवार्य होता है।

निम्नलिखित सारणी में क्षतिरोधक परिरक्षी, उनकी मात्रा और मूल्य का विवरण दिया गया है।

1 Splitting.

सारणी-१४

क्रमांक	परिरक्षी और उसका संगठन	परिरक्षी का जल में प्रतिशत संकेन्द्रण	चार गैलन टीन में जल-विलयन परिरक्षी बनाने की मात्रा	उपचार के लिए १००० बी० जी० स्लीपरों का		१००० वर्गफुट काष्ठ-तल का	
				परिरक्षी विलयन की मात्रा, गैलन में	परिरक्षी का मूल्य	परिरक्षी विलयन की मात्रा, गैलन में	परिरक्षी का मूल्य
					रु० न.पै.		रु. न.पै.
१	क्रियोजोट का जल में पायस ('इमल्सन्')	२५	—	२००	१२५ ·००	१०	६ ·२५
२	एस्क्यू आर्सेनिक पैन्टोक्साइड—१ भाग कॉपर सल्फेट—३ भाग सोडियम डाइक्रोमेट—४ भाग	६	२ ·४ पौंड (१ ·१ किलोग्राम)	२००	१२० ·००	१०	६ ·००
३	बोरिक अम्ल—१ भाग जिंक क्लोराइड—३ भाग सोडियम डाइक्रोमेट—४ भाग	८	३ ·२ पौंड (१ ·५ किलोग्राम)	२००	१५० ·००	१०	७ ·५०
४	गैमक्सेन—१ भाग (एग्रोसाइड, जल-वितरण वाला चूर्ण) सोडियम पैन्टाक्लोरोफीनेट १ भाग	२	० ·७५ पौंड (० ·३४ किलोग्राम)	२००	१२८ ·७५	१०	६ ·४४

टिप्पणी —

(१) परिरक्षी को लगाने की विधि या तो उसके विलयन में काष्ठ को ५ मिनट तक डुबाये रखने की है, या काष्ठ-दल पर परिरक्षी-विलयन के दो उदार लेप कूँची से लगाये जायँ (दूसरे लेप को तभी लगाना चाहिए जब पहला लेप सूख जाय)। तीसरी विधि यह है कि काष्ठ-तल पर परिरक्षी-विलयन का पिचकारी से अच्छी तरह शीकरन किया जाय।

(२) काष्ठ-स्लीपरों को 'नौ में एक' विधि से और तख्तों के बीच में बत्ते लगाकर चट्टा लगाना चाहिए। प्रत्येक दशा में काष्ठ का भूमि से १८ इंच उठे हुए आधारस्तम्भों पर, जो ईंट अथवा उपचारित काष्ठ के बने हों, चट्टा लगाना चाहिए।

(३) काष्ठ-प्रांगण को सदा स्वच्छ रखना चाहिए और समय-समय पर चट्टों का निरीक्षण करते रहना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो तीन महीने के बाद क्षति-रोधक उपचार का पुनः प्रयोग करना वांछनीय है।

(४) काष्ठ के तल पर बुरादा दिखलाई देने पर यह संकेत मिलता है कि छिद्रक कीटों का आक्रमण होने लगा है। अभिरञ्जक या काष्ठ-नाशक कवकों के आक्रमण से काष्ठ-तल पर फफूँदी या दाग उत्पन्न होने लगता है। यदि काष्ठ पर आक्रमण अधिक मात्रा में हो गया हो, तो उसको जलाकर भस्म कर देना उचित होगा।

(५) यदि बहुत बड़ी संख्या में काष्ठ को सुरक्षित रखना हो तो उपचार की शीकरन विधि सर्वश्रेष्ठ है। इस विधि से कार्य करनेवाले श्रमिकों को ऐसे आवरण पहन लेने चाहिए जिससे उनकी नाक और आँखों का बचाव हो सके।

(६) काष्ठ-लट्ठों के लिए यह सर्वोत्तम है कि उनकों पूर्णतया वल्क-रहित किया जाय और तब उदारता से संपूर्ण भाग में परिरक्षी-शीकरन किया जाय। २ फुट व्यास और १४ फुट लम्बे आकार वाले लट्ठे की सतह को शीकरित करने के लिए १०० वर्ग-फुट काष्ठ-तल माना जाता है। काष्ठ को परिरक्षी से शीकरन करने के उपरान्त एक सप्ताह तक वर्षा या पानी से बचाना चाहिए।

(७) काष्ठ-स्लीपरों के लिए उपरिलिखित १ क्रमांक का परिरक्षी-संगठन उपयुक्त है। अन्य कार्य के काष्ठों के लिए २ और ३ क्रमांक के परिरक्षी उतरती दक्षता के अनुसार अभिस्तावित किये गये हैं। छिद्रक कीटों और अभिरञ्जक कवकों के आक्रमण को रोकने के लिए ४ क्रमांक का परिरक्षी-संगठन उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के परिरक्षियों को, जो कि सैल्क्यूलर, पैन्टाक्लोरोफीनौल, डीलिड्रिन-पी० सी० पी०, इत्यादि-इत्यादि हैं, क्षतिरोधक परिरक्षी के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं। यह सब काष्ठ के आकार-प्रकार, स्थान, जलवायु, रक्षणकाल, आक्रमण अभिकर्त्ता और काष्ठ के अन्तःप्रयोग के ऊपर निर्भर है।

परिशिष्ट ३

सारणी १६

वन-अनुसन्धान-शाला, देहरादून में किये गये परीक्षणों के अनुसार काष्ठ की प्राकृतिक दशा में प्रज्वलन-गति की सूची, जो काष्ठ के उतरते अर्थात् अवरोही अग्निरोधी गुणों के क्रमानुसार है—

श्रेणी १

१. हार्डविकिया बिनाटा, २. डायोस्पीरौस् जाति।

श्रेणी २

३. होपिया पार्भीफ्लोरा, ४. टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा, ५. टर्मिनेलिया पैनी-क्यूलाटा, ६. यूकेलिप्टस् ग्लौब्यूलस्, ७. शोरिया रोबस्टा (रसकाष्ठ), ८. बर्या एमोनिला।

श्रेणी ३

९. बिस्चोफिया जैभैनिका, १०. क्लोरौक्सीलौन स्वीटेनिया।

श्रेणी ४

११. बोरैसस् फ्लैबीलीफर, १२. करापा मौल्यूसैन्सिस्, १३. अर्टोकार्पस् हिर्स्यूटा, १४. एनोजाइसस् लैटीफोलिया, १५. टैक्टोना ग्रैन्डिस्, १६. क्वर्कस इलैक्स।

श्रेणी ५

१७. स्कीमा वालिची, १८. एकेशिया एरैबिका, १९. पाइनस् लौंगीफोलिया, २०. स्टीरियोस्पर्मम् सैलोनौइडीज, २१. टोडैलिया बाइलोक्यूलैरिस, २२. डायौ-स्पीरौस जाति (रसकाष्ठ), २३. लैगर्स्ट्रोमिया जाति, २४. डिप्टैरोकार्पस जाति, २५. टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्, २६. एल्बीजिया लैबैक्, २७. टैरोकार्पस् डल्बर्जियो-इड्स्, २८. डल्बर्जिया सिसू, २९. टर्मिनेलिया बैलैरिका।

श्रेणी ६

३०. प्रूनस् पैडम्, ३१. डलबर्जिया लैटीफोलिया, ३२. एल्बीजिया ओडो-राटिसिमा, ३३. कैलोफिलम् टोम्यनटोसम्, ३४. कुप्रूसस् टौरूलोसा, ३५. एडीना कौर्डीफोलिया, ३६. होमैलियम् टोमैन्टोसम्, ३७. सैड्रैला तूना।

श्रेणी ७

३८. जुगलान्स रेजिया, ३९. हाइमैनोडिक्टयौन इक्सैल्सम्, ४०. टैट्रैमलस् न्यूडीफ्लोरा, ४१. टर्मिनेलिया बियालाटा।

श्रेणी ८

४२. पीसिया मोरिन्डा, ४३. स्वीटेनिया जाति, ४४. टर्मिनेलिया माइरियो-कार्पा, ४५. मैंगीफरा इन्डिका, ४६. मोरस् जाति, ४७. पाइनस् इक्सैल्सा।

श्रेणी ९

४८. मौरिंगा जाति, ४९. एन्थोसिफैलस् कदम्बा, ५०. बौम्बैक्स मैलैबैरिकम्, ५१. इन्डौस्पर्मम् मैलैसैन्स्, ५५. एरीथ्रौना इन्डिका, ५६. क्रिप्टोमैरिया जैपोनिका।

परिशिष्ट ४

सारणी १८

खुले कुण्ड में तापन और शीतन उपचार संयन्त्र की विशिष्टि

१. एक पीडित इस्पात-चादर का बना कुण्ड, जिसका परिमाण ४० फुट (१२·२ मीटर) लम्बा, ६ फुट (१·८ मीटर) चौड़ा और ६ फुट (१·८ मीटर) गहरा हो। यह किनारों पर भली प्रकार संधानित और संवलित हो, ताकि यह काष्ठ-प्रभार और परिरक्षी का भार सहन करने योग्य हो और चूनेवाला न हो।

२. कुण्ड की संपूर्ण लम्बाई में सवा इंची (३·२ सेन्टीमीटर) मृदु-इस्पात के बने वाष्प-तापन-नाल हों और १.५ इंच (३.८ सेन्टीमीटर) के मोड़ ('यूनियन') हों। कुण्ड के तल पर कम-से-कम ऐसे १४ नाल होने चाहिए।

३. एक उसी परिमाण का (ऊपर १ पद में लिखा, लगभग ९००० गैलन अर्थात् ४०९१४ लीटर का) नीचे सेवाकुण्ड हो, जो ईंट और सीमेंट का भी बनाया जा सकता है। इसमें परिरक्षी-द्रव को उपचार-कुण्ड से, काष्ठ-प्रभार को उतारते और लादते समय, रिक्त कर संग्रह कर सकते हैं।

४. एक 'सैन्ट्रीफ्यूगल पम्प' जो द्रव को सेवा-कुण्ड से खींचकर उपचार-कुण्ड में भर दे।

५. मृदु-इस्पात चादर के बने लगभग २०,००० गैलन (९०९१९ लीटर) के दो संग्रह कुण्ड। इनके तले में गरम करने के लिए वाष्प-तापन-नाल भी होने चाहिए।

६. एक उपयुक्त वाष्पित्र।

७. दो तापमान-अभिलेखक (०° से १००° सेन्टीग्रेड)।

८. एक क्रेन जो काष्ठ-प्रभार को लादने और उतारने के लिए समर्थ हो।

९. अन्य विविध उपकरण, जैसे कि तुला, वाष्पजल-स्रावी ('स्टीम ट्रैप'), वाल्व, काष्ठ-प्रभार को दबाने के लिए लोह-दंड, इत्यादि-इत्यादि।

१०. एक उपयुक्त परिमाण का परिरक्षी-मिश्रण बनाने का कुण्ड।

उपरिलिखित संयन्त्र की वार्षिक उपचार-धारिता १२००० काष्ठ-खम्भ या ७२००० बी० जी० स्लीपर या २ लाख घनफुट काष्ठ की है।

परिशिष्ट ५

सारणी २०

एक आदर्श निपीड-उपचार-संयन्त्र की विशिष्टि

१. **रम्भ**—रम्भ मृदुपीडित-इस्पात चादर का बना हो, जिसका व्यास प्रायः ६ से ८ फुट (१·८ से २.४ मीटर) तक और लम्बाई ४५ फुट (१३·७ मीटर) हो और जिसके एक या दोनों सिरों में द्वार हों। द्वारों पर जिह्वा और नाली का प्रबन्ध हो, जिसको बोल्टों द्वारा बन्द करने से ३० इंच (७६·२ सेंटीमीटर) पारे का शून्यक और २०० पौंड प्रति वर्ग इंच (१४·०६ किलोग्राम प्रति वर्ग सेन्टीमीटर) का कर्मयोज्य दबाव (जलशक्ति द्वारा) संधारण हो सके। रम्भ ३६० प्रति वर्ग इंच (२५·३१ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) के अधिकतम दबाव के प्रति परिरक्षित किया गया हो। यह द्वि-रिभटों से जड़ित या संधानित हो। इसकी संपूर्ण लम्बाई में 'मीटर गेज' या 'नैरो गेज' की पटरियाँ इस प्रकार रक्षक पटरियों से बिछी हों कि उन पर ट्रौलियाँ निपीड क्रिया में उठ न सकें। द्वारों को खोलने और बन्द करने के लिए आवश्यक क्रेन हों।

रम्भ के तले में तापन के लिए वाष्पनाल की कम-से-कम चार कतारें हों और एक नाल नीचे सजीव वाष्प के लिए हो। रम्भ में अन्य उपकरण, शून्यक-मान, निपीडक-मान, तलमान, अभय-कपाट ('सेफ्टीवाल्व') और रिक्त करने के लिए तल पर ६ इंच (१५ सेन्टीमीटर) व्यास का संछिद्र और शून्यक के लिए ४ इंच (१० सेन्टीमीटर) व्यास का और निपीड के लिए २.५ इंच (६.२५ सेन्टीमीटर) व्यास का संछिद्र-संयोजन हो और आवश्यक नाल-कपाट इत्यादि हों।

२. **आधार-धरण**—नीचे सेवाकुण्ड के ऊपर कुछ (लगभग ६) लोहे के धरण हों, जिनके ऊपर रम्भ स्थित हो।

३. **शून्यक पम्प**—एक वायु-निपीडक हो जो उलटा चलाने पर शून्यक पम्प का कार्य भी कर सके। यह रम्भ में, जो आधा भरा हो, आधे घंटे में ६० पौंड प्रति वर्ग-

इंच (४.२२ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) का वायु-दबाव दे सके। रम्भ को आरम्भ काल में परिरक्षी से खाली करने के उपरान्त यह शून्यक पम्प भी २५ से ३० इंच (६३.५ से ७६.२ सेन्टीमीटर) पारे का दबाव देनें में समर्थ हो।

४. **द्रव-निपीडक पम्प**—यह ६० से १८० पौंड प्रति वर्गइंच (४.२२ से १२.६६ किलोग्राम प्रति वर्गसेन्टीमीटर) का आधे घंटे में तरल दबाव दे सके।

५. **सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प**—एक पम्प जो गड्ढों से या नीचे कुण्ड से द्रव परिरक्षी को उठा सके।

६. **संघनक और नाल**—एक जल द्वारा उपयुक्त परिमाण का शीतन संघनक, जो तैल, जल और अन्य विलायकों की वाष्प को संघनित कर सके।

७. **नाल**—उपयुक्त नाल भी हों, जो रम्भ, सेवाकुण्ड, संग्रहकुण्ड, पम्प, संघनक इत्यादि से कपाटों द्वारा संयोजित हो सकें। एक हंस की गर्दन-जैसा नाल (४० फुट ऊँचा) जो रम्भ और संघनक के मध्य में स्थित हो।

८. **सेवाकुण्ड**—एक मृदु इस्पात चादर का बना, रम्भ के समान धारिता का कुण्ड हो। इसके तल में उपयुक्त वाष्प-नाल तापन-क्रिया के लिए स्थित हों। इसमें तैरने वाला मापक हो जिससे परिरक्षी द्रव का प्रचूषण ज्ञात हो सके। इसमें से उचित नाल, रम्भ, पम्प, संघनक, निपीडक इत्यादि के साथ संयोजित हों।

९. **ट्रौलियाँ**—लगभग २४ ट्रौलियाँ (४ पहियेवाली) हों जिनसे काष्ठ-प्रभार रम्भ के बाहर और भीतर ले जाया जा सके।

१०. **संग्रह-कुण्ड**—उपयुक्त धारिता के संग्रहकुण्ड हों, जिनमें लगभग तीन लाख गैलन तक प्रत्येक क्रियोजोट और इन्धन तैल संग्रह किये जा सकें। एक ५००० गैलन का मिश्रणकुण्ड भी होना चाहिए। इनके तलों में वाष्पनाल द्वारा तापन का प्रबन्ध हो।

११. यथोचित अभिलेखक, तापमान, निपीडकमान और शून्यकमान के भी हों।

१२. एक चलित चार टन भार उठानेवाला क्रेन हो।

१३. काष्ठ को तोलने के लिए मंच-तुला भी हो।

१४. एक छीलन, छिद्रण और भेदन मशीन भी हो।

१५. एक काष्ठ-प्रभार को खींचनेवाला चल-यन्त्र ('लोकोमोटिव इंजन') भी हो।

१६. एक उपयुक्त वाष्पित्र, जो लगभग २००० पौंड वाष्प प्रति घंटा धारिता का हो।

उपरिलिखित उपचारसंयन्त्र की धारिता ११०० घनफुट की है, अर्थात् ३६० बी० जी० काष्ठ-स्लीपर या ७२ काष्ठ-खम्भ (८ इंच व्यास और ४० फुट लम्बाई के) प्रत्येक प्रभार में। क्रियोजोट से प्रति दिन एक पारी ८ घंटा काम करने पर २ या ३ काष्ठ-प्रभारों का उपचार किया जा सकता है और जल-विलयन परिरक्षी से ३ या ४ प्रभार किये जा सकते हैं। यदि इस संयन्त्र में २४ घंटे (३ पारी) कार्य किया जाय तो उपचार में खर्च कम हो सकता है।

परिशिष्ट ६

सारणी–२१ (खंड १)

वन-अनुसन्धानशाला के अन्तर्गत किये गये परीक्षण के अनुसार उपचारित और अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की सेवा-आयु का विवरण (खाने ८ से १५ तक पृ० ८२–८३ पर)

क्रमांक	काष्ठ-जाति	स्लीपरों का आकार और संख्या	उपचारित या अनुपचारित	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार विधि	परिरक्षी प्रचूषण पौंड प्रति घन फुट
१	२	३	४	५	६	७
१	पाइनस् लोंगीफोलिया (चीड़)	१५२ बी० जी०	उपचारित	पौवल विलयन	तापन-शीतन	ज्ञात नहीं
२	,,	१०० बी० जी०	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत)	निपीड	३/८ से १/२ पौंड शुष्क लवण (३/२ ± १/२ पौंड विपटन रोधी माध्य)
३	,,	१०० बी० जी	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४० : ६०)।	निपीड	४ ·७६
४	पाइनस् जाति	११ एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
५	टर्मिनेलिया टोम्यन्टोसा (सैन)	१३१ बी० जी०	उपचारित	पौवल विलयन	तापन-शीतन	ज्ञात नहीं

१	२	३	४	५	६	७
६	वही	२५० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
७	टर्मिनेलियामाइरियो-कार्पा (होलौक)।	१५१ एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१:१) (१:२) (१:३)	निपीड	६ ·५ से ९ ·३
८	,,	२२ एम० जी	अनुपचारित	—	—	—
९	डिप्टेरोकार्पस मैक्रोकार्पस (होलोंग)।	१४२ एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१:१) (१:२) (१:३)	निपीड	४ ·९ से ११ ·१
१०	लैग्रस्ट्रोमिया फ्लौस रैंजिनी (जारूल)	१५० एम० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (१:१)	निपीड	० ·०७ से १ ·८
११	,,	१०० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—
१२	सीड्रस देवदारा (देवदार)	१०० बी० जी०	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत)	निपीड	३/८ से १/२ पौंड शुष्क लवण (३/२ से १/२ पौंड विपटन– रोधी माध्य)
१३	,,	१०० बी० जी०	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (४०:६०)	निपीड	३.३०
१४	शोरिया रोबस्टा (साल)।	४६ एम० जी० (अर्ध गोल)	उपचारित	एस्क्यू (८ प्रतिशत) +(विपटन रोधी माध्य)	निपीड	—
१५	,,	३०० एम० जी० (अर्ध गोल)	उपचारित	क्रियोजोट-इन्धन तैल (७०:३०)(५०:५०)	निपीड	—
१६	,,	१०० एम० जी०	अनुपचारित	—	—	—

सारणी–२१ (खंड २)

क्रमांक	काष्ठ-जाति	स्थान जहाँ लगाये गये	लगाने का दिनांक	निरीक्षण का दिनांक	स्लीपर की विद्यमान संख्या	निकाले गये स्लीपरों की प्रतिशत संख्या	औसत सेवा-आयु: मेडीसन वक्र के अनुसार (चित्र ८९)	औसत सेवा-आयु: गणित: वर्ष	औसत सेवा-आयु: गणित: मास
१	२	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
१	पाइनस् लोंगीफोलिया (चीड़)	हरिद्वार-लक्सर (उत्तरी रेलवे)	जनवरी १९१२	दिसम्बर १९२७	शून्य	१००	—	१५	५
२	”	देहली (उत्तरी रेलवे)	मार्च १९३७	मई १९५०	९१	९	२१	—	—
३	”	”	”	”	९५	५	२३	—	—
४	पाइनस् जाति	मील २२१ (बर्मा रेलवे)	सितम्बर १९०७	अगस्त १९०९	शून्य	१००	—	२ (लगभग)	—
५	टर्मिनेलिया टोम्यन्टोसा (सैन)	हरिद्वार-लक्सर (उत्तरी रेलवे)	सितम्बर १९११	दिसम्बर १९२७	शून्य	१००	—	१५	५
६	”	मोरियानी (उत्तर पूर्वी सीमा रेलवे)	मई १९१४	अक्टूबर १९२२	१७	९४	६	—	—
७	टर्मिनेलियामाइरियोकार्पा (होलोक)।	”	जनवरी १९२५	फरवरी १९५१	शून्य	१००	—	१९	१०
८	”	”	नवम्बर १९१५	अक्टूबर १९२२	शून्य	१००	—	५(लगभग)	—

परिशिष्ट ७

सारणी—२३

रेलवे विभाग के अन्तर्गत धिलवाँ स्थान पर क्रियोजोटी-करण संयन्त्र में स्लीपरों के उपचार-मूल्य का विवरण

(स्लीपर पूल कमेटी की १९३७—३८ की रिपोर्ट से लिया गया)

सविस्तर वर्णन	उपचार किये गये बी० जी० काष्ठ स्लीपर			
	चीड़	देवदार	कैल	फर
सन् १९३७-३८ में उपचारित स्लीपरों की संख्या	२४८०५३	९२६७०	१९५९५	८७३४६
औसतन तैल-मिश्र की प्रति स्लीपर प्रचूषण मात्रा	१४ ·८८ पौंड	१० ·४४ पौंड	१४ ·८४ पौंड	१५ ·१३ पौंड
तैल-मिश्र—(भाड़ा अनन्य) ४० प्रतिशत क्रियोजोट, दर १२·०५ पाई प्रति पौंड ६० प्रतिशत इन्धन तैल, दर २ ·०४ पाई प्रति पौंड				
	प्रति स्लीपर (बी० जी०) उपचार मूल्य।			
	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
१. प्रति स्लीपर क्रियोजोट का मूल्य	० ५ ११ ·७	० ४ २ ·३	० ६ ०	० ६ ० ·९
२. प्रति स्लीपर इन्धन तैल का मूल्य	० १ ६ ·२	० १ ० ·८	० १ ६ ·२	० १ ६ ·५
३. क्रियोजोट पर वाहन व्यय, २ ·३२ पा० प्रति पौंड की दर से	० १ १ ·८	० ० ९ ·७	० १ १ ·८	० १ २ ·०

४. इन्धन तैल पर वाहन व्यय, ०·५१ पा० प्रति पौंड की दर से	०	०	४·६	०	०	३·२	०	०	४·५	०	०	४·६
५. सामग्री का मूल्य ..	०	०	६·३	०	०	६·३	०	०	६·३	०	०	६·३
६. स्लीपरों का धिलवाँ तक वाहन व्यय	०	९	५·४	०	२	०	०	२	६·७	०	१	८·४
७. स्लीपरों का उतारना, चढ़ाना, पुनः चढ़ाना, कर्तन, छीलन, छिद्रण, हस्तन इत्यादि व्यय	०	०	३·७	०	०	३·७	०	०	३·७	०	०	३·७
८. श्रम व्यय ..	०	१	११·३	०	१	११·३	०	१	११·३	०	१	११·३
९. स्लीपरों की सामग्री पर अवमूल्यन	०	०	०·८	०	०	१·४	०	०	१·७	०	०	१·१
१०. पूँजी पर अवमूल्यन और व्याज ..	०	२	३·५	०	२	३·५	०	२	३·५	०	२	३·५
११. उपरि-व्यय ..	०	०	८·२	०	०	८·२	०	०	८·२	०	०	८·२
१२. आकस्मिक और मिश्रित व्यय ..	०	०	१·०	०	०	१·०	०	०	१·०	९	०	१·०
१३. तैल उद्वाष्पन व्यय ..	०	०	०·६	०	०	०·६	०	०	०·६	०	०	०·६
१४. स्लीपरों के सिरों पर टारीकरण व्यय	०	०	०·२	०	०	०·२	०	०	०·२	०	०	०·२
कुल ..	१	८	५·३	०	१४	४·२	१	१	७·७	१	०	१०·३
सामग्री पर कर्तन से रकम प्राप्त ..	०	०	६·७	०	०	०	०	०	०	०	१	०·१
प्रति स्लीपर पर वास्तविक उपचार व्यय (जिसमें धिलवाँ तक वाहन व्यय भी सम्मिलित है)	१	७	१०·६	०	१४	४·२	१	१	७·७	०	१५	१०·२
पूर्णांकन व्यय ..	१	७	११	०	१४	४	१	१	८	०	१५	१०·२

सन् १९५२-५३ में धिल्वाँ में उपचार किये गये स्लीपरों की संख्या और उपचार-व्यय

प्रयुक्त परिरक्षी—क्रियोजोट ४० प्रतिशत + इन्धन तैल ६० प्रतिशत।

	चीड़				फर				कल		
	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०	सिरे ३ फुट के	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०	सिरे ३ फुट के	बी० जी०	एम० जी०	एन० जी०
१. उपचार किये गये स्लीपरों की संख्या	१२०३४	५४६५८	२९६६२	१६८५	४४९	२९८	११७	२०१६	५०	३१७२	४०
२. स्लीपर (प्रति) का उपचार मूल्य रुपयों में।	४·१९	२·३७	२·२१	१·४१	४·५४	२·८०	२·६१	१·५९	४·४७	२·५६	२·५
३. तैल मिश्र का प्रति घन फुट प्रचूषण (पौंड में)	५·३०				६·४३				६·५३		

सन् १९५२–५३ में नहरकटिया के निपीड-उपचार संयन्त्र में निम्नलिखित उपचार किये गये स्लीपरों की काष्ठ-जाति, संख्या और उपचार-मूल्य

प्रयुक्त परिरक्षी—क्रियोजोट ५० प्रतिशत और इन्धन तैल ५० प्रतिशत।

काष्ठ जाति—हौलौंग, मकई, हौलौक और जुटिली।

संख्या—५२०१३ बी० जी० और ७७३०९ एम० जी०।

औसतन प्रचूषण मात्रा— ६ ·२ पौंड प्रति घनफुट, अर्थात्
९९ ·२ किलोग्राम प्रति घनमीटर।

उपचार मूल्य, प्रति स्लीपर—४ ·८७ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर,
२ ·३७ रु० प्रति एम० जी० स्लीपर।

परिशिष्ट ८

सारणी २४ (क)

स्लीपरों के लिए उपयुक्त काष्ठ जातियाँ

१. काष्ठ-जातियाँ, जो स्लीपरों के लिए अभी तक उपचार-पश्चात् परीक्षित किये जाने पर उपयुक्त पायी गयी हैं—

१. एबिस पिन्ड्रो (भेदन पश्चात्)
२. एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्
३. एल्बीजिया प्रोसीरा
४. अल्टिन्जिया इक्सैल्सा
५. कैस्टैनौपसिस् हिस्ट्रिक्स्
६. सीड्रस देवदारा
७. डलबर्जिया लैटीफोलिया*
८. डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस्
९. डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस्
१०. डिप्ट्रोकार्पस ट्यूबर्क्यूलेटस्
११. डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्
१२. हार्डविकिया बिनाटा *
१३. होपिया जाति*
१४. लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी
१५. लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा *
१६. लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा
१७. मैंगीफरा इन्डीका
१८. मैसुवा फैरिया*
१९. पीसिया मौरिन्डा (भेदन पश्चात्)
२०. पाइनस् रौक्सबर्गी (लौंगीफोलिया)
२१. पाइनस इक्सैल्सा (भेदन पश्चात्)
२२. स्कीमा वालीची
२३. साइलीचरा त्रिजुगा
२४. शोरिया एसेमिका
२५. शोरिया रोबस्टा*
२६. स्टीरियोस्पर्मम् शैलैनौइडिस्
२७. टैक्टोना ग्रन्डिस्*
२८. टर्मिनेलिया अर्जुना
२९. टर्मिनेलिया बैलैरिका
३०. टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा
३१. टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा
३२. टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा
३३. जाइलिया जाइलोकार्पा *

२. काष्ठ-जातियाँ, जो उपचार और स्थायिता की दृष्टि से उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए उपयुक्त मानी गयी हैं—

१. **एल्बीजिया ओडोराटिसिमा** (भेदन पश्चात्)
२. **एडीना कोर्डीफोलिया**
३. **अर्टोकार्पस चपलाशा**
४. **चुक्रेशिया टेब्यूलैरिस**
५. **कुलीनिया इक्सैल्सा**
६. **साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा**
७. **डाइकौप्सिस इलिप्टिका** (भेदन पश्चात्)
८. **डिलीनिया इन्डीका**
९. **यूजीनिया गार्डनैरी** (भेदन पश्चात्)
१०. **यूजीनिया जम्बोलाना** (भेदन पश्चात्)
११. **ग्रीविया टिलीफोलिया** (भेदन पश्चात्)
१२. **कैइया एसमिका** (भेदन पश्चात्)
१३. **लैगर स्ट्रोमिया टोम्यनटोसा** (भेदन पश्चात्)
१४. **मैग्नोलिया जाति**
१५. **मिट्रैजाइना डाइभर्सीफोलिया**
१६. **मिट्रैजाइना पार्भीफोलिया**
१७. **पोसीलोन्यूरौन इन्डीकम्**
१८. **टैरोकार्पस मार्स्यूपियम** *
१९. **टैरोसपर्मम् एसैरीफोलियम्**
२०. **टर्मिनेलिया मनी**

३. काष्ठ जातियाँ, जो उपचार-पश्चात् स्लीपरों के लिए परीक्षा करने योग्य हैं—

१. **एगलैइया** जाति (भेदन पश्चात्)
२. **एमूरा वालीची** (भेदन पश्चात्)
३. **कैनैरियम्** जाति
४. **डायोस्पीरौस** जाति (भेदन पश्चात्)
५. **ड्रिप्टस्** जाति
६. **इलैक्स** जाति
७. **मैन्सोनिया** जाति (भेदन पश्चात्)
८. **भैटिका लैन्सीफोलिया** (भेदन पश्चात्)

टिप्पण —

* यदि स्लीपरों के लिए संपूर्ण सार-काष्ठों का ही प्रयोग किया जाय तो उनका उपचार कराना आवश्यक नहीं है।

परिशिष्ट ९

सारणी–२४ (ख)

भारत में अनुपचारित काष्ठ-स्लीपरों की प्राप्यता

(सांख्यिकी १९५२ में प्राप्त) (१झ)

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
			उत्तरी कटिबन्ध				
१	कश्मीर	एबिस पिन्ड्रो	पड़तल	८०००००	–	–	–
		पीसिया मोरिन्डा	पड़तल				
		सीड्रस देवदारा	देवदार	६०००००	–	–	–
		पाइनस् इक्सेल्सा	कैल	४०००००	–	–	–
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	५००००	–	–	–
२	हिमांचल प्रदेश	एबिस पिन्ड्रो	पड़तल	३४०००	१६०००	–	६२००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	६३५००	६७४७५	–	१३५००
		पीसिया मोरिन्डा	राई	१४७५००	४१४२५	–	१००००
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	२५५००	९५००	–	२५००
		पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	११२०००	४५७००	–	१३०००
		शोरिया रोबस्टा	साल	३००००	१२०००	–	१३०००

१	२	३	४	५	६	७	८
३	पंजाब	एबिस पिन्ड्रो	फर }	८५००	२३००	१२००	३००
		एबिस वीबियाना	फर }				
		पीसिया मोरिन्डा	स्प्रूस	१३००००	१००००	—	—
		एल्बीजिया लैबैक	सिरिस	४०००	१५००	१०००	४००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	३१०००	३०००	—	—
		पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	४२०००	३०००	—	—
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	५७०००	११२००	८५००	४७६०
४	उत्तर प्रदेश	शोरिया रोबस्टा	साल	७५०००	२५५०००	११००००	१३००००
		पाइनस् रोक्सबर्गी	चीड़	२५५०००	८००००	—	—
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	सैन	१००००	५००००	१५०००	२००००
		सीड्रस देवदारा	देवदार	२००००	१००००	—	—
		पाइनस् इक्सैल्सा	कैल	१००००	५०००	—	—
		टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	—	—	२०००	—
		एबिस पिन्ड्रो	फर	५०००	—	—	—
			पूर्वी कटिबन्ध				
५	पश्चिमी बंगाल (दार्जिलिंग संभाग)	कैस्टैनोप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	१२५	७९०	११२५	६५०
		गरूगा पिनाटा	डाब्डाबी	२००	४००	४००	—
		मैग्नोलिया टैरोकार्पस्	पाटपाटे	१५०	३००	३००	—
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	पकासाज	३००	५००	४००	—
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	४००	८००	५००	—
		एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस	मुन्दानी	१००	२००	२००	—
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सेतोसिरिस	१००	२००	२००	—
		लैडार्क्टोमिया पार्भीफ्लोरा	सीधा	५०	१००	१००	—
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडीज	परारी	५०	१००	१००	—

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
	(कलिम्पौंग संभाग)	मैग्नोलिया कैम्बलाइ	चम्प	—	—	५००	—
		एबिस डैन्सा	सिल्वर फर	२००	४००	१००	२००
		पाइनस् लौंगीफोलिया	चीड़	—	५००	—	१०००
		एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	२००	१४००	१०००	२००
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	१००	२५०	१५०	—
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	३००००	२५०००	३५००	१००००
		शोरिया रोबस्टा	साल	—	७०००	७०००	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	२००	२५००	९००	५००
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	पकासाज	२००	२८००	१२००	५००
		कैस्टैनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	१००	६००	५००	१००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सिरिस	—	२००	—	—
	(कुर्सोंग संभाग)	शोरिया रोबस्टा	साल	२८७४९	२८०४६	२४८००	१३३५०
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चपलाश	६५	४३८	८४	७२
		कैस्टैनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	८	५२७	५४६	६४
		एल्बीजिया प्रोसीरा	कोको	२६४०	५९२	३२०	१३६
		लैगस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	लैन्डी	१२३०	१३८५	३८७	१७०
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	१२३०	१२८५	११९०	६१२
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	१०८५	१७४०	१२५६	५०४
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	१८००	४०१८	१६७५	३६२

१	२	३	४	५	६	७	८
		एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस्	मुन्दानी	१००	२९९	३२५	१००
		स्टीरियोस्पर्मम् चैलैनोइडीज	—	८३५	४८३	१५०	—
	(जालपाइगुड़ी संभाग)	शोरिया रोबस्टा	साल	१५०००	३००००	—	—
	(बुक्सा संभाग)	एलबीजिया ओडोराटिसिमा	सिरिस	५००	७५०	—	—
		कैंस्टनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	केटस	५०००	१०००	—	—
		डिलीनिया इन्डीका	चल्टा	१००	१००	—	—
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सीधा	२०००	१०००	—	—
		शोरिया रोबस्टा	साल	३०००	२००००	१००००	—
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परारी	१००	२००	—	—
६	मनीपुर	एल्बीजिया लबैक	सिरिस	—	—	—	—
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	—	—	—	—
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चम्प	—	—	—	—
		कस्टेनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	ओक जाति	—	—	—	—
		साइनोमीट्रा पौलीआन्ड्रा	पिंग	—	—	—	—
		डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनटस	गौर्गोन	—	—	—	—
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लोसरैजिनी	जारूल	—	—	—	—
		मैसुआ फैरिआ	नहोर	—	—	—	—
		पाइनस इक्सैल्सा	पाइन	—	—	—	—
		स्कीमा वालिची	मोकरिआसाल	—	—	—	—
		टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक	—	—	—	—
७	आसाम	एल्बीजिया प्रोसीरा	कोराइ	—	७७०	—	—
	(सदिया	अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	३१६६	१५८३	—	—
	संभाग)	कैंस्टेनौप्सिस हिस्ट्रिक्स	हिंगोरी	—	१४१४	—	—

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
		मैसुआ फैरिआ	नैहोर	—	४३७०	—	—
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परोली	१११५	२२३०	—	—
		डिलीनिया इन्डीका	औटंगा	—	१९७४०	—	—
	(लखीमपुर	अल्टिजिया इक्सैल्सा	जुटिली	१०००	११३००	—	—
	संभाग)	अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	१०००	७५००	१०००	१०००
		मैसुआ फैरिआ	नहोर	१०००	१०२००	२०००	—
		शोरिआ एसैमिका	मकई	६०००	२९०००	२०००	२०००
		डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	हौलौंग	५०००	३५०००	५०००	५०००
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस	परौली	—	५०००	—	—
		लैगस्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	—	—	—	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	भोमोरा	—	—	—	—
		मैग्नोलिया जाति	सोपा	—	—	—	—
		टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक	—	—	—	—
	(शिवसागर	अर्टोकार्पस चपलाशा	चाम	३०००	३०००	—	—
	संभाग)	डिलीनिया इन्डीका	औटँगा	३०००	३०००	—	—
		लैगस्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	१०००	१०००	—	—
		मैसुआ फैरिआ	नैहोर	५०००	९०००	१८०००	५०००
	(नौगाँव	डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस	हौलौंग	१००००	१६०००	—	—
	संभाग)	शोरिया रोबस्टा	साल	—	—	—	—

१	२	३	४	५	६	७	८
		लैगस्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	अझर	४४०	६९०	१३६०	५१०
		लैगस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सीदा	३१८	९१५	८१०	१०२५
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	३३०	७१८	१२१२	३५०
		अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	७००	११००	४००	३००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	भोमोरा	४००	६००	८००	२००
		स्कीमा वालिची	नागाभर	५००	१०००	१०००	५००
		टैरोकार्पस एसरीफोलिअम्	हट्टीपेला	१००	२००	२००	१००
	(गारो	लैगस्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	४००	८००	—	—
	पहाड़	लैगस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सीदा	५००	१०००	—	—
	संभाग)	स्कीमा वालिची	चिलौनी	१०००	१५००	—	—
		शोरिया रोबस्टा	साल	४०००	६०००	—	—
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	५००	१०००	—	—
	(कछार	अर्टोकार्पस चपलाशा	साम	५३२००	७३१५०	५२५५०	२०८००
	संभाग)	लैगस्ट्रोमिया फ्लोसरैजिनी	जारूल	४८५०	१८०२५	१६५५०	४१७५
		मैसुवा फैरिया	नागेश्वर	२४५००	३५४००	३१५००	११४००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	करोई	१००००	३१०००	३६०००	२००००
		एल्सीयोडैफनी औडेनी	सुन्दी	९१००	११९५०	१८५०	५००
		टैलोमा फिलोकार्पा	सुन्दी	३५७५	३०५०	१५२३	१००
		डिप्ट्रोकार्पस टर्बिनेटस्	गुजन	३०००	७०००	२०००	१००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	२०००	३०००	५५००	—
		स्टीरियोस्पर्मम् चैलैनौइडीस	अवाल	७०००	५०००	९५००	४०००
		डिलीनिया इन्डीका	चलीता	१०००	४०००	२०००	२०००
		यूजीनिया जाति	जामन	५००	१०००	१०००	—
		कैलोफिलम पौलीएन्थम्	टल्स्	३००	५५००	५०००	१५०

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
	(धानसिरी घाटी संभाग)	साइनोमीट्रा पौलीएन्ड्रा	पिंग	१०००	५०००	५०००	१००००
		स्कीमा वालीची	चिलौनी	३५५००	५५००	७०५००	६००००
		टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	—	१००	—	—
		चुक्रेसिया टैब्यूलैरिस	हटियां	१०००	१०००	१०००	१५०
		टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	होलौक	१००	२००	—	—
		अर्टोकार्पस चपलाशा	चाम	२००	२००	—	—
		डिलीनिया इन्डीका	औटैंगा	—	१००	—	३००
		लैगस्ट्रोमिया फ्लोसरेजिनी	अझर	—	—	—	१००
			दक्षिणी कटिबन्ध				
८	मैसूर	डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस्	धूप	—	५००००	—	—
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	—	५०००	—	—
		होपिया पार्भीफ्लोरा	होपिया	—			
		मैसुवा फैरीआ	मसुआ	—	५०००	—	—
९	त्रिवांकुर	एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस	२५०	४३०	१०२०	५००
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सफेद सिरिस	९६०	११११०	२१०	१००
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	रोज़वुड	५१००	१३४००	२८५०	२००
		डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	गुर्जन	५०००	५०००	३०००	—
		होपिया पार्भीफ्लोरा	होपिया	२३०००	४३८३०	८१७३०	१००

१	२	३	४	५	६	७	८
		लैगर्स्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	१६३४०	१६०२०	१२७०	२००
		लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बैन्टीक	१७७००	२७९००	२७३००	२००
		मैसुवा फैरिया	मैसुवा	९६०	१३००	१८००	१००
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्	बीजासाल	२०२४५०	४१२१५०	८०१५५०	२००
		साइलीचरा त्रिजुगा	कुसुम	१२००	६००	६००	—
		स्टीरियोस्पर्मम् चैलैनौइडीस्	—	१०	१००	१००	१००
		टैक्टोना ग्रेन्डिस्	टीक	१०००	१३३००	४७००	४००
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	४६००	९८००	३२००	४००
		टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	४६८००	३९३००	७५०००	४००
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	६४३००	११००००	२१०००	४००
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	६१००	५८५०	७५०	—
१०	हैदराबाद	टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	६३७५८	१४६११२	२६२८२५	१४०६९६
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	मड्डी	१८५३७२	२३४०१५	१११९२४	८९६८२
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम्	बीजासाल	१३७५५	२०२६७	१२२१०	१४४६४
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	शीशम	१०४	२३०	३३३	२२२
		हार्डविकिया बिनाटा	इप्पा	२५२५७८	३४२२०४	३००२७८६	३५१७७२
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	टानी	४६५	४७९	१०२८	४७३
		जाइलिया जाइलोकार्पा	बोज्जा	—	११२	८७	—
		टर्मिनेलिया अर्जुना	एरा मड्डी	६१४९	२६९०	४०९०	२८०१
		डल्बर्जिया सिसू	चिनागी	१३४७	२२३४	६०८७	२४४६
		लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	सिसू	५००	८००	१०००	८००
११	कुर्ग	मैसुवा फैरिया	लोह काष्ठ	४०००	—	—	—
		होपिया पार्भीफ्लोरा	होपिया	१०००	—	—	—
		अर्टोकार्पस हिर्स्यूटा	एनी	५००	—	—	—

क्रमांक	प्रदेश	काष्ठ-जाति		स्लीपरों की प्राप्य संख्या (लगभग)			
		पारिभाषिक नाम	स्थानीय (व्यापारी) नाम	ब्राड गेज	मीटर गेज	नैरो गेज	अर्धगोल मीटर गेज
१	२	३	४	५	६	७	८
		कैलोफिलम टोमैन्टोसम्	पून	३५००	—	—	—
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरुल	३५००	—	—	—
		डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस्	गुर्जन	१२००	—	—	—
			पश्चिमी कटिबन्ध				
१२	बम्बई	एल्बीजिया लैबैक	कोको	२०२८६	२०५०६	३००८३	८८०१
		एल्बीजिया ओडोराटिसिमा	काला सिरिस	१८३२०	३४१९६	१६१०४	२२९४४
		एल्बीजिया प्रोसीरा	सफद सिरिस	३४४०७	३४६४१	३५९२३	१९७७१
		डल्बर्जिया लैटीफोलिया	रोजवुड	९६२५	३६४३०	४१४८०	८७४०
		डिलीनिया पैन्टैजाइना	डिलीनिया	१२००	१४००	१५००	२०११
		डिप्ट्रोकार्पस इन्डीकस	गुर्जन	१०००	१५००	१०००	३०००
		हार्डविकिया बिनाटा	अन्जन	४००	४५०	६५०	५००
		होपिया जाति	होपिया	३४४९	६८८०	२५८०	४३००
		लैगस्ट्रोमिया फ्लौसरैजिनी	जारूल	१२७२९५	२५३६३९	१२१४६८	१५११२८
		लैगस्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	बन्टीक	६९१०००	१३८१७४८	८७८३९१	८५६५९४
		लैगस्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा	लैन्डी	२५८४५	१७६२४	२५४९५	६९८८
		मैसुवा फैरिया	मैसुवा	१००	२००	२००	३००
		ओजीनिया डल्बर्जियोइडिस्	साँदन	१५६०	८१६०	१३१८	४४१६
		टैरोकार्पस मार्स्यूपियम	बीजासाल	१२२००	२५५६५	३४८३५	१२५२५

१	२	३	४	५	६	७	८
		साइलीचरा त्रिजुगा	कुसुम	९५०५०	१९४८१७	८१८२३	११६२७३
		स्टीरियोस्पर्मम चैलैनौइडिस्	—	१०	२०	२०	२०
		टैक्टोना ग्रैन्डिस	टीक	२४१७९०	२८८३००	३१४४४५	१२२२५०
		टर्मिनेलिया अर्जुना	अर्जुन	४४००	५१५०	७३६५	१५५०
		टर्मिनेलिया बैलैरिका	बहेड़ा	२८०४१२	४५१२५२	३०६३५५	२४२०५३
		टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	किन्डल	६९५८५४	१२९६९१०	७५००७७	७६९७३१
		टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	लौरल	४००६३५	५८३३८८	६३७९७०	९३१८५
		जाइलिया जाइलोकार्पा	इरूल	४७३२२५	१०३७६२६	६६२९०६	५६१०१३

अन्य प्रदेशों से प्राप्यता के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त नहीं है, परन्तु यह आशा की जाती है कि इन प्रदेशों में भी उसी काष्ठ-जाति के स्लीपर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं जो उन संस्पर्शीय प्रदेशों में, जिनके सम्बन्ध में ऊपर सूचना दी गयी है, प्राप्य हैं।

परिशिष्ट १०

सारणी–२४ (ग)

भारत के विभिन्न साधन-संयन्त्रों के अनुसार उपचार-मूल्य

क्रमांक	उपचार करने वाली संस्था	उपचारणार्थं काष्ठ-जाति	उपचारित काष्ठ मात्रा और आकार	साधन संयन्त्र और उपचार विधि	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार मूल्य
१	२	३	४	५	६	७
१	मेसर्स जौन टैलर एन्ड सन्स् (इन्डिया) लि०, कोलर गोल्ड फील्डस् (मैसूर)	**कैसुएरीना** जाति	१८८४ घन फुट प्रति मास (सन् १९५५ में)	रम्भ, निपीड विधा	जिंकसल्फेट-२ '२५ प्रतिशत सोडियम फ्लोराइड-० '६५ प्रतिशत विलयन जल में	औसतन ० '१० रु० प्रति घनफुट
२	उत्तरी रेलवे, धिलवाँ (पंजाब)	**पाइनस् लौंगीफोलिया** (चीड़) **सीड्रस** देवदारा (देवदार) **पाइनस् इक्सैलसा** (कल)	लगभग ४ लाख बी० जी० स्लीपर प्रतिवर्ष और कुछ खम्भ	रम्भ, निपीड विधा	क्रियोजोट और इन्धन तल (४० : ६०)	औसतन् ३ '७५ रु० प्रति घन फुट

१	२	३	४	५	६	७
३	उत्तर-पूर्वी रेलवे, कलटरबकगंज (उत्तर प्रदेश)	मुख्यतः **पाइनस् लौंगीफोलिया** (चीड़)	बी० जी०स्लीपर	रम्भ, निपीड विधा।	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	३ ·४४ रु० प्रति बी०जी० स्लीपर (लगभग)
४	उत्तर-पूर्वी सीमान्त रेलवे, नहर-कटिया (आसाम)	**डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस** (हौलौंग) **टर्मिनेलिया माइरियोकार्प** (हौलौक) **अल्टिन्तिया इक्सैल्सा** (जुटीली) **शोरिया एसैमिका** (मकई)	७०,००० बी० जी० स्लीपर प्रति वर्ष	रम्भ, निपीड विधा	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	५ ·७५ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर
५	वन विभाग, बलहारशाह	**टर्मिनोलिया टोम्यन्टोसा** (लौरल)	१०७१ बी० जी० और २१८०० एम० जी० स्लीपर (५ वर्ष में, सन् १९५० से १९५५ तक)	खुला-कुण्ड, तापन-शीतन विधा	क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	२·२५ रु० प्रति बी० जी० स्लीपर

क्रमांक	उपचार करने वाली संस्था	उपचारणार्थ काष्ठ-जाति	उपचारित काष्ठ मात्रा और आकार	साधन संयन्त्र और उपचार विधि	प्रयुक्त परिरक्षी	उपचार मूल्य
१	२	३	४	५	६	७
६	मेसर्स आर० सैन एन्ड को०, १०/१ इल्गिन रोड, कलकत्ता	**शोरिया रोबस्टा** (साल)	२४४० खम्भ (३० फुट लम्बे और ८ इंच व्यास के) प्रति वर्ष (१९५५ में)	रम्भ, निपीड विधा	एस्क्यू	३ ·५६ रु० प्रति, घनफुट
७	(१) वन विभाग, बिहार, लटेहर और बिहटा (२) विद्युत विभाग, हजारी-बाग (बिहार)	**शोरिया रोबस्टा** (साल) **टर्मिनलिया टोम्यनटोसा** (सैन)	६००० खम्भ प्रति वर्ष	रम्भ निपीड-विधा	एस्क्यू	१ ·२५ से १ ·५० रु० प्रति घन फुट
८	विद्युत विभाग, केरल	**टैक्टोना ग्रैन्डिस** (टीक)	१,८६,००० खम्भ प्रति वर्ष	रम्भ, निपीड विधा	एस्क्यू	० ·२८ से ० ·३२ रु० प्रति घन फुट

१	२	३	४	५	६	७
९	वन विभाग भद्रा-वती । (मैसूर)	**डाइकौप्सिस इलिप्टिका** (हडासला) **पोसीलौन्यूरौन इन्डीकम** (बलागी) **मैशीलस मैफ़ान्या** (गुलमैरी) **ऐलीकार्पस टचूनक्यूलेटस** (सट्टागा) **कैनेरियम स्ट्रिक्टम्** (कधूपा) **टर्मिनेलिया वैले-रिका** (टारे)	स्लीपर, खम्भ और मिश्रित काष्ठ	रम्भ, निपीड विधा	सन् १९३६ से ५२ तक एस्क्यू सन् १९५२ से क्रियोजोट और इन्धन तैल (५०:५०)	० ·८० रु० प्रति घनफुट १ ·७५ रु० प्रति घनफुट

परिशिष्ट ११

सारणी ३०

अभिस्तावित काष्ठ, जो संशोषण और उपचार किये जाने के उपरान्त टीक और साल-जैसे स्वाभाविक स्थायी (टिकाऊ) काष्ठों का स्थान ले सकते हैं ।

१ पूर्वी कटिबन्ध

आसाम, मनीपुर, त्रिपुरा, पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, नेपाल, सिक्किम, भूटान और अन्डमान ।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** **एकेशिया एरेबिका**	(ब)	बाबुल	$क_{१}$, $ख_{१}$ ।
२	* **एलबीजिया लैबैक**	(स)	कोको	$क_{१}$, $ख_{१}$, $ग_{१}$, $घ_{१}$, $ङ_{३}$
३	** **एलबीजिया प्रोसीरा**	(स)	सिरिस (सफेद)	$क_{२}$, $ख_{२}$, $ग_{२}$, $घ_{२}$, $ङ_{२}$ ।
४	* **एलबीजिया ओडोराटिसिमा**	(इ)	सिरिस (काला)	$क_{१}$, $ख_{१}$, $ग_{२}$, $घ_{२}$, $ङ_{२}$ ।
५	*** **एनोजाइसस् लेटीफोलिया**	(इ)	बकली	$क_{१}$, $ख_{१}$, $घ_{१}$ ।
६	** **अर्टोकार्पस चपलाशा**	(द)	चपलाश	$क_{२}$, $ख_{१}$, $ग_{१}$, $घ_{२}$, $ङ_{१}$ ।
७	** **ब्रीडीलिया रैटूसा**	—	कासी	$क_{१}$, $ख_{१}$, $घ_{२}$ ।
८	** **कैसिया फैस्चूला**	—	राजबृख (अमलतास)	$क_{३}$, $ख_{३}$, $घ_{३}$ ।
९	*** **सैड्रीला टूना**	(स)	तून	$ग_{१}$, $ङ_{१}$ ।
१०	*** **चुक्रेसिया टैब्यूलैरिस्**	(स)	चिकरासी	$क_{२}$, $ख_{१}$, $ग_{१}$, $घ_{२}$, $ङ_{१}$ ।
११	*** **साइनोमीट्रा पौलीएन्ड्रा**	(ब)	पिंग	$क_{१}$, $ख_{१}$, $घ_{१}$ ।
१२	** **डल्बर्जिया सिसू**	(इ)	सिसू	$ख_{१}$, $ङ_{१}$ ।
१३	*** **डिलीनिया जाति**	(द)	डिलीनिया	$क_{३}$, $ख_{३}$, $ग_{२}$, $घ_{३}$, $ङ_{३}$ ।
१४	*** **डिप्ट्रोकार्पस मैक्रोकार्पस्**	(अ)	होलौंग	$क_{१}$, $ख_{१}$, $ग_{२}$, $घ_{१}$ ।
१५	*** **डिप्ट्रोकार्पस जाति**	(अ)(ब)(स)	गुर्जन	$क_{१}$, $ख_{१}$, $ग_{२}$, $घ_{२}$ ।
१६	** **लैगर्स्ट्रोमिया हाइपोल्यूका**	—	पिन्मा	$क_{१}$, $ख_{१}$, $ग_{२}$, $घ_{१}$ ।
१७	*** **लैगर्स्ट्रोमिया पार्भीफ्लोरा**	(इ)	लैन्डी	$क_{१}$, $ख_{१}$, $घ_{२}$ ।
१८	** **लैगर्स्ट्रोमिया स्पीसियोसा**	—	जारूल	$क_{१}$, $ख_{१}$, $घ_{२}$ ।
१९	* **मधूका लैटीफोलिया**	—	महुवा	$क_{२}$, $ख_{२}$, $घ_{२}$ ।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
२०	* मैसुवा फैरिया	(इ)	मैसुवा	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
२१	* ओजीनिया डर्ल्बाजियोडीज	–	साँदन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
२२	* टैरोकार्पस डर्ल्बाजियोडीज	(स)	पैडौक	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$, घ$_{१}$,ङ$_{१}$।
२३	* टैरोकार्पस मार्स्यूपियम	(इ)	बीजासाल	क$_{१}$, ख$_{१}$, ङ$_{१}$।
२४	*** स्कीमा वालीची	(द)	चिलौनी	क$_{३}$, ख$_{३}$, ग$_{३}$, घ$_{३}$।
२५	*** शोरिया एसैमिका	(स')	मकई	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$।
२६	* शोरिया रोबस्टा	(इ)	साल	क$_{१}$, ख$_{१}$ घ$_{१}$।
२७	*** टर्मिनेलिया बियालाटा	(इ)	सफेदचुगलम	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{१}$, घ$_{२}$,ङ$_{१}$।
२८	*** टर्मिनेलिया मनी	(अ)	काला चुगलम	क$_{२}$,ख$_{२}$,ग$_{१}$,घ$_{२}$, ङ$_{१}$।
२९	*** टर्मिनेलिया माइरियोकार्पा	(अ)	ह्लौक	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{१}$, घ$_{२}$,ङ$_{१}$।
३०	*** टर्मिनेलिया प्रोसीरा	(ब)	सफेद बौम्बवे	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
३१	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
३२	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
३३	*** मैंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
३४	*** मकीलिया जाति	(इ)	चम्प	क$_{२}$,ख$_{१}$,ग$_{१}$,घ$_{२}$, ङ$_{१}$।
३५	*** फोबी जाति	(स)	बौनसम्	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{१}$, घ$_{२}$, ङ$_{१}$।

टिप्पणी—

क$_{१}$—प्रथम चुनाव, बल्ली, कड़ी, शहतीर और ट्रसों के लिए।

क$_{२}$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

क$_{३}$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

ख$_{१}$—प्रथम चुनाव, चौखट के लिए।

ख$_{२}$—द्वितीय चुनाव, ,,

ख$_{३}$—तृतीय चुनाव, ,,

ग$_{१}$—प्रथम चुनाव, दरवाजे, खिड़की के फलक और अन्तश्छद के लिए।

ग$_{२}$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

ग$_{३}$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

घ$_{१}$—प्रथम चुनाव, संपीडांक और स्तम्भों के लिए।

घ$_{२}$—द्वितीय चुनाव, ,, ,,

घ$_{३}$—तृतीय चुनाव, ,, ,,

ङ$_{१}$—प्रथम चुनाव, उपस्कर के लिए।

ङ$_{२}$—द्वितीय चुनाव, ,,

ङ$_{३}$—तृतीय चुनाव, ,,

(स)—परिरक्षी द्वारा अंशतः प्रवेशनीय काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(द)—परिरक्षी द्वारा अप्रवेशनीय, २ सेन्टीमीटर प्रवेशनार्थ भेदन अनिवार्य, काष्ठ (सारकाष्ठ)।

(इ)—परिरक्षी द्वारा अति अप्रवेशनीय, पार्श्व और छोर प्रवेशन शून्य, काष्ठ (सारकाष्ठ)।

उन काष्ठों के लिए, जिनका प्रयोग खम्भ और स्तम्भ के रूप में बाहर खुले में किया जाता है और जहाँ काष्ठ-नाशक अभिकर्त्ताओं की व्यवस्था अति तीव्र रहती है, यह अति उत्तम होगा यदि उनका उपचार निपीड-क्रिया से किया जाय। तथापि तापन-शीतन क्रिया से भी (खुले कुण्ड में) निम्नलिखित काष्ठों का उपचार किया जा सकता है।

(१) जो काष्ठ उपरिलिखित श्रेणी (अ) के अन्तर्गत हैं,

(२) जो काष्ठ श्रेणी (ब) में हैं यदि उनका सारकाष्ठ स्थायी हो, अर्थात् वे काष्ठ जो रेलवे-स्लीपर, पुल-निर्माण इत्यादि-इत्यादि के लिए हों।

श्रेणी (स) और (द) के काष्ठों का यदि बाहर खुले में प्रयोग किया जाय तो उनका निपीड-क्रिया से उपचार कराना अनिवार्य है। तथापि श्रेणी (स) के काष्ठों का यदि छादित स्थानों के नीचे, जैसे कि गृह-निर्माण और उपस्कर के लिए, प्रयोग किया जाय तो तापन-शीतन विधि से उपचार-क्रिया का प्रयोग कर सकते हैं।

श्रेणी (इ) के काष्ठों का छादित स्थानों के नीचे भी निपीड उपचार कराने पर ही प्रयोग कर सकते हैं। तापन-शीतन विधि का प्रयोग तभी हो सकता है यदि संपूर्ण काष्ठ रसकाष्ठ का बना हो, और तदनन्तर छादित स्थानों पर ही काम में लाया जाय।

* इन काष्ठों के सारकाष्ठ अति स्थायी हैं, अतः इनके परिरक्षोपचार की आवश्यकता नहीं है।

** इन काष्ठों के सारकाष्ठ मध्यम-स्थायी हैं, अतः इनको हलके परिरक्षोपचार की आवश्यकता होती है।

*** इन काष्ठों के सारकाष्ठ अल्पस्थायी हैं, अतः इनको तीव्र परिरक्षोपचार की आवश्यकता है।

२. उत्तरी कटिबन्ध

कश्मीर, पंजाब, हिमांचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और राजस्थान

क्रमांक	काष्ठ जाति	व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एबिस पिन्ड्रो (द)	फर	क$_{३}$,ख$_{३}$,ग$_{३}$,घ$_{३}$, ङ$_{३}$।
२	* सीड्रस देवदारा (स)	देवदार	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$,घ$_{१}$, ङ$_{२}$।
३	*** पीसिया मोरिन्डा (द)	स्प्रूस	क$_{३}$,ख$_{३}$,ग$_{३}$, घ$_{३}$, ङ$_{३}$।
४	*** पाइनस् रोक्सबर्गी (ब)	चीड़	क$_{२}$,ख$_{२}$,ग$_{२}$, घ$_{३}$, ङ$_{२}$।
५	*** पाइनस् इक्सैल्सा (स)	कैल	क$_{३}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$,घ$_{३}$,ङ$_{३}$।
६	*** एकेशिया अरेबिका (ब)	बाबुल	क$_{१}$, ख$_{१}$।
७	*** एडीना कौर्डीफोलिया (अ)	हल्दू	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
८	** एल्बीजिया प्रोसीरा (स)	सफेद सिरिह	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, घ$_{२}$,ङ$_{२}$।
९	*** एनोजाइसस् लैटीफोलिया (इ)	धौरी	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
१०	** ब्रिडीलिया रैटूसा —	कासी	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$।
११	*** सैड्रीला तूना (स)	तून	ग$_{१}$, ङ$_{१}$।
१२	** डल्बर्जिया सिसू (इ)	शीशम	ङ$_{१}$।
१३	*** मैंगीफरा इन्डीका (अ)	आम	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
१४	* शोरिया रोबस्टा (इ)	साल	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
१५	** यूजीनिया जम्बोलाना (इ)	जामन	क$_{१}$।
१६	*** टर्मिनेलिया बैलैरीका (ब)	बहेड़ा	क$_{२}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
१७	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा (ब)	लौरल	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
१८	*** होपिया इन्टीग्रीफोलिया (ब)	कान्जू	ङ$_{२}$।
१९	* टैक्टोना ग्रेन्डिस (इ)	टीक	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$, घ$_{१}$, ङ$_{१}$।
२०	* ओजीनिया डल्बर्जियोइडिस् —	साँदन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
२१	*** हाइमैनोडिक्टयौन इक्सैल्सम् (स)	कुथान	ग$_{१}$, ङ$_{३}$।
२२	*** जुग्लान्स जाति —	अखरोट	ङ$_{१}$।
२३	* टैरोकार्पस मार्स्युपियम् (इ)	बीजासाल	क$_{१}$, ख$_{१}$, ङ$_{१}$।

३. मध्य कटिबन्ध

मध्य प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश

क्रमांक	काष्ठ जाति	व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया अरेबिका (ब)	बाबुल	क$_{१}$, ख$_{१}$।
२	*** एनोजाइसस् लैटीफोलिया (इ)	धौरी	क$_{१}$ ख$_{१}$, घ$_{१}$।
३	*** क्लोरौक्सीलौन स्वीटेनिया —	सैटिन काष्ठ	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$, ङ$_{१}$
४	* डल्बर्जिया लैटीफोलिया —	रोज़वुड	ङ$_{१}$।
५	*** डायोस्पीरौस मैलैनौक्सीलौन —	एबौनी	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$।
६	* मिलीनिया अर्बोरिया —	गमारी	ग$_{१}$, ङ$_{१}$।
७	* हार्डविकिया बिनाटा (इ)	अन्जन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
८	*** लैगस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा	(इ)	लैन्डी	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$ ।
९	* ओजीनिया डल्बर्जियौइडीज	—	साँदन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$ ।
१०	* टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	(इ)	बीजासाल	क$_{१}$, ख$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
११	* शोरिया रोबस्टा	(इ)	साल	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$ ।
१२	** यूजीनिया जम्बोलाना	(इ)	जामन	क$_{१}$ ।
१३	* टैक्टोना ग्रैन्डिस	(इ)	टीक	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$, घ$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
१४	** टर्मिनेलिया अर्जुना	(ब)	अर्जुन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$ ।
१५	*** टर्मिनेलिया बैलैरिका	(ब)	बहेड़ा	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$ ।
१६	* मधूका लैटीफोलिया	—	महुवा	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$ ।
१७	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$ ।
१८	*** मिट्रैजाइना पार्वीफोलिया	(ब)	कैम	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$ ।

४. पश्चिमी कटिबन्ध

बम्बई प्रदेश

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया अरेबिका	(ब)	बाबुल	क$_{१}$, ख$_{१}$ ।
२	*** अर्टोकार्पस हिरस्यूटा	—	एनी	ख$_{१}$, ग$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
३	** कैलोफिलम् जाति	(इ)	पून	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$ ।
४	*** सैड्रैला तूना	(स)	तून	ग$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
५	* डल्बर्जिया लैटीफोलिया	—	रोज वुड	ङ$_{१}$ ।
६	*** डिलीनिया जाति	(द)	डिलीनिया	क$_{३}$, ख$_{३}$, ग$_{२}$, घ$_{३}$,
७	*** डायौस्पीरौस मैलैनौक्सीलौन	—	एबौनी	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$ ।
८	** ग्रीविया जाति	(द)	धामन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$ ।
९	* लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा	(इ)	बैन्टीक	क$_{१}$,ख$_{१}$,ग$_{२}$, घ$_{१}$,ङ$_{२}$ ।
१०	* टैरोकार्पस मार्स्युपियम्	(इ)	बीजासाल	क$_{१}$, ख$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
११	** यूजीनिया जम्बोलाना	(इ)	जामन	क$_{१}$ ।
१२	* टैक्टोना ग्रैन्डिस	(इ)	टीक	क$_{१}$, ख$_{१}$,ग$_{१}$,घ$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
१३	*** टर्मिनेलिया बैलैरिका	(ब)	बहेड़ा	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$ ।
१४	** टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	(स)	किन्डल	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$ ।
१५	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$ ।
१६	* जाइलिया जाइलोकार्पा	(इ)	इरुल	क$_{१}$, घ$_{१}$ ।
१७	*** एडीना कौर्डीफोलिया	(अ)	हल्दू	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$ ।
१८	* डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम	—	सफेद सीडार	ग$_{१}$, ङ$_{१}$ ।
१९	*** मैंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, घ$_{२}$ ।
२०	*** मिट्रैजाइना पार्वीफोलिया	(ब)	कैम	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$ ।

५. दक्षिणी कटिबन्ध

मद्रास, मैसूर और केरल

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापारी नाम	प्रयोग
१	*** एकेशिया अरेबिका (ब)	बाबुल	क$_{१}$, ख$_{१}$।
२	*** एक्रोकार्पस फ्रैक्सीनीफोलिअस् (स)	मुन्दानी	ग$_{२}$।
३	*** एडीना कौर्डीफोलिया (अ)	हल्दू	ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
४	* एल्बीजिया लैबैक (स)	कोको	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$, घ$_{१}$, ङ$_{१}$।
५	* एल्बीजिया ओडोराटिसिमा (इ)	काला सिरिस	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{२}$, घ$_{२}$ ङ$_{२}$।
६	*** एनोजाइसस् लैटीफोलिया (इ)	धौरी	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
७	* अर्टोकार्पस हिटीरोफिलस —	कठल	क$_{२}$, ख$_{२}$।
८	*** अर्टोकार्पस हिर्स्यूटा —	एनी	ख$_{१}$, ग$_{१}$, ङ$_{१}$।
९	** ब्रीडीलिया रैटच्यूसा —	काशी	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$।
१०	** कैलोफिलम् जाति (इ)	पून	क$_{२}$, ख$_{२}$, ग$_{२}$, ङ$_{२}$।
११	*** क्लोरौक्सीलौन स्वीटेनिया —	सैटिन काष्ठ	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$, ङ$_{२}$।
१२	*** कुलीनिया इक्सैल्सा (ब)	करानी	ख$_{१}$, ग$_{२}$।
१३	* डल्बर्जिया लैटीफोलिया —	रोज वुड	ङ$_{१}$।
१४	*** डायोस्पीरौस जाति —	एबौनी	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$।
१५	** डिप्टोकार्पस इन्डीकस (ब)	गुर्जन	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{२}$, घ$_{२}$।
१६	* मैलीना अर्बोरिया —	गमारी	घ$_{१}$, ङ$_{१}$।
१७	** ग्रीविया टिलीफोलिया (द)	धामन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
१८	* डार्डविकिया बिनाटा (इ)	अन्जन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$।
१९	* हार्डविकिया पिनाटा —	पिने	ख$_{२}$।
२०	* होपिया जाति (स) (इ)	होपिया	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
२१	* लैगर्स्ट्रोमिया लैन्सियोलाटा (इ)	बैन्टीक	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{२}$, घ$_{१}$, ङ$_{२}$।
२२	* मधूका जाति —	महुवा	क$_{२}$, ख$_{२}$, घ$_{२}$।
२३	* मीस्यूसौप्स् जाति —	बुलैट वुड	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{१}$।
२४	** पैलैक्यूअम् इलिप्टिकम् —	पाली	ख$_{१}$, ग$_{१}$।
२५	** पोसीलोन्यूरौन इन्डीकम् (इ)	बलागी	क$_{१}$।
२६	* टैरोकार्पस् मार्स्युपियम (इ)	बीजासाल	क$_{१}$, ख$_{१}$, ङ$_{१}$।
२७	** साईजीगियम (यूजीनिया) जाति-(द) (इ)	जामन	क$_{१}$।
२८	*** साइलीचरा ओलियोसा (सा० त्रिजुगा अ)	कुसुम	क$_{१}$।
२९	*** टैमैरिन्डस इन्डीका —	इमली	क$_{१}$।
३०	* टैक्टोना ग्रैन्डिस (इ)	टीक	क$_{१}$, ख$_{१}$, ग$_{१}$, घ$_{१}$, ङ$_{१}$
३१	** टर्मिनेलिया अर्जुना (ब)	अर्जुन	क$_{१}$, ख$_{१}$, घ$_{२}$।

क्रमांक	काष्ठ-जाति		व्यापारी नाम	प्रयोग
३२	** टर्मिनेलिया पैनीक्यूलाटा	(स)	किन्डल	$क_2$, $ख_2$, $घ_2$।
३३	** टर्मिनेलिया टोम्यनटोसा	(ब)	लौरल	$क_1$, $ख_1$, $घ_1$।
३४	* जाइलिया जाइलोकार्पा	(इ)	इरूल	$क_1$, $घ_1$।
३५	* मैसुवा फैरिया	(इ)	मैसुवा	$क_1$, $ख_1$ $घ_1$।
३६	*** मैंगीफरा इन्डीका	(अ)	आम	$क_2$ $ख_2$, $ग_2$, $ङ_2$।
३७	*** सैड्रीला तूना	(स)	तून	$ग_1$, $ङ_1$।
३८	* डाइसौक्सीलम् मैलैबैरिकम्	—	सफेद सीडार	$ग_1$, $ङ_1$।
३९	*** मिट्रैजाइना पार्भीफोलिया	(ब)	कैम	$ख_2$, $ग_2$, $ङ_2$।
४०	** जैन्थौक्साइलम् रहैट्सा	—	मुलीलाम	$ख_1$, $ग_1$, $ङ_1$।
				समाप्त।

(यह वर्गीकरण वन-अनुसंधान-शाला की काष्ठ शारीर, काष्ठ संशोषण, काष्ठ परिक्षण और काष्ठ अभियांत्रिकी शाखाओं ने मिलकर तैयार किया है।)

परिशिष्ट १२

सारणी—३२

उत्तर प्रदेश के मुख्य काष्ठों की प्राकृतिक स्थायिता, प्राप्यता, उपचार, मूल्य और विभिन्न प्रयोगों के सम्बन्ध में सूचना

('टिम्बर ड्रायर्स एन्ड प्रीजर्वर्स एसोसिएशन ऑफ इन्डिया' के 'क्वाटर्ली न्यूज बुलैटिन' के जुलाई १९५५ के अंक में प्रकाशित)

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ की उपचारिता	प्राप्य मात्रा १००० घन फुट में	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग, आवश्यकतानुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
१	**एबिस पिन्ड्रो**	फर, टौस, मौरिंडा	उच्च पर्वतों में, विशेष कर टेहरी, गढ़वाल।	५	(द)	३००	३·००	१, ८, १२, १३, १६ और १७।
२	**एकेशिया एरेबिका**	कीकर, बाबूल	तराई और भूमि प्रबन्धक संभाग।	५	(ब)	३०	३·००	१, ४, १४, १८ और १९।
३	**एकेशिया कैटैच्यू**	खैर	मुख्यतः अधः पर्वतीय और तराई संभाग।	१	—	३०	२·००	१ से १२, १४, १९, २० और २१।
४	**एसर जाति**	मेपल, कैन्जू	उच्च पर्वत।	६	—	३	५·००	२२ और २३।
५	**एडीना कौर्डीफोलिया**	हल्दू	मुख्यतः अधः पर्वतीय संभाग।	५	(अ)	१२०	३·५०	१२, १४, १६, २३, २५ और २९।

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ की उप-चारिता	प्राप्य मात्रा १००० घन फुट में	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग आवश्यकता-नुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
६	एनोजाइसस् लैटीफोलिया	बकली, धाऊ	मुख्यत: अध: पर्वतीय संभाग।	५	(इ)	३०	३ ·००	१ से ४, ६, ७, ८, ९, ११, १२, १४, १८ और २४।
७	सैड्रीला तूना	तून	मुख्यत: अध: पर्वतीय संभाग।	५	(स)	१०	४ ·५०	१, २, १२, १९ और २३।
८	सीड्रस देवदारा	देवदार	उच्च पर्वत, विशेष कर टेहरी सर्कल।	२	(स)	३००	५ ·५०	१, ६, ८, ११, १२, १९, २५ और २७।
९	कुप्रुसस् टौरूलोसा	साइप्रस, सुराइ	उच्च पर्वत, विशेष कर कुमाऊं सर्कल।	१	(इ)	५	४ ·००	१, ३, ६, ११, १९ और २७।
१०	इलबर्जिया सिसू	शिशू, शीशम	मुख्यत: अध: पर्वत, तराई और भूमि प्रबन्धक संभाग।	१	(इ)	२००	६ ·००	१ से ७, ९, १२, १४, १८, १९ और २३।
११	होलोप्टिलिया इन्टीग्रीफोलिया	काँजू, पपरी	मुख्यत: अध: पर्वतीय संभाग।	५	(ब)	१००	२ ·००	७, १६, १८, १९ और २३।
१२	हाइमैनोडिक्टयौन इक्सैल्सम	वौरंग, भुरकुल	मुख्यत: अध: पर्वतीय संभाग।	६	(स)	५	४ ·००	७, १६, २३, २५ और २९।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
१३	जुग्लान्स् रेजिया	अखरोट	उच्च पर्वत, टेहरी और कुमाऊं सर्कल।	६	—	१	६·५०	१२ और २२।
१४	ओजीनिया डल्बजियौइड्स	साँदन, पाँदन	मुख्यतः अधः पर्वतीय और तराई संभाग।	—	—	३०	३·५०	४, ९, १२, १४, १८ और १९।
१५	पीसिया स्मीथियाना (पर्याय पी० मोरिन्डा	स्प्रूस, राइ	उच्च पर्वत, मुख्यतः टेहरी सर्कल।	६	(द)	३००	३·००	२, ६, ८, १२, १३, १६ और १७।
१६	पाइनस् रौक्सबर्गी पर्याय पा० लौंगी फोलिया)	चीड़	पर्वत, विशेष कर कुमाऊं और टेहरी सर्कल।	५	(ब)	३,४००	३·००	१ से १२, १६ १९ और २४।
१७	पाइनस् वालीचियाना (पर्याय पा० इक्सैल्सा)	नीला पाइन, कैल	उच्च पर्वत, विशेष कर चकराता संभाग।	५	(स)	१५०	३·००	१, २, ६, ८, १२, १६, १७, १९ और २५।
१८	प्रूनस कौर्नूटा	बर्डचैरी, जमोइ	उच्च पर्वत	—	—	२	५·००	२२।
१९	साल्मेलिया मैलैबैरिका (पर्याय बौम्बैक्स मैलैबैरिकम्)	सीमल	अधः पर्वतीय और तराई संभाग।	६	(अ)	२००	२·००	२३, २६ और २८।
२०	शोरिया रोबस्टा	साल, साखू	सर्व अधः पर्वतीय और तराई संभाग, अन्यत्र स्थानीय।	१	(इ)	४०००	६·००	१ से ९, ११, १२, १९ और २४।
२१	साइचीगियम क्यूमीनी (पर्याय यूजीनिया जम्बोलाना)	जामन	मुख्यतः मैदान वन।	३ और ४	—	५	४·५०	१ से ४, ८, १४, १८ और २८।
२२	टैक्टोना ग्रैन्डिस्	टीक, सागौन	मुख्यतः बुन्देलखन्ड, अन्य छोटे रोपित वन॥	२	(इ)	८	८·००	१ से १२, १९, २३ और २४।

क्रमांक	काष्ठ-जाति	व्यापार नाम	उपज स्थान	सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता	सारकाष्ठ की उपचार्यता	प्राप्य मात्रा १०० घन फुट में	प्रति घन फुट का औसतन् मूल्य	विभिन्न प्रयोग आवश्यकतानुसार उपचार के पश्चात्
१	२	३	४	५	६	७	८	९
				वर्ग			रु०	
२३	टर्मिनेलिया ऐलाटा (पर्याय ट० टोम्यनटोसा)।	सैन, असना	सर्व अधः पर्वतीय, तराई और विन्ध्यान संभाग।	४	(ब)	४००	४·५०	१, २, ४, ८, ९, ११, १४, १८, १९ और २४।
२४	ट्रीविया न्यूडीफ्लोरा	ग्यूटैल	मुख्यतः मैदान वन	—	—	३०	२·५०	१६, २३ और २६।

व्याख्या-टिप्पण—१—ऊपर ५ स्तम्भ में लिखित सारकाष्ठ की प्राकृतिक स्थायिता, सारणी ८ (भाग २, अध्याय ३) में दी गयी वर्ग-संख्या के अनुसार है।

२—उपचार, सारणी ३० (परिशिष्ट ११) के टिप्पण में दिये गये अक्षरांकित के अनुसार है।

३—विभिन्न प्रयोग निम्नप्रकार से हैं—

(१) छत, (२) अन्तश्छद, (३) ट्रस, (४) बाड़-खम्भ, (५) दीवार, (६) फर्श, (७) बाड़-पट्टियाँ, (८) रेलवे स्लीपर, (९) बिजली व तार खम्भ और स्तम्भ, (१०) नौ-निर्माण, (११) पुल इत्यादि—जैसे भारी निर्माण कार्य, (१२) उपस्कर, (१३) हवाई-जहाज, (१४) कृषि औजार, (१५) खेल-सामग्री, (१६) आधान अथवा पात्र, (१७) पत्र-गोर्द, (१८) गाड़ी-निर्माण, (१९) गृह-निर्माण, (२०) कोलू, (२१) कत्था-उत्पादन, (२२) बन्दूक-भाग, (२३) स्तर और आपट्टित काष्ठ, (२४) बल्लियाँ, (२५) गणित उपकरण, (२६) दियासलाई, (२७) पैन्सिल, (२८) कुआं-कार्य और (२९) बौबिन।

(हस्ताक्षरित) डी० एल० साह,
आई० एफ० एस्०,
मुख्य वन-संरक्षक, उत्तर प्रदेश, नैनीताल।

पारिभाषिक शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावली

हिन्दी-अंग्रेजी

अं

अंगार राल–Coal tar.

अंश–Members.

अ

अकार्बनिक–Inorganic.

अग्निरक्षा–Fireprotection.

अग्निरोधी–Fireproof.

अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र–Fireproofing *cum* antiseptic-composition.

अछादित कुण्ड–Open tank.

अनुकूलतम—Optimum.

अनुमानित–Estimated.

अनुप्रस्थ–Transverse.

अन्त:प्रेषण–Inject.

अन्तर्गत–Indoor.

अन्त:प्रवेशन–Penetration.

अन्तराकोश–Intercellular.

अन्तर्भूमिक–Subterranean.

अन्वायुक्तियाँ–Fittings.

अन्वेषण–Research.

अपक्षय–Rot.

अपेक्षया–Relatively.

अप्रतिचारी–Refractory.

अप्रांगारिक–Inorganic.

अभिकर्ता–Agent.

अभिज्वाल्यता–Inflammability.
ज्वलनशीलता

अभिस्तावित–Recommended.

अभिरञ्जन–Stain.

अभिलेख–Records.

अयोग्यता–Rejection.

अरन्ध्री, निरन्ध्र–Nonporous.

अरीय–Radial.

अल्प–Low.

अल्पउपचार–Temporary protection.

अवस्था–Condition.

अवमूल्यन–Depreciation.

अवह्रास–Deterioration.

अवयव–Members.

अवशोषण–Absorption. (प्रचूषण)

अस्थायी–Nondurable.

अस्वीकृति–Rejection.

आ

आँकड़े–Statistics.

आड़ा–Horizontal.
आड़े बत्ते–Cross-arms, Crossers.
आदहन–Charring.
आर्द्रता–Moisture.
आधार–Foundation.
आन्तरकाष्ठ–Heartwood.
आपाक संशोषण–Kiln-Seasoning.
आपट्टित काष्ठ–Laminated wood.
आयु–Life.
आर्द्रताग्राही–Hygroscopic.
आलग–Viscous, श्यान, गाढा
आलगत्व–Viscosity. श्यानता
आलोकन–Note.
आवर्द्धक काँच–Magnifyingglass.
आविष्कार–Discovery.
आसारण–Osmosis.

इ

इस्पात–Steel.

उ

उच्च–High.
उत्पत–Volatile.
उत्पत तेल–दे० 'गंधतेल'
उदग्र–Vertical.
उदञ्च–Pump.
उद्विकाश–Evolution.
उद्विलयन–Leach.
उद्भिद समूह–Vegetation.
उद्भिद् सम्बन्धी–Vegetative.
उपचार करना–Treat.
उपचार ग्रहणीय–Treatable.
उपचारिता–Treatability.
उपचारित–Treated.
उपसाधन–Accessories.
उपस्कर–Furniture.
उपसृष्ट पदार्थ–By-products, उपजात
उरुपाती (चौड़ी पत्तीवाले)–
Broad-leaved.
उरुपाती काष्ठ–Hardwood.
उषंकरी अर्हा– ऊष्मीय मान
उष्म संवाहिता–Thermal conductivity.

ऊ

ऊति–Tissue.

ऋ

ऋतुक्षरण–Weathering.

ए

एकस्व–Patent.
एकस्वीकरण–Patenting.

औ

औसत–Average.

क

कन्दु–Oven.
कपाट–Valve.
कर्मी–Workers.
कला—Membrane.
कवक–Fungus.
कवकमार–Fungicide.
कवकसूत्र–Hypha.
कवकसूत्र जाल–Mycelium.
कार्बनिक–Organic.

कार्बनीकरण–Carbonisation.
कारक–Agency, factors.
काष्ठ—Wood, timber.
किनारीदार गर्त—Bordered pit.
कीटनाशक–Insecticide.
कुल–Family.
कुल्या–Canal.
कूर्चन–Brushing.
कूची–Brush.
कूप–Cavity.
कूपी–Bottle, बोतल
केन्द्रापग उदञ्च Centrifugal pump.
केशाल-क्रिया–Capillary action.
कोशा—Cell.
कोशाधु–Cellulose.
कोशाभित्ति–Cell-wall.
क्रिया–Process.
क्रियोजोटीकृत–Creosoted.
क्रिजोटीकरण–Creosoting.

ख

खड़ा–Vertical.
खम्भ–Pole.
खुला कुण्ड–Open tank.
खूंटी–Stakes.

ग

गर्त, गढ़ा–Pit.
गंधतेल–Essential oil, वाष्पशील तेल
गाढ़ा–Viscous. श्यान
गाढ़ापन–Viscosity, श्यानता
ग्रीष्मकाष्ठ–Summer-wood.
गुणक–Coefficient.
गुहारुध–Tyloses.
गौण–Secondary.

घ

घनत्व–Density.

च

चूर्ण–Powder.
चूषण–Soaking.

छ

छतपट्ट–Shingles.
छादन-घास–Thatch grass.
छादित–Indoor.
छाल–Bark.
छिद्रकीट–Borers.
छीलन–Debarking.
छेदन–Section.
छोर–End.

ज

जल निपीडक–Hydraulic pump.
जल-विलेय–Watersoluble.
जल-विलेयबद्ध प्रतिरूप–Water soluble fixed type.
जाति–Species.
जीवनकाल–Life.
जीवितक–Parenchyma.
जैविक–Biological.
ज्वलनशीलता–Inflammability

ट

टक्कर–Cross-section.

टिकाऊ–Durable.
टूट-फूट–Wear and tear.

ड

डिम्भ–Larva.

त

तर्कुरूप किरणें–Fusiform rays.
तत्त्व–Element.
तनु छोर–Thin end.
तन्तु–Fibre.
तन्तु परिपूर्णांक बिन्दु–Fibre saturation point.
तरल–Liquid.
तल–Surface.
तलछट–Precipitate.
तापन और शीतन–Heating and cooling.
ताल–Lens.
तिरछा–Transverse.
तिर्यक् छेद–Cross-section.
तीव्रता–Intensity.
तुलनात्मक–Comparative.
तैल-विलेय–Oil-soluble.

द

दबन–Collapse.
दबाव–Pressure.
दरार–Cracks.
दशा–Condition.
दक्षता–Efficiency.
द्वितीय–Secondary.
दीमक–White ants, termites.
दीर्घित–Elongated.
दृढ़ता–Strength, toughness.

ध

धारिता–Capacity.
धावन–Leaching.
धूल-विष–Dust-poison.

न

नाड–Pipe.
नाशन–Destruction.
नाशरक्षण शुल्क–Salvage value.
निर्देश–Reference.
निपीड–Pressure.
निम्न लागत–Low-cost.
निराल–pitch, डामर
निरंध्र–Nonporons.
निर्माता–Manufacturers.
निर्माणशाला–Factory.
निर्माण-रचिति–Mill construction.
नियन्त्रण–Control.
निरीक्षण–Observation, inspection.
निस्सादन–Precepitation, तलछट
निस्सार–extractive.
निश्चयन–Determination.
न्यादर्श–Specimen. (प्रादर्श)
न्यून–Slight.

प

पंक्तियाँ–Rows.
पट्टीबन्धन–Bandaging.
पर्यवेक्षण–Supervision.
परिरक्षी–Preservative.

भ

भंजन—Cracking (of oil).
भरणतट—Wharf.
भवन-निर्माण-Building work.
भाग—Member.
भित्ति—Wall.
भूतैल—Petroleum.
भेदन—Incising.

म

मध्यक—Pith.
मध्यम—Moderate.
मध्या—Median.
मण्ड—Starch.
महानुमाप—Large scale.
मात्रा—Quantity, amount.
माध्य—Average.
माध्यम—Medium.
मिश्र—Composition.
मुण्डछोर—Butt-end.
मूल्य कथन—Quotation.
मोटाई—Thickness.
मृत्तैल—Petroleum, भूतैल
मृदाबीजाणुहनन—Soil-sterilisation.

य

यन्त्र—Equipment.
यान्त्रिक विघर्षण-Mechanical wear.
यौगिक—Compound.

र

रंगलेप—Paint.
रद्द—Rejection, waste.
रन्ध्र—Pore.
रन्ध्री—Porous, सरन्ध्र
रम्भ—Cylinder.
रस—Sap.
रसकाष्ठ—Sapwood.
रसविस्थापन—Sap dis-placement.
रसायन, रसद्रव्य—Chemicals.
रासायनिक संगठन—Chemical composition.
राशि—Amount.
रिक्त कोशा—Empty cell.
रीति—Method.
रूपिंग—Rueping.
रेल-आसन—Rail-Seat.
रेशा—Fibre.
रोधी—Resistant.

ल

लक्षण—Characteristics.
लगुडि—Lignin.
लघु अनुमाप—Small scale.
लवण—Salts.
लागत—Cost.
लीसा प्रणाली—Resin duct.
लौरी—Lowry.

व

वनकला—Silviculture.
वर्गीकरण—Classification.
वर्द्धगति—Accelerated.
वयन—Grain.
वल्क—Bark.

वलय–Ring.
वलय-रन्ध्र–Ring porous.
वसन्तकाष्ठ–Spring-wood.
वातिक, वायवीय–Pneumatic.
वायु-संपीडक–Air Compressor.
वाष्पित्र–Boiler.
वाष्पीकरण–Steaming.
वास्तविक–Net.
वाहिनी–Vessels.
वाहिकोशा-Tracheid, दारु वाहिनिकी
विकर–Enzyme.
विधायित काष्ठ–Processed timber.
विपटन–Splitting.
विलयन की प्रबलता–Strength of solution.
विलायक–Solvent.
विवरण–Statement.
विवरणिका–Bulletin.
विविध, विभिन्न–Various.
विवेचन–Discussion.
विश्लेषण–Analysis.
विशिष्टि–Specification.
विशेष कथन–Remarks.
विषम रूप–Heterogeneous.
विषालु–Toxic.
विषालुता परीक्षण–Toxicity tests.
वेगकालीन–Accelerated, वृद्धिगत
व्यावसायिक–Commercial.
व्यापंन–Impregnate.
व्यापारिक नाम–Trade name.
वृद्धिवलय–Growth ring.

श

शंकुधारी काष्ठ–Soft wood.
शर्करा–Sugar.
शवांगण–Graveyard.
शाखा–Branch.
शारीर रचना-Anatomical structure
शाला, शालिका–Shed.
शिशु–Nymph.
शीकरन–Spraying.
शुष्क–Dry.
शून्यक–Vacuum.
शोधन करना–Treat.
शोधित–Treated.
श्लेष–Glue.
श्वेत अपक्षय–White rot.

स

संक्रांत–Attacked.
संक्रान्त, ग्रस्त–Infected.
संकेन्द्रित–Concentrated.
संघनक–Condenser.
संग्रह-कुण्ड–Storage tank.
संधि-स्तम्भ–Culms.
संधारी शक्ति–Mechanical strength.
संभार–Equipment.
संभावित–Approximate.
संपत्ति–Asset.
संयन्त्र–Plant.
संयोग–Compound.

संयोजन–Combining.
संरचना–Structure.
संरचनात्मक–Structural.
संरक्षण–Conservation.
संवर्ध–Culture.
संवधार्श–Culture medium.
संशोषण–Seasoning.
संश्लिष्ट–Synthetic.
संक्षरण–Corrosion.
संक्षारक–Corrosive.
सकल–Gross.
सड़न–Decay.
सपक्ष–Alate.
समंक–Statistics.
समरूप–Homogeneous.
समशीतोष्ण–Temperate.
समाई–Capacity, धारिता
समुचितोपचार–Conditioning treatment.
समुद्रतटघाट–Wharf.
सम्बलित–Reinforced.
सांख्यिकी–Statistics.
साधारण गर्त–Simple pit.
सामग्री–Data.
सामुद्रिक–Marine.
सार–Summary.
सारकाष्ठ–Heartwood.
सारणी–Table.
सिद्धि–Accomplishment.
सेवा-आयु–Service life.
सेवाकालीन परीक्षण–Service tests.
सुउपचारित–Well-treated.
सुवाह्य–Portable.
स्पर्शीय–Tangential.
स्तम्भ–Pile.
स्तरकाष्ठ–Plywood.
स्थायी–Durable.
स्थायित्व–Durability.
स्थापना–Establishing.
स्थूलक–Torous.
स्लीपर–Sleeper.
स्फट–Crystal मणिभ
स्थिर–Fixed.
स्थिरीकरण–Fixation.
स्वाभाविक स्थायीपन–Natural durability.
स्वामिक–Proprietary.
स्वस्थ–Sound.
स्वस्थानीय–In situ.

क्ष

क्षतिरोधक उपाय–Prophylactic measures.
क्षेत्र–Area.
क्षैतिज–Horizontal.

अंग्रेजी-हिन्दी

A

Absorption–प्रचूषण; अवशोषण
Accessories–उपसाधन
Accomplishment–सिद्धि, परिपूर्ति
Adult–प्रौढ़
Against–प्रति
Agent–कारक, अभिकर्ता
Air-Compressor–वायु-संपीडक
Alate–सपक्ष
Amount–मात्रा, राशि
Analysis–विश्लेषण
Anatomical structure–शारीर-रचना
Annual ring–वार्षिक वलय
Anticipated–प्रत्याशित
Appendix–परिशिष्ट
Approximate–सम्भावित, सन्निकट
Area–क्षेत्र, प्रदेश
Arranged–क्रमबद्ध
Asset–सम्पत्ति
Attacked–संक्रान्त
Average–माध्य, औसत

B

Bandaging–पट्टीबन्धन
Bark–वल्क, छाल
Biological–जैविक
Blower–फूंकनी
Boiler–वाष्पित्र
Bordered pit–किनारीदार गर्त
Borers–छिद्रक कीट
Botanical name–पारिभाषिक नाम
Bottle–कूपी, बोतल
Boulton–बोल्टन
Branch–शाखा
Broad leaved–उरुपाती
Brown rot–बभ्रु अपक्षय
Brush–कूची
Brushing–कूर्चन
Building work–भवन-निर्माण
Bulletin–विवरणिका
Butt end–मुंड छोर
By-products–उपसृष्ट पदार्थ, उपजात

C

Canals–कुल्या
Cane–बेंत
Capacity–समाई, धारिता
Capillary action–केशाल क्रिया
Cavity–कूप
Cell–कोशा
Cellulose–कोशाधु
Cell-wall–कोशाभित्ति
Centrifugal pump–केन्द्रापग-उदञ्च
Characteristics–लक्षण
Charge–प्रभार
Charring–आदहन
Chemical composition–रासायनिक संगठन
Classification–वर्गीकरण

Coal tar–अंगार राल
Coefficient–गुणक
Collapse–दबन
Combine–संयोजन
Commercial–वाणिज्यिक, व्यावसायिक
Comparative–तुलनात्मक
Compete–स्पर्धा करना
Compound–संयोग, यौगिक
Composition–मिश्र
Concentrated–संकेन्द्रित
Condenser–संघनक
Condition–दशा, अवस्था
Conditioning treatment–समुचितोपचार
Coniferous–शंकुधारी
Conservation–संरक्षण
Control–नियन्त्रण
Convert–परिवर्तन करना
Corrosion–संक्षरण
Corrosive–संक्षारक
Cost–परिव्यय, लागत
Cracks–दरार
Creosoted–क्रियोजोटीकृत
Creosoting–क्रियोजोटीकरण
Cross arms–आड़े-बत्ते
Crossers–आड़े-बत्ते
Cross-Section–तिर्यक् छेद, टक्कर
Culture–संवर्ध
Culture medium–संवर्धाश
Culms–संधिस्तम्भ
Cylinder–रम्भ

D

Data–सामग्री
Debarking–छीलन
Decay–सड़न
Demonstration–प्रदर्शन
Density–घनत्व
Depreciation–अवमूल्यन
Deterioration–अवह्रास
Determination–निश्चयन, निर्धारण
Diffused–प्रसृत, प्रसारित
Diffuse porous–प्रसृत रन्ध्र
Diffusion–प्रसारण
Discovery–आविष्कार
Discussion–विवेचन
Dry–शुष्क
Durability–स्थायित्व
Durable–स्थायी, टिकाऊ
Dust poison–धूल विष

E

Efficiency–दक्षता
Element–तत्त्व
Elongated–दीर्घित
Empty cell–रिक्त कोशा
Emulsion–प्रनिलम्ब, पायस
End–छोर
Enzyme–विकर
Equipment–संभार, यन्त्र
Establish–स्थापना करना

Estimated–अनुमानित
Evolution–उद्विकाश
Expected–प्रत्याशित
Experiments–परीक्षण

F

Factors–कारक
Factory–निर्माणशाला
Family–कुल
Fence post–बाड़-खम्भ
Fibre–तन्तु, रेशा
Fibre saturation point–तन्तु परिपूर्णक बिन्दु
Fire-proof–अग्निरोधी
Fireproofing *cum* antiseptic-composition–अग्निरोधी-स-परिरक्षी मिश्र
Fire protection–अग्निरक्षा
Fixation–स्थिरीकरण, बद्धकरण
Fixed–स्थिर, बद्ध
Foundation–आधार
Fruiting body–फलन काय
Full cell–पूर्ण कोशा
Fungicide–कवक मार
Fungus–कवक
Furniture–उपस्कर
Fusiform rays–तर्कुरूप किरणें

G

Genus–प्रजाति
Glue–श्लेष
Grain–वयन
Graveyard–शवांगण
Gross–सकल
Growth ring–वृद्धि वलय

H

Hardwood–उरुपाती काष्ठ, कठोर-काष्ठ
Heartwood–सारकाष्ठ, आन्तर काष्ठ
Heating and cooling–तापन और शीतन
Heterogeneous–विषमरूप
High–उच्च
Homogeneous–समरूप
Horizontal–क्षैतिज, आड़ा
Hydraulic pump–जलनिपीड़क
Hypha–कवक सूत्र

I

Impregnate–व्यापन करना
Incising–भेदन
Indoor–अन्तर्गत, छादित
Infected–संक्रान्त, ग्रस्त
Inflammability–अभिज्वाल्यता
Inject–अन्तःप्रेषण
Inorganic–अप्रांगारिक, अकार्बनिक
Insecticide–कीटनाशक
Insitu–स्वस्थानीय
Inspection–निरीक्षण
Intensity–तीव्रता
Intercellular–अन्तराकोश

K

Kick back–पादप्रहार

Kiln Seasoning–आपाक-संशोषण

L

Laminated wood–आपट्टित काष्ठ
Large Scale–महानुमाप
Larva–डिम्भ
Leach–उद्विलयन
Leaching–धावन, धोना
Lens–ताल
Life–जीवनकाल, आयु
Lignin–लगुडि
Liquid–तरल
Low–अल्प
Lowcost house–कम लागतवाले गृह
Lowry–लौरी

M

Magnifying lens–आवर्धक काँच
Manufacturers–निर्माता
Marine–सामुद्रिक, समुद्रीय
Mechanical Strength–संधारी शक्ति
Mechanical wear–यान्त्रिक विघर्षण
Median–मध्या
Medium–माध्यम
Members–भाग, अंश, अवयव
Membrane–कला
Method–रीति
Mill construction–निर्माण-रचिति
Moderate–मध्यम
Moisture–आर्द्रता
Mould–फफूंद
Mycelium–कवकसूत्र जाल

N

Natural durability–प्राकृतिक स्थायित्व
Net–वास्तविक
Non-durable–अस्थायी
Non-porous–(अरन्ध्री), निरन्ध्र
Note–आलोकन
Nymph–शिशु

O

Observation–निरीक्षण
Oil-soluble–तैल-विलेय
Open tank–अछादित कुंड, खुला कुंड
Optimum–अनुकूलतम
Organic Solvent–प्रांगारिक (कार्बनिक) विलायक
Osmose–आसारण
Oven–कन्दु

P

Packing case–पेटी
Paint–रंगलेप
Parenchyma–जीवितक
Patent–एकस्व
Patented–एकस्वीकरण किया गया
Penetrability–प्रवेश्यता
Penetration–अन्तःप्रवेशन
Permeable–प्रवेश्य
Permeability–प्रवेश्यमाप
Petroleum–मृत्तैल, भूतैल
Pile–स्तम्भ
Pipe–नांड

Pit–गढ़ा, गर्त
Pith–मध्यक
Plant–संयन्त्र
Plywood–स्तरकाष्ठ
Pneumatic–वातिक, वायवीय
Pole–खम्भ
Pore–रन्ध्र
Porosity–रन्ध्रिता, सरन्ध्रता
Porous–रन्ध्री, सरन्ध्र
Portable–सुवाह्य
Powder–चूर्ण
Precipitate–निस्सादन, तलछट
Precipitation–निस्साद, अवक्षेपण
Preliminary–प्रारम्भिक
Preservative treatment–परिरक्षोपचार
Pressure–निपीड, दबाव
Private–निजी
Process–क्रिया, प्रक्रिया
Processed timber–विधायित काष्ठ
Prophylactic measures–क्षतिरोधक उपाय
Proprietary–स्वामिक
Pump–उदञ्च

Q

Quantity–मात्रा, राशि
Quotation–मूल्य-कथन

R

Radial–अरीय
Rail seat–रेल-आसन
Recommended–अभिस्तावित
Records–अभिलेख
Reference–निर्देश
Refining–परिष्करण
Refractory–अप्रतिचारी
Reinforced–सम्बलित
Rejection–अस्वीकृति, रद्द, अयोग्यता
Relatively–अपेक्षया
Remarks–विशेष कथन
Reproductive–प्रजनन
Research–अन्वेषण
Resin ducts–लीसा प्रणाली
Resistant–रोधी
Retention–प्रतिधारणा
Ring–वलय
Ring porous–वलय रन्ध्र
Rot–अपक्षय
Rows–पंक्तियाँ
Rueping–रूपिंग

S

Salvage value–नाशरक्षणशुल्क
Sap–रस
Sap dis-placement–रस-विस्थापन
Sapwood–रसकाष्ठ, बाह्यकाष्ठ
Seasoning–संशोषण
Secondary–द्वितीय, गौण
Section–छेद
Service life–सेवा-आयु
Service tests–सेवाकालीन परीक्षण
Shed–शाला, शालिका

Shift–पारी
Shingles–छतपट्ट
Side–पार्श्व
Simple pit–साधारण गर्त
Sleeper–स्लीपर
Slight–न्यून
Small scale–लघु अनुमाप
Soaking–चूषण
Softwood–शंकुधारी काष्ठ (कोमल काष्ठ)
Soil sterilisation–मृदाजीवाणु-हनन
Solvent–विलायक
Sound–स्वस्थ
Species–जाति
Specification–विशिष्टि
Specimen–न्यादर्श, आदर्श
Spirit–प्रासव
Splitting–विपटन
Sporophore–बीजाणुधर
Spray–शीकरन
Spring wood–वसन्त काष्ठ
Stain–अभिरञ्जन
Stakes–खूँटी
Standard–प्रमाप
Starch–मण्ड
Statement–विवरण
Statistics–आँकड़े, साँख्यिकी
Steaming–वाष्पीकरण
Steel–इस्पात
Sterile–बन्ध्य
Storage tank–संग्रह कुंड
Strength–दृढ़ता, बल
Strength of solution–विलयन की प्रबलता
Structural–संरचनात्मक
Structures–संरचना
Subterranean–अन्तर्भूमिक
Sugar–शर्करा
Summary–सार
Summerwood–ग्रीष्मकाष्ठ
Supervision–पर्यवेक्षण
Surface–तल
Synthetic–संश्लिष्ट

T

Table–सारणी
Tangential–स्पर्शीय
Temperate–समशीतोष्ण
Temporary protection–अल्प-उपचार
Termites–दीमक
Test-yard–परीक्षण आँगन
Thatch grass–छादन-घास
Thermal conductivity–उष्म संवाहिता
Thin end–तनु छोर
Timber–प्रकाष्ठ
Tissue–ऊति
Torus–स्थूलक
Toughness–दृढ़ता
Toxic–विषालु

Toxicity tests–विषालुता-परीक्षण
Tracheid–वाहिकोशा, दारु वाहिनिकी
Trade name–व्यापारिक नाम
Transmission poles–पारेषण खम्भ
Transverse–अनुप्रस्थ, तिरछा
Treat–उपचार करना, शोधन करना
Treatability–उपचारिता
Treatable–उपचारग्रहणीय
Treated–उपचारित, शोधित
Tyloses–गुहारुध
Type–प्रतिरूप

V

Vacuum–शून्यक
Valve–कपाट
Various–विभिन्न, विविध
Vegetation–उद्भिद समूह
Vegetative–उद्भिद सम्बन्धी
Vertical–उदग्र, खड़ा
Vessels–वाहिनी
Viscosity–आगलत्व, गाढ़ापन, श्यानता
Viscous–आलग, गाढ़ा, श्यान
Volatile–उत्पत

W

Wall–भित्ति
Water Soluble–जलविलेय
Water Soluble fixed type–
जल-विलेय बद्ध प्रतिरूप
Wear and tear–टूटफूट
Weathering–ऋतुक्षरण
Well-treated–सु-उपचारित
Wharf–समुद्रतट घाट, भरण-तट
White ants–दीमक
White rot–श्वेत अपक्षय
Wood–काष्ठ
Workers–कर्मी

Y

Yard–प्रांगण